

गरुड-पुराण

(प्रथम खण्ड)

सम्पादन—

वेदप्रति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृत्यां और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार ।

ॐ

प्रकाशक—

संस्कृति-संस्थान,
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम संस्करण)

१९६८

(मूल्य ७ रु०)

प्रकाशक
संस्कृति संस्थान,
रुवाजा कुतुब (वेद नगर)
वरेली । (उ० प्र०)

✽

सम्पादक
प० श्रीराम शर्मा आचार्य

✽

सर्वाधिकार सुरक्षित

✽

प्रथम संस्करण
१९६८

✽

मुद्रक
वृन्दावन शर्मा
जन जागरण प्रेस,
मथुरा ।

✽

मूल्य
७ रु०

भूमिका

धार्मिक और विवेकपूर्ण व्यक्तियों के सम्मुख मर्त्य-जीवन की जो समस्याएँ प्रायः उपस्थित हुआ करती हैं उनमें मरणांतर-जीवन की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। ममार का कोई देश या जाति ऐसी नहीं, जहाँ इन सम्बन्ध में विचार न किया गया हो। उझली कहलाने वाली जातियों में भी इन सम्बन्ध में कुछ धारणाएँ पाई जाती हैं, चाहे वे कौसी ही विविध भयवा समझत क्यों न हो। इसके विपरीत जानें और मध्यात्म-श्रेष्ठ के ज्ञानाग्री की धारणाएँ बहुत कुछ वृद्धि और तर्क सज्जत होती हैं। कुछ भी हो, मरने के बाद हमारी स्थिति क्या होगी, यह प्रश्न प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में कभी न कभी उत्पन्न होता ही है, और प्रत्येक व्यक्ति अपनी विद्या बुद्धि भयवा जानकारी के अनुसार उसका समाधान भी किया करता है।

यद्यपि ससार के अन्य धर्मों—जैसे पारसी, शूदी, ईसाई, इस्लाम में भी मरणांतर-जीवन का उल्लेख पाया जाता है, पर वह इनका सक्षिप्त और गौण रूप वर्णित है कि उससे उनके अनुयायियों के आचार-विचारों तथा मनोभावों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत हिन्दू-धर्म में, विशेषतः उनके पौराणिक-साहित्य में इसका इतना अधिक विवेचन और विस्तार दिया गया है कि आगतधार्मिकों के प्रत्येक कार्य में इसका प्रभाव देखने में आता है। यहाँ करोड़ों मानव और प्रशिक्षित व्यक्ति ऐसे हैं जो मृत्यु के उपरान्त पुनर्जन्म के होन और इस जन्म के प्रत्येक कार्य का फल पाने में अटल विश्वास रखते हैं। ऐसे लोग अपने सुख-दुःख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, भलाई-बुराई आदि सब बातों का कारण पूर्व-जन्म के कर्मों की ही मानते हैं। इनके सिवाय धार्मिक ग्रन्थों के ऐम वर्णनों के परिणाम स्वरूप जैन-भाधारण में स्वर्ग और नरक सम्बन्धी विश्वास भी इनका अधिक पाया जाता है कि वे हर समय उसका जिक्र करते रहते हैं और उनके दान, पुण्य, परोपकार, कर्मकाण्ड आदि का आधार इन्हीं विचारों पर रहता है।

मरणात्तर—जीवन की इस विचार धारा का सबसे अधिक विस्तार 'गरुड-पुराण' में किया गया है। यद्यपि इसमें और भी अनेक जीवनोपयोगी विषयों का वर्णन पाया जाता है पर यमलोक तथा नरको का वर्णन और मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले कर्मकाण्डों का विधि-विधान ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता मानो गई है। इस कारण अनेक हिन्दू घरों में किसी व्यक्ति का देहांत होने के घटसमय पर इस पुराण का पारायण किया जाता है और इससे अनुसार अनाधिक मात्रा में दान-दक्षिणा भी किसी पुण्यहित या महाब्राह्मण आदि को दी जाती है। इसमें यमपुर के माय तप नरको के कष्टों का वर्णन ऐसे भयङ्कर और दीर्घतम रूप में किया गया है कि सुनने वाले का हृदय काँपने लगता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सब लोगो पर इसका प्रभाव स्थायी होता है पर भारतीय समाज में नरक का जिह्न होता एक सामान्य बात है और किसी के दुःखम करने पर उसका नरक-याम की सम्भावना भी प्रकट कर दी जाती है। यह बात सचरी है कि बहुत और सुनने वालों को इस पर कितना विश्वास होता है।

‘गरुड पुराण’ की शिक्षाएँ—

गरुड-पुराण के प्रेत खण्ड में ३५ प्रश्नाश्च है। इनमें दान का फल बतला कर उसके द्वारा मृत्यु प्राप्ति की सद्गति का वर्णन किया गया है। यमलोक के भयंकर कष्टों का वर्णन करके यद्वत बताया गया है कि सबधियों के दान भक्षि का दायाँ परलोक में मृतात्मा के कष्टों में किस प्रकार कमी हो सकती है। इसमें लिये वृषोत्तम (विचार या मीड छोड़ना) का बड़ा महत्त्व दर्शाया है। यमराज के मायालय और उसके कार्याध्यक्ष विचित्राक्ष के स्थानों का वर्णन भी कई जगह विस्तार पूर्वक किया गया है। इसका उद्देश्य यही है। समझता है कि जो साधारण उन पाप कर्मों से यथामध्यव्यव कर रहे जिनमें यमलोक में कष्ट पाने की सम्भावना हो। पाप चलकर अपमृत्यु मरने वाले व्यक्तियों के प्रेत होने का वर्णन और प्रेतयोनि में जीव की घोर दुःखा का वर्णन किया गया है। क्योंकि इस बात का कोई निश्चय नहीं होता है कि कौन व्यक्ति प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ है और वह कब तक उसमें पड़ा रहेगा इसलिए प्रायःक जीवित व्यक्ति का यह

सर्पद्वय जननाया गया है कि अपने किसी सम्बन्धी को मृ. यु. हो जाने पर किसी कर्म-काण्ड के माता द्वारा उन क्रियाओं को करावे जिनसे मनुष्य प्रेतयोनि से छुटकारा पा सकता है।

प्रेत होने के कारण बतलाते हुए पुराणकार ने मकालमृत्यु के अतिरिक्त उन अनैतिक और चरित्र-हीनता की बातों का ही वर्णन किया है, जिनमें अति घोर समाज का अनिष्ट घोर पतन होता है। उदाहरण के लिये 'संतसक' नामक तपस्वी ब्रह्मण में अपनी दुर्दशा बतवाने हुये प्रेताँ ने कहा कि "दूसरों की धरोहर का अपहरण करने वाला, अपने मित्रों से द्रोह करने वाला, विश्वास घात करने वाला और बूढ़ पुरुष प्रेतरत्न को प्राप्त होता है। इसी प्रकार ब्रह्मण, देव-मन्दिर और गुरु की सम्पत्ति हरण करने वाला, कन्या विक्रय करने वाला, अपनी माता, भगिनी, भार्या, पुत्र-वधू तथा पुत्री को कोई दोष न होने पर त्याग देने वाला भी प्रेत हो जाता है। जो मदा मिथ्या कर्म और भाषण में रचि रहता है और दूसरों की भूमि तथा स्त्रियों की अपहरण करता है वह अशुभ ही प्रेत होता है।" इसमें प्रकट होता है कि जो व्यक्ति ऊपर से धर्म-कर्म का ढोंग करते हुये भी वास्तविक धर्म का पालन नहीं करते, जो स्वार्थ-माधन के लिये दूसरों की हानि पहुंचाने में संकोच नहीं करते, जो सत्य, श्वाय, प्रतिज्ञापालन, आपत्तिग्रस्तों की सहायना आदि जैसे सत्कर्मों से विमुख रहते हैं वे मरगोपगन्त दुर्दशा को प्राप्त होते हैं और निरुद्ध प्रेत-योनि को प्राप्त होकर तरह-तरह के कष्ट सहन करते हैं।

इसी प्रकार राजा वज्रुवाहन की कथा में बतलाया गया है कि "जो लोग देवोत्तर सम्पत्ति (सार्वजनिक हित के कार्यों का धन), मित्रों का धन, बालकों का धन हरण किया करते हैं वे प्रेत योनि को प्राप्त होते हैं। जो किसी तापसी भारी, समोत्र स्त्री, शमन करने के अयोग्य भारी के साथ दुराचार करते हैं वे महाप्रेत हो जाते हैं। जो किये हुए उपकार के प्रति कृतघ्न हो, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करें, रोद्ध, दुरमाहमी, साठनापूर्ण स्वभाव के हों वे भी प्रेत बना करते हैं।" निम्नोद्धृत अनुचित लानच के बशीभूत होकर किसी असहाय प्रपञ्च निर्वल या मन्थित छान-बल से ठडप कर जाना नमार में बहुत बड़ा पाप है। यद्यपि इस समय इन ती मालसा ने लोगों को इन

प्रकार बसीभून कर लिया है कि प्रसिद्ध और प्रभावशाली माने जाने वाले व्यक्ति भी दूसरों के स्वयं की वेईमानी और धोखे से भ्रमग्रस्त कर लेने में लोक और परलोक में डर नहीं करते, पर यह निश्चय है कि इस प्रकार के आचरण का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता । ऐसे भय-पशाच इस जीवन में ही भीतर ही भीतर धन की लालसा से व्याकुल हुआ करते हैं और जितना अधिक धन पाते जाते हैं उतना ही तृष्णा के जाल में फँस कर अधःपतन की ओर भ्रमर होते जाते हैं । जो लोग हम मसार में जीवित अवस्था में ही धन की तृष्णा में दग्य हुआ करते हैं वे यदि मरने के पश्चात् भी अशांति और अभाव का अनुभव करते रहे तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

अकाल मृत्यु का कारण—

हममें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि जब भगवान् ने मनुष्य की स्वाभाविक आयु तो वर्ष की नियत कर दी है तब वह अकाल मृत्यु का प्राप्त बन कर प्रेय मोक्ष को क्यों प्राप्त होता है ? इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में ससार में जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों की उम्र तो वर्ष की नियत होती है, पर मनुष्य अपने दुष्कर्मों द्वाराकरणों भ्रमवा पूर्व जन्म के पापों से स्वयं ही अपनी आयु को क्षीण करने का कारण बनता है और समय से पूर्व ही इस लोक को छोड़ कर परलोक की प्रयाण करता है । इस प्रसङ्ग से इस बात का स्पष्ट रूप में उद्घटन हो जाता है कि 'ब्रह्मा ने मनुष्य की वा आयु नियत कर दी है उसमें एक क्षण का भी अन्तर नहीं हो सकता ।' जो लोग भाग्यवाद के मिश्रित वा वास्तविक सात्त्विक न समझ कर "राई घटे न तिल बड़े रह रे जीव निराङ्ग" की उक्ति को प्रमाण माना करते हैं वे विचार-शक्ति में क्ष-य ही होते हैं । मरने की शक्ती का समाधान करते हुए कृष्ण भगवान् कहते हैं—

‘हं पशोश्च । मनुष्य बान्धव मे सो वर्षं जीवित रहने वाला प्राणी है, जैसा कि वेद-भगवान् ने जीवेन शरदाक्षतम’ आदि वाक्यों से सुस्पष्ट कर दिया है । पर अपने ही अपकर्मों के प्रभाव से वह क्षीय नष्ट हो जाता है । यह मनुष्य देवों का अग्राम नहीं करता और वन परमार से चले प्राये पर्याप्तुन कर्तव्यो

का भी पान नही करतु । इसमें बहुत अधिक मातृम्य भर गया है जिन्से यह श्रेष्ठ कर्मों में विमुख होकर नीच मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है । यह जहाँ-वहाँ भा लेता है और चाहें जहाँ रुक करके खपता है । इस प्रकार जीवन और मोग में उच्छ्वस हो जाने और इसी प्रकार के अन्य छोटे कर्मों से यह अपनी भाग्य का क्षय करता रहता है ।”

“जो ब्राह्मण धन न रखने वाला, भगविर रहने वाला, चर-तप से परामुख, मंगल कार्यों को त्याग देने वाला मदिरापान आदि दुष्कर्मों में प्रासक्त होगा वह शीघ्र ही सम्राज द्वारा क्यों न दण्डित किया जायगा ? इसी प्रकार जो क्षत्रिय राजा प्रजा की रक्षा न करके उनका उत्पीड़न करता है और अपना सब समय तथा राज्य-रूप दुर्लभनों में व्यर्ज करता रहता है धनवा जो पापों के भय से युद्ध में कामगता दिवाता है, उसे सम्राज की सदातत से क्यों न दोषी बनना पड़ेगा ? वैश्य क्यों का जो व्यर्थ समाजोपयोगी कार्यों को त्याग कर भूँठे व्यवहार से केवल मनुष्यों की उगने और धन बढ़ोरने में लगा रहेगा उसे भी दण्ड स्वरूप सम्पत्ति संहन करनी ही पड़ेगी । समाज-सेवा के कार्यों से विमुख होकर हानिकारक मार्ग पर चलने वाला शूद्र भी सम्राज द्वारा दण्डनीय होता है । सब बातों का मार यही है कि जो मनुष्य नित्यप्रति स्नान, ध्यान, जप, होम, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि धर्मविहित कर्मों को त्याग कर मातृम्य और प्रमाद में पड़ा रहता है उसका वह दिन वश्य ही जाता है । इस प्रकार जो व्यक्ति अपने जीवन के उपयोगी दिनों को नष्ट करता रहता है उसकी भाग्य भी चाहें जल्द ही जाती है, क्योंकि यह मानव-देह ध्रुव (निश्चिन्त) है । जोव को यह दण्ड इत्यदि दी जाती है कि वह कर्म-व्यवहारों को बाट क लेवी गति को प्राप्त करे । पर जो इसके विपरीत इनको निरुपयोग-विलास में ही लगा देता है तो दण्ड स्वरूप उसे भीष्ट ही इस ईश्वरीय अनुपम में स्थित कर दिया जाता है ।”

मानव-जीवन की श्रेष्ठता—

प्राचीन में मानव-जीवन और मानव-देह का प्राप्त होना सृष्टि का सबसे बड़ा अनुदान है । उन्हें हम धर्म की दृष्टि से देवों और चाहें विज्ञान की

दृष्टि से, सत्कार में जितने भी चराचर प्राणी पाये जाते हैं मनुष्य उनमें सर्वोच्च है । उसे जो विवेक बुद्धि, सूक्ष्म विषयों को समझ सकने योग्य मस्तिष्क और आध्यात्म-जनक क्षमता युक्त कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की गई हैं, उनकी तुलना और कहीं दिखाई नहीं पड़ती । मनुष्य को सत्कार में जो सत्कार सुविधायें और उपयोगी कर्म करने के अवसर प्राप्त हुए हैं वे ऐसे महान् और अमम्य हैं कि 'देवगण' भी सदैव उनको अभिलाषा किया करते हैं । इसी तथ्य को समझ कर 'विष्णु-पुराण' में कहा गया है—

गामन्ति देवा क्लृप्तगोत्तिकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे ।

स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूय पुष्टयः सुरत्त्वात् ॥

अर्थात् यह कर्मभूमि भारतवर्ष अत्यन्त धन्य है, जिसकी महिमा देवगण भी गाने रहते हैं । क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष जैसी सर्वोच्च गतियों को यहाँ पर सत्कर्म करके ही प्राप्त किया जा सकता है । स्वर्ग वहे जाने वाले सोर में चाहे मोगों की स्थिती भी अधिस्ता बरो न हो, चाहे वहाँ के प्राणी बिना परिश्रम किये अपनी सब मनोभिलाषाओं की पूर्ति बरो न कर लेते हो, पर उनकी इस बात का भवत्तर कभी नहीं मिलता कि त्याग, तपस्या, परोपकार के मार्ग पर चलकर दूधिन कर्म-बन्धनों को काट सकें और आत्म-शक्ति की वृद्धि करते हुए स्वावलम्बन पूर्वक 'ब्रह्म-निर्वाण' की ओर अग्रसर हो सकें ।

इस प्रकार 'गरुड-पुराण' का मुख्य उद्देश्य मृतक कर्म-काण्ड के रूप में दान-दक्षिणा का विधि-विधान बतलाना होने पर भी उसमें श्रान्त-श्रान्त पर यही कहा गया है कि परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शुभकर्म करना अनिवार्य है । शास्त्रकारों ने जो 'कर्म' को प्रधानता दी है उसका आशय यही है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका परिणाम अवश्य मिलना है, चाहे वह उसे समझे या न समझ पाये । बुरे काम करके मुक्ति की आशा करना विनकुल मूर्खता है । भ्राम का बीज बोने से भीठे फल मिलना और बनूँ का बोने से वीरुण कांटों का महन करना एक ऐसा प्राकृतिक सिद्धान्त है, जो पलट नहीं सकता । 'गरुड पुराण' में भी विभिन्न अध्यायों में भ्रामान्य तथा विशेष नैतिक तथा धार्मिक नियमों के पालन करने के रूप में यही उपदेश दिया गया है—

“किसी भी अशुभ उद्देश्य की पूर्ति के लिये मदा सत्पुरुषों का मग करना चाहिये । भ्रमापुरुषों की मगनि में इस नोक और परलोक में कहीं भी हित नहीं हो सकता । पराया व्यक्ति भी हिन-ममसादन करने वाला होता है और अपना बन्धु भी परम शत्रु बन सकता है । इसलिये जो अथवा अच्छा हित करे उसी को बन्धु मगभना चाहिये । सभी मनुष्य को वास्तव में जोशित मानना चाहिये जिसमें अच्छे गुण और विचार पाये जायें और जो धर्म की भावना रखता है । गुण और धर्म रहित व्यक्ति का समार में जन्म लेना निष्फल ही है । दुष्ट चरित्र वाले घर में रहने से तो नरक में निवास करना भी अच्छा है । क्योंकि नरक में रहने से तो क्रमशः पापों का क्षय होता है पर दुष्ट-गृह में रहने से पाप उत्था बढ़ता जाता है । जिसका धन नष्ट हो जाता है वह घर-बार त्यग कर तीर्थ-मेघन के लिये चला जाता है, पर जो मर्य से भ्रष्ट हो जाता है उसे तो रौरव नरक में ही जाना पड़ता है । जो किसी को बचन देकर उसका धामन नहीं करते, जो चुगली किया करते हैं, झूठी, गवाही देते हैं मद्य-पान करते हैं वे सब नरक की ओर कष्टदायक वंतरणी नदी में निदान करते हैं । किसी घर में अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, स्वयं दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला, चेत, पुत्र आदि सार्वजनिक स्थानों को नष्ट करने वाला, पगई स्त्री से दुराचार करने वाला आदि व्यक्ति भी वंतरणी में महाकष्ट पाते हैं । जो कृपण हैं, नास्तिक हैं, गृह स्वभाव वाले हैं, मदा शीघ्र करते रहते हैं, स्वयं अपनी ही बात की प्रमाण बतलाने वाले हैं, मर्यादा ग्रहणकारी हैं कुनघ्नी, विश्वासघाती हैं वे सब वंतरणी नदी में दीर्घकाल तक नारकीय स्थिति में पड़े रहते हैं ।”

जो लोग केवल शारीरिक या धर्म सम्बन्धी दुष्कर्मों को ही नरकवास का कारण समझते हैं, वे वास्तविकता से परे ही समझे जायेंगे । मानसिक दुर्भाव और ग्रहद्वारा जनित दोष श्रमश पापों से भी बढ़कर नरक वाय के कारण होते हैं, क्योंकि भावना रूप पाप ही व्यापक बन कर स्थूल पापों के रूप में प्रकट होते हैं । जिस व्यक्ति की मनीभूमि शुद्ध है और विचार-धारा पवित्रता की ओर प्रेरित रहती है, उसकी अभिव्यक्ति पापकर्मों की उत्पत्ति होगी ही नहीं । इस लिये यदि ‘ग्रह पुराण’ के कर्ता न ग्रहद्वार, नास्तिकता,

शुद्धता, कृपाणां, क्रोध आदि को नरक का कारण निसा है तो उसमें कोई भूल की बात नहीं है ।

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

यद्यपि इन पुराणों में मृत्यु के उपरान्त प्रेत बनने वाली ओर यमपुर की यात्रा करने वाली वा जो वर्णन किया गया है उसमें पढ़ने में यही प्रतीत होता है कि मरणापराधि मनुष्य वा मृत्यु शरीर तत्पश्चात् किसी देवी प्रेत की यात्रा करता है और वही चित्रगुप्त नगर, यमपुरी आदि में उसका विचार उसी प्रकार किया जाता है जैसा कि हम लौकिक न्यायालयों में होता देखते हैं । पर कई स्थानों पर प्रेतों के स्वरूप और कार्य वा जो वर्णन पाया जाता है उससे यह भी प्रष्ट होता है कि नरको ओर यमपुरी वा जो वर्णन किया गया है वह बहुत अजीब अलङ्कारिक है और पाठकों के चित्त पर अनुशूलन प्रभाव डालने के उद्देश्य से किया गया है । ऐसा न होना ओम्पय पुराणकार महाराज लिखता कि प्रेतत्व को प्राप्त होना और प्रेतों द्वारा समार के मनुष्यों की पीडा पहुँचाया जाना बलियुग में ही होता है सत्युग, त्रेता, द्वापर आदि में ऐसा नहीं होता था । वे नियते हैं—

नरको प्रेतसमाप्नोति तत्पश्चात्पुनः क्रिया पर ।

कृदादी द्वापर यावत् प्रेतो नैव पीडनम् ॥

(श्रुतपुर १०—१७)

अर्थात् बलियुग में मनुष्यों के रहन-सहन के अशुद्ध हो जाने से वे प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं । सत्युग, द्वापर आदि में न कोई प्रेत बनता था न किसी को प्रेत सम्बन्धी पीडा डाली थी ।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यमराज, उसकी यमपुरी, नरक आदि तो आदि काल में ही, तब क्या वे सब द्वापर तक निरन्तर बँटे रहते थे ? किन्तु मानवदेव पुराण आदि विभिन्न ग्रन्थों में मृत्युत्साधों के आवागमन की जो बयाँवें दी गई हैं उनमें नरको का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है । यमराज बुद्धिश्चिन्तक एक असत्त्व-भाषण व लिय धोड़ी देर के लिये नरक में ले जाये गये था उ होने लगा कि वह पापिया थे भरे हुए हैं । इसमें हम

इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रेतत्व और नरको का जो वर्णन पुराणों में लिखा गया है उसे प्रथम उग्रा का न्यो मानने के बजाय उसका अर्थ रूपक बनडुआ की दृष्टि में ही समझना उचित है। उपनिषदों में महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक जो विवेचन किया है उसमें भी पुनर्जन्म और नरको का ऐसा ही स्वरूप सिद्ध होता है। 'कठोपनिषद्' में जब नदिकेता ने यमराज से यह प्रश्न किया कि मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होगी है तो उसने यही उत्तर दिया—

न प्राणो न पानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।

इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता कुपाश्रतो ॥

“कोई भी प्राणी प्राण बचवा अपना वायु के आधार पर ही जीवित नहीं रह रहा, बरन् प्राण और अपना जिम शक्ति के भावित है प्रत्येक प्राणी सभी के आधार पर जीवित रहता है।” मृतात्मा देहान्त के पश्चात् कैसे रहता है उसके सम्बन्ध में कहा गया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन ।

स्थाणुमन्ये ऽनुमयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥

“जिनने धरण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है सभी के आधार पर अपने-अपने कर्मों के अनुसार जिनने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अपने-अपने जीवात्मा अपने कर्मोंनुसार वृक्षवना, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लते हैं।”

इसमें विदित होता है कि दुष्कर्मों के फल से मनुष्य जो पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों की योनियों में जाते हैं अथवा वृक्ष, लता आदि स्थावर पदार्थों के रूप को प्राप्त हो जाते हैं वही उनके निये एक तरह का नरकवाम माना गया है। मनुष्य के मुकाबले में इन जीवों को अनेक प्रकार की असुविधाएँ और कष्ट महन करने पड़ते हैं। 'गरुड पुराण' में नरकों की संख्या ८४ लाख बताई गई है। अन्य स्थानों में योनियों की संख्या भी ८४ लाख मानी गई है। इसमें यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि संभवतः 'गरुड पुराण' ने ८४ लाख योनियों में जीव के भ्रमण करने का ही ८४ लाख नरकों के रूप में वर्णन किया है।

गीता में 'नरक' का स्वरूप—

'भगवद्गीता' में दुष्कर्मों से जीव की अधोगति और दुःख कर्मों से उच्च गति प्राप्त का बखान किया गया है, पर उसमें 'गह्वर पुराण' की तरह किसी रहस्यपूर्ण सम्राजपुरी और उसके महाभयङ्कर कारागारों का वर्णन नहीं है। उसमें यही बताया गया है कि जो लोग पाण्ड, मण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी, अज्ञान आदि पापुषी लक्षणों से युक्त होते हैं वे मृत्यु के बाद अवाहनीय गति को प्राप्त होते हैं। 'गीता' में 'नरक' का शब्द भी आया है पर उसका आशय जीव की नीच और बहू पूर्ण स्थिति से ही जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में १६ वे अध्याय में कहा गया है—

तानह द्विपतः कुरान्मसारंपु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रम् शुभानामुरीत्वेव योनिषु ॥१६॥
आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
माम प्राप्येव कोन्नेय ततोयान्त्य धमा गतिम् ॥२०॥
त्रिविध नरकम्येद द्वार नाशनमारमन ।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत् ॥२१॥

अर्थात्—'इस प्रकार क इन द्वेप बुद्धि रखने वाले दुष्टों में निष्ठ और निर्दय स्वभाव के नीच व्यक्तियों को मैं सत्कार में बारम्बार आसुरी योनियों में ही गिराया करता हूँ ॥१६॥ हे पर्युन ! वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनियों को प्राप्त होकर मुझमें (परमात्मा से) दूर होते जाते हैं और पहले की अपेक्षा भी नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ काम, क्रोध, तथा लोभ—ये तीन प्रकार के नरक द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं, मात्मान्तर्याण के इच्छुक को इन्हें त्याग देना चाहिये ।"

गीताकार ने कुछ योनियाँ मनुष्य से नीची और कुछ ऊँची बतलाई हैं और स्पष्ट कह दिया है कि आसुरी प्रकृति वाले लोग अधोगति को तथा देवी प्रकृति वाले उच्च गति को प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य मृत्यु के उपरान्त नीच योनियों में जाकर बहू पाता है तो उसका कारण महद्भ्रम, पाण्ड, क्रोध, पर-पीडन आदि ही हैं। आसुरी अवस्था निन्दनीय प्रवृत्तियों होती हैं १ जद हक मनुष्य

इनकी त्याग कर अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अद्रोह, क्षमा आदि देवी अथवा सत् प्रवृत्तियों को नहीं भणनाता तब तक उनका आरम्भ-काल के लक्ष्य को प्राप्त हो सकना सम्भव होता है। 'गीता' में यह नहीं कहा है कि मरते समय 'गीदान' करने से मनुष्य नरक-प्रदेश की चैतरणी नदी से पार हो जायगा अथवा पुनः परमपुन्य-विजो द्वारा मायिक पिण्डदान करने से परमलोक के मार्ग में उनकी भूल ज्ञान होती रहेगी। वरन् महाभारत का ही यह आदेश है—

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि ।

अतस्ते पुत्र दत्ताना पिण्डाना नैव वाक्षिणः ॥

अर्थात् 'ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप की समझ कर और तदनुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनकी पुत्रों द्वारा दिये गये पिण्डों की आकांक्षा कभी नहीं होती।'

'बृहदारण्यक उपनिषद्' की सम्मति से भी यही सिद्ध होता है कि आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्व गमगामी है और जब तक मनुष्य प्राध्यात्मिक मार्ग पर चलता हुआ सत्कर्मों में गतान रहता है। तब तक वह उच्च गति का ही प्राप्त होता है—उसके नीचे आह्वान में कहा गया है—

तद्यथा पेशकारी पेशमो मात्रा मादायन्यन् नवतर कल्याणतर रूप तनुने एवमेवायमात्मेद शरीर निहत्य विद्यागमयित्वा अन्यध्वतर कल्याणतर रूप कृहते पित्र्य वा भन्धवं वा देव वा प्राजायतम वा ब्राह्म वा अन्येया वा भूतानाम् ।

अर्थात् 'जैसे कोई स्वर्णकार (सुनार) चांदे में पुराने मोने को लेकर उसमें नया और सुन्दर आभूषण बना देता है उसी प्रकार आत्मा हम जीवों शरीर को नष्ट करके और भ्रमण से पार होकर दूसरे नये और कल्याणकारी (श्रेष्ठ) रूप को धारण करती है। वह रूप चाहे पितृलोक में हो, चाहे गन्धर्व लोक या देवलोक में, चाहे प्रजापति लोक अथवा ब्रह्मलोक में या किसी अन्य भौतिक लोक में।'

'ईशावास्योपनिषद्' में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जो लोग इस संसार में बुद्धिपूर्वक चलते हैं और आत्मा की नीचे गिराते वाले काम करते हैं वे ही पार दुर्गति को प्राप्त होते हैं—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन समसाऽऽवृता ।
ताऽस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महन्ता जनाः ॥

अर्थात्—“असुरो वे जो सोच है वे अज्ञान और अन्धकार से ढके हुए हैं। जो मनुष्य आत्मा-हत्या करते हैं मयवा जो आत्मा के पतन कराने वाले कर्म किया करते हैं वे उन्हीं वष्टपूण लोगों को प्राप्त होते हैं।”

ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है—

‘गर्ह्य-पुराण’ में भी सिद्धान्त रूप से यही कहा गया है कि जो मनुष्य जानो और सदाचारी होता है उसकी रुदैव सद्गति होती है और पद मरने के उपरान्त स्वयं ही उत्तम लोको में जाता है। सासारिक माया, मोह और स्वार्थ में फँसे हुए व्यक्तियों की दुर्दशा का वर्णन करने के साथ ही उसमें यह भी कहा गया है—

आहारो मैथुन निद्रा भय क्रोधस्तथैव च ।
सर्वेषामेव जन्तूना विवेको दुर्लभ पर ॥
भूताना प्राणिन श्रेष्ठा प्राणिना मति जीवन ।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणा स्मृता ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु श्रुतबुद्धयः ।
श्रुतबुद्धिषु कर्तार कर्तृषु ब्रह्मवादिन ॥

अर्थात्—‘आहार करना, मैथुन, निद्रा, भय, क्रोध आदि प्रवृत्तियाँ तो सभी प्राणियों में पाई जाती हैं, पर विवेक (ज्ञान) का होना बड़ा दुर्लभ है। भौतिक जगत में प्राणी श्रेष्ठ मान गये हैं, प्राणियों में बुद्धियुक्त श्रेष्ठ होते हैं, बुद्धियुक्तों में मनुष्य को सबसे बड़ा कहा गया है, मनुष्यों में ब्राह्मण उत्तम होता है। ब्राह्मणों में भी विद्वान् प्रशंसा के योग्य होता है। विद्वानों में श्रुत-बुद्धि (व्यवहारिक बुद्धि वाला) और श्रुत बुद्धियों में भी सद्गुणों का आचरण करने वाला और उनमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं।”

इस प्रकार वे जानो और श्रेष्ठ पुरुषों की गति सदा उत्तम होती है यह कहते ही कह दिया गया है—

नाभेस्तु मूर्द्धपय्यन्तमूर्द्धच्छिद्राणि चाष्ट वै ।
मन्ताः मुकुतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ।
अधश्छिद्रेण ये यन्ति ते यान्ति विगतिं नराः ॥

अर्थात्—“मानव देह में नाभि से ऊपर अस्तिष्क तक जो आठ छिद्र हैं, मन्त और पुण्यात्मा लोगों की आत्मा इन्हीं मार्गों से निकल कर ऊर्ध्वगति को प्राप्त करती है । पर जो लोग इसके विपरीत होते हैं उनके प्राण नाभि के नीचे के छिद्रों से निकलना करते हैं और उनको निकृष्ट गति प्राप्त होती है ।”

पर उपनिषदों तथा गीता आदि में जहाँ केवल ज्ञान-मार्ग की श्रेष्ठता का निरूपण करके मनुष्यों को कम कर्म के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है वहाँ ‘गरुड-पुराण’ में लौकिक व्यवहार का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है और लोग उन कर्मों के करने में लापरवाही न करें, इसलिये उनको यमपुरी तथा नरकों के कष्टों का हर तरह से भय दिखाया गया है । इसका निश्चय कर सकना कि नरक और स्वर्ग इस संसार में ही हैं या इसके बाहर किसी अन्य स्थान में है बड़ा कठिन और गन्देहास्पद है । वेद और उपनिषदों आदि में भरणीपरान्त ‘पितृपान’ और ‘देवपान’ दो विभिन्न मार्गों की चर्चा की गई है और अर्थात्मा आदिषु ने भी मरने के बाद जीवात्मा के कुछ समय तक चन्द्रमा अथवा किसी मूक्षमलोक (एस्ट्रन वर्ल्ड) में रहने की सम्भावना को स्वीकार किया है । इसलिये हम ‘गरुड-पुराण’ के नरकों के वर्णन को सर्वथा प्रमाण नहीं कह सकते ।

कर्मकाण्ड का अत्यधिक विस्तार—

जीवात्मा के पुनर्जन्म और कर्मनुसार विभिन्न योनियों को प्राप्त कर मुख-दुःख भोगने के निष्ठान्त को स्वीकार करने पर भी अनेक विद्वान् ‘गरुड-पुराण’ में वर्णित विष्णुदान तथा भृन्क सम्बन्धी अन्य कर्मकाण्डों के प्रति विस्तार को व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी नहीं मानते । उनके कथनानुसार जन-साधारण में इस प्रकार की कथाओं ने अनेक प्रकार के भ्रम-विश्वासों का रूप धारण कर लिया है और उनके कारण वे तरह-तह में नष्ट उठाया करते हैं । उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि यहाँ जो अशिक्षित जनता

जो विभिन्न रोगों का कारण भूत-प्रेता का प्रभाव मानती है उसका फलस्वरूप वे भयना उचित इलाज करने का बजाय टाना-टाटका और स्याने (बोना) लागाने का चक्कर मर्फैम खाते हैं। इनमें उनका पैसा व्यय म बर्बाद होता है और वे शारीरिक कष्ट भी उठते हैं। इन कारणों का मूल 'गरुड-पुराण' म पाया जाता है। उसके दसवें अध्याय म 'प्रेत-पीडा' का बरान करते हुए कहा है—

'य पराये घन, पराये पत्नी और भयने ही सम्बन्धिता को कष्ट दान वाला महा पापिष्ठ प्रेतगण नरकवास के परचात्र बिना शरीर क भूत-ध्यान से पीड़ित होकर सबत्र विचरता किया करत हैं। वे भयने ही सहोदर की मार दान हैं और इन प्रकार पितृगण के भाग का रोब करने वाला बन जाते हैं। वे पितों का नाश की भाव क सम्झरो को भाँति मपहरण कर लते हैं। इनमें घर म फिर आकर वे भूतनाम म प्रवण कर जाते हैं और वहाँ निपत होकर स्वर्गों का राग-शोक दिया करत हैं। वे उजर और इलाक म रूप म लागाने की कष्ट देत हैं। वे जीवित अवस्था म भयने कुच का जिन लोगो से स्नेह करत हैं प्रेत दान पर उठी को पीडा देने लगत हैं। जिनको प्रेत-पीडा होती है वह निन्द-कम, मन्त्र जप, हाम सब छाड देता है नीयों म आकर भी परम प्राप्त हो जाता है। प्रेत का प्रभाव म मनुष्य का एवा नाश जाता है कि सुमित्र म जो कृपि का नाश हो जाता है और जिनका भी मद्ब्यवहार होता है वह सब विनष्ट हो जाता है। उनका दूसरों से कलह होन लगता है। अनेक बार माग म गमन करते हुए ही पीडा उत्पन्न हो जाता है। प्रेत का प्रभाव स मनुष्य हीन कम करने लगता है और उनका सम्पत्ति हान धरेणी के व्यक्तियों से होने लगता है।

प्रेत के प्रभाव से ऐत बहून से व्यसन लग जात हैं जिनमें अपनी सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है। चार, अग्नि, राजा द्वारा हानि होती है। किसी महान् राग की उत्पत्ति भयने शरीर म पीडा होना, भयने स्त्री का सनाया जाना—य मभा बातें प्रेत पीडा के कारण हानी हैं। मित्रों का गम का विनाश हो जाता है उनका राजासन नहीं होता, बच्चे पैदा होकर पर जाते हैं—

ये सब उपद्रव प्रेन-पीडा के कारण होते हैं। जिसके यहाँ प्रेत पोडा देना है वहाँ रात-दिन कनह रहता है, अथवा पुत्र ही शत्रु के समान घात करने वाला हो जाता है। जिस घर में दाँता-किटकिट हो, भोजन के समय कोप का आवेस होता हो, सदा दूसरों के साथ झगड़ करने की बुद्धि रहे—तो ये सभी दुष्परिणाम प्रेन के द्वारा दी गई पीडा के समझने चाहिये। जिस घर प्रेन का प्रगल्भ होता है वह अपने माता-पिता के बचनों का पालन नहीं करता, अपनी स्त्री से प्रेम नहीं करता, बरबस पराई स्त्रियों पर कुहट्टि किया करता है। दुष्ट मृत्यु के होने से भी प्रेन योनि मिलती है और मृत शरीर का दाह-संस्कार न होने से भी प्रेतत्व प्राप्त होता है। खाट पर ही जिसको मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित हो समझना चाहिये।”

इस अध्याय में प्रेत-पीडा के जो लक्षण बतलाये गये हैं अगर विचार-पूर्वक देखा जाय तो ये मनुष्य की दुष्ट बुद्धि और विकृत मस्तिष्क के परिणाम होते हैं। माता-पिता की आज्ञा न मानना आवारागर्दी का लक्षण है और पराई स्त्रियों से दुर्गचार की भावना अनिचारी मनोवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम है। धास्त्री में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को विवेक बुद्धि देकर कर्म करने में स्वतन्त्र बनाया है। इस सिद्धान्त के अनुसार ही ज्ञातीजन मनुष्य के प्रत्येक सुख-दुःख का कारण उसके वृत्तव्य-कर्मों को मानते हैं।

इन लिये जब हम 'गरुड पुराण' के प्रेत-सम्बन्धी विधि-विधानों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका कारण या तो अनाद्य आत्माओं में प्रचलित अवैदिक प्रथाओं का परम्परागत घना घाया प्रभाव है अथवा कर्मकाण्ड में अनुरक्त किन्हीं व्यक्तियों ने इनका अनावश्यक विस्तार कर दिया है। वैदिक अध्यात्मवाद के अनुसार आत्मा की अमरता और मृत्यु के पश्चात् अथवा अन्य शरीर में जाना ती निश्चित ही है—

वाससि जीर्णानि यथा विहाय नवानिमृच्छाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्मिन्यानि सयाति नवानि देही ॥

(गीता २-२२)

“जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।”

भारतीय अध्यात्मवादी मनोविषयों की पुनर्जन्म के विषय में सभी किसी तरह का सन्देह नहीं रहा, उनके विचार तब और विज्ञान के अनुभूत थे। आज वैज्ञानिक भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और आत्मा के स्थायी सस्कारों को कुछ-कुछ मानते जाते हैं। ‘गीताकार’ ने इन शब्दों में इसकी बहुत स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च ।

इसी मिथ्यात्व को ‘गण्ड पुराण’ ने अधिकृत और अल्प बुद्धि वाले को समझाने के उद्देश्य से कहा जा रूप दे दिया है और जीवात्मा की सद्गति के लिये ब्रह्म-काण्ड के विधि-विधानों को अनिवार्य बतला दिया है। ऐसी पौराणिक ब्रह्मों का भी आशिक्षित जनता की समझाने के लिये उपयोग स्वीकार किया जा सकता है। इस दृष्टि से ‘गण्ड पुराण’ का अध्ययन करना और उसकी उपयोगी बातों को विवेक सम्मत रूप में जनता की समझना लाभदायक हो सकता है।

×

×

×

‘गण्डपुराण’ की एक विशेषता यह है कि इसके प्रथम खण्ड से जिन जीवनोपयोगी विद्याओं की जानकारी संग्रह की गई है, उनको ऐसे साररूप में दिया गया है कि पाठक थोड़े समय में ही अधिक लाभ उठा सकता है। इसमें विभिन्न देवताओं की उपासना तथा पूजा की जो विधियाँ दी गई हैं वे निष्पक्ष भाव से एकत्रित की गई हैं और पूजा-पाठ करने वाले मनुष्यों के त्रिच विशेष उपयोगी मिथ्य ही सकती है। इसी प्रकार औपधर्मिकों के विषय में भी जो कुछ लिखा गया है वह प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर और अनुभूत है। तीर्थ, व्रत, दैनिक धर्म कृत्य आदि का वर्णन ऐसे ढङ्ग से किया गया है जिसे मामान्य पाठक भी सहज में समझ सकता है। ‘रामायण’ ‘महाभारत’ ‘हरिवंश’ ‘भगवद्गीता’ ‘यमगीता’ आदि प्रसिद्ध धार्मिक रचनाओं का सारांश

भी दे दिया गया है। हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि रत्नों का बर्णन और गुण-दोष बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरोच्च, घटाङ्ग-योग की विधियों का उत्तम रीति में सग्रह किया गया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ खण्ड 'मन्त्रपुराण' के नमूने पर भारतीय विद्याओं का 'सार-सग्रह' या 'विश्वकोश' माना जा सकता है।

सर्व श्रेष्ठ योग-मार्ग—

विभिन्न देवताओं की नाना प्रकार से पूजा और उपासना के विधान बनना कर ग्रन्थ में यही बनलाया गया है कि मनुष्यों के कल्याण के लिए सबसे श्रेष्ठ साधन-विधि यही है सब प्रकार की उपासनाओं के साथ परमात्मा का ध्यान प्रदक्ष कर लिया जाय। "वह परमात्मा ही सब पापों को नष्ट करने वाले, सबके रचयिता और सच्चे ईश्वर हैं। वे ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हैं जो सब देहधारियों की देह में मर्दर रहते हैं पर उनके वधन में कभी नहीं पड़ते। प्राणा रूप से देह के भीतर रहने वाला यह ईश्वरगण इन्द्रियों की पहुँच से परे है। वह मन का सञ्चालन करता है पर मन के घमों से रहित है। वे ही ज्ञान-विज्ञान स्वरूप वाले और सबके साक्षी हैं। यह बुद्धि में भी विवर्जित हैं अपरिबुद्धि के जो भी मलण हैं उनसे परे हैं। वे ही प्राणियों के प्राण, महान् शान्त स्वरूप, भय से विवर्जित और भ्रह्मद्वार आदि से रहित हैं। वे सबके साक्षी, नियन्ता, परम आनन्द रूप वाले हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-तीनों दशाओं में स्थित उनके साथी, पर उससे विवर्जित हैं। तुरीय (चतुर्थ स्थिति) परम धाता, दृश्य के रूप वाले गुणों से रहित, मुक्त, बोधयुक्त, जगत् से रहित, व्यापक, नश्य और शिव आत्मा वे ही हैं। जो विश्व मानव इस प्रकार से परमब्रह्म का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उनके रूप को प्राप्त किया करते हैं।"

ससार में जितने प्रकार के ज्ञान हैं उनमें आत्मज्ञान का दर्जा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा और उसकी अपार शक्तियों को नहीं जानता वह कभी मानवता के अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। न वह संसार में पाई जाने

बानी आधि-व्याधि और जीवन-मरण के चक्र से सर्वथा मुक्त हो सकता है। इसीलिये पुराणकार की सम्मति है—

“जो आत्म ज्ञान की इच्छा रखता है उसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, ग्रहक्षार से रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण, जन्म आदि से पृथक् स्वयं प्रकाश, निराकार, सदानन्द स्वरूप, घनादि, निरय, सुदृढ-बुद्ध, सत्य, अद्वय, तुरीय, अक्षर ब्रह्म का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि ‘वह ब्रह्म मैं ही हूँ।’”

×

×

×

इस प्रकार ‘गरुड पुराण’ में सप्रहीत सामग्री और उसकी वर्णन शैली में उसकी एक निजी विशेषता है। उसने सामान्य जनता के एक विशेष वर्ग के उपयोग की दृष्टि से विविध प्रकार की जानकारीयों और आवश्यक विषयों का संक्षिप्त रूप में संप्रह किया है। संभवतः प्राचीन समय प्रचलित बहुमध्यक विभिन्न विषयक ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। तो भी सभी ग्रन्थों उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक विशेष रूप दिया गया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

‘गरुड-पुराण’ का ‘प्रेत खण्ड’ ही जनता में अधिक प्रचलित है और सामान्य पाठक उनमें की ही ‘गरुड पुराण’ समझते हैं। जितने ही प्रनाशकों ने उसी ग्रन्थ की ‘गरुड-पुराण’ के नाम से छापना भी है। पर इसके प्रथम खण्ड में जो विविध विषयक उपयोगी सामग्री एकत्रित की गई है वह भी कम आकर्षक नहीं है। जैसा हम लिय चुके हैं इसका सबसे महत्त्वपूर्ण भाग ‘प्रेतखण्ड’ में दिये गये ‘यमराजपुरी’ के वर्णन और नरकों की भयङ्करता को समझ कर पाप कर्मों से बचने रहने का प्रयत्न करना ही है। जो पाठक इसको ऐसी भावना से पढ़ेंगे वे अवश्य इससे लाभान्वित होंगे।

गरुड़पुराण की विषय-सूची

[प्रथम खण्ड]

अध्याय	पृष्ठ संख्या
भूमिका	३-२०
विषय सूची	२१-२४
१—नैमिवारण्य में शोनकादि ऋषियो का प्रश्न	२५
२—गरुड़ पुराण की उत्पत्ति	३१
३—पुराण-कीर्तन का उपक्रम	४१
४—सृष्टि वचन (ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि की उत्पत्ति)	४२
५—सृष्टि-विवरण (१)	४८
६—सृष्टि-विवरण (२)	५४
७—सूर्यादि पूजा-विधान	६४
८—विष्णु पूजा-विधि	६८
९—वैष्णव यज्ञ	७०
१०—योग वर्णन	७२
११—विष्णु ध्यान और सूर्यार्चन	७४
१२—मृत्युञ्जयार्चन	७७
१३—शिवार्चन और पञ्चतन्त्र दीक्षा	८१
१४—प्रोक्तृष्ण पूजन-वर्णन	८३
१५—गायत्री-न्यास	८६
१६—सन्ध्या-विधि	८७
१७—गामत्री-माहात्म्य	९१
१८—ब्रह्म-ध्यान	९२
१९—शालग्राम लक्षण	९५
२०—वास्तुयोग-विधि	१००

अध्याय	
२१—प्रासाद लक्षण	१०६
२२—सर्वदेव प्रतिष्ठा वर्णन	११२
२३—अष्टाङ्ग-योग कथन	१२७
२४—नित्य क्रिया शीघ्र वर्णन	१३४
२५—ज्ञान धर्म वर्णन	१४८
२६—सप्त द्वीप उत्पत्ति और वन वर्णन	१५४
२७—वर्ष और कुल पर्वत वर्णन	१५७
२८—ध्वज द्वीपादि वर्णन	१६०
२९—पाताल-नरकादि वर्णन	१६३
३०—ज्योतिष शास्त्र वर्णन	१६४
३१—चन्द्रशुद्धि कथन	१६८
३२—द्वादश राशि वर्णन	१७१
३३—पुरुष और स्त्री लक्षण	१७५
३४—स्त्री लक्षण	१७८
३५—सामुद्रिक शास्त्र	१८१
३६—पवन विजय स्वरोदय	२०२
३७—रत्न-परीक्षा-वस्त्र परीक्षा	२०८
३८—मुक्ता परीक्षा	२१८
३९—पद्मराग परीक्षा	२२६
४०—मरकत-परीक्षा	२३२
४१—इन्द्रनील-परीक्षा	२३६
४२—वैदूर्य-परीक्षा	२३९
४३—अन्य रत्न-परीक्षा	२४२
४४—नीर्थ माहात्म्य	२४८
४५—गया माहात्म्य	२५३
४६—गया मे तीर्थ माहात्म्य	२५६
४७—गया मे तीर्थ वर्तव्य	

अध्याय

पृष्ठ संख्या

४०—मन्वन्तर उत्पत्ति	२७६
४१—विश्वान्धाल—विश्वस्तोत्र (१)	२८४
४०—विश्वान्धाल—विश्वस्तोत्र (२)	२८६
४१—हविर्धाल माहात्म्य	३०४
४२—विष्णुध्यान माहात्म्य	३०६
४३—उग्र धर्म कथन (१)	३१०
४४—उग्र धर्म कथन (२)	३१२
४५—गृहस्थ धर्म निर्णय	३१७
४६—दण्ड शुद्धि	३२३
४७—प्राज्ञ विधि	३२४
४८—विनायकोपमृष्ट लक्षण	३३१
४९—पशुधर्म	३३४
५०—वानप्रस्थ-भिक्षुलक्षण	३३६
५१—तर्क मे पापिणी का फल	३३८
५२—प्रेत धोत्र वर्णन	३३९
५३—परमार्थोक्त धर्म कीर्तन	३४३
५४—नीतिसार कथन (१)	३४९
५५—नीतिसार कथन (२)	३५४
५६—नीतिसार कथन (३)	३६५
५७—राजा और भृत्य लक्षण (१)	३७१
५८—राजा और भृत्य लक्षण (२)	३७७
५९—नीति शास्त्र कथन (१)	३८१
६०—नीति शास्त्र कथन (२)	३८४
६१—नीति शास्त्र कथन (३)	४०६
६२—नियमों के यत्	४२६
६३—मनोज्ञ-अयोधसी प्रश्न	४२८
६४—मन्त्र-द्वन्द्वी, मन्त्रावली, रम्भावलीया	४३०

अध्याय

७५—चातुर्मास्य-मासोपवाम व्रत	पृष्ठ सरपा
७६—भीष्म पञ्चक व्रत	४३४
७७—शिवरात्रि व्रत	४३७
७८—एकादशी माहात्म्य	४४०
७९—भुक्ति-मुक्तिकर पूजाविधि	४४४
८०—एकादशी व्रत विधान	४४५
८१—विविध-व्रत कथन	४४६
८२—दशोद्धरण पञ्चमी व्रत	४४८
८३—सप्तमी आदि के व्रत	४५३
८४—रोहिणी अष्टमी व्रत	४५८
८५—दुष्पाष्टमी व्रत	४५९
८६—महानवमी व्रत	४६३
८७—श्रावण द्वादशी व्रत	४६६
८८—मदन त्रयोदशी आदि के व्रत	४६८
८९—सूर्य व्रत कीर्तन	४७१
९०—चन्द्र व्रत कीर्तन (१)	४७४
९१—चन्द्र व्रत कीर्तन (२)	४८३
९२—हरि अवतार कथन	४८४
	५००



श्रीगरुड महापुराणम् पूर्वाद्धम्



१--नैमिषारण्य मे शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

अजमजरमनन्त ज्ञानरूप महान्त शिवममलमनादि भूतदेहादिहीनम् ।
सकलकरणाहीन सर्वभूतस्थित न हरिममलममाय सर्वेण वन्द एकम् ॥१॥

नमस्यामि हरि रुद्र ब्रह्माण्डञ्च गणाधिपम् ।

देवी सरस्वतीर्च्च मनावाककर्मभि सदा ॥२॥

सूत पौराणिक शान्त सर्वशास्त्रविशारदम् ।

द्विप्रागुभक्त महात्मान नैमिषारण्यमागतम् ॥३॥

तीर्थयात्राप्रसंगेन उपविष्ट शुभासने ।

ध्यायन्त विष्णुमनस तमम्यर्च्यास्तुतन् कविम् ॥४॥

शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्त्रयोधना ।

मुनयो रविसङ्काशा शान्ता यज्ञपरायणा ॥५॥

पारम्भ मे महात्मावरण करने हुए देव वन्दना की जाती है । मैं मल
घोर माया मे रहित सर्वेण ममल करने वाले भगवान् हरि की वन्दना करता हूँ
जो अत्रन्मा-जवर घोर मनन्त है, जो ज्ञान के स्वरूप वाले-महान्-ममल-
मनादि-भूत देहादि से हीन हैं । जो समस्त कण्ठों मे रहित घोर सम्पूर्ण भूतों
मे वर्त्तमान हैं ॥ १ ॥ मैं भगवान् हरि-रुद्र-ब्रह्मा-गणा के स्वामी (गणेश)

—देवी सरस्वती इन सब देवगणों को मन, वाणी और धर्म के द्वारा सदा नयन करता है ॥ २ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रों के महामनीषी परमशान्त स्वरूप बाने, पुराणों के विद्वान् एवं प्रवक्ता विष्णु के भक्त महान् भ्राता बाने और तीर्थों की यात्रा के प्रसङ्ग से नैमिषारण्य में आये हुए, ध्रुव भानन पर संस्थित भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले और प्रघरहित सू। जी की सम्मर्चना करके उन कवि का स्तवन किया था ॥ ३ ॥ ४ ॥ तपश्चर्या रूपी धर्म बाने, नैमिष नामक महारण्य के निवासी—महान् भाग्य से सम्पन्न—पूर्व के समान तेजस्वी—ज्ञान रूप और निरन्तर यज्ञादि में परावृत्त रहने वाले श्रीः कृष्ण भ्राता महर्षिगण थे ॥५॥

सूत जानासि सर्वं त्व पृच्छामस्त्वामतो वयम् ।

देवताना हि को देव ईश्वर पूज्य एव च ॥६॥

को ध्येय को जगत्स्रष्टा जगत्पाति च हन्ति क ।

वस्मात् प्रवर्तन्ते धर्मो दुष्टहन्ता च क स्मृत ॥७॥

तस्य देवस्य वि रूप जगत्सर्गं वयं मत ।

वैवर्तं स तु तुष्ट स्यात् केन योगेन व्याप्यते ॥८॥

अवताराश्च के तस्य वयं वशादिसम्भव ।

वर्णाश्रमादिधर्माणां क पाता क प्रवर्तक ॥९॥

एतत्सर्वं तथाज्यच्च भूहि सूत महामते ।

नारायणकथा सर्वा वचयास्माकमुत्तमा ॥१०॥

ऋषियो ने कह—हे सूतजी ! आप सभी कुछ जानते हैं । इसी कारण से हम लोग आप से पूछते हैं । आप हम लोगों को यह बतलाइय कि देवों का देव तथा इनका स्वामी एवं पूज्य कौन है ॥ ६ ॥ ऐसा कौन सा देव है जिसका ध्यान करना चाहिए ? इस जगत् क सृजन करने वाला, विश्व का पालक और अन्त में सहार करने वाला कौन है ? किसके द्वारा लोक में धर्म प्रवृत्त हुआ करता है और असार में उत्पन्न होने वाले दुष्ट पुरुषों का हनन कौन किया करता है ? ॥ ७ ॥ उक्त देव का कौन स्वरूप है ? इस जगत् का सगं किस प्रकार से माना गया है ? वह सर्वोपरि विराजमान देवेश्वर कितने व्रतों के द्वारा

ईश्वर भगवान् नारायण देव परमात्मा एक ही हैं । यही परब्रह्म है और इनमें ही इस सम्पूर्ण विश्व का जन्मादि होना है ॥१२॥ भगवान् वासुदेव वसु स्वयं प्रजर एव जमर है किन्तु इस जगत् की रक्षा के लिये वह कुमार आदि के स्वरूप से प्रजन्मा होकर भी प्रवतार धारण किया करते हैं ॥१३॥ उस देव हरि ने सबसे प्रथम कीमर सग की ग्रहण कर हे ब्रह्मन् । प्रति कठिन पत-
डिन ब्रह्मचर्य का पालन किया था ॥१४॥ दूसरा स्वरूप प्रपत्ति भवनार इन भगवान् का रमानन की प्राप्त हुई भूमि का उद्धार करते हुए हुमा था जिसमें यथा क स्वामी न वाराह का शरीर धारण किया था ॥१५॥ तृतीय ऋषि का सर्ग हुमा था जिसमें उनने देवविश्व की प्राप्ति की थी प्रपत्ति नारद का शरीर धारण किया था और कर्मों की निष्कर्षता का सात्वन तत्र प्रवर्तित किया था ॥१६॥ चौथे प्रवतार में हरि ने नर-नारायण का स्वरूप धारण कर तपस्रर्षी की थी । धर्म के संरक्षण करने के लिये देव और असुरों ने उनकी प्रार्थना की थी ॥ ७॥

पञ्चम कपिलो नाम सिद्धेश कालविप्लवम् ।
प्रावान्न सूरये सात्य तत्त्वशामविनिर्णयम् ॥१७॥
यक्षमन्त्रेपत्यत्व दत्त प्राप्नोऽनसूयया ।
आवीक्षिकीमलकामिलकर्मिप्रह्लादादिभ्य ऊचिद्वान् ॥१८॥
ततः सप्तम आकृत्या रुचेयंजाभ्यजायत ।
सत्यामात्यं सुरगणैर्येष्ट्वा स्वायम्भुवान्नरे ॥१९॥
अष्टमे मेरुदेव्या तु नाभेर्जनि उरुक्रम ।
दशयन्वर्त्म नारीणां सर्वाश्रमनस्कृतम् ॥२०॥
ऋषिभिर्याचिता भेजे नवम पार्थिव वपु ।
दुग्धमहोषर्धविप्रास्तन भजीविता प्रजा ॥२१॥
रूप स जगृह मात्स्य चाशुषान्तरसप्तवे ।
नाट्याराप्य महीमय्यामपाङ्गवस्वत मनुम् ॥२२॥
सुरानुराणामुदधि मथ्यता मन्दराचलम् ।
दध्ने वमठहपेण पृष्ठ एकादशे विभु ॥२३॥

धान्वन्तर द्वादशम त्रयोदशममेव च ।

आप्याययन् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥२७॥

पंचवीं अवतार मिथिला कपिल का हुआ था जिसमें अधिक काल से निजुम हुए सात्य साधु की व्याख्या कर तत्त्वों का विशेष निर्णय बताया था । ॥१८॥ छटा अवतार अत्रिजा मन्त्रि के स्वरूप में जनसूया के द्वारा प्राप्त हुआ जिसमें भारिषिकी विद्या को प्रह्लादादि के निचे बताया था ॥१९॥ सप्तम सर्ग शिव से आकृति में यज्ञ स्वरूप हुआ था और स्वायम्भुव मन्वन्तर में सामान्य मृगणों के साथ यजन किया था ॥२०॥ आठवें अवतार में नाभि से मे० देवी से उत्क्रम हुए थे और सन्मुखों आश्रमों का संघर्षात नाटियों का धर्म प्रदर्शित किया था ॥२१॥ नृपियों के द्वारा माचन्य करने पर तबम प पितृ दासीर धारण किया था । हे विप्रण ! इस अवतार में दुग्ध त्व महीपथियों के द्वारा प्रजापति को मजीवित किया था ॥२२॥ उसने चाक्षुपाल्य मन्त्रय में मत्स्य का रूप धारण किया था और महीपथी बोका में चलाकर बंबम्बन मनु की रक्षा की थी ॥२३॥ जब व्यापक प्रभु ने समुद्र के मन्थन करने से प्रवृत्त होने वाले देवों के मन्थन ढण्ड की स्थिति में रहने वाले मन्दराक्षय को एकादशवें अवतार में कमठ के रूप में पीठ पर धारण किया था ॥२४॥ भगवान् धनवन्तरि का बारहवां अवतार हुआ है । तेरहवें अवतार में परम गुन्दरी मोहिलों का स्वरूप धारण कर अपने रूप लावण्यातिरेक से मयकी मोहित करते हुए देवों को मुद्रा का प्राप्त करा कर तृप्त किया था ॥२५॥

चतुर्दशे नागसिंहं घेत्य दंत्येन्द्रभूजितम् ।

ददार करजैस्त्रैरेरका कटकृतया ॥२६॥

पञ्चदश वामनको भूत्वाग्नादध्वर घ्ने ।

पादत्रयं याचमानं प्रत्यादित्मुस्त्रिविष्टपम् ॥२७॥

अवतारे षोडशमे पश्यन्महाद्रुहो नृपान् ।

नि सप्तकृत्स्नः कुपितो नि क्षानामकरोन्महीम् ॥२८॥

तत सप्तदशे जात सत्यवत्या पराशरात् ।
 चक्रे वेदतरो शास्त्रा दृष्ट्वा पु सोऽल्पमघस ॥२६॥
 नरदेवत्वमापन्न सुरवायचिकीर्षया
 समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे कार्पाष्यत परम् ॥२७॥
 एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनो ।
 रामकृष्णाविति भुवा भगवानहरद्भरम् ॥२८॥
 तत बलेस्तु सन्ध्यान्त सम्माहाय सुरद्विषाम् ।
 बुद्धो नाम्ना जितसुत कीवटेषु भविष्यति ॥२९॥
 अथ सोऽष्टमसन्ध्याया नष्टप्रायम् राजम् ।
 भविता विष्णुयज्ञसो नाम्ना कल्को जगत्पति ॥३०॥
 अवतारा ह्यसह्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा ।
 मनुदेवविदो ह्याद्या सर्वे विष्णुयज्ञा स्मृता ॥३१॥
 तस्मात्सर्गादिषु जाता संपूज्याश्च व्रतादिना ।
 अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च ॥३२॥

ओदद्वी अवतार भगव नृ नृसिंह का हृषा या जिनम म यन बलवात्
 दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यपु को एरवाबटवृत्त की भाति अपने भारभुग नखों से ही
 बिदीण किया था ॥२६॥ वद्रद्वी अवतार वामन भव का हृषा या जिनम
 बहुत ही छटा वामन मंगुल का बीना रुब घोरण वर भगवान् राजा बली के
 यन में गये थे । वहाँ केवल तीन पंडे भूम की याचना करके तीन लोकों के
 त्रिविष्टप को ही नाप डाला था ॥२७॥ सोलहवें अवतार में परशुराम का
 स्वरूप धारण किया था । जब यह देखा था कि राजा योग पक्षद्रोही हो गये हैं
 तो क्रोधित होकर ऐसा सखुल्य किया था कि मैं भूमि को शत्रियों से रहित
 कर दूँगा और दक्खीन बार उसे दक्षिण बिहीन कर दिया था ॥२८॥ फिर
 सप्तदश अवतार में परशर मुनि से सत्यवती नाम वाली घोवर यथा मे जास
 के स्वरूप में समुद्रमं हुए ये घोर मनुष्यों का मत्प बुद्धि वाले देखकर वेदरूपी
 वृग की विभिन्न शास्त्रों की रचना करदी थी ॥२९॥ दसवें पञ्चाय देवा के

पार्श्वों के सम्पादन करने की इच्छा से नरदेवत्व की प्राप्ति होकर समुद्र का निषह
 वादि कर्म किये थे ॥३०॥ उन्नीसवें घोर बीमवें अवतारों में वृष्णिपुत्रों के वश
 में जन्म ग्रहण करके बलराम और कृष्ण इन दुभ नामों वाले अवतार हुए थे
 घोर भगवान् ने इस वसुधा का भार हलवा दिया था ॥३१॥ इसके अनन्तर
 कलियुग के सन्त्यन्त में क्षुरद्विपों के सम्योह के लिये कीटकी में जिनका पुत्र
 'बुद्ध' इस नाम वाला अवतार होगा ॥३२॥ इसके पश्चात् पृथ्वी सङ्ख्या में
 जयन्ति सभी राज्य प्रायः नष्ट जैसे हो जायेंगे सब विष्णुपुत्रों से करको नाम
 पाया इस जगत् के स्वामी का अवतार होगा ॥३३॥ हे द्विजगण ! सन्त्रनिधि
 भगवान् के जो ती असंख्य अवतार हैं । मनु वेदों के शाखा प्रादि सभी विष्णु
 के ही कलावावतार रहे गये हैं । इसीलिये मैं छर्म प्रादि हुए हैं कि इनकी
 प्रतादि के द्वारा भलो-भानि पूजा करनी चाहिए । पहिले व्यास मुनि ने आठ
 हजार आठ सौ पद्यों से पूर्ण यह गरुड-पुराण की मुझे सुनाया था ॥३४॥३५॥

२—गरुड पुराण की उत्पत्ति

कथं व्यासेन कथितं पुराणं गरुडं तव ।
 एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम् ॥१॥
 अहं हि मुनिभिः सादृं गतो बदरिकाश्रमम् ।
 तत्र दृष्टो मया व्यासो व्यापमानः परमेश्वरम् ॥
 तं प्रणम्योपविष्टोऽहं पृष्ठवान्हि पुनीश्वरम् ॥२॥
 व्यास ब्रूहि हरे स्वं जगत्सर्गादिकं ततः ।
 मन्ये ध्यायसि तं यस्मात्तस्माज्जनामि तं विभुम् ॥३॥
 एव पृष्ठो यथा प्राहुः तथा विप्रा निराधतः ॥४॥
 शृणु सूतं प्रवक्ष्यामि पुराणं गरुडं तव ।
 सह नारददक्षार्चं ब्रह्मा मामुक्तवान्यथा ॥५॥
 दक्षनारदमुख्यैस्तु युक्तं त्वा वयमुक्तवान् ।
 सद्मा श्रीगरुडं पुण्यं पुराणं सारवाचकम् ॥६॥

अहं हि नारदो दक्षो भृगवाद्याः प्रणिपत्य तम् ।
 सारं ब्रूहीति पप्रच्छुर्ब्रह्माणं ब्रह्मलोकगम् ॥७
 पुराणं गारुडं सारं पुरा रुद्रश्च मा यथा ।
 सुरं सहाग्रवीद्विष्णुस्तथाऽहं व्यासं वच्मि ते ॥८

ऋषियो ने कहा—महामुनि व्यास ने आपको यह गरुड महापुराण कैसे सुनाया था— भगवान् विष्णु के आश्रय मुक्त इसे सबको हमें श्रवण कराइये । ॥१॥ सूतजी ने कहा—एक समय मैं मुनियो ने साथ बदरिवाश्रम को गया था और वहाँ मैंने परमात्मा के ध्यान में समाहित व्यास मुनि का दर्शन किया था । उस वक्त मैं उनको प्रणाम करके उनके समीप में बैठ गया था और फिर मैंने उस महामुनि से पूछा था—हे महा मुनीश्वर व्यास देव । भगवान् हरि के स्वरूप और फिर उनके द्वारा इस जगत् के सर्गादिक का वर्णन कीजिये । मैं यह समझता हूँ कि आप सर्वदा उनका ही ध्यान किया करते हैं अतएव व्यापक भगवान् के स्वरूप आदि को भली भाँति जानते होगे । हे विप्रगण ! इस प्रकार जब मैंने उनसे पूछा था तो जिस प्रकार से उन्होंने मुझसे कहा था उसी तरह मैं तुमको बताता हूँ उसे तुम लोग मुझ से समझ लो ॥२॥३॥ व्यासजी ने मुझसे कहा था—हे सूत मैं अब तुमको गरुड पुराण को सुनाता हूँ जो कि नारद दक्ष आदि तथा ब्रह्मा ने मुझे कहा था । सूतजी ने कहा मैंने व्यासजी से भी इसी तरह पूछा था कि दक्ष नारद आदि प्रमुख देवों ने तथा ब्रह्माजी ने यह परम सार वाचक गरुड पुराण अत्यन्त योग्य भाषणों को सुनाया था ? व्यासजी ने इसके उत्तर में मुझसे कहा था कि एकबार मैं, नारद, दक्ष तथा भृगु प्रभृति सबने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से पूछा था कि आप परम सार वस्तु हमको बताइये तब ब्रह्माजी ने कहा था—हे व्यास ! पहिले समय में भगवान् विष्णु ने देवों के सहित रुद्र को और मुझको जो यह सारभूत गरुड पुराण कहा था वही अब मैं तुमको बताता हूँ ॥४॥५॥६॥७॥८॥

अथ रुद्र सुरैः सार्द्धमब्रवीद्वा हरिं पुरा ।

पुराणं गारुडं सारं ब्रूहि ब्रह्मन् महार्थकम् ॥९

अहं यतोऽद्रिर्ललासमिन्द्राद्यैर्देवैर्तैः सह ।
 तत्र दृष्टो मया रुद्रो ध्यायमानः परं यदम् ॥१०॥
 पृष्टो नमस्कृतं कं न्य देव ध्यायसि भङ्गुर ।
 त्वत्तो नान्य परं देव जानामि ब्रूहि मां ततः ॥
 मागोद् मारुवरं नत्वं श्रातुं कामं सुरैः सह ॥११॥
 अहं ध्यायामि न विष्णुं परमात्मनोऽश्रयम् ।
 सर्वं सर्वं सर्वं सर्वं प्राणिहृदि स्थितम् ॥१२॥
 भस्मोद्धूतितदेहस्तु जटामण्डलमभिस्तु ।
 विष्णोर्गाराधनार्थं मे व्रतवर्मा पितामह ॥१३॥
 तमेव गत्वा पृच्छामं सारं यं चिन्तयाम्यहम् ।
 विष्णुं जिष्णुं यक्षनाभं हरिं देहविवर्जितम् ॥१४॥
 शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम् ।
 पृच्छतां सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥१५॥

११११ मं श्रद्धालु ने कहा था—हे रुद्र ! पहिले हरि भगवान् ने इस महाद् से भी महाद् पर्यं बातें गण्ड-पुत्राण को देवों के साथ रुद्र देवको वयो बताया था । तब प्रजापति ने ध्याम से कहा—एक बार मैं समस्त देवों को साथ में लेकर कैलास पर्वत पर गया था । वहाँ पर मैंने परम पद के ध्यान से भिन्न भगवान् रुद्र देव का दर्शन किया था ॥११॥ हम लोगो ने उनको नमस्कार करके उनसे पृष्टा था—हे भगवन् भङ्गुर ! आप किस देव का श्राय कर रहे हैं ? शोक भय पर तो भय कोई भी देव नहीं है । हम इस बात को पण्डितो उग्रह में समझते हैं । वह देव कौन है ? आप लोक प्रकार में मुक्तो बनाये । मैं इन सब देवों के साथ यहाँ मार से भी मान स्वरूप जो देव हो—
 सबे सुाना चाहता हूँ ॥१॥ मैंने इस प्रश्न का उत्तर रुद्र देव ने देते हुए कहा था मैं सब परमात्मा ईश्वर भगवान् विष्णु का ध्यान किया करता हूँ तो सभी कुछ प्रधान करने वाले—सर्वत्र गणन करने वाले—समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित और सब स्वरूप हूँ । ह पितामह ! भय मे मण्डल शरीर को उद्धृत

करके निर पर जटाजूट घाण्डव करने वाले मेरी उन्ही भगवान् विष्णु के प्रारा-
गना करने की वनचर्या है ॥१२॥१३॥ जिसका म भट्टनिष्ठ चिन्तन किया
करता हूँ उन्ही के ममोप मे चषो चल कर मार को धूँछे । वे विष्णु हरि विष्णु
पद्मनाभ और देह से रहित हैं । वे स्वयं शुचि हैं—उनका पद (स्थान) परम
शुचि (पवित्र) है । वे ब्रह्म स्वर्ण्य हैं—परम ईश्वर हैं । वे सर्वज्ञाओं से
युक्त होकर विराजमान हैं उन्ही परात्पर परम देव का मैं ज्ञान किया करता
हूँ ॥१४॥१५॥

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विद्यन्ति च ।

गुणभूतानि भूतेषु सूर्यं मणिमण्डपम् ॥१६॥

सहस्राक्ष सहस्राङ्घ्रि महस्रो वराननम् ।

अणीयसमाणीयाय मयि विष्टञ्च स्ववीमसाम् ॥

गरीयसा गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयनामपि ॥१७॥

य वाक्पेप्सुनुवाक्पेपु निपत्सूपनिपत्सु च ।

गृणन्ति मत्स्यकर्मण मत्स्य सत्येषु सामगु ॥१८॥

पुराणपुरुष प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिपू ।

क्षये सङ्क्षपण प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे ॥१९॥

यस्मिन्लोका स्फुरन्तीमे जलेषु शकुलो यथा ।

ऋतमेकाक्षर ब्रह्म यत्तत्सदसत परम् ॥

अच्यवन्ति च य देवा यक्षराक्षसपतया ॥२०॥

यस्याग्निरास्य क्षीर्मांसा ख नाभिश्चरणी क्षिति ।

चन्द्रादित्यौ च नयन त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२१॥

यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य नासाञ्च बाहव ।

यस्योच्छ्वासश्चपवन त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२२॥

यस्य वेशेषु जीमूता नद्य सर्वाङ्गसन्धिषु ।

कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्त दध चिन्तयाम्यहम् ॥२३॥

समस्त भूतों के ईश उनमें मूर्त में मूर्तियों की भाँति इस सम्पूर्ण विश्व में स्थित रहा करते हैं और गुणभूत होकर प्रवेश किया करते हैं ॥१६॥ वे भगवान् विष्णु सहस्र नेत्रों वाले हैं—महर्षी चरणों में मुक्त हैं—उनके सहस्रों ऊरु हैं—श्रेष्ठ मुख वाले—सूक्ष्मों में भी परम सूक्ष्म—स्थूलों से भी घनिष्ठ स्थूल—गुरुओं में सबसे अधिक गुरु और श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ हैं । जिनकी वाक्यों—प्रनुवादों में, उपनिषदों में सत्य कर्म करने वाला ग्रहण किया जाता है और सत्य सामों में उनका सत्य स्वरूप बताया जाता है ॥१७॥१८॥ उन्हीं ही पुराण पुरुष और द्विजातियों में ग्रहा कहा गया है और उन ही ही इस सृष्टि के क्षय काल में सङ्कर्षण नाम से पुकारा गया है । उसी उपासना करने के योग्य भगवान् की हम उपासना किया करते हैं ॥१९॥ जिन में यह समस्त सौतों का समुदाय जल में शङ्ख की भाँति स्फुरित हुमा करता है । वह ऋषि—एवाक्षर ब्रह्म और सत्पथवा प्रसत् से भी पर है । जिसकी प्रवचना ये सभी मह-राक्षस और पक्षग किया करते हैं ॥२०॥ घनिष्ठ जिनका मुख है—दिव लोक जिसका मूर्द्धा है—आकाश नाभि—चरण स्थिति तन और चन्द्र एवं सूर्य जिस परमात्मा के दोनों नेत्र हैं मैं उसी देव का निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन किया करता हूँ ॥२१॥ यह त्रैलोक्य प्रयात् तीनों लोक जिनके उदर में हैं—ममस्त दिशाएँ जिसकी बाहु हैं—पवन जिसका उच्छ्वास है उसी परम देव का मैं चिन्तन किया करता हूँ । ॥२२॥ जिसके केशों में मेघ हैं और नदियाँ समस्त प्रज्जों की मधियों में हैं तथा जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र स्थित रहा करते हैं उसी देव का मैं ध्यान करता हूँ ॥२३॥

पर कालात्परो यज्ञात्पर सदसत्तश्च य ।

अनादिरादिविश्वस्य तं देव चिन्तयाम्यहम् ॥२४॥

मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकरः ।

मुखादिग्निश्च तज्ज्ञे त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२५॥

पद्भ्या यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्राम्भ्यां च तथा दिशः ।

मूर्द्धाभागाद्वि यस्य त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२६॥

संगंश्च प्रतिसर्गंश्च वक्षो मन्वन्तराणि च ।
 वशानुचरित यस्मात्त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२७॥
 य ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजाम सारभीक्षितुम् ॥२८॥
 इत्युक्तोऽहं पुरा रुद्र श्रेतद्वीपनिवासिनम् ।
 स्तुत्वा प्रणम्य तं विष्णुं श्रोनुकामा किल स्थिरा ॥२९॥
 अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम् ।
 सारात्सारतरं विष्णुं पृष्ट्वारतं प्रणम्य वै ॥३०॥
 यया पृच्छसि मां ध्यासस्तयासौ भगवान्भव ।
 पप्रच्छ विष्णुः देवाद्यं शृण्वतो मम वै सह ॥३१॥

जो परमेश काल से भी पर है—यज्ञ से भी पर तया मत्स्य से भी पर है—जिसका कोई घादि काम नहीं है ऐसे इस विश्व के भावि स्वरूप उस देवेश्वर का मैं चिन्तन करता हूँ ॥२७॥ जिसके मन से चन्द्रमा—सैशो से दिवाकर (सूर्य)—मुख से अग्नि—भी उत्पत्ति होती है उस देव की मैं प्राराधना करता हूँ ॥२८॥ जिसके चरणों से भूमि समुपगत हुई है तया श्रोत्रों से सम्पूर्ण दिश ओ की उत्पत्ति हुई है और जिसके भूरी के भाग से दिवलोक पैदा हुआ है मैं उसी देव का ध्यान करता हूँ ॥२९॥ सर्ग—प्रतिसर्ग—वक्ष—मन्वन्तर और वशानुचरित जिससे ये सभी हुए हैं मैं उस देव का चिन्तन किया करता हूँ ॥२७॥ मैं जिसका ध्यान करता हूँ उसी से इसका सार जो देने को हम सब चलते हैं ॥२८॥ इस प्रकार से बड़े जाने पर मैं और रुद्र श्रेत द्वीप में निवास करने वाले भगवान् विष्णु के पास जाकर सबने उन्हें प्रणाम किया और धन्य करने की इच्छा वाले वहाँ स्थिर होकर बैठ गये थे ॥२९॥ हम सबमें से रुद्रदेव परमेश्वर से बोले और सार से भी जो सार है उस विष्णु से उन्होंने पूछा था और उनको प्रणाम किया था ॥३०॥ ब्रह्मा ने कहा—जैसे व्यास मुझसे पूछते हैं वैसे ही भगवान् भक्ष ने विष्णु से पूछा था । वहाँ उस समय समस्त देवों के सहित मैं भी धन्य कर रहा था ॥३१॥

हरे कथय देवेश देवदेव क ईश्वर ।
 को ध्येय कश्च वै पूज्यः कैत्रं तैस्तुष्यते पर ॥३२॥
 कौधेमे-कैश्च नियमैः कथा वा धर्मपूजया ।
 केनाचारेण तुष्ट स्यात्किं तद्रूपञ्च तस्य वै ॥३३॥
 कस्माद्देवाज्जगज्जात जगत्पालयते च क ।
 कीदृशैरवातारैश्च कस्मिन्त्याति लय जगत् ॥३४॥
 सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
 न स्माद्देवात्प्रवर्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम् ॥
 एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन ॥३५॥
 परमेश्वरमाहात्म्य युक्तयोगादिक तथा ।
 तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्र ततोऽप्यव त् ॥३६॥
 शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह ।
 अहं हि देवो देवानां सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥३७॥

भगवान् रुद्र ने कहा—हे देवों के स्वामिन् ! हे हरे ! प्राप कृपा कर हमको यह बताइये कि देवों का भी देव ईश्वर कौन है ? कौन ध्यान करने योग्य है और किसकी पूजा करनी चाहिए ? वह परदेव जो भी कोई हो, बिन व्रतों से तुष्ट हो जाता है ? ॥३२॥ किन धर्मों के द्वारा तथा कौन-से नियमों की उपासना करने से अथवा निज धर्म को प्रवर्तना में और किस प्रकार के कौन-से आचार में वह सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होता है ? यह भी बताइये उनका स्वरूप क्या है ? ॥३३॥ किस देव से यह जगत् समुन्नत हुआ है और इसका कौन पालन किया करता है ? वे किस प्रकार के अवतार हुआ करते हैं ? मन्त में यह जगत् किस में विनीत हो जाता करता है ॥३४॥ सर्ग—प्रतिसर्ग—वश—मन्वन्तर और वशानुचरित किस देवसे प्रवृत्त हुआ करते हैं और किस में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ? हे हरे ! यह सब बताइये । इसके अनतिरिक्त अन्य भी कुछ बताने के योग्य हो वह भी बला दीजिये ॥ ३५॥ इसके अनन्तर भगवान् हरि ने रुद्र देव को परमेश्वर का माहात्म्य—युक्त का योगादिक तथा अठारह विद्यायें बताई थी ।

॥३६॥ हरि ने यह—हे रुद्र ! प्रह्लाद धीर समस्त देवों के सहित घाय घदण कर्णों, मैं सब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना हूँ । मैं ही सम्पूर्ण देवों का देव तथा समस्त लोको के ईश्वरों का भी ईश्वर हूँ ॥३७॥

अह ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽह स्तुतिभिः सुरैः ।
 अह हि पूजितो रुद्र ददामि परमा गतिम् ॥३८॥
 नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवं ।
 जगत्स्थितेरह बीजं जगत्कर्ता त्वह शिव ॥३९॥
 दुरनिगह्यकर्ता हि घर्मणोक्ता त्वह हर ।
 अघतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिल जगत् ॥४०॥
 अह मन्त्रादिव मन्त्रार्थं पूजाध्यानपरो ह्यहम् ।
 स्वर्गादीनाञ्च कर्त्ताऽह स्वर्गादीन्यहमेव च ॥४१॥
 शाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च ।
 सर्वं सर्वत्रिमको देवो भुक्तिमुक्तिकर परः ॥४२॥
 ध्यानं पूजोपहारोऽह मण्डनान्याहमेव च ।
 इतिहासान्यह रुद्र सर्वदेवो ह्यह शिव ॥४३॥
 सर्वज्ञानान्यह शम्भो ब्रह्मात्माहमह शिव ।
 अह ब्रह्मा गवन्लोकं सर्वदेवात्मको ह्यहम् ॥४४॥
 अह साक्षात्सदाचारो धर्मोऽह पुरातनः ॥४५॥
 यमोऽह नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च ।
 अह सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यह तथा ॥४६॥

मैं ही ध्यान करने के योग्य हूँ—पूजा करने के योग्य हूँ । हे रुद्र ! मैं ही पूजित होकर परम प्रसन्न होते हुए परम गति प्रदान किया करता हूँ ॥३८॥ मानवों के शुद्ध आचाराद्वय और नियमों से मैं अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करता हूँ । इस जगत् की स्थिति का मैं ही बीज हूँ और हे शिव ! मैं ही इस जगत् की रचना करने वाला हूँ ॥३९॥ हे हर ! दुष्टजनों के निग्रह को करने वाला और परम की रक्षा करने वाला भी मैं हूँ । मत्स्य आदि अनेक अघतारों

के द्वारा मैं इस समस्त जगत् का पालन करता हूँ ॥४०॥ मैं ही स्वयं ब्रह्म हूँ तथा मैं ही अर्थ भी हूँ और पूजा एवं ध्यान में तत्पर रहने वाला मैं ही हूँ । स्वर्ग अदि वा करने वाला और स्वर्गादि भी मैं ही हूँ ॥४१॥ ज्ञाता अर्थात् ज्ञान रखने वाला—अवश्य करने वाला—वक्ता और वक्तव्य भी यह सब कुछ सर्वात्मक अर्थात् सबसे स्वच्छ वाला देव—भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला परम मैं ही हूँ ॥४२॥ ध्यान—पूजा का उपहार अर्थात् वे सभी पदार्थ जो अर्चा में समर्पित किये जाते हैं मैं हूँ । समस्तमण्डन मैं हूँ—इतिहास भी मैं ही हूँ । हे रुद्र ! समस्त देवों का स्वरूप भी मेरा ही स्वरूप है—मैं ही ध्रुव हूँ । ॥४३॥ हे शम्भो ! मैं ब्रह्मा की आत्मा हूँ—मैं ही ब्रह्म समस्त लोक और सब देवात्मक मैं ही हूँ ॥४४॥ नाक्षत्र सदाचार—धर्म और वैष्णव तथा वरुण एवं सम्पूर्ण महाचार उनके धर्म और पुरातन मैं ही हूँ अर्थात् यह सब भी मेरा ही स्वरूप है ॥४५॥ हे रुद्र ! यम—नियम—विविध भाँति के ब्रह्म सूर्य—चन्द्र तथा गङ्गा आदि अन्य प्रभु ये सब मेरा ही स्वरूप है ॥४६॥

पूरा मा गरुड पथी तपसाऽऽराधयद् भुवि ।
तुष्ट ऊचे वर ब्रूहि मत्तो वव्रे वर स च ॥४७॥
भम माता च विनता नामर्दागोकुना हरे ।
यथाह देवतान्जित्वा चामृषं ह्यानयामि तत् ॥४८॥
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाह वाहनस्तव ।
महाबलो महावीर्यं सर्वेज्ञी नागदारण ॥
पुराणमहिताकर्त्ता यथाऽहं स्या तथा कुरु ॥४९॥
यथा त्वयोक्तं गरुड तथा सर्वं भविष्यति ।
नागदास्यान्मातरं त्वं विनता मोक्षयिष्यसि । ५०
देवादीन्सकलान्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यसि ।
महाबलो वाहनस्त्व भविष्यसि विपादेन ॥५१॥
पुराणं मत्प्रसादाच्च भम माहात्म्यवाचकम् ।
यदुक्तं मत्स्वरूपं तव चाविर्भविष्यति ॥५२॥

गारुड तव नाम्ना तत्लोके स्याति गमिष्यति ।

यथाऽह देवदेवानां श्री रयाता विनतासुत ॥

तथा स्याति प्राणेषु गारुड गरुडेष्यति ॥५२॥

पहिले गरुड पक्षी ने भूतल में तपश्चर्या के द्वारा मेरी समाराधना की थी । मैं उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर उससे बोला था कि तू अपनी अभीष्ट वरदान मांगने । उसने मुझसे कहा था—हे हरे ! मेरी विनता को नागों ने दासी बना रखा है । ऐसा कृपा कर दीजिये कि मैं देवी की जोत कर प्रमृत्त को ले आऊँ और माता की दासीन से छुटकारा दे सकूँ और मैं आपका वाहन बन जाऊँ—सर्वशाला और नागों को विदीर्ण करने वाला तथा समस्त पुत्र एव सहितामो की रचना का विधामक हो जाऊँ ॥४८॥४९॥ तब विष्णु ने कहा था—हे गरुड ! जो कुछ तुमने मुझसे माचना करके कहा है वह सभी कुछ हो जायगा । तू अपनी माता विनता की नागों के दास्य भाव से भी प्रवश्य विमुक्त कर देगा ॥५०॥ तुम सब देवताओं पर विजय पाके प्रमृत्त से प्राप्तोगे और महान् बलशाली विष का मर्दन करने वाला मेरा वाहन भी बन जाओगे । ५१॥ मेरी कृपा से मेरे माहात्म्य की यताने वाले पुराण की रचना के विषय में जो तुमने चाहा है वह मेरा स्वरूप भी तुमको आविर्भूत हो जायगा । ॥५२॥ हे विनता के पुत्र ! जिस प्रकार से देवदेवों की श्री में विख्यात है उसी भाँति यह पुराण तुम्हारे नाम से गारुड यह लोक में रयाति को प्राप्त होगा । पुराणों में वह गारुड की रयाति गरुड की हीन शक्ति के समान ही प्रमृत्त हो जायगी ॥५३॥

यथाह कीर्त्तनीयोऽथ तथा त्व गरुडात्मना ।

मा व्यात्वा पक्षिमुख्येद पुराण गद गारुडम् ॥५४॥

इत्युक्तो गरुडो रद्र वश्यपायाह पृच्छते ।

वश्यपी गारुडे श्रुत्वा वृक्ष दग्धमजीवयत् ॥५५॥

रवयश्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत् ।

यक्षि ॐ उ स्वाहा जापी विद्येथ गारुडी परा ॥

गरुडोक्त गारुड हि नृणु रद्र महात्मकम् ॥५६॥

जिस प्रकार से मैं कीर्तन करने के योग्य हूँ वैसे ही तुम भी गरुडात्मा के द्वारा कीर्तन के योग्य हो । मेरा ध्यान करके यज्ञि मुख्य का यह गरुड-पुराण कहो ॥५४॥ हे रुद्र ! इस रीति से कहे हुए गरुड ने पूछने वाले कश्यप से कहा था । कश्यप ने गरुड पुराण का श्रद्धा से श्रवण कर दग्ध हुए वृक्ष को सजीव कर दिया था ॥५५॥ और स्वयं घन्य मन वाला होकर विद्या से अन्यो को जीवित कर दिया था । 'यज्ञि ॐ हूँ स्वाहा'—इसका जाप करने वाला हुआ । यः परा गरुडो विद्या है । हे रुद्र ! गरुड के द्वारा कहा गया गरुड माहात्म्य का जाप श्रवण करो ॥५६॥

३-पुराण कीर्तन का उपक्रम

इति रुद्राब्जजो विष्णो शुश्राव ब्रह्मणो मुनि ।
व्यासां व्यासादह वक्ष्येह ते शौनक नमिषे ॥१॥
मुनीनां शृण्वना मध्ये सर्गाद्य देवपूजनम् ।
तीर्थ भुवनकोपञ्च मन्वन्तरमिहोच्यते ॥२॥
वर्णाश्रमादिधर्माश्च दानराज्यादिधर्मका ।
व्यवहारो व्रत वशा वंशक मनिदाकम् ॥३॥
अङ्गानि प्रलयो धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम् ।
संप्रपञ्च निष्प्रपञ्च कृत विष्णोर्निगद्यते ॥
पुराणो गरुडो सर्व गरुडो भगवानय ॥४॥
वासुदेवप्रसादेन सामर्थ्यातिशयेयुं त ।
भूत्वा हरेर्वाहनञ्च सर्गादीनाञ्च कारणम् ॥
देवान् विजित्य गरुडो ह्यमृताहरण तथा ॥५॥
चक्रे क्षुधाहत यस्य ब्रह्माण्डमुदरे हरे ।
य दृष्ट्वा स्मृतमात्रेण नागदीनाञ्च सदायम् ॥६॥
कश्यपो गरुडाद् वृक्ष दग्ध चाजीवयद्यत ।
गरुडः स हरिस्तेन प्रोक्तः श्रीकश्यपाय च ॥७॥

तत् श्रीमद्गारुडं पुण्य सर्वदं पठितं तव ।

हरिरित्यं च रुद्राय शृणु शौनक तद्यथा ॥८॥

सूनजी ने कहा—हे शौनक ! यह व्यास मुनि ने रुद्र और ब्रह्मा से परम ब्रह्म भगवान् विष्णु ने कहा था । फिर व्यास मुनि से मैंने सुना था । उसे तुमसे कहता हूँ । नैमिषारण्य में समस्त श्रवण करने वाले मुनियों के मध्य में यहाँ पर सगं का आद्य-देवपूजन-तीर्थ-भुवन कोष और मन्वन्तर कहा जा । है ॥१॥२॥ वरुण का रुद्रा आधमो आदि के धर्म, दान और राज्य प्रभृति के धर्म व्यवहार, व्रत, वन, निदान के सहित बंधक, भक्षण, प्रलय तथा धर्म, काम और धर्म का उत्तम ज्ञान विष्णु का किया हुआ है प्रपञ्च सहित एव निष्प्रपञ्च सब कहा जाता है । यह सभी कुछ भगवान् गरुड ने धरने गारुड पुराण में कहा है ॥३॥४॥ भगवान् वासुदेव के प्रसाद से प्रतिशपित सामर्थ्य से युक्त होकर गरुड हरि भगवान् का साहस हुआ और सर्गादि का कारण बना था । तथा समस्त देव आदि के ऊपर विजय प्राप्त कर गरुड ने अमृत का मरहरण किया था ॥५॥ जिस भगवान् हरि के उदर में गुप्ता से बाह्य ब्रह्माण्ड किया था, जिसको देखकर स्मरण मात्र से ही नाग आदि का सक्षय किया था ॥६॥ कश्यप ने गरुड से ही वृक्ष को दम्ब पर दिया था । भगवान् हरि ने गरुड से कहा था और गरुड ने इस विद्या को कश्यप को बताया था ॥७॥ वह श्रीमद् गारुड पुराण पढ़ने पर तुमको सब प्रदान करने वाला होगा । इस प्रकार से भगवान् हरि ने रुद्र देव से कहा था । हे शौनक ! अब आप योग मुझसे यह सब उसी प्रकार से श्रवण करो ॥८॥

४ — सृष्टिकथन, (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि की उत्पत्ति)

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।

वशानुचरितं चैव एतद् ब्रूहि जनार्दन ॥९॥

शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि सर्गादीन् पापनाशनान् ।

सर्गास्त्यतिप्रलयान्ता विष्णो ब्रीडा पुरातनीम् ॥१०॥

नरनारायणो देवो वासुदेवो निरञ्जन ।
 परमात्मा परं ब्रह्म जगज्जनितयादिकृत् ॥३॥
 तदेतत् सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
 तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥४॥
 व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषं काल एव च ।
 कीडतो बालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय ॥५॥
 अनादिनिधनो धाता त्वनन्तं पुरुषोत्तम ।
 तस्माद्भवति चाव्यक्तं तस्मादात्मापि जायते ॥६॥
 तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्तत् स पवनस्तत् ।
 तस्मात्तेजस्तत्स्वापस्ततो भूमिस्ततोऽमृजत् ॥७॥

श्री रुद्रदेव ने कहा—हे जनार्दन ! अब प्राप कृपा करके सर्ग—प्रतिसर्ग—वश—नन्दस्तर और वशानुवरित बल्लेन कीजिये । अब भगवान् श्री हरि ने कहा—हे रुद्र ! तुम श्रवण करो, अब मैं पापों के नाश करने वाले सर्ग प्रादि का बल्लेन करता हूँ जा कि भगवान् विष्णु की सर्ग—स्थिति और प्रलय के अन्त तक बहुत पुरातन क्रीडा होती है ॥१॥२॥ देव—नारायण, वासुदेव, निरञ्जन, परमात्मा परब्रह्म और हम जगत् के जन्म और निलय आदि के करने वाले हैं । वही यह सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है तथा वह ही पुरुष के रूप से और बाल के स्वरूप में अवस्थित रहता है ॥४॥ विष्णु व्यक्त स्वरूप वाले हैं और उसी का अव्यक्त स्वरूप पुरुष तथा काल होता । एक बालक की भाँति क्रीडा करने वाले उस परम पुरुष की ममस्त चेष्टाओं का श्रवण करो ॥५॥ धाता पुरुषोत्तम भगवान् प्रादि और अन्त से रहित एक अनन्त स्वरूप वाले हैं । उनसे अव्यक्त और उनसे आत्मा भी उत्पन्न होता है ॥६॥ उस से बुद्धि मन होता है । फिर उससे आकाश, उससे पवन, फिर उससे तेज, उससे जल और उससे भूमि का सृजन किया था ॥७॥

अण्डो हिरण्मयो रुद्र तस्यान्तं स्वयमेव हि ।
 सारीरग्रहणं पूर्वं सृष्टयर्थं कुरुते प्रभु ॥८॥

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा रजोभावाधिक सदा ।
 शरीरग्रहणं कृत्वाऽमृजदेतच्चराचरम् ॥६॥
 अण्डस्मान्तर्जगत् सव सदेवासुरमानुषम् ।
 स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णु पाल्य च पाति च ॥
 उपसहरत चान्ते सहर्त्ता च स्वयं हरि ॥१०॥
 ब्रह्माभूत्वासृजद्विष्णुजगत् पाति हरि स्वयम् ।
 रुद्ररूपी च कल्पान्तं जगत् सहरत प्रभु ॥११॥
 ब्रह्मानु सृष्टिकालेऽस्मिन् जलमध्यगता महीम् ।
 दष्ट्रयोद्वरति ज्ञात्वा वाराहीमास्थितस्तनुम् ॥१२॥
 देवादिसर्गाद्विद्येश्च सक्षेपाच्छृणु दाङ्कर ।
 प्रथमो महत सर्गो विरूपो ब्रह्माणस्तु स ॥१३॥
 तन्मात्राणाम् द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि म स्मृतः ।
 वैवारियस्तृतीयस्तु सगश्चेन्द्रियक रगृत ॥१४॥
 इत्येष प्राकृत सग सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।
 मुरयसर्गश्चतुर्थस्तु मुरया च स्थावरा, स्मृता ॥१५॥

हे रुद्र ! हिरण्य अण्ड और उसके मध्य में स्वयं हो विराजमान रहते हैं । प्रभु पहिले ऋषि के लिये शरीर का ग्रहण किया करते हैं ॥६॥ चार मुखों वाला ब्रह्मा सदा रजोगुण की अधिक मात्रा वाला होकर शरीर ग्रहण करते हैं और फिर उन्होंने इस सम्पूर्ण चर एव प्रचर जगत् का सृजन किया था ॥६॥ स्रष्टा अण्ड के समस्त पतजगत् को जिसमें देव—प्रभु मनुष्य सभी हैं रहते हैं और विष्णु आत्मा का तथा पालन करने के योग्य का पालन एवं रक्षण करते हैं । फिर अंत में स्वयं ही हरि हो मत्ता होकर इस जगत् का उपसहरण किया करते हैं ॥१०॥ प्रभु ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके सृजन करते हैं—हरि स्वयं ही विष्णु के रूप में फिर इस जगत् का पालन करते हैं और कल्प के अन्त में वही प्रभु रुद्र के रूप वाला होकर सम्पूर्ण जगत् का संहार किया करते हैं ॥११॥ ब्रह्मा सृष्टि के समय में इस मही को जल के मध्य में

गई हुई जान कर वाराह के शरीर को धारण कर अपनी दाढ़ से इसका उद्धार किया है ॥१२॥ हे शङ्कर ! अब हम देवादि के सर्ग से संक्षेप में कहेंगे । तुन इसको मुनी । सबसे प्रथम महत्तत्त्व का सर्ग है जो ब्रह्म का विरूप होता है । ॥१३॥ दूसरा पञ्चवन्मात्राप्रो का सर्ग होता है जोकि भूत सर्ग इस नाम से कहा गया है । तीसरा ऐन्द्रियरु सर्ग होता है और धैकारिक सर्ग कहा जाता है । इस प्रकार से बुद्धि पूर्वक यह प्राकृत सर्ग सम्भूत हुआ है । फिर चतुर्थ मुख्य सर्ग होता है और मुख्य स्थावर कहे गये हैं ॥१४॥॥१५॥

तियंक्स्त्रोतस्तु य प्रोक्तस्तियंभ्योन्य स उच्यते ।
तदूर्ध्वंस्त्रोतसा पक्षो देवसर्गस्तु स स्मृत ॥१६॥
ततोर्ध्वस्त्रोतसा सर्ग ममम म तु मानुष ।
अष्टमोऽनुग्रह सर्ग सात्त्विकस्तामसस्तु स ॥१७॥
पंचते वैकृता सर्गा प्राकृतास्तु त्रय स्मृता ।
प्राकृतो वैकृतश्चापि कीमारो नवम स्मृत ॥१८॥
स्थावरान्ता सुराद्यास्तु प्रजा रुद्र चतुर्विधा ।
ब्रह्मण कुर्वंत सृष्टि जज्ञिरे मानसा सुता ॥१९॥
ततो देवामुरपितृन् मानुषाश्च चतुष्टयम् ।
सिमृक्षुरम्भास्येतानि स्वमात्मानमपूजयत् ॥२०॥
भुक्तात्मनस्तु मायायामुद्रिक्ताभूऽन् प्रजापत ।
सिमृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे तत ॥२१॥
उत्तमसर्ज ततस्ता तु तमोमात्रात्मिका तनुम् ।
तमोमात्रा तनुस्त्यक्ता शङ्कराऽभूद्विभावरी ॥२२॥

तियंक् सेत जो बताया गया है वह तियं योन्य सर्ग कहा जाता है । उससे ऊर्ध्व स्थानी में छद्मर्वा सग नाम स पुकारा जाता है ॥१६॥ उससे अर्वाक् स्थानी में सातर्वा मानुष सर्ग होता है । आठर्वा अनुग्रह सर्ग है । वह सात्त्विक और तामस होता है ॥१७॥ इन तरह ये पांच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं । कीमार नवम सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनों

प्रकार का होता है ॥१८॥ हे रुद्र ! मुरो से घादि लेकर स्थावरों पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा होती है । मृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१९॥ इसके पश्चात् देव, असुर, वितृण्ण और मानुष इन चारों के सृजन की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने इन जलो में अपनी आत्मा का प्रवर्ण किया था ॥२०॥ मुक्तात्मा प्रजापति की मात्रा में उद्रिक्ता हुई थी । सृजनेच्छुक के जाँघ से पहिले असुर उत्पन्न हुए थे ॥२१॥ फिर उस तमोमात्रात्मक शरीर का त्याग कर दिया था और तमोमात्रा त्यक्त वह तनुशङ्करा विभावरी (भँभेरी रात्रि) हो गई थी ॥२२॥

सिसृधुरन्यदेहस्य प्रीतिमाप तत मुरा ।
 सत्त्वोद्रिक्तास्तु मुसत सभूता ब्रह्मणो हर ॥२३॥
 सत्त्वप्राया तनुस्तेन सत्यक्ता साप्यभूद् दिनम् ।
 ततो हि बलिनो रात्रावमुरा देवता दिवा ॥२४॥
 सत्त्वमात्रान्तरं गृह्य परतश्च ततोऽभवन् ।
 सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥२५॥
 रजोमात्रान्तरं गृह्य मनुष्यास्त्वभवस्ततः ।
 सा त्यक्ता चाभवज्ज्योत्स्ना प्रायसन्ध्या याभिधीयते ॥२६॥
 ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या शरीराणि तु तस्य वै ।
 रजोमात्रान्तरं गृह्य धुवभूत् योष एव च ॥२७॥
 धुत्क्षामानमृजत् ब्रह्मा राक्षसान् रक्षणाच्च स ।
 यक्षारक्ष्या यक्षणाञ्जयो सर्पा वै वेशसर्पणात् ॥२८॥

हे हर ! जब भय देह में स्थित होकर मृष्टि के सृजन की इच्छा करने वाले हुए तो बहुत प्रीति की प्राप्ति हुई और ब्रह्मा के मुख से सत्त्व गुण के उद्रेक वाले सुर समुत्पन्न हुए थे ॥२३॥ पह सत्त्वोद्रिक्त शरीर भी उसने त्यक्त कर दिया था जो कि दिन हो गया था । तभी से असुर लोग रात्रि में बल सम्पन्न हुए थे और देवगण दिन में बली हुए थे ॥२४॥ सत्त्वमात्रा के और मध्य के पक्ष के उत्पन्न से दिन तथा रात्रि के मध्य में स्थित रहने वाली

सन्ध्या समुत्पन्न हुई थी ॥२५॥ रजोमासान्तर का ग्रहण करके फिर उस शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए थे । वह शरीर भी परित्यक्त कर दिया तो ज्योत्स्ना हुई जो प्राक्सन्ध्या कही जाती है ॥२६॥ ये ज्योत्स्ना-रात्रि-दिन और सन्ध्या उसके शरीर ही हैं । रजो तन्मात्रा का ग्रहण करके शुभा और कोप हुए थे । ॥२७॥ उस प्रह्ला ने धुरा से क्षाम और रक्षण से राजसों का सृजन किया था । यक्षण और वेश मरण मे मर्ष जानना चाहिये ॥२८॥

जाता कोपेन भूताद्या गन्धर्वा जज्ञिरे ततः ।

गायन्तो जज्ञिरे वाच गन्धर्वास्तेन तेऽनघ ॥२९॥

अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽञ्जा म मृष्टवान् ।

सृष्ट्वानुदराद्गाश्च पार्श्वाम्या च प्रजापति ॥३०॥

पद्म्याश्चाश्वान् समातङ्गान् गर्दभोष्ट्रादिकास्तथा ।

ओषध्य फलमूलिन्यो रोमम्यस्तस्य जज्ञिरे ॥३१॥

गौरज पुरुषो मेघ दध्नाश्वतरगर्दभा ।

एतान् ग्राम्यान् पशून् प्राहुरारण्याश्च निबोध मे ॥३२॥

श्वपद द्विखुर हस्तिवानरा पक्षिपञ्चमा ।

ओदका पशव पष्ठाः सप्तमाश्च त्रीसृषा ॥३३॥

पूर्वादिभ्यो मुखेभ्यस्तु ऋग्वेदाद्या प्रजज्ञिरे ।

आस्याहं ब्राह्मणा जाता बाहुभ्या क्षत्रियाः स्मृता ॥

ऊरुभ्या तु विना सृष्टा सूद्र पद्म्यामजायत ॥३४॥

ब्राह्मो लोको ब्राह्मणानां याक्र क्षत्रियजन्मनाम् ।

मारुतञ्च विना स्यान् गान्धर्वं सूद्रजन्मनाम् ॥३५॥

ब्रह्मचारिव्रतस्थाना ब्रह्मलोकं प्रजायते ।

प्राजापत्यं गृहस्थानां यथाविहितकारिणाम् ॥३६॥

स्यान् सप्त ऋषीणां च तथैव वनवासिनाम् ।

यतीनामक्षयं स्थानं यदृच्छामासिनां भद्रा ॥३७॥

कोप ने भूनादि की समुत्पत्ति हुई थी । फिर गन्धर्व उत्पन्न हुए थे ।
 हे अनघ ! वे पामन करते हुए ही उत्पन्न हुए थे इति । उनको गन्धर्व इस
 नाम से कहा गया है ॥२६॥ उन प्रजापति ने यक्षिणी (भंडो) को अपने वधः
 स्थल से घोर मुख से बकरीया को उत्पन्न किया था । प्रजापति ने अपने उदर
 और पार्श्व भगों से गायों का नृजन किया था ॥२७॥ ब्रह्मा ने अपने पैरों
 से अश्व, हाथी, गर्दभ, ऊँट आदि को उत्पन्न किया था उनके रोमों से
 सम्पूर्ण मोषधियाँ, फल और मूल उत्पन्न हुए थे ॥२८॥ गी, ध्रुव, पुरण, मेघ,
 ध्रुव अश्वतर और गर्दन इन सबको आश्व पशु कहा जाता है । ध्रुव जो अरुण
 में होने वाले पशु होते हैं उनको भी मुनने समझ लो । आश्व, दो खुरो वाले,
 हाथी, बजर और पाँचवें पक्षी, छठवें जन्म में रहने वाले पशु होते हैं तथा
 सातवें नरीचुप अर्थात् रैग कर बतने वाले होते हैं ॥२९॥३०॥ पूर्व आदि
 ब्रह्मा के मुख से शृग्वेद आदि की समुत्पत्ति हुई थी । ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण
 और बाह्मणों से क्षत्रिय समुत्पन्न हुए हैं । ऊँटों से वैश्य तथा खरणी से शूद्र
 उत्पन्न हुए थे ॥३१॥ ब्राह्मणों का ब्रह्मलोक है, क्षत्रियों का शाकलोक, वैश्यों
 का स्थान मादक लोक और शूद्रों का गान्धर्व स्थान है ॥३२॥ ओ ब्रह्मकारियों
 के दत्त में स्थित हैं उनका ब्रह्मलोक होता है, गृहस्थों का प्राजापत्य है जो कि
 यथोक्त आश्रम के पालन करने वाले हैं ॥३३॥ सात श्रुतियों का वनवासियों
 का, यक्षियों का और यद्विष्णुनामियों का स्थान सदा प्रक्षय होता है ॥३४॥

५—सृष्टिविवरण (१)

वृत्वेहामुत्र सम्पान प्रजासर्गं तु मानसम् ।
 अथाभ्रजत् प्रजावर्तून् मानसास्तनयान् प्रभु ॥१॥
 धर्मं रुद्रं मनुज्वैव सनक ससनात्तनम् ।
 भृगु सनत्कुमार च रवि शुक्र तथैव च ॥२॥
 मरीचिमश्वत्थिनी पुलस्त्य पुलह क्रुमुम् ।
 वसिष्ठ नारदञ्जैव पितृन् वह्निपदत्तमा ॥३॥

अग्निष्वात्ताश्च कव्यादानाज्यपाश्च सुकान्तिनः ।
 उपहृतास्तथा दीप्यां स्त्रीश्च मूर्तिविवर्जितान् ॥४॥
 चतुरो मूर्तियुक्ताश्च दक्षं चक्रेऽय दक्षिणात् ।
 वामागुष्ठात्तस्य भाय्यमिमृजत् पद्मसम्भवः ॥५॥
 तस्या तु जनयामास दक्षो दुहितर शुभाः ।
 ददौ ता ब्रह्मपुत्रेभ्यः सती रुद्राय दत्तवान् ॥
 रुद्रपुत्रा बभूवुर्हि असख्याता महाबलाः ॥६॥
 भृगवे च ददौ ख्यातिं रूपेणाप्रतिमा शुभाम् ।
 भृतोर्घाताविधातारो जनयामास स शुभा ॥७॥
 श्रियं च जनयामास पत्नी नारायणस्य या ।
 तस्या वै जनयामास बलोन्मादी हरि स्वयम् ॥८॥

हरि ने कहा—यहाँ पर सम्मान रच कर फिर मानस प्रजा सर्ग किया था ॥१॥ धर्म, रुद्र, मनु, मनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार रुचि, शुद्ध, मनीषि, भद्रि, भङ्गिरा, पुलस्त्य, गृलह, क्रतु, वमिष्ठ, नारद, बह्मिषद पितृगण भग्नि प्वात्त, कव्याद, आज्यप, मुकाली, उपहृत, दीप्य, तीन मूर्तियो से रहित और चार मूर्ति युक्तों का सृजन किया था । इसके अनन्तर दक्षिण से दक्ष को बनाया और वामागुष्ठ से उसको भार्या का पद्म सम्भव च सृजन किया था ॥२॥॥१॥॥ दक्ष ने प्रसन्नो उस पत्नी से से परम शुभ दुहिताओं को जन्म दिया था । उन सब प्रसन्नी कन्याओं को दक्ष ने ब्राह्मण के पुत्रों को दे दिया था और सती को रुद्र के लिये दिया था । रुद्र के महान् बलशाली भगणित पुत्र हुए थे ॥६॥ दक्ष ने भृगु को ख्याति नामक कन्या दी थी जो रूप और लावण्य में अद्वितीय और अत्यन्त शुभ थी । उस शुभा ने भृगु से घाता और विधाता को समुत्पन्न किया था ॥७॥ और श्री को जन्म ग्रहण कराया था जो भगवान् नारायण को पत्नी हुई थी । उस थी से हरि ने स्वयं बल और उन्माद को उत्पन्न किया था ॥८॥

आयतिर्नियतिश्चैव मनोः कन्ये महात्मन ।

घाताविधात्रोन्ते भाय्ये तयोर्जाती मुताबुभौ ॥९॥

प्रायश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः ॥
 पत्नी मरीचे सम्भूति पौर्णमासममूयत ।
 विरज सर्वंगश्चैव तस्य पुत्री महात्मनः ॥१०॥
 स्मृतिश्चाङ्गिरस पुत्रा प्रमूता कन्यकास्तथा ।
 सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥११॥
 अनसूया तथैवाश्वजंज्ञे पुत्रानवल्मषान् ।
 सोम दुर्वासस चैव दत्तात्रेय च योगिनम् ॥१२॥
 श्रीत्या पुत्रस्त्यभार्याया दत्तोलिस्तत्पुत्रोऽभवत् ।
 कर्मणश्चार्धवीरश्च सहिष्णुश्च सुतनयम् ॥
 क्षमा सुपुत्रे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः ॥१३॥
 क्रतोतुश्च सुमतिर्भार्या बालसिल्यानमूयत ।
 पष्टि बालसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥
 अष्टपुष्टपर्वमात्राणां ज्वनद्भास्कस्वचंसाम् ॥१४॥
 ऊजर्जाया तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।
 रजागात्रार्ध्वं वाहुश्च क्षरणश्चानघस्तथा ॥
 सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तपयो मताः ॥१५॥

महद् प्राप्तामा बाले मनु की प्रायति श्रीर नियति नाम बालो दो
 कन्याये यो । ये दोनो धाता तथा विधाता की भार्याये हुई थीं । उनमें दो सुत
 उत्पन्न हुए थे । उनमें नाम प्राण श्रीर मृकण्डु थे । मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न
 हुए ॥१०॥ मरीचि नाम बाले प्रह्लाद ने मानस पुत्र की पत्नी सम्भूति ने पौर्ण
 मास की प्रसूत किया था । उस महारमा के विरज श्रीर सर्वंग नामधारी दो
 पुत्र हुए थे ॥१०॥ स्मृति म अङ्गिरा ने पुत्र तथा कन्याएँ समुत्पन्न की थी,
 जिनके नाम सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति ये थे ॥११॥ अनसूया ने
 क्षत्रि मुनि से अल्मष रहित पुत्रों को जन्म दिया था, जिनके नाम सोम, दुर्वास,
 श्रीर महायोगी दत्तात्रेय थे ॥१२॥ पुलहस्य की परम प्रिय भार्या श्रीति में
 दत्तोलि न म धारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था । उसने अष्ट पक्षि क्षमा के कर्मण,

अयंवीर तथा सहिष्णु ये तीन आत्मज उत्पन्न हुए थे जो कि प्रजापति पुलह की भार्या थी ॥१३॥ क्रतु की भार्या मुमूर्ति नाम धारिणी हुई थी उसने बाल खिल्य नाम बालों को जन्म दिया था जो कि ऊर्ध्व रेतस बाल खिल्य ऋषिगण सह्या मे साठ सहस्र हुए थे । वे भास्कर के समान जाज्वल्य मान वर्चस वाले थे और अंगुष्ठ के पर्व के तुल्य परिमाण वाले ही समुत्पन्न हुए थे ॥१४॥ ऊर्जा मे वसिष्ठ मुनि के सात पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । रज, गात्र, उर्ध्वबाहु, धारण, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सब शक्ति माने गये थे ॥१५॥

स्वाहा प्रादात् स दक्षोऽपि सशरीराय बह्वये ।
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारोजसा हर ॥
पावक पवमान च शुचिश्चापि जलाशिन ॥१६॥
पितृभ्यश्च स्वधा जज्ञे मेना वंतरणी तथा ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ मेनाऽणात्तु हिमाचलम् ॥१७॥
ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूत पूर्व स्वायम्भुव प्रभु ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनु हर ॥१८॥
शतरूपा च तां नारी तपोनिहतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देव पत्नीत्वे जगृहे तत ॥१९॥
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रनूत्याकूतिसंज्ञिते ॥२०॥
देवहूति मनुस्तासु आकूति रुचये ददौ ।
प्रसूतिश्च य दक्षाय देवहूतिञ्च व ददमे ॥२१॥
रुचैर्यज्ञो दक्षिणाऽभूद्दक्षिणाय च यज्ञत ।
अभवन् द्वादश सुता यमो नाम महाबल ॥२२॥
चतुर्विंशति कन्याश्च सृष्टवान् दक्ष उत्तम ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥२३॥
बुद्धिर्लज्जा वपु शान्तिर्हृद्धि कीर्तिस्नयोदशी ।
पत्न्यर्थ प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणः प्रभु ॥२४॥

उस दश प्रजापति ने अपनी कन्या स्वाहा की शरीरधारी अग्निदेव का प्रदान किया था । हूँ हर ! उस अग्निदेव से स्वाहा ने परम उदार प्रीति वाले तीन पुत्रों की प्रीति की थी जिनके नाम पावप, पवमान और शुचि थे जो जलाशी थे ॥१६॥ स्वधा नाम वाली दश की कन्या ने त्रिगुणा से भेना तथा वेंतरणी को उत्पन्न किया था । वे दोनों ही ब्रह्म वादिनी थी । मना तो हिमवान् की पत्नी हुई थी ॥१७॥ इनके अनन्तर है हर ! प्रभु ब्रह्मा ने आत्मा से सम्भूत स्वयम्भुव को सबसे पूव ब्रह्मा के पालन में आत्मा को ही मनु किया था ॥१८॥ फिर स्वयम्भुव मनु देव ने तपश्चर्या से समस्त कल्मषों को ध्वस्त कर दन वाली शतरूपा नाम धारिणी नारी को अपनी पत्नी के स्वरूप में स्वीकार किया था ॥१९॥ शतरूपा देवी ने उस स्वयम्भुव महा पुरुष से भियन्नत और उत्तानपाद नाम वाले दो पुत्र तथा प्रमूति एव माकूति सजायालो दी कन्याएँ प्राप्त की थी ॥२०॥ तीसरी एक देवहूति नाम वाली कन्या भी उत्पन्न की थी उन तीनों पुत्रियों में मनु ने माकूति का तो रुचि के लिये प्रदान दिया था— प्रमूति को प्रजापति दश के लिये दिया था और देवहूति नाम धारिणी कन्या को वदम मुनि को प्रदान किया था ॥२१॥ रुचि से यज्ञ उत्पन्न हुआ । यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र समुदाय हुए जिनमें यम नाम वाला महान् बलवान् था । ॥२२॥ दश न चौबीस कन्याओं की जन्म ग्रहण कराया था । जिनके पुत्र नाम अट्टा लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया बुद्धि लज्जा, वपु शक्ति, ऋद्धि, कीर्ति इन तेरहों का दाक्षायण प्रभु धम ने अपनी पत्नियाँ बनाने के लिये ग्रहण किया था ॥२४॥

ख्याति सत्यथ सम्भूति स्मृति प्रीति क्षमा तथा ।

सन्नतिदचानमूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२५॥

भृगुभदो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनि ।

पुलस्त्य पुलहश्चैव क्रुश्चपिवरस्तथा ॥२६॥

अत्रिर्वांसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ।

ख्यात्याद्या जगृहु कन्या मुनया मुनिसत्तमा ॥२७॥

श्रद्धा काम चला दर्प नियम धृतिरात्मजम् ।
 सन्तोष च तथा तुष्टिलोभ पुष्टिरसूयत ॥२८॥
 मेधा श्रुत क्रिया दण्ड लय विनयमेव च ।
 बोध बुद्धिस्तथा लज्जा विनय वपुःरात्मजम् ॥२९॥
 व्यवसाय प्रजज्ञे वै क्षेम शान्तिसूयत ।
 सुखमृद्धियंश कीर्तिरित्येने धर्मसूयत ॥
 कामस्य च रतिर्माय्या तत्पत्रो हृष्य उच्यते ॥३०॥
 ईजे कदाचिद् यज्ञेन ह्यमेधेन दक्षक ।
 तस्य जामातर नर्वे यज्ञ जग्मुर्निमग्नित्वा ॥३१॥
 भार्याभि सहिता सर्वे रुद्र देवी सती विना ।
 अनाहुता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता ॥३२॥
 त्यक्तवा देह पुनर्जाता मेनायान्तु हिमालयात् ।
 जग्मो भार्याऽभवद् गौरी तस्या जज्ञे विनाशक ॥३३॥
 कुमारश्चैव भृङ्गोश्च कुट्टो रुद्र प्रतापवान् ।
 विध्वंस्य यज्ञ दक्ष नृ शशाप पिनाकधृक् ॥
 ध्रुवस्यान्वयसम्भूता मनुष्यस्त्व भविष्यति ॥३४॥

रयाति, सती, सम्भृति, भृति, श्रीति, क्षमा, सप्तति, मनसूया, ऊर्जा
 स्वाहा, स्वधा इनको क्रम से भृषु, भव, मरीचि, भङ्गिरा, पुनस्त्य, पुनर, क्रतु,
 वशि, वनिष्ठ, वल्लि और पितरो ने ग्रहण किया था । मुनिगो ने परम श्रेष्ठ
 मुनियो ने रयाति आदि कन्याधो को पाणिग्रहण किया था ॥२५॥२६॥२७॥
 श्रद्धा ने काम को, चला ने दर्प को, धृति ने नियम आत्मा को, तुष्टि ने सन्तोष
 और पुष्टि ने लोभ पुत्र को प्रसूत किया था ॥२८॥ मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड
 लय और विनय, बुद्धि ने बोध तथा लज्जा ने विनय वपु आत्मज को उत्तर
 दिया था । व्यवसाय को उत्पन्न किया तथा शान्ति ने क्षेम को जन्म दिया था ।
 श्रद्धि ने सुख को, कीर्ति ने यश को प्रसूत किया, इस तरह से ये सब धर्म के
 पुत्र हुए थे ॥२९॥३०॥ काम की भार्या रति हुई थी और उसका पुत्र हर्ष

उत्पन्न हुआ था ॥३०॥ प्रजापति दक्ष ने किसी समय हयमेष यज्ञ का यजन किया था । उस समय उनके जमाई सभी निमन्त्रित होकर उस शुभ उत्सव में गये थे ॥३१॥ सभी के साथ उनकी पत्नियाँ भी वहाँ पहुँची थीं किंतु केवल रूद्र देव और सती नहीं थी । बिना बुलाई हुई सती वहाँ बाद में अपने भाप ही पहुँची तो उनके पिता दक्ष के द्वारा ही उसे अपमानित किया गया था ॥३२॥ उसी समय में सती ने देह का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमालय से भेना में उत्पन्न हुई थी । वही सती पार्वती गौरी भगवान् शम्भु की भार्या हुई और उसके बिनामक मलेश समुत्पन्न हुए थे । गौरी के स्वामी कार्तिकेय कुमार की भी उत्पत्ति हुई थी । भृङ्गोष्ठ क्रुद्ध हुए और प्रतापी रूद्र ने यज्ञ का विध्वंस करके पिताक धारी ने दक्ष को शाप दे दिया था कि ध्रुव के अवध में उत्पन्न होने वाला वह मनुष्य होगा ॥३३॥

६-- सृष्टिनिवारण (२)

उत्तानपादादभवत् सुरुक्ष्यामुत्तमं सुत ।
 सुनीत्यां तु ध्रुवः पूत्रः लेभे स्थानभुत्तमम् ॥१॥
 मुनिप्रासादादाराध्य देवदेव जनार्दनम् ।
 ध्रुवस्य तनयं त्रिष्टिम्हावलपराजम् ॥२॥
 तस्य प्राचीनवर्हितु पुत्रस्तस्याप्सुदारधी ।
 दिवङ्गायस्तस्य मुतस्तस्य पुनरिषु स्मृत ॥३॥
 रिपो पुत्रस्ततः श्रीमाश्चायुष कीर्त्तिता मनु ।
 रुरुस्तस्य सुतः श्रीमानङ्गस्तम्य तथात्मज ॥४॥
 अङ्गस्य वैष्णो पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जितः ।
 अधर्मवारी वैष्णो मुनिभिश्च कुलं हत ॥५॥
 ऊरु ममन्थु पुत्राय ततोऽप्य तनयोऽभवत् ।
 ह्रस्वोऽतिमात्रं कृष्णान्नो निषीदेति ततोऽभुवद् ॥
 निषादस्ततः ये जातो विन्ध्यतालनिवासव ॥६॥

ततोऽप्य दक्षिणं पार्श्वं ममन्धु सहसा द्विजा ।
तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक् ॥७॥

हृदि ने कहा—राजा उत्तम पाद से मुखि नाम वाली भार्या में उत्तम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । दूसरी रानी सुनीति नाम वाली से ध्रुव पुत्र पैदा हुआ था जिसने उत्तम स्थान प्राप्त किया था ॥१॥ ध्रुव ने नारद मुनि के प्रसाद से देवी के देव भगवान् जनार्दन की धाराधना करके उत्तम पद प्राप्त किया था । ध्रुव का पुत्र ध्रिष्टि नाम वाला परम भक्त हुआ था । जो महात् बल धीः पराक्रमवाना था ॥२॥ उसका पुत्र प्राचीन बहि हुआ धीर उसका आत्मज अत्यन्त उदार बुद्धिवाना दिव्यज्ञ नाम वाला हुआ था इन दिव्यज्ञ का पुत्र रिपु हुआ धीर इसका सुत चाक्षुष मनु इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । इस चाक्षुष का आत्मज रुक्मा तनय श्रीमद् भद्र हुआ ॥३॥४॥ भद्र का वेश हुआ जो बड़ा नास्तिक और धर्म से रहित था । इस भद्र के आचरण करने वाले वेश का हनन मुनियों ने कुर्याप्रो के द्वारा कर दिया था ॥५॥ फिर मुनियों ने इसके ऊपरों का मन्थन किया था । उस मन्थन से इसका पुत्र हुआ था जो अत्यन्त छोटा कृष्ण भद्र वाला था । उसके 'निषीद' भर्ता बैठ जाओ और ऐसा बोलने से । इसलिये वह निषाद हो गया जो कि विन्ध्य पर्वत का निवास करने वाला था ॥६॥ इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने उस वेश का दक्षिण हृदय सहसा मन्थन किया था । उससे एक सुत उत्पन्न हुआ था जो भगवान् विष्णु के मानस स्वरूप का धारण करने वाला था ॥७॥

पृथुरित्येव नामा स वेण पुत्रादिव ययो ।

दुदोह पृथिवी राजा प्रजाना जीवनाय हि ॥८॥

अन्तर्धानं पृथो पुत्रो हविर्धानिस्तदात्मजः ।

प्राचीन बहिस्तत्पुत्रः पृथिव्यामेकराट् बभौ ॥९॥

उपयेमे समुद्रन्य तवणस्य स वै मुताम् ।

तस्मात् तुषाव सामुद्री दत्त प्राचीनबहिः ॥१०॥

सर्वे प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।
 अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ॥११॥
 दशदर्पसहस्राणि समुद्रसन्निवेशया ।
 प्रजापतित्व संप्राप्ता भार्या तेषां च मारिषा ॥१२॥
 अभवद् भवशापेन तस्या दक्षोऽभवत्ततः ।
 असृजन्मनसा दक्ष प्रजा पूर्वचतुर्विधा ॥१३॥
 नावद्वन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु ।
 मैथुनेन ततः सृष्टिं कर्तुं मैच्छत् प्रजापति ॥१४॥
 असिन्वीमावहद्भार्या वीरणस्य प्रजापते ।
 तस्य पुनसहस्रं तु वैरण्या समपद्यत ॥१५॥

इसका नाम पृथु था और इस पुत्र के प्रभाव से वह वेणु स्वर्ग लोक की चला गया था । इस राजा प्रथु ने प्रजाओं के जीवन के लिये पृथिवी का दोहन किया था ॥११॥ पृथु का पुत्र अन्नघोर्न हुआ और इसका या मज हविर्घोर्न हुआ था । इसका तनय प्राचीन बहि था जो इस भू मण्डल में एक ही राजा प्रदीप्त हुआ था ॥१२॥ इस राजा ने लवण सागर की पुत्री के साथ विवाह किया था । उससे दस समुद्री प्राचीन बहिष समुत्पन्न हुए थे ॥१३॥ ये सब प्राचीनम नाम वाले थे और सभी धनुर्विद्या के बड़े पारंगतों विद्वान् हुए थे । ये अपृथक् धर्म के प्राचरण करने वाले थे । इनने महान् तप को किया था ॥१४॥ दस हजार वर्ष पर्यन्त ये समुद्र के ही जल में शयन करने वाले हुए थे । इन्होंने प्रजापति के पद को प्राप्त किया था । इनकी भार्या मारिषा हुई थी ॥१५॥ भव क शाप उसमें दस समुत्पन्न हुआ था । उस दस ने मन से दो पहिले चार प्रकार की प्रजा का सृजन किया था ॥१६॥ वे प्रजा उसकी वृद्धिशीलता को प्राप्त नहीं हुई और भगवान् हर क द्वारा प्रवक्ष्यान् हो गई थी । इसके अनन्तर उसमें मैथुन के द्वारा सृष्टि करने की इच्छा की थी ॥१७॥ फिर उस प्रजापति ने प्रजापति वीरण की भार्या यमिक्वी के साथ विवाह किया था और उस वैरिणी से एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१८॥

नारदोक्ता भुवश्चान्तं गता ज्ञातुञ्च नागताः ।

दक्षः पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान् ॥१६॥

गत्रलाश्चास्तेऽपि गता भ्रातृणा पदवी हर ।

दक्षः क्रुद्धः शशापाय नारदं जन्म चाप्स्यसि ॥१७॥

नारदो ह्यमवत् पुत्रं कश्यपस्य मुने पुन ।

यज्ञे ध्वस्तेऽयं दक्षोऽपि शशापोऽग्रं महेश्वरम् ॥१८॥

यष्ट्वा त्वामुत्तरेऽथ अप्स्यन्ति हि द्विजाः ।

जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर ॥१९॥

अमिक्न्या जनयामास दक्षो दुहितरं ह्ययं ।

पष्टि कन्या रूपयुता द्वे चेवाङ्गिरसे ददौ ॥२०॥

द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दक्षः धर्माय चाप्यथ ।

त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे ॥२१॥

प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभा भामिनीं तथा ।

मनोरमां भानुमतीं विशाला बहुदामय ॥२२॥

दक्षः प्रादान्महादेवं चतस्रोऽरिष्टनेमिनं ।

स कृशाश्वाय च प्रादात् सुप्रजाञ्च तथा त्रयाम् ॥२३॥

ये सब नारद के द्वारा बहे हुए भूमण्डल के अन्त तक गये थे कि इसका ज्ञान प्राप्त करे किन्तु फिर वापिस नहीं हुए थे । उन सबके नष्ट हो जाने पर प्रजापति दक्ष ने पुनः एक महस पुत्रों का सृजन किया था ॥१६॥ हे हर ! ये शबलाश्व भी अपने भाइयों की ही पदवी को प्राप्त हो गये थे । फिर दक्ष ने अत्यन्त क्रोधित होकर नारद को शाप दे दिया था कि तू जन्म ग्रहण करेगा । ॥१७॥ इसके अनन्तर नारद ने कश्यप मुनि के यहाँ पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था । यज्ञ के ध्वस्त हो जाने पर दक्ष ने महेश्वर को भी पहिले शाप दिया था ॥१८॥ हे महेश्वर ! ब्राह्मण लोग तुम्हारा यज्ञ करके भी तुम्हारे पूजोत्सवों को त्याग दिया करेगे और जन्मान्तर में ये वैर नष्ट न होंगे ॥१९॥ फिर इस दक्ष ने अमिक्नी में पुत्री समुत्पन्न की थी । ये अत्यन्त रूप लावण्य से समन्वित साठ कन्या थीं । इनमें से दो तो अङ्गिरा को दी थी ॥२०॥ दो

कृशाश्व को दो—दश घर्म को दो यों और तेरह कश्यप मुनि को प्रदान की यों तथा पतार्त्तम चन्द्रमा को दो यों ॥२१॥ फिर सुप्रभा भामिनी बहु पुत्र को दो यों । मनोरमा भानुमयी, विशाखा और बट्टा इन चार कन्याओं को दश ने हे महादेव । धरिष्ट भेमि को दिया था । उम्ने मृत्रबा और जया को कृशाश्व के लिए प्रदान किया था ॥२२॥२३॥

अरुन्धती वसुधामो लम्बा भानुमन्दनी ।

सङ्कुल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च ता दश ॥२४॥

धमपत्न्य समारयाना कश्यपस्य वदाम्यहम् ।

यदितिदिनिदंनु काना ह्यनायु सिहिका मुनिः ।

कद्र प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभि क्षणा ॥२५॥

विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यान् व्यजायत ।

मरुद्भ्या मरुदन्तो दमोस्तु वतवस्तया ॥२६॥

भानोस्तु भानवा रुद्र मुहूर्ताश्च मुहूर्तजा ।

लम्बापार्श्वं च घोषोऽप्य नागवीधिस्तु यामित ॥२७॥

पृथिवीविषम मवंमरुधरया व्यजायत ।

सङ्कुल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे मङ्कुल्प एव हि ॥२८॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोज्जल ।

प्रत्युपस्य प्रभामश्च वनवो नामभि स्मृता ॥२९॥

आपस्य पुत्रो वैतुण्ड्य श्रम श्रान्तो ध्वनिस्तया ।

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् काला लोवस्य कालन ।

सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्त्वा गन जायत ॥३०॥

धवस्य पुत्रा द्रुहिणो हुतहृष्यवहस्यया ।

मतोहरया शिशिर प्राणोऽप्य रमणस्यया ॥३१॥

अरुन्धती, वसु, याम, लम्बा, शानु मरुद्गी मरुध्या, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा ये दश घर्म की पत्निया कहें गई थीं । अब कश्यप की पत्नियों को बताने हैं—यदिति, दिनि, दनु काना, अनायु, सिहिका, कद्र, प्राधा, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि और क्षणा ये तेरह कश्यप की पत्नियाँ हुई थीं ॥२४॥२५॥

विश्वा के विश्वेश्वरा समुत्पन्न हुए थे और साध्या के साध्यमण प्रसूत हुए ।
मरुद्गो मे मरुद्गान् तथा वसु मे वसुगण उत्पन्न हुए थे ॥२६॥ भानु नाम वाली
से भानु गण—हे रुद्र ! मुहूर्ता से मुहूर्तज पैदा हुए थे । सम्बा से घोष उत्पन्न
हुमा था और धामि मे नागवीरि की उत्पत्ति हुई ॥२७॥ सम्पूर्ण पृथिवी विषम
अवस्थती मे उत्पन्न हुमा था । सङ्कल्पा से सर्वा मा सङ्कल्प समुत्पन्न हुमा था ।
॥२८॥ आप, ध्रुव, सोम, धव, अग्नि, अन्न, प्रत्यूष, प्रभात ये आठ नामो
मे वसुगण बहे गये है ॥२९॥ आपके पुत्र ब्रह्म, अश्व, अन्न तथा अग्नि हुए
थे । ध्रुव का पुत्र भगवान् काल हुए जो समस्त लोक का कालन करने वाले
है । सोम का पुत्र भगवान् वर्चा हुए जिसमे वर्चस्वी उत्पन्न होता है ॥३०॥
धव का पुत्र द्रुहिण तथा हुत हव्यवह हुए थे । मनोहरा मे शिशिर, प्राण तथा
रश्मि हुए थे ॥३१॥

अनिलस्य शिवा भार्या तस्या पुत्र पुलोमजः ।

अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥३२

अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।

तस्य शाखो विशात्मश्च नैगनेयश्च पृथक् ।

अपत्य कृत्तिकाना तु कार्तिकेय इति स्मृत ॥३३

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषि नाम्ना नु देवनम् ।

विश्वकर्मा प्रभानस्य विश्वातो देववद्धे कि ॥३४

अजं रुपादहिर्घ्नघ्नस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ।

स्वष्टुश्चाप्यात्मज पुत्रो विश्वरूपो महातपा ।

हरश्च बहुरुषश्च अम्बकश्चापराजित ॥३५

वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ।

मृगव्याघ्रश्च शर्वश्च कपाली च महामुने ।

एकादशैते कथिता दद्राम्निभुवनेश्वरा ॥३६

सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रराजिताः ।

अदित्या कश्यपाश्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे ।

विष्णु शक्रोऽर्यमा घाता त्वष्टा पूषा तथैव च ॥३७

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
 अशुमाश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृताः ॥३८॥
 हिरण्यकशिपुर्दित्या हिरण्याक्षोऽभवत्तदा ।
 सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तिपरिग्रहा ॥३९॥
 हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वार पृथुलो जसः ।
 अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।
 सह्लादश्चाभवत्तेषां प्रह्लादो विष्णुतत्परः ॥४०॥
 सह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्वाष्किल एव च ।
 विरोचनश्च प्राह्लादिवर्लिजंजं विरोचनात् ।
 बले पुत्ररात त्वासीद्वाणज्येष्ठ वृषध्वजः ॥४१॥

अनिल की भार्या शिवा थी । उसका पुत्र पुनोमत्र और अश्वि त गति थे । ये दो अनिल के पुत्र हुए थे ॥३२॥ अग्नि का पुत्र कुमार शरसम्भ में समुत्पन्न हुआ था । उसके पीछे से शाय, विशाख और नैगमेय हुए थे । कृत्तिक ओ की सन्तति कालिकेय इम नाम से कही गई है ॥३३॥ प्रमूय का पुत्र देवल अग्नि के नाम से विष्णुवत हुए थे । प्रभात का पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देववर्द्धि नाम से विष्णु त हुआ था ॥३४॥ अजै हपाद, महिबुध्न, त्वष्टा और वीर्यवान् रुद्र उत्पन्न हुए । त्वष्टा का पुत्र पहातरा विश्वरूप हुआ । हे महाभुने । हर, बहुरूप, अम्बरक, अपराजित, वृषाकपि शम्भु, स्वर्दी, रैवत, मृगशपाथ, शर्व, कपाली—ये एकादश रुद्र हुए थे जो इम सम्पूर्ण त्रिभुवन के स्वामी हैं । ॥३५॥३६॥ सोम की सत्ताईस पत्नियां थी जो नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध थी । उनके अश्विनी, भरणी आदि नाम थे । अग्नि म कश्यप मुन से द्वादश सूर्य समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम विष्णु, शक्र, अयमा, धन्वा, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता मित्र, वरुण, अशुमान्, भग य बारह हैं ॥३७॥३८॥ कश्यप की दिति नाम वाली पत्नी में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष पुत्र हुए थे । सिंहिका नाम वाली एक कन्या हुई थी जिसका परिग्रह विप्रचित्ति ने किया था । ३९॥ हिरण्यकशिपु ने अश्वि और अजै चार पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके नाम ये हैं—अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद थे । इन चारों में प्रह्लाद विष्णु भगवान्

का परम भक्त हुआ था ॥४०॥ सह्याद के पुत्र प्रागुष्मान्, शिवि, वाष्कल और विरोचन हुए थे । विरोचन से प्राह्लादि बलि उत्पन्न हुए थे । हे वृषध्वज ! बलि के सो पुत्र हुए उनमें आण सबसे ज्येष्ठ था ॥४१॥

हिरण्याक्षमुनाश्चासन् मर्षे एव महाबला ।

उत्कर शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥

महानाभो महाबाहु कालनाभस्तथापर ॥४२

अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्करस्तथा ।

अयोमुख शकुनिरा कपिल शम्बरस्तथा ॥४३

एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबल ।

स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमा च महासुर ॥

एते दनो मुता रघाता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥४४

स्वर्भानो सुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपावर्णी ।

श्रीपदानधी ह्यशिरा प्रख्याता वरकन्यका ॥४५

चैश्वानरसुत चोभे पुलोमा बालका तथा ।

उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रह ॥४६

ताम्या पुनसहस्राणि पष्टिर्दानवसत्तमा ।

पौलोमा कालकञ्जाश्च मारीचवनया स्मृता ॥४७

सिंहिकाया समुत्पन्ना विप्रचित्तिमुतास्तथा ।

व्यश शत्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबल ॥४८

बातापिनमुचिश्चैव इत्थल खसृमस्तथा ।

अञ्जकी नन्कश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥

निवातकवचा दैत्या प्रह्लादस्य कुलेऽभवन् ॥४९

हिरण्याक्ष के सभी पुत्र महान् बलवान् थे उनके नाम उत्कर, शकुनि, भूतसन्तापन महानाभ, महाबाहु और काल नाम थे ॥४२॥ दनु के पुत्र द्विमूर्धा, शङ्कर, अयोमुख, शकुनिरा, कपिल, शम्बर एक चक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु वृषपर्वा, पुलोमा, महा सुर हुए थे । ये सब दनु के मुत रघात थे

घोर विप्रचित्ति वीर्यवान् ये ॥४३॥४४॥ स्वर्गान्ति की सुप्रभा बन्धा, शमिष्ठा,
 पार्यपार्वणो, और दानवी, हयशिरा ये चर बन्धका प्रत्यात की ॥४५॥ चञ्चानर
 के दो सुता थीं । उनके नाम पुलोमा तथा बालका ये । ये दोनों महान् भाग्य
 वाली थीं और मारोचि के पन्निष्ठ हुई थी ॥४६॥ उन दोनों से दानवी से
 पर श्रेष्ठ साठ हजार पुत्र हुए थे । ये धीनोम, वानवञ्ज और मारोचि तनय के
 नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥४७॥ मिहिरा से विप्रचित्ति के पुत्र समुत्पन्न हुए थे ।
 उनके नाम व्यम, सत्य, बलपारु नभ, महाबन, वातापि, नमुचि, इत्यन, खलुम
 प्रज्ञक, नरक और काल नाम थे । प्रह्लाद के कुल में निवान कवच दैत्य हुए
 थे ॥४८॥४९॥

पद्मुताञ्जमहासरवाग्ताघ्राया परिकीर्त्तिता ।

शुक्रो श्येनी च भासी च सुग्रीवी सुनिमृशिका ॥५०॥

शुक्रो शुक्रानजनपदुलूकी प्रत्युलूबकान् ।

श्येनी श्येनास्तथा भासी भासानृध्नाञ्च गृध्रपि ॥५१॥

शुक्रोदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी नु व्यजायत ।

अश्वानुष्टान् गर्दभाञ्च ताघ्रायञ्च प्रकीर्त्तित ॥५२॥

विनतामारुतु शुक्रो द्वौ विक्षपातौ गरुडाहणौ ।

गुरसाया सहस्रान्तु सर्पाणामभितौजसाम् ॥५३॥

वाद्रवेयाश्च फणिनः महस्रमभितौजस ।

तेषा प्रधानो भूतेश शेषवानुक्तिशका ॥५४॥

शङ्ख श्वेतो महापद्म कम्बलाश्वतरो तथा ।

एतापवस्तथा नाम कर्कोटकधनञ्जयो ॥

गण क्रोधवश विद्धि ते च सर्वे च दक्षिण ॥५५॥

क्रोधा तु जनयामास पिशाचाश्च महाबलान् ।

मास्तु वं जनयामास मुरभिर्भेहिषास्तथा ॥५६॥

ताघ्रा की र्दं मुता महान् सत्त्व वाली बतलाई गई हैं । उनके नाम
 शुक्रो, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, सुचि और शुक्रिण थे । शुक्रो ने शुक्रो (तोनी)

को जन्म दिया था । उलूकी ने उलूकी पैदा किया था श्येनी ने श्येनी को प्रसूत किया, भाभी ने भाँसो को गृध्री ने गिद्धो को समुत्पन्न किया था ॥५०॥५१॥ पुष्चि ने उदक में रहने वालों को तथा मुयीवी ने पशीगणों को उत्पन्न किया था । अश्वो को, उर्षी को घोर गर्दभो (गधों) को समुत्पन्न किया था । यह ताम्र वन कीतिन हुआ था ॥५२॥ विनता के दो पुत्र हुए जोकि बहुत विख्यात हैं । उनके नाम गरुड घोर अरुण थे । सुरमा के प्रमित भोज वाले एक सहस्र सर्प हुए थे । प्रमित भोज से समन्वित कादवेय (बट्ट के पुत्र) फणी अर्थात् सर्प एक सहस्र थे । हे भूतेश ! उन सबमें शेष वामुकि घोर तलक य प्रधान हुए थे ॥५३॥५४॥ सर्पों के प्रत्येक भेद हैं जैसे-शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एतापन, नाग, कर्कोटा घनज्ञय, । इनके गण को महाक्रीडी समझो घोर ये सभी दृष्टी थे ॥५५॥ काष्ठा न महान् बल वाले विशाखो को जन्म दिया था । सुरभि ने गो तथा महिषो को उ पक्ष किया था ॥५६॥

इरा वृक्षलता यत्नीस्तृणजातीश्च सक्श ।
 खगा च यक्षरक्षासि मुनिरप्सुर्गन्ततथा ॥
 अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वान्समजीजगत् ॥५७॥
 देवा एकोनपञ्चाशन्मरुता ह्यभवन्निति ।
 एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च ॥५८॥
 एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबल ।
 ईदृक्चान्यादृक्सदृक्च तत प्रतिसदन्ततया ॥५९॥
 मितश्च समितश्चैव सुमितश्च महाबल ।
 ऋतजित्सत्यजिज्ञैव सुपेण सेनजित्तथा ॥६०॥
 अतिमित्रीऽपमित्रश्च दूरमित्रीऽजितस्त्रया ।
 ऋतश्च ऋतधर्म्मा च विहर्ता वरुणो ध्रुवः ॥६१॥
 विद्यारणश्चतुर्योऽय गृहमेकगण स्मृतः ।
 ईदृक्श्च सदृक्श्च एतादृक्षा मित्ताशनः ॥६२॥

एतन् प्रसहक्षश्च सुरतरश्च महातपाः ।
 तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिप. सह. ॥६३
 धृतिर्वसुवलाघृष्यो लाभ कामो जया विराट् ।
 उद्वेपणो गणो नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे ॥६४
 एतत्सर्वं हरे रूप राजानो दानवा सुरा ।
 सूर्यादिपरिवारेण मन्वाद्या ईजिरे हरिम् ॥६५

इराने वृक्ष, लता, बल्बो और सभी प्रकार की तृण जानियों को उत्पन्न किया था । सगा ने यक्ष और राक्षसों को प्रसून किया था तथा मुनि ने भस्म-राशियों को जन्म दिया था । भरिष्ठा ने महान् मत्स्य वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥६३॥ उनचास मत्स्य देव हुए थे । उन के नाम—एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति चतुर्ज्योति, एक शुक्र, द्वि शुक्र, त्रिशुक्र, महागन्ध, ईदृक्, भवादृक्, सहृक्, प्रति सहृक्, मित, समित, सुमित, महाबलवान्, श्रुतत्रित्, मत्प्रत्रित्, सुप्रेण, सेनजित्, भविमित्र, प्रमित्र, दूरमित्र, भजित श्रुत, श्रुतधर्मा, विर्त्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण यह चतुर्थ एक गण कपिन है, ईदृक्ष, सहृक्ष, एतादृक्ष, मिताशन, एतन्, प्रसहृक्ष सुरत, महातपा, तादृगुग्र, ध्वनि, भास, विमुक्त, विक्षिप, सह, धृति, वसु, वलाघृष्य, लाभ, काम जयो, विराट्, उद्वेपण, गण नाम सप्तम वायुस्कन्ध में है । ये सब दानव और सुर हरि का रूप राजा थे । सूर्यादि परिवार ने द्वारा मनु षादि ने हरि का यजन किया था ॥६४ से ६५॥

७—सूर्यादिपूजा विधान

सूर्यादिपूजन् ब्रूहि स्वायम्भुवादिभि कृतम् ।
 भुक्तिमुक्ति ऋद सार व्यास सक्षपत शृणु ॥१
 सूर्यादिपूजा वक्ष्यामि धर्मकामादिकारिकाम् ॥२
 ॐ सूर्यासनाय नमः ॐ नमः सूर्यमूर्तये ।
 ॐ हा ह्रीं स सूर्याय नमः । ॐ सोमाय नमः ।
 ॐ मङ्गलाय नमः । ॐ बुधाय नमः ।

ॐ बृहस्पतये नम । ॐ शुक्राय नम ।
 ॐ जनेश्वराय नम । ॐ राहवे नम ।
 ॐ केतवे नम । ॐ तेजश्चण्डाय नम ॥३॥
 आसनावाहन पाद्यमर्घ्यमाचमन तथा ।
 स्नान वस्त्रोपवीतश्च गन्ध पुष्प च धूपकम् ॥४॥
 दीपकञ्च नमस्कार प्रदक्षिणविसर्जने ।
 सूर्यादीना सदा कुर्म्यादिति मन्त्रं वृषध्वज ॥५॥

रुद्र देव ने कहा—सूर्य आदि का पूजन बतनाइये जो कि स्वामिभुव
 आदि मनु ने किया था । यह पूजन सम्पूर्ण सासारिक सुखों की भुक्ति एवं
 मग्न समय में परम पुरुषाय भुक्ति का प्रदान करने वाला है । हे व्यास ! अब
 तुम इनका सक्षिप्त रूप से श्रवण करो । श्री हरि भगवान् ने कहा—मैं सूर्य
 आदि की पूजा को बतनावा है जो कि धर्म धर्म और काम आदि के कर्तने
 वाली होती है ॥१॥२॥ हे वृष ध्वज ! लिखित मन्त्रों के द्वारा सर्वदा सूर्यादि
 देवों का पूजन करना चाहिए जिसमें उक्त देवों का आवाहन, आसन, पाद्य,
 अर्घ्य आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नमस्कार, प्रद-
 क्षिणा और विसर्जन आदि सभी अचना के कृत्य सम्पादित करने चाहिए । इस
 प्रकार की पूजा के मन्त्र ये होते हैं—ॐ सूर्याय नम—ॐ नम सूर्य भूतये
 —ॐ हा हा स सूर्याय नम—ॐ सोमाय नम—ॐ मङ्गलाय नम—ॐ
 बुधाय नम—ॐ बृहस्पतये नम—ॐ शुक्राय नम—ॐ जनेश्वराय नम—ॐ राहवे
 नम—ॐ केतवे नम—ॐ तेजश्चण्डाय नम ॥३॥४॥ यह समस्त देवों का पूजन
 होता है अतएव सभी देवों के नामों के मन्त्र हैं जिनका धर्म सबके लिये नम-
 स्कारात्मक होता है ॥५॥

ॐ हा शिवासनाय नम । ॐ हा शिवमूर्तये नम । ॐ हा
 हृदयाय नम । ॐ ही शिखे स्वाहा । ॐ हूँ शिखायै वषट् । ॐ हूँ
 वचचाय हुँ । ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हूँ अस्त्राय फट् । ॐ हा सद्यो-
 जाताय नम । ॐ ही वाग्देवाय नम । ॐ हूँ अघोर्गाय नम । ॐ हूँ

तत्पुरुषाय नम । ॐ ह्रीं ईशानाय नम । ॐ हा गौर्म्ये नम । ॐ हा
 गुरुम्या नम । ॐ हा इन्द्राय नम । ॐ हा चण्डाय नम । ॐ हा अघो-
 राय नम । ॐ वामुदेवासनाय नम । ॐ वामुदेवमूर्तये नम । ॐ अ
 ॐ नमो भगवते वामुदेवाय नम । ॐ आ ॐ नमो भगवते सङ्क्षुपणाय
 नम । ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रचुम्नाय नम । ॐ अ ॐ नमो भग-
 वते अनिष्टदाय नम । ॐ नारायणाय नम । ॐ तत्सद्वह्मणे नम ।
 ॐ ह्रीं विष्णवे नम । ॐ शौ नमो भगवते नरमिहाय नम । ॐ भू ॐ
 नमो भगवते वराहाय नम । ॐ क ट प श वैनतेयानम । ॐ ज ख
 व सुदर्शनाय नम । ॐ ख ठ फ प गदाय नम । ॐ व ल म क्ष पाच-
 जम्पाय नम । ॐ घ ढ भ ह श्रिये नम । ॐ ग ङ व स पुष्ट्यै नम ।
 ॐ घ प व स धनमातायै नम । ॐ स द ल श्रीवत्साय नम । ॐ ठ
 च भ य कौस्तुभाय नम । ॐ गुरुम्या नम । ॐ इन्द्रादिभ्या नम । ॐ
 विष्णवसेनाय नम ॥६॥

इसमें पाग पादि भी होते हैं । इन म य मन्त्रों को भी बताया जाता
 है—ॐ हा हृदमाय नम ॐ ह्रीं शिरमे स्वाहा ॐ ह्रीं शिरार्थे वषट् ॐ ह्रीं
 कवचाय हुम् ॐ ह्रीं नेत्र जगय वीपट् ॐ ह्रीं अस्थाय पट् ।

अन्य देवों के नाम भी दिये जाते हैं—ॐ हा गद्योजाताय नम—ॐ
 ह्रीं वाम देवाय नम—ॐ ह्रीं अघोराम नम—ॐ ह्रीं तत्पुरुषाय नम—ॐ ह्रीं ईशा-
 नाय नम—ॐ ह्रीं गौर्म्ये नम ॐ गुरुम्यो नम—ॐ हा इन्द्राय नम—ॐ हा
 चण्डाय नम—ॐ हा अघोराम नम—ॐ वामुदेव सनाय नम—ॐ वामुदेव
 मूर्तये नम—ॐ अ ॐ नमो भगवते वामुदेवाय नम—ॐ आ ॐ नमो भगवते
 सङ्क्षुपणाय नम—ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रचुम्नाय नम । ॐ अ ॐ नमो
 भगवते अनिष्टदाय नम—ॐ नारायणाय नम—ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नम—ॐ
 ह्रीं विष्णवे नम—ॐ शौ नमो भगवते नरमिहाय नम—ॐ भू ॐ नमो भगवते
 वराहाय नम—ॐ क ट प श वैनतेयानम—ॐ ज ख व सुदर्शनाय नम
 —ॐ ख ठ प प गदयै नम—ॐ व ल म क्ष पाचजम्पाय नम—ॐ घ ङ

म ह श्रियं नम —ॐ ग ड व स पुष्ट्यै नम—ॐ ध प व स वनमातायै
 नम—ॐ स द न शीवताय नम—ॐ ठ च भ य कोस्तुमाय नम—ॐ
 गुरुभ्यो नम—ॐ इन्द्र शिष्यो नम—ॐ विष्वक्वताय नम ॥६॥

आसनादीन् हरेरेत्तेर्मन्त्रं दद्याद् वृषध्वजः ।

विष्णुशक्त्या सरस्वत्या पूजा शृणु शुभाप्रदाम् ॥७॥

ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नम । ॐ हा हृदयाय नम । ॐ ह्रीं शिरसे
 नम । ॐ ह्रूं शिखायै नम । ॐ हं वक्त्राय नम । ॐ ह्रीं नेत्र
 त्रयाय नम । ॐ ह्रं अस्त्राय नम ॥८॥

श्रद्धा श्रद्धि कला मेधा तुष्टि पुष्टि प्रभा मति ।

शोकराद्या नमाऽताञ्च सरस्वत्याश्च शक्तयः ॥९॥

ॐ क्षेत्रपालाय नम । ॐ गुरुभ्यो नम । ॐ परमगुरुभ्यो नम ॥१०॥

पद्मस्थाया सरस्वत्या आसनाद्य प्रकल्पयेत् ।

सूर्यादीनां स्वकर्मन्त्रं पवित्रारोहणं तथा ॥११॥

ह वृषध्वज । इन उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा भगवान् हरि व लिये आसन
 आदि उपांगों को समर्पित करना चाहिए । अब भगवान् विष्णु की शक्ति
 सरस्वती देवी की पूजा का श्रवण करा जो कि सम्पूर्ण धर्मों के प्रदान करने
 वाली है ॥७॥ सरस्वती की समर्चना के निम्नलिखित मन्त्र हैं—ॐ हा सरस्वत्यै
 नम—ॐ ह्रीं शिरसे नम—ॐ ह्रूं शिखायै नम—ॐ हं वक्त्राय नम—ॐ
 ह्रीं नेत्र त्रयाय नम—ॐ अस्त्राय नम ॥८॥ इन पूजन के मनो म शोद्धार
 आदि में धीरे धीरे मैं नम—यह बोलकर सरस्वती देवी की शीर श्रद्धा,
 श्रद्धि कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा मति इन शक्तियों का भी पूजन करना
 चाहिए । 'ॐ ध्याये नम'—इत्यादि विधि से मनो शक्तियों के मनो की
 रचना कर पूजन करे । इसके पश्चात् ॐ क्षेत्रपालाय नम—ॐ गुरुभ्यो नम—ॐ
 परम गुरुभ्यो नम—इन मन्त्रों से अर्चना करे ॥९॥१०॥ पश्चात् परमस्थित
 सरस्वती देवी के आसन आदि भी कल्पना करनी चाहिए । तथा सूर्यादि देवा
 के लिये उनके अपने अपने नामों के द्वारा पवित्रारोहण करे ॥११॥

८---विष्णुपूजा विधि

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत् ।
 पश्चरङ्गिष चूर्णेन वज्रनाभं तु मण्डलम् ॥१॥
 पाटशं वोष्ठकंस्तत्र सम्मितं रुद्रं कारयेत् ।
 चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपातं तु कारयेत् ॥२॥
 कोणसूत्रादुभयतः कोणा यत्र तत्र सस्थिता ।
 तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपातं विचक्षणः ॥३॥
 तदनन्तरकोणेषु एवमथ हि कारयेत् ।
 प्रथमा नाभिर्द्विष्टा मध्ये रेखाप्रसङ्गमे ॥४॥
 अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभयः ।
 पूर्वमध्यमनाभिर्म्यामथ सूत्रं तु भ्रामयेत् ॥५॥
 अन्तरेषु द्विजत्रोष्ठं पादौ च भ्रामयेद्धरः ।
 अनेन नाभिसूत्रस्य कणिका भ्रामयेच्छिवः ॥६॥
 कणिकाया द्विभागेन केशराणि विचक्षणा ।
 तदग्रेण सदा विद्वान्दत्तान्येव समालिखेत् ॥७॥

श्री हरि ने कहा—स्नान करके पवित्र होकर भूमि में स्थित मण्डप में विरचित मण्डल में भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए । पाँच रङ्ग के चूर्ण के द्वारा पश्चनाभ मण्डल की रचना करे ॥१॥ हे शिव ! वह मण्डल सोलह कोष्ठों से सम्मित होना चाहिए । चतुर्थ पञ्च कोनों में सूत्रपात कराना चाहिए ॥२॥ कोण सूत्र से दोनों ओर जो कोण वहाँ सस्थित होते हैं उनमें ही विचक्षण पुरुष को सूत्रपात करना चाहिए ॥३॥ उसके अन्तर कोणों में भी इसी भाँति करावे । मध्य रेखा प्रसङ्ग में प्रथमा नाभि उद्दिष्ट होती है । अन्तर सभी में आठ नाभियाँ होती हैं । पूर्व और मध्यम नाभियों से सूत्र को घुमाना चाहिए ॥४॥ ५॥ हे हर ! अन्तर कोणों में श्रेष्ठ द्विज को एक पाद सूत्र घुमाना चाहिए । हे शिव ! इसके द्वारा नाभि सूत्र की कणिका को भ्रामित करे ॥४॥ ५॥ ६॥ मण्डल की रचना की विधि में बताया जाता है कि विचक्षण

पुरुष को कणिका के दो भागों के द्वारा केसों की रचना करनी चाहिए और विद्वान् उसके अग्रभाग से दलों का लेखन करे ॥७॥

सर्वेषु नाभिक्षेत्रेषु मानेनानेन सुव्रत ।
पथानि तानि कुर्वीत देशिक परमार्थवित् ॥८॥
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि पश्चिकल्पयेत् ।
द्वारशोभा तथा तत्र तदद्धेन तु कल्पयेत् ॥९॥
कणिका पीतवर्णैः सितरक्तादिकेशरान् ।
अन्तर नीलवर्णैः दलानि हासितेन च ॥१०॥
कृष्णवर्णैः रजसा चतुरस्र प्रपूरयेत् ।
द्वाराणि शुक्लवर्णैः रेखा पञ्च च मण्डले ॥११॥
सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।
कुत्रैव मण्डलञ्चादौ ग्यात् तत्रार्चयेद्धरिम् ॥१२॥
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णु मध्ये सङ्कपर्ण तथा ।
प्रद्युम्न शिरानि न्यस्य शिखामानिरुद्धकम् ॥१३॥
ब्रह्माण्डं सवगात्रेषु करयो श्रीधर तथा ।
अहं विष्णुर्गतिं ह्यात्वा कणिकाया न्यसेद्धरिम् ॥१४॥
न्यस्येत्सङ्कपर्ण पूर्वं प्रद्युम्नश्चैव दक्षिणे ।
अनिरुद्ध पश्चिमे च ब्रह्माण्डोत्तरे न्यसेत् ॥१५॥
श्रीधर रुद्रकांक्षेषु इन्द्रादीन्दिशु विन्यसेत् ।
• ततोऽभ्यर्च्य च गन्वाद्यं प्राप्नुयात्परम पदम् ॥१६॥

हे सुव्रत ! इसी मान से सब नाभि क्षेत्रों में परमार्थ के ज्ञाना प्राचार्य को उन पथों की रचना करनी चाहिए ॥८॥ आदि सूत्र के विभाग के द्वारा ही द्वारों की कल्पना करे और उसके अग्र भाग से वर्ण पर द्वार शोभा को पश्चिकल्पना करनी चाहिए ॥९॥ कणिका की रचना पीत वर्णों से करे और सित तथा रक्त आदि वर्णों में केसों की रचना करनी चाहिए । अन्तर भाग को नील वर्णों से तथा दलों को अक्षित वर्णों से करे ॥१०॥ कृष्ण वर्णों की रज से चारों

घोर प्रपूरित करना चाहिए घोर उमवे जो द्वार हो उन्हें शुक्ल वर्ण के चूर्ण से पूरित करे तथा मण्डल में पांच रेखाएँ बनावे ॥११॥ उन रेखाओं के रङ्ग क्रम से पित्त, रक्त, पीत तथा वृष्ण होने चाहिए । इस प्रकार से मण्डल की रचना करके प्रादि में न्यास करके फिर वहाँ पर हरि को भजना करे ॥१२॥ हृदय के मध्य में विष्णु का न्यास करे—मध्य में सद्गुरु का करे, शिर में प्रद्युम्न का न्यास करके शिखा में अनिरुद्ध का न्यास करे ॥१३॥ सम्पूर्ण अङ्गों में ब्रह्मा का—शायो में श्रीधर का न्यास करने में विष्णु हू—ऐसा ध्यान करके बणि का भी हरि का न्यास करे ॥१४॥ सद्गुरु ही पूर्व में, प्रद्युम्न को दक्षिण में, अनिरुद्ध को पश्चिम में घोर शिखा को उत्तर में स्थान करे ॥१५॥ श्रीधर को रत्न कोणों में घोर इन्द्रादि को दिशाओं में विन्यस्त करना चाहिए । इसके अनन्तर सखा गन्धर्व पुष्पादि उपचारों के द्वारा अभ्यर्चन करके परम पद की प्राप्ति करे ॥१६॥

६ वैष्णव पञ्जर

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णव पञ्जरं शुभम् ।
 नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम् ॥
 प्राच्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामहं शरणं गतं ॥१॥
 गदा कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभं नमोस्तु ते ।
 याग्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामहं शरणं गतं ॥२॥
 हलमादाय सौतन्द नमस्ते पुरुषोत्तम ।
 प्रतीच्या रक्ष मा विष्णो त्वामहं शरणं गतं ॥३॥
 मुसलं शान्तं गृह्य पुण्डरीकाक्षं रक्ष माम् ।
 उत्तरस्यां जगन्नाथं भवन्तं शरणं गतं ॥४॥
 खड्गमादाय चर्माय अस्त्रशस्त्रादिकं हरे ।
 नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतं ॥५॥
 पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुद्धोधञ्च पञ्चजम् ।
 प्रगृह्य रक्ष मा विष्णो ग्राम्भ्येषां रक्ष गूरुरं ॥६॥

चन्द्रमूर्य्य समागृह्य सृङ्ग चान्द्रमस तथा ।

नेष्टृत्या माञ्च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेजरिन् ॥७॥

हरि ने कहा—अब मैं यह परम शुभ वैष्णव पञ्जर बतलाना हूँ—हे गोविन्द । आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है । आप अपने सुदशन चक्र को ग्रहण करके हे विष्णो ! मेरी पूर्व दिशा में रक्षा कीजिए । मैं आपकी शरणा-
गति में बा गया हूँ ॥१॥ हे पद्मनाभ ! आप अपनी कौमोदकी नाम वाली गदा को ग्रहण करके दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें । मेरा आपको नमस्कार है और हे विष्णुदेव ! मैं आपके शरण में उपस्थित हो गया हूँ ॥२॥ हे विष्णो ! आप मोनन्द हनु की लेकर हे पुरुषा में उत्तम ! पत्नीवी (पश्चिम) में मेरी रक्षा करें । मैं आपके शरण में आया हूँ ॥३॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! शतन भुज का ग्रहण करे और हे जगतो के स्वामिन् ! आप मेरी उत्तर दिशा में रक्षा करें । मैं आपके शरणों की शरण में आ गया हूँ ॥४॥ हे हरे ! आप सृङ्गवर्म तथा अन्य अन्य शस्त्र दि को ग्रहण करें । मेरी आपको नमस्कार है । हे राजाओं के हनन करने वाले ! ऐशानी दिशा में मैं मेरी रक्षा करिये । मैं आपकी शरण में हूँ ॥५॥ हे विष्णुदेव ! अब अपने महान् सृङ्ग पाञ्चजन्य और भुमुद्रोप पङ्कज का ग्रहण कर हे शूकरदैव ! मेरी साम्यो दिशा में रक्षा कीजिये ॥६॥ हे दिव्य मूर्ति वाले ! हे नृकेजरी ! आप चन्द्र और सूर्य को लेकर तथा चन्द्रमस सृङ्ग का ग्रहण कर मेरी नैऋत्य दिशा में रक्षा करें ॥७॥

वैजयन्ती सम्प्रगृह्य श्रीवन्म कण्ठमूपणम् ।

वायव्या रक्ष मां देव ह्यग्रीव नमाञ्जु ते ॥८॥

वैततेय समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्दन ।

माञ्च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्तवपराजित ॥९॥

विशालाक्ष समारुह्य रक्ष मा त्व रसातले ।

अक्षुषार नमस्तुभ्य महामीन नमोऽन्तु ते ॥१०॥

करशीर्षाद्यङ्गुलेषु मत्स्य त्व बाहुपञ्जरय ।

कृत्वा रक्षस्व मा विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥११॥

एवमुक्त शङ्कराय वैष्णव पञ्जर महत् ।
 पुरा रक्षायं मीशान्या. कात्यायन्या वृषव्वज ॥१२॥
 नाशयामास सा येन चामर महिषासुरम् ।
 दानव रक्तबीजञ्च अन्याश्च सुरकण्ठवान् ।
 एतज्जपन्तरो भक्त्या शत्रून्विजयते सदा ॥१३॥

हे देव । हे हयग्रीव । आप अपनी वैजयन्ती माला कण्ठ के भूषण घोर
 थी वत्स का ग्रहण करके मेरी वायव्य दिशा में रक्षा करें । मेरा आपको नम-
 स्कार है ॥१२॥ हे जनार्दन । आप अपने वाहन धनतेज (गरुड) पर समावृद्ध हो
 जाइये घोर आकाश में मेरी रक्षा कीजिये । आप सर्वदा घब्रित हैं । हे भवरा-
 जित देव । मेरा आपको प्रणाम है ॥१३॥ विशाल नेत्रों वाले पर समारोहण
 करके आप मेरी रमानन में रक्षा करिये । हे भद्राक्षर । हे महाभीम । धारकी
 में राक्षसवार प्रणाम है ॥१०॥ हे सत्य स्वरूप । आप मेरे कर-दीप और
 मङ्गल छिद्रों में अपना बाहु-पञ्जर करने हे विष्णो । हे पुरुषो में उत्तम ।
 मेरी रक्षा कीजिये ॥११॥ हे वृषव्यज । इस प्रकार से यह महावृ वैष्णव पञ्जर
 शङ्कर के लिए कहा गया था । पहिले कात्यायनी ने ईशानी की रक्षा के लिए
 कहा था । जिसने द्वारा उसने चामर महिषासुर और दानव रक्तबीज तथा अन्य
 सुगो की कष्ट देने वालों का नाश किया था । इस वैष्णव पञ्जर का मनुष्य
 सर्वदा भक्ति-भाव के साथ जाप करता हुआ अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त
 करता है ॥१२॥१३॥

१०—योग धर्मेन

अथ योग प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिवर परम् ।
 ध्यायिभि प्रोच्यत ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वर ॥१॥
 तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशन ।
 विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्त पद्ममिपरिवर्जित ॥२॥
 वासुदेवा जगन्नाथो ब्रह्मात्माऽस्म्यहमेव हि ।
 देहिदेहस्थितो नित्य सर्वदेहविवर्जित ॥३॥

देहधर्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः ।

पञ्चविधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राता ह्यतीन्द्रिय ॥४॥

तद्धर्मरहितः सप्ता नामगोत्रविवर्जितः ।

मन्ता मन स्थितो देवो मनसा परिवर्जितः ॥५॥

मनोधर्मविहीनश्च विज्ञानज्ञानमेव च ।

बोद्धा बुद्धिस्थित साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः ॥६॥

श्री हरि ने कहा—इसके अनन्तर प्रश्न में उक्त परम योग की तुमको बतलाता हूँ जो मासारिक मूर्खों का भोग और मन्त में मोल प्रदात करने वाला है । ध्यान करने वालों के द्वारा यह कहा जाता है कि ध्यान के साथ ईश्वर हरि का ध्यान करना चाहिए ॥१॥ हे गद्देवान ! उक्त योग का भव तुम अवश्य करो । भगवान् विष्णु नमूण प्रकार के पापों के त्रिनाश करने वाले, सबके ईश्वर, अनन्त और पञ्चमि से रहित हैं ॥२॥ मैं ही कामुदेव, जनघाय और ब्रह्मात्मन् हूँ जो कि देहधारियों के देहों में स्थित रहता हुआ नित्य हूँ तथा सब प्रकार के देहों से विवर्जित हूँ । ३॥ वह मैं देह के सभी तरह के धर्मों से रहित एवं क्षर तथा अक्षर से विहीन हूँ । छ प्रकाश में स्थित रहने वाला द्रष्टा, श्रोता घ्राता, इन्द्रियों की पहुँच से पर है ॥४॥ उनके धर्मों से रहित होकर सृजन करने वाला तथा नाम एवं गोत्र से रहित हूँ । मन में स्थित रहने वाला मन्ता-देव हूँ किन्तु स्वयं मन से परिवर्जित रहने वाला हूँ ॥५॥ मन के जो भी कुछ धर्म होते हैं उन सबसे रहित हूँ और मैं विज्ञान तथा ज्ञान का स्वरूप वाला हूँ वह सभी कुछ के बोध रखने वाला—बुद्धि में स्थित—सबका साक्षी धर्मान् देयने वाला होते हुए भी स्वयं बुद्धि से रहित हूँ ॥६॥

बुद्धिधर्मविहीनश्च सर्व सर्वगतो मतः ।

मर्षप्राणिविनिर्मुक्त प्राणधर्मविवर्जितः ॥७॥

प्राणिप्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जितः ।

सहङ्कारादिहीनश्च तद्धर्मपरिवर्जितः ॥८॥

अक्षय सर्वं नित्यं महद्ब्रह्मास्ति केवलम् ।
 सर्वस्य जगतो मूल सर्वेश परमेश्वरम् ॥३॥
 सर्वभूतहृदिस्थं वै सर्वभूतमहेश्वरम् ।
 सर्वाधार निराधार सर्वकारणकारणम् ॥४॥
 अलेपक तथा मुक्त मुक्तयोगिविचिन्तितम् ।
 स्थूलदेहविहीनश्च चक्षुषा परिवर्जितम् ॥५॥
 प्राणोन्द्रियविहीनश्च प्राणिधर्मविवर्जितम् ।
 पायूपस्थविहीनश्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥६॥
 मनोविरहित तद्वन्मनोधर्मविवर्जितम् ।
 बुद्ध्या विहीन देवेश चेतसा परिवर्जितम् ॥७॥
 अहङ्कारविहीन वै बुद्धिधर्मविवर्जितम् ।
 प्राणेन रहितश्चैव ह्यपानेन विवर्जितम् ॥
 प्राणालयवामुहीन वै प्राणधर्मविवर्जितम् ॥८॥

रद देव ने कहा—हे ब्रह्म, चक्र और गदा धारण करने वाले । बुद्ध, देव, ईश, परमात्मा भगवान् विष्णु के ध्यान को पुनः करना चाहिए ॥१॥ हरि ने कहा—हे शत्रु ! सुनो, हरि का ध्यान इस समारूपी तब के नाश करने वाला है । उसका रूप तथा धर्म दृष्ट नहीं हैं वह सर्वव्यापी-सर्व और अव्यय है ॥२॥ वह अक्षय, सर्वत्र गमन करने वाला नित्य और केवल महान् महा है । वह इस सम्पूर्ण जगत् का मूल, सभी का ईश और परमेश्वर है ॥३॥ समस्त भूतों के हृदय में स्थित रहन जाना तथा समस्त प्राणियों का महान् ईश्वर है । वह सभी का आधार भी है और स्वयं बिना आधार वाला है । वह सबके जो पारण है उसका भी पारण है ॥४॥ वह लेप से रहित है अर्थात् किसी की भी लिंगता का प्रभाव उस पर नहीं होता है । वह मुक्त तथा मुक्त हुए योगी जनों के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन किया हुआ है । वह स्थूल देह से रहित है और समस्त इन्द्रियों से भी विहीन होता है । मन इन्द्रिय से रहित और मन के जो धर्म होते हैं उन सबसे भी मून्त्य होता है । बुद्धि तथा चिन्त में विहीन

एव ग्रहङ्कार से रहित तथा बुद्धि आदि के धर्मों से ही देवेश होता है । प्राण
एव अपान से रहित तथा प्राणाख्य की आयु से शून्य वद् परम देव होते हैं ।
॥५॥ से ८॥

पुनः सूर्यार्चनं वधये यदुक्तं धनदाय हि ।
अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं शुचौ देशे मर्कटिकम् ॥८॥
आवाहनीं ततो वद्ध्वा मुद्राभावाद्द्वयेद्वरिम् ।
खलोत्कं स्थापयेन्मध्ये स्थापयेद् यन्त्ररूपिणम् ॥९॥
आग्नेय्या दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेच्छिव ।
ऐशान्या तु शिरः स्थाप्य नैऋत्या विन्यसेच्छिखाम् ॥१०॥
पौरन्दर्या न्यसेद्धर्ममेकाग्रस्थितगानसः ।
वायव्याश्चैव नेत्रान्तु वारुण्यामस्त्रमेव च ॥११॥
ऐशान्या स्थापयेत् सोमं पौरन्दर्यान्तु लीहितम् ।
आग्नेय्या सोमस्तनयं याम्याश्चैव बृहस्पतिम् ॥१२॥
नैऋत्या दानवगुरुं वारुण्या शनैश्चरम् ।
वायव्याश्च तथा केतुं कीवेर्यां राहुमेव च ॥१३॥
द्वितीयायान्तु कशाया सूर्यान् द्वादशं पूजयेत् ।
भगं सूर्योऽश्रमां चैव मित्रो वं वरुणस्तथा ॥१४॥
सविता चैव धाता च विवश्वाश्च महाबलः ।
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥१५॥
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्रादीन् श्रद्धया नरः ।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥
शेषाश्च वामुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत् ॥१६॥

श्री हरि ने कहा—अब मैं पुनः सूर्यदेव के अर्चन के विषय में बतलाता हूँ जो कि धनद के लिये कहा गया था । आठ दशों से युक्त एक पद्म का लेखन करे जो कि किसी अति पवित्र देश में होना चाहिए । उस पद्म की कल्पिका को भी लिखना चाहिए ॥८॥ इस लेखन करने के अनन्तर आवाहन करने की मुद्रा

प्रदर्शन कर वहाँ पर हरि का स्थापन करे । मध्य में सखोलक की स्थापना करे और मध्य के स्वरूप वाले देव का स्नपन करावे । १०। हे शिव ! अग्नेयी दिशा में देव के हृदय को स्थापित करे । ऐशानी दिशा में शिर को स्थापना करनी चाहिए तथा नैऋत्य दिशा में शिखा का विन्यास करे । ११। ऐन्द्री दिशा में एकाग्र मनकी स्थिति रखने वाले धर्म को स्थान करना चाहिए । वायव्य दिशा में श्रेष्ठ तथा बाह्यो दिशा में अस्त्र का विन्यास करे । १२। ऐशानी दिशा में सोम की स्थापना करे—भीमदरी में लोहित (मङ्गल)—मान्मेयी में गोम-हनय (युय)—और यामी दिशा में बृहस्पति को विन्यस्त करे । १३। नैऋत्य में दानव गुरु (गुरु)—बाह्यो में शर्त्तव्य—वायव्य में केतु तथा कीबेरी दिशा में राहु का विन्यास करना चाहिए । १४। द्वितीय वक्षा में बारह सूर्यो का पूजन करना चाहिए । उन बारह सूर्यो के नाम ये हैं—भग, सूर्य, धर्ममा, मित्र, बहण, सविता, घाता, महाबलवान्, विषन्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवा विष्णु कहा जाता है । १५। १६। मनुष्य को पूर्वदिशि दिशाओं में इन्द्र प्रावि का बड़ी ही श्रद्धा के साथ अर्चन करना चाहिए । जय विजय जयन्ती और अपराजित, शेष वासुकि तथा योगो का पूजन करे । १७।

१२—मृत्युञ्जयार्चन

गरुडोक्त कथयाम्य वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम् ।
उद्धारपूर्वकं पुण्य सर्वदेवमय मनम् ॥१॥
ओङ्कारं पूर्वमुद्धृत्य जुङ्कार तदनन्तरम् ।
सविसर्गं तृतीयं स्थानमृत्युदारिद्र्यघमर्दनम् ॥२॥
अमृतेश महामन्त्र त्रयस्त्र पूजन समम् ।
जपनात् मृत्युहीनाः स्युः संपापविर्बाजिताः ॥३॥
शतजप्याद् ब्रह्मफलं यज्ञतीर्थवनम् लभेत् ।
अष्टोत्तरशत जप्य त्रिसन्ध्यं मृत्युशत्रुजित् ॥४॥

ध्यायेच्च मितपद्मस्य वरदन्वाभय करे ।

द्वाभ्याश्चामृतकुम्भं तु चिन्तयेदमृतेश्वरम् ॥१॥

तस्यैवाङ्गता देशीभृतामृतभाषिणीम् ।

कलय दक्षिणे हस्ते वामहस्तं सरोरुहम् ॥२॥

जपेदष्टमहस्रं वै तिस्रस्य भासमेकत ।

जराभृत्युमहाव्याधिसत्रुजिज्जीवशान्तिद ॥३॥

श्री मूनजी ने कहा—इसपुत्र मुनि के लिये गरुड ने द्वारा उचित मृत्युञ्जय का अर्चन मैं बनाता हूँ। यह उद्धार के साथ परम पुण्य तथा समस्त देवों से परिपूर्ण जाता गया है ॥१॥ सबसे पूर्व वे आन्दार का अर्थात् “ॐ”—इसका उच्चारण करे इसका अनन्तर ‘जु’ का श्रीर फिर विसर्ग से युक्त ‘स’—यह तृतीय होना चाहिए। “ॐ जु स”—यह मन्त्र मृत्यु और दारिद्र्य के मदन करने वाला है। यह मृत्यु का महामन्त्र तीन बार बोलना है। इसका प्रार्थन पूजन के ही समान होता है। इस तीन बार बोलने महामन्त्र के त्रय से मानव मृत्यु से रहित हो जाते हैं तथा सब प्रकार के बाधों से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥२॥ इस महामन्त्र ने एकमात्र बार जाप करने से वेद तथा यज्ञ और तीर्थ करने का फल प्राप्त होता है। इस महामन्त्र का अष्टोत्तर शत अर्थात् एक माला तीनों सन्ध्याओं में करे तो मनुष्य मृत्यु और शत्रु को जीतने वाला होता है ॥३॥ और भगवान् मृत्युेश्वर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि श्वेत कमल पर वे विराजमान हैं तथा उनके हाथ में वरदान एवं अभय दोनों ही प्रदान करने के लिये विद्यमान हैं और दोनों हाथों में अमृत के कुम्भ हैं ऐसा चिन्तन करना चाहिए ॥४॥ उन्ही मृत्युेश्वर के चरणों के साथ सद्गुण देवी भी हैं जो कि अमृत तथा श्रुतभाषण करने वाली हैं इनके दाहिने हाथ में कलश है और बाएँ हाथ में कमल पुष्प है ॥५॥ ऐसा ध्यान करते हुए उक्त तीन बार बोलने महा मन्त्र का आठ हजार जाप तीनों सन्ध्याओं में एक मास पूर्ण करने से तो मनुष्य की जरा (वृद्धता), मृत्यु महाव्याधि और

शुभ्र इन सब पर विजय हो जाती है तथा जीवान्मा को बहुत ही अधिक शांति का लाभ होता है ॥७॥

आस्थान स्थापनं रोध सन्निधानं निवेशनम् ।
 पाद्यमाचमनं स्नानमर्घ्यं चामुरुलेपनम् ॥
 दीपाम्बर भूषणश्च नैवेद्यं पानजीवनम् ॥८॥
 माथा मुद्रा जप ध्यानं दक्षिणाऽऽहुतिः स्तुतिः ।
 वाद्यं गीतञ्च नृत्यञ्च न्यासयोगं प्रदक्षिणम् ॥
 प्रणति मन्त्र इज्या च वन्दनञ्च विसर्जनम् ॥९॥
 पङ्कजदिप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम् ।
 परमेशमुखोद्गीर्णं यो जानाति स पूजकः ॥१०॥
 अर्घ्यपादाचनञ्चादौ वस्त्रेणैव तु ताडनम् ।
 शोचनं कवचेनैव अमृतीकरणं ततः ॥११॥
 पूजा चाधारशक्त्यादे प्राणायामं तथासने ।
 पिण्डभुक्तिं ततः कूर्मपिच्छोपगच्छेत्ततः स्मरेत् ॥१२॥
 आत्मानं देवहृत्पञ्च कराङ्गन्यासकञ्चरेत् ।
 आत्मानं पूजयेत्पञ्चाङ्गशोनीरुप हृदयजतः ॥१३॥

घटुतभर भगवत् के आराधन का साङ्गामाङ्ग क्रम करना चाहिए । सर्व प्रथम बरका आवाहन करे—फिर स्थापन कर—सरोपन करे एवं सन्निधान तथा सम्मुखीकरण निवेशन करना चाहिए । इसके अनन्तर पूजन का क्रम आरम्भ करे । अर्घ्य, पाद्य, आचमन और स्नान के निवे जल का समर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अमुरुलेपन, दीप, वस्त्र, अभूषण, नैवेद्य, पुनराचमनीय, गन्धाक्षत पुष्प और भुक्तभुद्गर्भं ताम्बूल, द्रव्यदक्षिणा, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे । माथा, मुद्रा, जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति तथा स्तुति करे । फिर वाद्य गीत, नृत्य, न्यास, योग, प्रदक्षिणा प्रणति, मन्त्र, यजन, वन्दना आदि करके अन्त में देव का विसर्जन करना चाहिए ॥८॥९॥ इस प्रकार से यह पङ्कज पूजन वा क्रम बनाया गया है जो कि स्वयं परमेश के मुखारविन्द से उद्गीर्ण हुआ

है। इस समग्र क्रम को जो भली-भाँति से जानता है वही मथार्थ पूजा करने वाला होता है ॥१०॥ प्रादि में अर्घ्य, पाद, अर्चन और अस्थ के द्वारा ही ताडन करे। फिर कवच के द्वारा शोषन तथा इसके अनन्तर समृतीकरण करे। ॥११॥ आधार शक्ति आदि की पूजा--प्राणायाम तथा आसन और इसके अनन्तर शोषणादि के द्वारा पिएड छुट्टि करे और इसके उपरान्त स्मरण करना चाहिए ॥१२॥ आत्मा को देवरूप करके कराङ्गन्यासादि करे। अपने प्राप में अन्त-स्थित हृदय कमल पर विराजमान ज्योति रूप का मृजन करे ॥१३॥

मूर्त्तौ वा स्थण्डिलेवापि क्षिपेत्पुष्पं तु भास्वरम् ।
 आरमानं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा ॥१४॥
 सान्निध्यकरणं देवे परिवारस्य पूजनम् ।
 अङ्गपदकस्य पूजार्थं कलंघ्या दिग्भिर्भागतः ॥१५॥
 धर्मादयश्च शक्राद्या सायुधा परिवारकाः ।
 युगवेदमुहूर्त्ताश्च पूजेय भुक्तिमुक्तिदृक् ॥१६॥
 मातृकाया गणञ्चादौ नन्दिगङ्गे च पूजयेत् ।
 महाकालञ्च यमुना देहल्या पूजयेत् पुरा ॥१७॥
 ॐ अमृतेश्वरभैरवाय नमः ।
 एव ॐ जु स सूर्याय नमः ।
 एव शिवाय कृणाय ब्रह्मणे च गणाय च ।
 चण्डिकायै सरस्वत्यै महानम्यादि पूजयेत् ॥१८॥

भूति पर अथवा स्थण्डिल पर पुष्पों का क्षेपण करे। भास्वर आत्मा को पूजा तथा द्वार पूजा के लिये आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिए। देव में सान्निध्यकरण, परिवार का पूजन तथा दिशाओं के विधान से पङ्क्त पूजा करनी चाहिए ॥१४॥ अपने-अपने आयुधों से समन्वित अर्ध प्रादि एवं शक्र प्रभृति परिवार वाले होते हैं। युगवेद और मुहूर्त होते हैं। इनको यह पूजा भुक्ति अर्थात् समस्त प्रकार के सासारिक सुलोपभोगों के रक्षास्वादन का आनन्द और मुक्ति अर्थात् वारम्बार दिग्भिन्न योनि में जन्म प्राण के बन्धन वश से

छुटकारा दोनों ही की प्राप्त कराने वाली होती है ॥१५ से १७ तक॥ आदि में मातृका, गण मन्दी, गङ्गा का पूजन करना चाहिए । पहिले देहली में महाकाल और यमुना का यर्चन करे । 'ॐ घसृतेश्वर भैरवाय नमः'-इस मन्त्र में एव 'ॐ तु स सूर्याय नमः'- इस मन्त्र के द्वारा पूजन करना चाहिये । इसी प्रकार से शिवाय', 'वृष्णाय', 'ब्रह्मणे', 'गणाय', 'चाण्डिकायै', 'सरस्वत्यै', 'महानन्द्यै' इत्यादि क्रम से इनके भागे प्रणव तथा धन्व में 'नमः' यह लगाकर सबका पूजन करना चाहिए ॥१८॥

१३—शिवचर्चन और पचतत्त्वदीक्षा

शिवाचर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
 शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं मायां द्वादशके स्थितम् ॥
 पञ्चवक्त्राणि हस्वानि दीर्घाण्यङ्गानि बिन्दुना ॥१॥
 सविसर्गं बदेदन्नं शिव ऊर्ध्वं तथा पुनः ।
 पण्डेनायो महामन्त्रो होमित्येवाखिलार्थदः ॥२॥
 हस्ताभ्यां सस्पृशेत् पादावूर्ध्वं पादान्तमस्तकम् ।
 महामुद्रां हि सर्वेषां कराङ्गन्याममाचरेत् ॥३॥
 तालहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रपद्मेण शोधयेत् ।
 कनिष्ठामादितः कृत्वा तर्जन्यङ्गानि पिच्यसेत् ॥४॥
 पूजनं प्रवक्ष्यामि कणिकायां हृदम्बुजे ।
 धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमश्रयादिं हृदाऽर्चयेत् ॥५॥
 आवाहनं रयापनञ्च पाद्यमर्घ्यं हृदार्चयेत् ।
 आचामं स्नपनं पूजामेकाधारणतुल्यकाम् ॥६॥
 अग्निकार्यविधिं वक्ष्ये शस्त्रेणोत्प्लेखनं चरेत् ।
 वर्मणाम्मुक्षणं कार्यं शक्तिन्यासं हृदाचरेत् ॥७॥

श्री मृतजी ने कहा—अब मैं शिव के अर्चन को बताऊँगा जो कि परम भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला है । वह दान्त, सर्वगम धर्मान् सभी में

ध्यात रहने वाला और दूध है । वह द्वादश भागा में स्थित रहता है । पवित्र वक्त्र हस्त है और अंग प्रज्ञा बिन्दु से दीर्घ है ॥१॥ विमर्ग के सहित अस्त्र की बोले 'शिव'—यह ऊर्ध्व में है तथा पुनः पृष्ठ से महामन्त्र "ह्रीम्" इतना ही समस्त प्रकार के अर्थों का प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ दोनों हाथों से दोनों पादों को पादान्त मस्तक ऊर्ध्व का स्पर्श करे । सबकी महामुद्रा है—कर श्चाम तथा अङ्ग श्चाम करना चाहिए । ३॥ और हात हस्त में पृष्ठ को अस्त्र मन्त्र के द्वारा घोघन करे । कान्ठा को प्रादि में करके तर्जनी से घट्टी का विन्धाय करे ॥४॥ अथ मैं हृदय कथन में कणिका में पूजन को बतलाता हूँ । हृदय में धर्म-ज्ञान-वैराग्य और ऐश्वर्य प्रादि की अर्चना करे ॥५॥ हृदय के द्वारा ही प्रावाहन प्रोत्थापना, सम्मुखीकरण, सरोधन प्रादि पाद्य एव अर्घ्य समर्पित करना चाहिए । प्राचमन, स्नान एव ही आधार के तुल्य पूजा करनी चाहिए ॥६॥ सब अतिरिक्त कार्य की विधि को अज्ञात होगा । शास्त्र के द्वारा उचित करने—धर्म के द्वारा सम्पुष्टि और हृदय से शक्ति का श्चाम करना चाहिए ॥७॥

हृदि वा शक्तिगर्ते च प्रक्षिपेज्जातवेदमम् ।
 गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृति चास्य पश्चिमाम् ॥८॥
 हृदा कृत्वा सर्वकर्मं निवृत्तं तु हृदयेत् ।
 पूजयेन्मण्डले शम्भु पद्मगर्भं गवाद्धितम् ॥९॥
 अनुसृष्टमन्त्रमष्टादि स्वादिस्त्राध्यादिमण्डलम् ।
 स्वाधीन्द्रमूर्यंगं सर्वं स्वादिवेदेन्दुवर्त्तिनात् ॥१०॥
 आग्नेय्या कारयेत् कुण्डमर्द्धचन्द्रनिभं शुभम् ।
 अग्निशाम्यपरा रात्रिहृदयादिगणोच्यते ॥
 अस्त्र दिशामुपान्तेषु कर्णिकाया सदाशिवम् ॥११॥
 दीक्षा वदये पञ्चतत्त्वे स्थिता भूम्यादिका परे ।
 निवृत्तिर्न प्रतिष्ठा च विद्याग्नि शान्तिरश्मिना ॥१२॥
 शान्तपतीत भवेदोमे सत्पर शान्तमव्ययम् ।

एकैकस्य शतं होममित्येवं पञ्च होमयेत् ॥
 पश्चात् पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रसादेन शिव स्मरेत् ॥१३॥
 प्रायश्चित्तविशुद्धिर्धर्मैकैकमाहुति क्रमात् ।
 होमयेदस्त्रबीजेन एव दीक्षा समाप्यते ॥१४॥
 यजनव्यतिरेकेण गोप्यं सस्कारमुत्तमम् ।
 एव सस्कार शुद्धस्य शिवत्वं जायते ध्रुवम् ॥१५॥

हृदय में धर्मवा शक्तिगर्त में धर्म का प्रवेश करे । गर्भाधानादि
 चारके इसकी पश्चिम निष्कृति करनी चाहिए । हृदय के द्वारा समस्त कर्म करने
 फिर साङ्ग शिव का होम करे । मण्डल में पद्मगर्भ में गवाक्षित शम्भु का
 पूजन करना चाहिए ॥१३॥ पष्ट प्रादि चौमठ के अन्त तक भक्षियों में
 स्वाध्यायि मण्डन को, अन्तरिक्ष के अक्षीन्द्र सूर्य में यमन करने वाले को, मवको
 प्राकाश की भाँति इन्दुवर्तन से लग्नेय दिशा में अर्धचन्द्र के सहज परम शुभ
 कुण्ड की रचना करानी चाहिए । धर्मि शारथ में पापयण शस्त्र हृदयादि गला
 कही जाती है । दिशाधी के उपान्तो में अस्त्र को और कर्णिका में सदाशिव
 का अर्चन करे ॥१०॥११॥ अब पर मन्त्रास्त्र में स्थित भूम्यादिकी दीक्षा को
 यत्नवात् है । निवृत्ति, भू प्रतिष्ठा, विद्याग्नि और पश्चिम की शक्ति तथा शक्ति
 के पश्चात् होम म तत्पर अव्यय शान्त होता है । एक एक की सौ माहुतियों
 का होम होता है । इस प्रकार में पाँच होम करने चाहिए । इनके अनन्तर
 पूर्णाहुति देकर प्रसाद के द्वारा भगवान् शिव का स्मरण करना चाहिए ॥१२॥
 १३॥ प्रायश्चित्त की विदुष्टि के लिये क्रम से एक-एक माहुति अस्त्र बीज से
 होम करनी चाहिए । इस प्रकार से दीक्षा की समाप्ति की जाती है ॥१४॥
 यजन के व्यतिरेक से उत्तम सस्कार को गुप्त रखना चाहिए । इस प्रकार से
 सस्कारों से शुद्ध को शिवत्वं निश्चित ही प्राप्त हो जाता है ॥१५॥

१४—श्रीकृष्ण पूजन वर्णन

गोपालपूजा वक्ष्यामि भुक्तिमुक्ति प्रदायिनीम् ।
 द्वारे धाता विधाता च गङ्गा यमुनया सह ॥१॥

गङ्गापद्मनिधी चैव शारङ्ग शरभ. श्रिया ।
 पूर्वे भद्र सुभद्रो द्वौ दक्षो चण्डप्रचण्डकौ ॥२॥
 पश्चिम बलप्रबलौ जयश्च विजयो यजेत् ।
 उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारे गणो दुर्गा मरस्वती ॥३॥
 क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेषु दिक्षु नारदपूर्वकम् ।
 सिद्धो गुरुर्नलकूबर कोणो भागवत यजेत् ॥४॥
 पूर्वे विष्णु विष्णुनपो विष्णुर्नाक्त समर्चयेत् ।
 ततो विष्णुपरावार मध्ये शक्तिश्च कूर्मकम् ॥५॥
 अनन्त पृथिवोधर्मं ज्ञान वैराग्यमग्नित ।
 ऐश्वर्यं वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे ॥६॥
 सत्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहकपिणो ।
 तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्त्वकम् ॥७॥
 विद्यातत्त्व पर तत्त्व सूर्येन्दुबह्निमण्डलम् ।
 विमलाद्या भासनञ्च प्राच्या श्री ह्री सपूजयेत् ॥
 गोपीजवल्लभाय स्वाहान्तो मनुहृष्यते ॥८॥

सूरजी ने कहा—अब मैं आप सोने की गोपाल की भाग तथा मोक्ष
 प्रदान कराने वाली पूजा के विषय बतलाता हूँ द्वार में घाता, विघाता और
 दमुना के साथ गङ्गा का यजन करना चाहिए ॥१॥ दक्ष घोर पद्म निधिवो
 की तथा शारङ्ग एव श्री के सहित शरभ का यजन करे । पूर्व दिशा में भद्र,
 सुभद्र दो दक्ष चण्ड और प्रचण्डक, पश्चिम दिशा में बल, प्रबल जय और विजय
 उत्तर में श्री, चतुर्द्वार में गण दुर्गा और मरस्वती, क्षेत्र के भग्नि जादि कोणों
 में दिशाओं में नारद के साथ सिद्ध गुरु एव कोण में परम भागवत नल कूबर
 का यजन करना चाहिए ॥२॥३॥४॥ पूर्व में विष्णु, विष्णुनप और विष्णु शक्ति
 की समर्चना करनी चाहिए । इसके अनन्तर विष्णु के परिवार की श्रचना करे
 और मध्य में शक्ति और कूर्म का पूजन करना चाहिए ॥५॥ आग्नेयी दिशा में
 अनन्त पृथ्वी--धर्म--ज्ञान और वैराग्य का यजन करे तथा वायुपूर्व ऐश्वर्य का

एवं उत्तर मे प्रहाशात्मा का पूजन करे ॥६॥ प्रकृतः सत्त्व के लिये—मोह रूपी रजोगुण के लिये भीर तमोगुण पद के लिये बहद्गुरु सत्त्व का यजन करना चाहिए ॥७॥ विद्या सत्त्व, पर सत्त्व, सूर्य, इन्द्र, वह्नि मण्डन, विमला आदि भीर आसन को प्राची (पूर्व दिशा में) में श्री ह्रीं से पूजित करे । 'गोपीजन वत्सभाय स्वाहा'—यह जिसके मन्त्र में है, ऐसा उसका मन्त्र कहा जाता है ॥८॥

आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च ।
 त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम् ॥९॥
 हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्र शक्तितत्त्व पूर्वतः ।
 रुक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा नामजित्पि ॥१०॥
 लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्प्रा मुशीलया ।
 शङ्खचक्रगदापद्म मुसल शार्ङ्गमर्चयेत् ॥११॥
 खड्ग पाशाकुश प्राच्या श्रीवत्स कोस्तुभ धजेत् ।
 मुकुट वनमालाश्च इन्द्राद्यान् ध्वजमृह्यकान् ॥१२॥
 कुमुदाद्यान्विष्वक्सेन कृष्ण श्रिमा सहाचरेत् ।
 जप्याद्विधानात्पूजनाच्च सर्वात्कामानवाप्नुयात् ॥१३॥

अब प्रज्ञा की बतलाया जाता है—आचक्र, सुचक्र, विचक्र तथा त्रैलोक्य की रक्षा करने वाला प्रसुरों के अरि भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र का यजन करे ॥९॥ हृदादि पूर्व कोणों में शक्ति का पूजन करे । पूर्व में रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नामजिता, लक्ष्मणा, मित्र वृन्दा और मुशीला जाम्बवती इन आठ गदा मट्टियों के सहित शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल और शार्ङ्ग धनु, इन भगवान् के आयुधों का समर्पण करना चाहिए ॥१०॥११॥ प्राची दिशा में खड्ग, पाश, शङ्कुश श्रीवत्स, कोस्तुभ मुकुट, वनमाला और इन्द्रादि ध्वज मुष्णों का यजन करे । कुमुदादि, विष्वक्सेन तथा श्री के सहित कृष्ण का अर्पण करना चाहिए । इस प्रकार से ज्ञान से, ध्यान से पूजन से मानव अपने समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ॥१२॥१३॥

१५— गायत्री न्यास

न्यासादिक प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव च ।
 विश्वामित्र ऋषिश्चैव सविता चाथ देवता ॥१॥
 ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयसंश्रिता ।
 विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा ॥२॥
 त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता ।
 एव ज्ञात्वा तु गायत्री जपेद् द्वादशलक्षकम् ॥३॥
 निपदाष्टाश्वरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा ।
 जपेच्च निपदा प्रोक्ता अर्चने च चतुष्पदा ॥४॥
 न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथा चर्चने ।
 गायत्री विन्यसेदित्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥५॥

श्री हरि ने कहा—एव हम गायत्री के न्यास आदि को बतलाते हैं । पर गायत्री के छन्द भी बतलायेगे । गायत्री के विश्वामित्र ऋषि हैं और इसके देवता सविता हैं । ब्रह्म ने शीर्ष वाली यह रुद्र की शिखा वाली है । यह गायत्री विष्णु के हृदय में संश्रित रहती है । इसका विनियोग एक नेत्र है तथा कात्यायन की सगोत्रजा है ॥१॥२॥ गायत्री को त्रैलोक्य में चरण वाली और पृथिवी की कुक्षि में संस्थित रहने वाली समझना चाहिए । गायत्री का इस प्रकार का पूरा ज्ञान प्राप्त करके तथा स्वरूप को जानकर ही इसका बारह लक्ष जप करना चाहिए ॥३॥ इसे तीन पंक्तियों वाली, आठ अक्षरों वाली चार पादों से युक्त तथा षडक्षरा जानना चाहिए । श्रवदा का जप करना चाहिए और अर्चन में चतुष्पदा यह बताई गई है ॥४॥ न्यास में, जप में, ध्यान में, अग्नि कार्य में अर्पण हवन से तथा अर्चन में इस समस्त पापों के प्रवृष्ट रूप से नाश कर देने वाली गायत्री का नित्य ही विन्यास करना चाहिए ॥५॥

पादागुष्ठे गुल्फमध्ये जपयोर्विद्धि जानुनो ।

ऊर्वोर्गुह्ये च वृषणो नाड्या नाभौ तनूदरे ॥६॥

स्तनयोहृदि कण्ठोष्ठमुखे तालुनि वाशयो ।
 नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्या दक्षिणोत्तरे ॥
 पश्चिमे मूर्ध्नि चाकार न्यसेदृणान् वदाम्यहम् ॥७॥
 इन्द्रनीलञ्च वह्निञ्च पीत श्यामञ्च कपिलम् ।
 श्वेत विद्युत्प्रभ तार कुण्ड रक्त क्रमेण तत् ॥८॥
 श्याम शुक्ल तथा पीत श्वेत वै पद्मरागवत् ।
 शङ्खवर्णं पाण्डरञ्च रक्तचासवसन्निभम् ॥
 अर्कवर्णं सम सौम्य शखभ श्वेतमिव च ॥९॥
 यद्यत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
 पूत भवति तत् सर्वं गायत्र्या न पर विदुः ॥१०॥

इस गायत्री के न्यास करने के न्यासों की बताते हुए कहते हैं कि पैरों के घोंठों के गुल्फ के मध्य में, दोनों ऊँचाई में, जानुओं में, ऊँघों में, गुह्य में वृषण में, नाड़ी में, नाभि में, गीर के उदर में, स्तनों में, हृदय में, कण्ठ में श्रोष्ठ, मुल, तालु में, दोनों कंधों में, नेत्र में, भीहों में और ललाट में न्यास करे । पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम तथा मूर्ध्नि में आकार का न्यास करना चाहिए जब न्यास के वर्णों की में दगाठा है ॥६॥७॥ इनका वर्ण इन्द्र नील और वह्नि के समान है—पीत, श्याम, कपिल, श्वेत, विद्युत् की प्रभा के तुल्य तार, कुण्ड और क्रम से रक्त वर्ण है ॥८॥ श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत पद्मराग वर्ण के समान है । शङ्ख वर्ण और पाण्डर वर्ण है तथा रक्त वर्ण आसव के तुल्य है । अर्क (सूर्य) के वर्ण के सम वर्ण है और शङ्ख की भाभा के तुल्य सौम्य एवं श्वेत वर्ण होता है ॥९॥ जिस जिसका हाथ स्पर्श करता है और जो-जो नेत्र से देखता वह सभी पूत हो जाता है । गायत्री से पर अन्य कुछ भी नहीं है । यह गायत्री सर्वोपरि निर्गोमनि सत्य है ॥१०॥

१६—सन्ध्याविधि

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि शृणु रुद्राद्यनाशनम् ।
 प्राणायामव्रतं कृत्वा सन्ध्यास्तनानमुपक्रमेत् ॥१॥

सप्रणवा सव्याहुति गायत्री शिरसा सह ।
 त्रि पठेदायतप्राण प्राणायाम स उच्यते ॥२॥
 मनोवाक्कायज दोष प्राणायामैर्दहेद् द्विज ।
 तस्मात् सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत् ॥३॥
 सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्योत्थप पिबेत् ।
 आप पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि ॥४॥
 आपोहिष्ठेत्यूचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकं ।
 प्रणवेन तु संयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥५॥
 रजस्तमं स्वभीहोत्यान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
 बाह्मन कर्मजान् दोषान् नवेतान्नयभिर्दहेत् ॥६॥
 समुद्धृत्योदकं पाणी जप्त्वा च द्रुपदा क्षिपेत् ।
 त्रिपड्द्यौ द्वादशधा वर्त्तयेदघमर्षणम् ॥७॥
 उदुत्य चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् दिवाकरम् ।
 दिवारानी च यत् पाप सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥८॥

श्री हरि ने कहा—ह रत्न ! अब मैं तुमसे सन्ध्या की विधि बतलाता हूँ जो कि अग्नी का नाश करने वाली होती है । तीन बार प्राणायाम करके फिर सन्ध्या के स्नान का उपक्रम करना चाहिए ॥१॥ प्रायत प्राण वायु वाला हाते हुए तीन बार प्रणव व्याहृतियाँ और शिर के सहित गायत्री का जप करे, इसी को प्राणायाम कहा जाता है ॥२॥ ब्रह्मण को प्राणायामो के द्वारा मन-वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले दोषों का दाह कर देना चाहिए । इस-लिये ब्रह्मण को सब जालों में प्राणायाम परायण होना चाहिए ॥३॥ सन्ध्या के समय में 'अग्निश्च मे'—इम मन्त्र का उच्चारण करके, प्रातः काल में "सूर्यश्च"—इत्यादि मन्त्र को कह कर और मध्याह्ने में 'आप पुनन्तु'—इत्यादि मन्त्र को धीमे कर ममाविधि उपस्पृश्य करना चाहिए ॥४॥ इसके अनन्तर "आपोहिष्ठा मनोमुक्च" इत्यादि ऋचा से कुशोदक से मार्जन करना चाहिए । प्रणव से संयुक्त वारि को पद पद में प्रक्षिप्त करे । ५॥ रजोगुण, तमोगुण से

होने वाले अपने मोह के कारण उठे हुए—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति काल में उत्पन्न होने वाले तथा याखी, मन और कर्म से समुत्पन्न हुए दोषों को जो भी प्रकार के होते हैं उनको इन 'प्रायोहिष्ठा'—इत्यादि नौ मन्त्रों के द्वारा दण्ड कर देना चाहिए ॥६॥ फिर हाथ में जल को लेकर "द्रुपदादिव"—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण एवं जाप करके उस जल की प्रक्षिप्त करना चाहिए । तीन बार, छह बार, आठ बार और बारह बार प्रथमर्पण करना चाहिए ॥७॥ 'उदुत्य', 'चित्रम्'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सूर्यदेव का उपास्यमान करना चाहिए । इन प्रकार से दिन और रात्रि के समय में जो भी कुछ जाप किया है वह सभी सही क्षण में नष्ट हो जाया करता है ॥८॥

पूर्वं सध्या जपस्तिष्ठेत् पश्चिमामुषविश्य च ।

महाव्याहृतिसमुक्ता गायत्री प्रणवान्विताम् ॥९॥

दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।

त्रिषुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुःकृतम् ॥१०॥

रक्ता भवति गायत्री सावित्री शुक्लवर्णिका ।

कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम् ॥११॥

ॐ भूर्विन्यम्य हृदये ॐ भुव गिरसि न्यसेत् ।

ॐ स्तुतिं शिखायाञ्च गायत्र्या प्रथमं पदम् ॥१२॥

विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत् ।

तृतीयेनाङ्गविन्यासं चतुर्यं सर्वतो न्यसेत् ॥१३॥

सन्ध्याकाले तु विन्यम्य जपेद् वैदमातरम् ।

शिवस्तम्यास्तु सर्वाङ्गं प्राणायामपरं न्यसेत् ॥१४॥

इम विधि में पूर्व अर्धात् प्रातःकाल को सन्ध्या को जप करते हुए खड़ा होकर पूर्ण करे और पश्चिम मन्ध्या को भी वैठकर करे । महा व्याहृतियों से युक्त तथा प्रणव में सम्मिलित गायत्री मन्त्र का एकसौ बार जाप से पहिला किया हुआ दस जन्मों का समुत्पन्न पाप नष्ट हो जाता है । एक सहस्र के जाप करने पर सावित्री त्रिषुग के दुष्टता का नाश कर दिया करती है ॥१॥१०॥

गायत्री का रक्त वर्ण होता है—सावित्री का शुक्ल वर्ण होता है तथा सरस्वती का कृष्ण वर्ण माना जाता है । ये तीनों बाल की संध्याओं का विवरण बता दिया गया है । अब ग्याम का प्रकार बताया जाता है—ॐ भू—इसका विन्यास हृदय में करे अर्थात् 'ॐ भूहृदयाय नमः—गर्ह उच्चारण करके हृदय का स्पर्श करना चाहिए । इसी विधि से 'ॐ भुवः'—इसका शिर में ग्यास करे—'ॐ स्वः' इसका शिखा में विन्यास करना चाहिए । इस प्रकार से गायत्री के प्रथम पद का विन्यास करे । प्रथम हृदय के ग्याम में—'नमः' का प्रयोग, द्वितीय में 'स्वाहा' का घोर तृतीय में 'वषट्'—का प्रयोग करे । इसके पश्चात् विद्वान् को कवच में ग्यास करना चाहिए घोर द्वितीय विन्यास नेत्रों में करे तथा तृतीय से अङ्गु का विन्यास करे और चतुर्थ का सब घोर करे ॥११॥१२॥१३॥ संध्या की वेला में इस तरह से विन्यास करके फिर वेदमाला का विशेष रूप से जप करना चाहिए । उसके समस्त बद्ध में शिव होवे । प्राणायाम कर ग्याम करे ॥१४॥

त्रिपदा या तु गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी ।
 विनियोगमृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत् ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकध्यानुयात् ॥१५॥
 परोरजसि सारं तत्तुरीयादमोरितम् ।
 तं हन्ति सूर्यं सन्ध्याया गोपास्ति कुरुते तु यः ॥१६॥
 तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिर्निमल एव च ।
 छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥१७॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली जो त्रिपदा गायत्री है उसका विनियोग, ऋषि और छन्द का पूर्य ज्ञान प्राप्त करके ही जप का आरम्भ करना चाहिए । गायत्री का इस प्रकार से विधि पूर्वा जप करने वाला व्यक्ति जब तरह व पापों से मुक्तकारा पारम्भ भक्त म ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१५॥ जो तुरीय पद कहा गया है उसको परोरज में सार बताया गया है । संध्या में सूर्य उमना होने पर देता है जो कि सन्ध्या समय में उपासना नहीं

क्रिया करता है । मत. सन्ध्योपासना करना नितान्त आवश्यक है । तुरीय पद का भी श्रुति निर्मल होता है । उसको छन्द गायत्री हीना है और परमात्मा देवता है ॥१६॥१७॥

१६—गायत्री माहात्म्य

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम् ।
 यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि ॥१॥
 गायत्रीकल्पमास्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदश्च तत् ।
 अष्टोत्तर सहस्र वा अथवाऽष्टशत जपेत् ॥
 त्रिसन्ध्य ब्रह्मलोकी स्यान्मृतजप्त जले पिवेत् ॥२॥
 मन्त्रायां सर्वपापघ्नी देवीमावाह्य पूजयेत् ।
 भूर्भुव स्व स्वमन्त्रेण युता द्वादशनामभिः ॥३॥
 गायत्र्यै नम सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नम ।
 वेदमात्रे च माकृत्य ब्रह्मणा कौशिकी क्रमात् ॥४॥
 साध्यै सर्वाय साधिन्यै सहस्राभ्ये च भूर्भुव ।
 स्वरेव जुहुयादनी समिधाऽऽज्य हविष्मकम् ॥५॥
 अष्टोत्तरसहस्र वाप्यथवाष्टशत घृतम् ।
 धर्मकामादिगिहधन्य जुहुयात् सर्वकर्मसु ॥६॥
 प्रतिमा चन्दनस्वर्णनिर्मिता प्रतिपूज्य च ।
 यथा तक्ष तु जप्तव्यं पयोमूलफलाशनैः ।
 अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामनावाप्नुयात् ॥७॥
 उत्तरे शिखरे जाता भूस्या पर्वतवासिनी ।
 ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥८॥

यो हरि ने कहा---गायत्री परमा अर्थात् सर्वोच्च देवी है । यह माँमा-
 रिक समस्त भोग और मन में मोक्ष प्रदान करने वाली हैं । जो मनुष्य समस्त
 जप करता है उसके चाहे बड़े-छोटे पाप बरों न हों सभी मूल विनष्ट हो जाया

करते हैं ॥१॥ अब मैं गायत्री के कल्प को बताऊँगा वह कल्प भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को देने वाला होता है । गायत्री को एक सौ आठ सहस्र बार अथवा षाठ सौ जपना चाहिए । तीस काल बी सन्ध्या में गायत्री का जप करने से प्रह्लादों के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है । सौ बार जप किया हुआ जल पीना चाहिए ॥२॥ सन्ध्या में समस्त पापों का नाश करने वाली देवी का आवाहन करके उसका पूजन करना चाहिए । 'ॐ भूर्भुव स्व' इस स्वमन्त्र से उसके द्वादश नामों से गायत्री का यजन करना चाहिए । गायत्री के लिये नमस्कार है । त्रिपित्री के लिये नमस्कार है - मरुस्थली के लिये बारम्बार नमस्कार है । वेदों की माता के लिये नमस्कार है । साकृति के लिये नमस्कार है । ब्रह्माणी के लिये नमस्कार है । कीर्तिकी के लिये नमस्कार है । इस प्रसंग में साध्वी के लिये नमस्कार है । सर्व धर्मों के साधन करने वाली के लिये नमस्कार है और सप्त मैत्रा वालों के लिये नमस्कार है । फिर भूर्भुव स्व - इससे ही अग्नि में सभिषा माज्य (घृत) और हवि का हवन करना चाहिए ॥३॥ प्रद्योत्तर क्षण भयवा आठ सौ की आहुतियाँ समस्त ब्रह्मों से घम आदि कामादि की निद्रा के लिये प्रति भ देनी चाहिए ॥४॥ गायत्री की प्रतिमा चन्दन अथवा सुवर्ण की बनवा कर उसका पूजन कर । गायत्री का एक नाम जप करना चाहिए । फल मूल और पय के द्वारा दो अयुत अर्थात् बस बार होम करने पर मानव सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥५॥ उत्तर शिखर में समुत्पन्न हुई भूमि में हे पर्वत पर निवास करने वाली ! ब्रह्मणा के द्वारा समनुजित होती हुई हे देवी ! अब आप सुगन्धक पधारिये - इस प्रकार से गायत्री का विषयन अन्त में करना चाहिए ॥६॥

१८- ब्रह्म-ध्यान

पूजयित्वा पवित्रार्चं ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत् ।
 ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायायन्त्रप्रमदं कम् ॥१॥
 यच्चेद्ब्राह्मणस्य प्राज्ञस्त यजेद् ज्ञानमात्मनः ।
 ज्ञानं महति सयच्चेद्ब्रह्म इच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥२॥

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
 वर्जितं भूततन्मात्रैर्गुणजन्माननादिभिः ॥३॥
 स्वप्रकाशं निराकारं सदानन्दमनादि यत् ।
 नित्यं शुद्धं बुद्धमृद्धं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥४॥
 तुरीयमक्षरं ब्रह्म अहमस्मि परं पदम् ।
 अहं ब्रह्मोत्पवस्थानं समाविरपि गीयते ॥५॥
 आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
 इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः ॥६॥
 आत्मेन्द्रियमनोपुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।
 यस्तु विज्ञानवाहनेन युक्तेन मनसा मदा ।
 स तु सत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते ॥७॥

श्री हरि ने कहा—पवित्रादि के द्वारा पूजन करके श्री ब्रह्म का ध्यान करके हीर हो जाता है । अब ब्रह्म के ध्याता को बतलाता हूँ जो कि दस माया के अंग का प्रमर्दन कर देने वाला है । प्राज्ञ पुरुष की पाली और मन के द्वारा समस्त यजन करना चाहिये । आत्मा में ज्ञान का उपयोग करे । जो आत्मा में ज्ञान की इच्छा रखता है उसे महान् वे ज्ञान की सगा देना चाहिये ॥१२॥ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार में रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण जन्म और मयान आदि से हीन, अपने आपसे प्रकाश वाला, आकार से शून्य, सदा आनन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध बुद्ध, अद्व, सत्य, आनन्दमय, अद्वय, तुरीय और अक्षर ब्रह्म—पर यह मैं ही हूँ । मैं ब्रह्म हूँ—यह अवलम्बन तथा समाधि यह भी पाया जाता है ॥१४॥१५॥ इस आत्मा की रथ में स्थित रथी तथा इस शरीर की रथ समझना चाहिये । दस शरीर में जो इन्द्रियाँ हैं वे इस शरीर रूपी रथ की चलाने वाले अश्व हैं और समस्त इन्द्रियों के विषय गोचर पद में होते हैं । ॥६॥ विद्वान् पुरुष मन, इन्द्रियों से युक्त अत्मा ही भोक्ता होता है—ऐसा कहते हैं । जो सदा विज्ञान—ब्रह्म मन से युक्त होता है वही उस पद की प्राप्त होता है और फिर वह जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥७॥

विज्ञानसारवियस्य मनः प्रग्रहवाञ्छर ।

स्वहिंया पारमाप्नोति तद्विष्णो परम पदम् ॥८

अहिमादि यमः प्रोक्तः शौचादि नियमः स्मृतः ।

पश्चाद्युक्त आसनञ्च प्राणायामो महज्जय ॥९

प्रत्याहारो जयः प्रोक्ता ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ।

मनोधृतिर्धारणास्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः ॥१०

अमूर्त्तां चेदृणी स्यात् ततो मूर्त्तिं विचिन्तयेत् ।

हृत्पद्मवर्णिकामध्ये दास्यच्चक्रमदाधर ॥११

श्रीवत्सवोस्तुभ्युनो वनमालाश्रिया युतः ।

नित्यं शुद्धा बुद्धियुक्त सत्यानन्दाह्वयः परः ॥१२

आत्माऽहं परमं ब्रह्म परमज्योतिरेव तु ।

चतुर्विंशतिमूर्त्तिं स शालग्रामशिलास्थितः ॥१३

द्वारवादिशिलासंस्था ध्येयं पूज्योऽपि वा हरिः ।

मनसोऽभीप्सितं प्राप्य देवो वैमानिको भवेत् ॥

निष्कामो मुक्तिमाप्नोति मूर्त्तिं ध्यायन्स्तुवन् जपन् ॥१४

जिज्ञासा सारथी ध्यायन् इस शरीर स्पी रथ के इन्द्रिय स्वामी अश्वो वा चलाने वाला द्वादश विज्ञ न होना है वह मनुष्य मन करी प्रग्रह (वागडोर) को हाथ रखने वाला होकर इस स्वहिनी के पार लग जाया करता है ध्यायन् इस समार से पार हा जाया करता है और वह ही विष्णु का परम पद होता है ॥८॥ मूर्तिपा आदि को यम कहा जाता है और शौच आदि नियम वहे जाया करते हैं । पश्य आदि को आसन कहने है तथा वायु पर विजय प्राप्त करने को ही प्राणायाम कहा जाता है । इस प्रक्रिया पर जय प्राप्त कर लेने की स्थिति को ही 'प्रत्याहार'—इस नाम से योग के एक षड्ग को पुकारा जाता है । इस प्रकार से ईश्वर के चिन्तन करने को ध्यान कहने हैं । मन की धृति वा ध्यायन् मन वा बद्धि कर लेने का नाम ही धारणा कहो जाती है । इस तरह से मन को एकाग्र करने को ब्रह्म में स्थिति कर ली जाती है वह ही समाधि शब्दो जाया करती है ॥९॥१०॥ यदि निराहार ब्रह्म का ध्यान नहीं

यन पावे तो साकार ब्रह्म का ही निम्नन करना चाहिये । ध्यान करने वाले पुरुष को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि उसके हृदय रूपी कमल में जो उसके मध्य भाग में बसिका है वहाँ पर लहू, चक्र, गदा एवं पद्म इन चारों भागुओं के धारण करने वाले प्रभु हैं जो श्रीवत्स एवं कौस्तुभ की धारण किये हुए हैं तथा वनमाला पहिने हुए हैं । उनका स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्धियुक्त, सत्य, पर एवं मानन्दमय है ॥११॥१२॥ मैं तामा ही परमब्रह्म एवं परम ज्योति हैं । श्रीवीरग मूर्तियों वाला मैं हो ध्यानधाम की शिखा में भी स्थित रहता हूँ ॥१३॥ डारका प्रादि का शिला में स्थित रहने वाला भी हरि ध्यान करने के तथा पूजा का योग्य है, जो भी मरी मूर्ति ध्यान करने वाले को प्रभीष्ट हो उसी का ध्यान करके बड़ प्रभीष्टों की प्राप्ति कर सता है और वैमानिक देव हो जाता है । तात्पर्य यह है कि स्वर्गादि का प्रविकारी देव बने जाना है । जो कामनाओं से रहित होकर मेरी मूर्ति का ध्यान सिद्ध करता है वह परम पद मुक्ति को प्राप्त करता है चाहे मेरा ध्यान करे, स्तवन करे या मेरा आप करे ॥१४॥

१६-शालग्राम लक्षण

प्रगङ्गातकयमिष्यामि शालग्रामस्य लक्षणम् ।
 शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्मावनाशनम् ॥१॥
 सप्तचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधर ।
 सारङ्गश्रीमोदकीचक्रप्रत्यो नारायणो विभुः ॥२॥
 सच्चिदानन्दोऽत्रगदो माधव श्रीगदाधर ।
 गदाब्जशङ्खचक्रो वा गाविन्दोऽर्जुनो गदाधर ॥३॥
 पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुमुत्पाय ते नमः ।
 सप्तशङ्खगदाचक्रममुमूदनमूर्तये ॥४॥
 नमो गदारिशङ्खगदाभूतिर्त्रैविक्रमाय च ।
 सारिकीमोदकीपद्मशङ्खचक्रामनमूर्तये ॥५॥
 चक्राब्जगदादिने नमः श्रीवीरमूर्तये ।
 हृषीकेशाब्जगदाशशिने चक्रिण नमः ॥६॥

साब्जचक्रगदाशंखपद्मनाभस्वरूपिणे ।

दामोदरशंखचक्रगदापद्मिन्नमो नमः ॥७॥

सारिशंखगदाब्जाय वासुदेवाय वै नमः ।

शंखाब्जचक्रगदिने नमः सङ्क्षर्पणाय च ॥८॥

श्री हरि ने कहा—पच में प्रसङ्गवश शालग्राम के लक्षण बतलाना है । शालग्राम की शिला का बहुत ही अधिक महत्त्व है । शालग्राम की शिला के स्पर्श करने से करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है ॥१॥ शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा के धारण करने वाले भगवान् का नाम केशव है । कमल, कोमोदकी, चक्र और शङ्ख धारी विष्णु का नाम नारायण है ॥२॥ चक्र, शङ्ख, पद्म और गदा वाले श्रीगदाधर का नाम माधव है । गदा, चक्र, शङ्ख और चक्र के धारण करने वाले गदाधर गोविन्द अर्चना के योग्य है ॥३॥ पद्म, शङ्ख और शङ्ख की नाशक गदा के धारण करने वाले विष्णु के स्पर्श पापके लिये नमस्कार है । शङ्ख, चक्र, चक्र, गदा के सहित मधुदैत्य के मूदन करने वाली मूर्ति के लिये नमस्कार है ॥४॥ गदादि, शङ्ख चक्र की मूर्ति त्रैविष्टाम के लिये प्रणाम है । सारि, कोमोदकी अर्थात् धारके सहित कोमोदकी गदा, पद्म और शङ्ख वाले वामने मूर्ति वाले प्रापको नमस्कार है । चक्र, अब्ज, शङ्ख और गदा वाले श्रीधर मूर्ति को नमस्कार है । हृषीकेश अर्थात् विषयद्रियों के स्वामी, चक्र, गदा और शङ्खधारी चक्रों के लिए नमस्कार है ॥५॥ चक्र, चक्र, गदा और शङ्ख के सहित पद्मनाभ के स्वरूप वाले—हे दामोदर ! हे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारिन् । आपके लिए बारम्बार नमस्कार है ॥७॥ सारि, शङ्ख, गदा और चक्र के सहित वासुदेव के लिए प्रणाम है । शङ्ख, चक्र, चक्र और गदा के धारण करने वाले सङ्क्षर्पण के लिए प्रणाम है ॥८॥

सुशयसुगदाब्जारिधृते प्रसुप्तमूर्तये ।

नमोऽनिन्द्याय गदानामाब्जारिविधारिणे ॥९॥

साब्जशंखगदाचक्रपुरोत्तममूर्तये ।

नमोऽन्योऽन्यजक्ष्णाय गदाशंखारिपद्मिने ॥१०॥

नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाश खारिधारिणे ।
 पद्मारिश खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥११॥
 सशङ्खचक्राब्जगद जनार्दनमिहानये ।
 उपेन्द्र सगद सारि पद्मशङ्खत्रमो नम ॥१२॥
 सुचक्राब्जगदाशङ्खयुक्ताय हरिमूर्त्तये ।
 सगदाब्जारिशङ्खाय नम श्रीकृष्णमूर्त्तये ॥१३॥
 शालग्रामशिलाद्वारगलग्नद्विचक्रवक् ।
 शुक्लाम्बो वामुदेवाख्य सोऽब्जगद श्रीगदाधर ॥१४॥
 लभद्विचक्रो रक्ताभ पूर्वभागन्तु पद्मभृत् ।
 सङ्कर्षणोऽय प्रद्युम्न मूढमचक्रम्बु पीतक ॥१५॥
 सदीर्घं सशिरश्चिद्रो योऽनिरुद्धम्बु बर्जुल ।
 नीलो द्वारि निरेखश्च यथ नारायणोऽमित ॥१६॥

सुन्दर शङ्ख, सुन्दर गदा, चक्र और धरि के धारण करने वाले प्रद्युम्न की मूर्ति आपके लिए नमस्कार है तथा गदा, शङ्ख, चक्र और धरि के विधारी अनिरुद्ध के लिए नमस्कार है ॥६॥ चक्र, शङ्ख, गदा, चक्र के सहित पुरुषोत्तम मूर्ति वाले के लिए प्रणाम है । गदा, धरि, शङ्ख और पद्म वाले भवोद्यत रूप वाले के लिए प्रणाम है ॥१०॥ पद्म, गदा, शङ्ख और धरि के धारण करने वाले नृसिंह मूर्ति के लिये नमस्कार है । पद्म, धरि, शङ्ख तथा गदा वाले अच्युत मूर्ति भगवान् को नमस्कार है ॥११॥ शङ्ख, चक्र, चक्र, गदा से सम्बन्धित भगवान् जनार्दन को यहाँ जाता है । गदा और धरि के सहित उपेन्द्र की है पद्म और शङ्ख के धारी । वारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सुन्दर चक्र चक्र, गदा और शङ्ख से युक्त हरि की मूर्ति के लिये प्रणाम है । गदा, चक्र, धरि और शङ्ख से समुत्त भगवान् श्रीकृष्ण मूर्ति के लिए नमस्कार है ॥१३॥ शालग्राम शिला के द्वार पर गत एव लग्न दो चक्र के धारण करने वाले, शुक्ल आभा से युक्त वामुदेव नाम वाले श्री गदाधर हैं वह भगवान् हमारी रक्षा करें । ॥१४॥ सज्जन दो चक्र वाले, रक्त आभा से युक्त, पूर्व भाग में पद्मभृत् सङ्कर्षण तथा मूढम चक्र वाले, पीत वर्ण से युक्त प्रद्युम्न, सदीर्घं तथा शिरश्चिद्र से सम्-

नित्त दो वत्तुंल मनिष्ठ, द्वार पर नील, नील रेखा वाले मणिन वणं से युक्त
नारामण रक्षा करे ॥१५॥१६॥

मध्ये गदाकृती रेखा नाभिचक्रो महोन्नतः ।

पृथुवक्षो नृसिंहो व कपिलोऽग्रात्त्रिविन्दुकः ॥१७

अथवा पञ्चविन्दुस्त्वृजन ब्रह्मचारिणः ।

वराहशक्तिलिङ्गोऽग्राद्विषमद्वयचक्रकः ॥१८

नीलस्त्रिरेत स्थूलोऽथकुर्ममूर्ति स विन्दुमान् ।

कृष्ण स वत्तुंलावत्तं पानु वो नतपृष्ठक ॥१९

श्रीघर पञ्चरेतोऽग्राद्वनमानो गदाङ्कितः ।

चामनो वत्तुंलो ह्रस्वो वामचक्र सुरेश्वर ॥२०

नानावर्णोऽनेकमूर्तिर्नागभागी त्वनन्तकः ।

स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्र सुनीलक ॥२१

सङ्कीर्णद्वारको वाव्यादथ ब्रह्मा सुलाहितः ।

मदीघरेख गुपिर एकचक्राम्बुज पृथु ॥२२

पृष्ठुब्धिद्र स्थूलचक्र कृष्णा विन्दुश्च विन्दुमत् ।

हृत्प्रोवाऽङ्कुशाकार पञ्चरेख सतीशुभ ॥२३

वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजाऽसितः ।

मत्स्या दोर्धोऽम्बुजाकारो द्वारेरेख पानु व ॥२४

रामचक्रा दक्षरेख श्यामो वोऽग्रात्त्रिविक्रमः ।

शालग्रामे द्वारकाया स्थिताय गर्दिने नमः ॥२५

एकद्वारे चतुश्चक्र वनमालाविभूषितम् ।

स्वर्ण रेखाममायुक्त गोष्पदेन विगजितम् ।

कदम्बकुमुमाकार लक्ष्मीनारायणोऽवतु ॥२६

मध्य म गदा की म टूने वाली रेखा, नाभिचक्र, महान् वलन, पृथु
वक्ष वाले नृसिंह, त्रिविन्दु कपिल हमारी रक्षा करे ॥१७॥ अथवा पञ्च विन्दु
पञ्चपाशों का वह पूजन, व इह दानि विज्ञ विषमद्वय चक्रक रक्षा करे ॥१८॥
गोन-जोन रेखा न युक्त, स्थूल, कुर्म मूर्ति, विन्दुमान्, वत्तुंलावर्त्तिक नत पृष्ठ

वाले वह कृष्ण हमारी रक्षा करें ॥१६॥ श्रीधर, पाँच रेखा वाले, वनमाली, गदा से अङ्कित, वत्सूल, वामनहृदय, यामचक्र, सुरेश्वर, नाना वर्ण से युक्त, अनेक मूर्ति वाले, नाग भोगी, अनन्तक, मयूर, दामोदर, नील-मण्य में सुनीलक चक्र तथा मङ्गीर्ण द्वार वाला रक्षा करें । इसके अनन्तर सुनीहित ब्रह्मा, दीर्घ-रेखा से युक्त, सुधिर, एक चक्रघोर मम्बुत्र वाले, पृथु, पृथु छिद्र वाले, स्यूत चक्र, कृष्ण, बिन्दु, बिन्दुपद्म हृदय, अङ्गुष्ठाकार, पञ्चरेख, कोस्तुभ से युक्त, वेङ्कट, मणिरत्नाम्ब, एक चक्र, मम्बुत्र अक्षित, मत्स्य, दीर्घ, मम्बुत्राकार घोर द्वार रेख हमागे रक्षा करें ॥२० से २४॥ रमचक्र, दशरेख, श्याम घोर त्रिविक्रम हमारी रक्षा करें । शालग्राम में, द्वाराल में स्थित गदा वाले के लिये नमस्कार है । एक द्वार में चार चक्र वाले, वनमाला में विशेष रूप में भूषित स्वर्ण रेखा से ममायुक्त, गोप्यद से विराजित घोर कदम्ब के कुमुद के आकार वाले की भगवान् लक्ष्मीनारायण रक्षा करें ॥२५॥२६॥

एकेन लक्ष्मिं योऽव्याद् गदाधारी सुदर्शनः ।
लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्या त्रिभिर्भूतैस्त्रिविक्रमः ॥२७॥
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभिः ।
प्रद्युम्न पद्भिरेव स्यात्सङ्कर्षण इतस्ततः ॥२८॥
पुरुषोत्तमाष्टाभिः स्यात्तत्रव्यूहो नवाङ्कितः ।
दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादयः ॥२९॥
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ।
विष्णोर्मूर्तिमयस्तोत्रं य पठेत्स दिव प्रजेत् ॥३०॥
ब्रह्मा चतुर्भुजो दण्डी कमण्डलुयुगान्वितः ।
महेश्वर पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषभजः ॥३१॥
यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती ।
महालक्ष्मीर्मातरञ्च पद्महस्तो दिवाकरः ॥३२॥
गजाम्यश्च गणः स्कन्दः पञ्मुखो जेकधा गुणाः ।
एतेर्जिता स्यापिताश्च प्राप्तादे वास्तुपूजिते ॥
धर्मार्थकाममोक्षायाः प्राप्यन्ते पुरुषेण च ॥३३॥

एव से लक्षित जो गदाधारी मुदार्जन भगवान् है वह प्रापनी रक्षा करे ।
 दो से लक्ष्मीनारायण, तीन मूर्तियों से युक्त त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करे । चार
 से चतुर्व्यूह, पाँच से भगवान् वायुदेव, छ से प्रद्युम्न और इधर-उधर भगवान्
 सङ्कषण रक्षा करे । आठ से भगवान् पुरुषोत्तम प्रापनी रक्षा करे । दस प्रकार
 से तवाङ्घ्रि नव व्यूह होते हैं । दश से दशावतार वाले भगवान् अनिरुद्ध रक्षा
 करें । द्वादश आत्मा वाले जो बारह से युक्त है रक्षा करें । अन तब भगवान्
 ऊपर से रक्षा करे । इन भगवान् के मूर्ति स्वरूप इस स्तोत्र का जो पाठ किया
 करना है वह दिव सोर को प्राप्त होता है ॥२७॥ से ३०॥ अष्टा चार मुख वाले
 दण्डी और दो कमण्डलुओं से युक्त है । महेश्वर पाँच मुत वाले हैं और वृषभरज
 दश बाहुओं से युक्त है ॥३१॥ जिस प्रकार से यह प्राप्ति से युक्त हैं वैसे ही
 गौरी, अविडका और सरस्वती दवी तथा महालक्ष्मी माताएँ हैं । दिवाकर पद्म
 हाथ में धारण करने वाले हैं । गरु के समान मृग वाले गण अर्थात् गणेश हैं
 छ मुखों से युक्त स्कन्द है । ये इन तरह अनेक प्रकार के गुण हैं ये सब स्थापित
 एव समर्पित होने हैं और प्रामाद-से वास्तु का पूजन किये जाने पर पुण्य के
 द्वारा धर्म, धन, काम तथा मोक्ष प्रादि सब प्राप्त किये जाय करते हैं ॥३२॥३३॥

२०—वास्तुयान-विधि

वास्तु सत्प्रेतलो वक्ष्ये गृहादो निघ्ननाशनम् ।
 ईशानकोणादारम्य ह्येकाशीतिपदे यजेत् ॥
 ईशाने च शिर पादी नैर्गतेऽन्यनिते करो ।
 आवासरासवेदमादो पुरे ग्रामे बग्निकपथे ॥२॥
 प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च ।
 द्वाविंशन् सुरान्वाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश ॥३॥
 ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्त कुलिशामुध ।
 मूयं गत्या भृगुश्चैव आकाशा वायुरेव च ॥४॥
 पूषा च वितथश्चैव गह्वरेणमभावुभी ।
 गन्धर्वा भृगुगजस्तु पृथ पितृगणश्च ॥५॥

द्वोवारिकोऽथ सुग्रीव पुष्पदन्तो गणाधिपः ।
 असु शेषपादौ च रोगोऽहिमुख्य एव च ॥६॥
 भत्ताट सोमसपी च अदितिश्च दितिस्तथा ।
 वहिर्द्वानिषद्देवे तु तदन्तश्चतुर शृणु ॥७॥
 ईशानादि चतुष्कोण सन्धितान्पूजयेद् बुध ।
 आपद्चैवाय सावित्री जयो रुद्रस्तथैव च ॥८॥
 मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान् ।
 देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादी नामत शृणु ॥९॥

श्री हरि भगवाद् ने कहा—यह मैं सक्षेप से वास्तु के विषय में बत-
 लाता हूँ जो कि गृह आदि में विघ्नों का नाश करने वाला है । ईशान कोण
 से प्रारम्भ करके इसप्रमाण पद तक यजन करना चाहिए ॥१॥ ईशान उपदिशा
 में सिद्धि का यजन करना चाहिए—नेत्र त दिशा में पादों का अर्पण करे तथा
 अग्नि एवं वायव्य में दोनों दिशों का यजन करना चाहिए । आवात, वाम, वैश्व
 आदि में पुनः, प्राग वशिष्ठपथ में, प्रासाद, प्रागम दुर्ग म और देव नय तथा
 मठों में वस्तीम देवा का आवाहन करना चाहिए । उनके अन्दर तैम्ह का आवा-
 हन करे ॥२॥३॥ ईश, पर्जन्य, जयन्त, कुलिश के आयुध वाला अर्थात् इन्द्र
 सूर्य, सत्य, भृगु, धाता, न पु, पूष, विष्णु, दोनों ब्रह्मक्षेत्र यम ग-धर्व, भृगु-
 राज, भृग तथा पितृगण । द्वारपाल मुशीव पुष्पदन्त, गणाधिप, प्रसुर, शेष,
 पाद, रोग, अहिमुख्य, भत्ताट, सोम, सप, अदिति, दिति य बाहिर भूतोम देव-
 गण हैं । इनके अन्तर चार हैं । उनका श्रवण करो ॥४॥५॥६॥ बुध पुरुष
 को ईशान आदि चार कोणों में सन्धिप देवों का पूजन करना चाहिए । आप,
 सावित्री, जम, रुद्र, मय्य नवपद में ब्रह्मा और उसके समीप में रहने वाले प्राठ
 पूर्वादि में एकोत्तर देवों का यजन करे । उनके नाम श्रवण करो ॥८॥९॥

अयमा सविता चैव विष्वान्विबुधाधिप ।

मित्रोऽय राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधर, क्रमात् ॥

अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मण स्मृता ॥१०॥

ईशानकोणादारम्य दुर्गे च वश उच्यते ।
 आग्नेयकोणादारम्य वशो भवति दुर्द्धर ॥११॥
 अदिति हिमवन्तश्च जयन्तञ्च इदं त्रयम् ।
 नायिका कनिता नाम शक्राद् गन्धर्वगा पुन ॥
 वास्तुदेवान्पूजयित्वा गृहप्रासादकृद्भवेत् ॥१२॥
 सुरेज्य पुरतः कार्यो दिश्याग्नेभ्या महानसम् ।
 वपिनिगमने येन पूर्वतः सत्रमण्डपम् ॥१३॥
 गन्धपुष्पगृहं वायंमशान्या पट्टसयुतम् ।
 भाण्डागारञ्च कीवेर्या गोष्ठागारञ्च वायवे ॥१४॥

अथमा, महिला विवस्वात् त्रिगुणाधिप मित्र राजयक्ष्मा, पृथीधर
 श्रीर घाट्वा प्राप वत्त है जी ब्रह्म के चारी श्रीर कहे गये हैं ॥१०॥
 श्रीर दुर्ग में ईशान कोण से प्रारम्भ करके वक्ष ब्रह्मा जाता हैं । आग्नेय कीण
 से प्रारम्भ करके वक्ष दुधर होता है ॥११॥ अदिति हिमवन्त श्रीर जयन्त ये
 तीनो, नायिका नाम वाली नायका शक्र (इन्द्र) से गन्धर्व को जाने वाली
 इन समस्त वास्तु देवा का पूजन करके गृह प्रसाद का कर्त्ता होना चाहिए ।
 ॥१२॥ आग्नेय सुरेज्य करना चाहिए आग्नेयी दिशा में महानस (रसोईघर)
 रखना चाहिए । पूर्व में वपि निगमन में सत्र मण्डप रखने । ऐशानी दिशा में
 पद में सयुक्त गन्ध एवं पुष्पों का गृह रखना चाहिए । कीवेरी दिशा में भाण्डो
 (बरतना) का प्रागार रखे । वायव्य दिशा गोष्ठागार रखना चाहिए ॥१३॥१४॥

उदगाथय वाक्प्या वातायनममन्वितम् ।
 समित्कुशेन्धनस्थानमायुधाना च नेष्ट्यते ॥१५॥
 अग्न्यागताय रभ्य सशय्यासनपादुकम् ।
 तामाग्निदीपमद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतः भवेत् ॥१६॥
 गृहान्तराणि सत्राणि मज्जले बदलीगृहे ।
 पचरणैश्च कुमुभं गोभितानि प्रकल्पयेत् ॥१७॥

प्राकार तद्वहिर्दद्यात् पचहन्तप्रमाणम् ।

एव विष्णवाश्रमं कुर्याद्विनेश्वरोपवनैर्युक्तम् ॥१८॥

जल के आश्रय का स्थान वास्तुशैलि विद्या में नियत करे जो कि वायु के आने जाने वाले वातायनो से समुत हो । समिधा, कुशा, ईष्यन और आयुषा के रखने का स्थान नैऋत्य दिशा में होना चाहिए । अग्न्यागत पुरुषों के रहने का स्थान परम सुन्दर होना चाहिए जो ग्रन्था, ग्रामन और पादुका आदि से समन्वित होवे और वहाँ पर जल, अग्नि, दीपक तथा समुचित भृत्य भी रहने चाहिए । यह स्थान दक्षिण दिशा में होना चाहिए ॥१५॥१६॥ समस्त गृहों के अन्तर्भाग मज्ज कन्दनोगृह और पाँच वर्ग वाले कुम्भो से मुक्षोभित कल्पित करने चाहिए ॥१७॥ उसके बाहिर पाँच हाथ के परिमाण वाला प्राकार रचना चाहिए । इस प्रकार से बन तथा उपवनो से समन्वित भगवान् विश्व का आश्रम बनाया चाहिए ॥१८॥

चतुःषष्टिपदो वास्तु प्रासादादौ प्रयुजितः ।

मध्ये चतुष्पदो बह्व द्विपदास्त्वर्धमादयः ॥१९॥

पण्यं चैवाथ शिरयाद्यास्तथा देवा प्रकीर्त्तिताः ।

तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धादग्नेर्द्विपदा तुराः ॥

चतुःषष्टिपदा देवा इत्येव परिकीर्त्तिता ॥२०॥

चरको च विदारो च पूतना पापराक्षसी ।

ईशानाद्यास्ततो बाह्ये देवाद्या हेतुकादयः ॥२१॥

हेतुकस्त्रिपुरान्तद्वय अग्निवैतालको यमः ।

अग्निजिह्व कालवद्व कणालो ह्येकपादकः ॥२२॥

ऐशान्या भीमरूपस्तु पातालैः त्रैलोक्यकः ।

प्राकाशे गन्धमाली स्मात्त्रेणपालाम्स्ततो यजेत् ॥२३॥

विस्तारार्भहत दैर्घ्यं नाश्वि वास्तोस्तु कारमेत् ।

कृत्वा च वसुभिर्भागं दीप्य चैवायमादिभेत् ॥२४॥

पुनर्गुणितमष्टाभिर्ऋक्षभागस्तु भाजयेत् ।
 यच्छेष तद्भूवेदक्ष भागेर्हत्वा व्यय भवेत् ॥२५॥
 ऋक्ष चतुर्गुण कृत्वा नवभिर्भागहारितम् ।
 शेषमथ द्विजानीयाद्देवतस्य मतं यथ ॥२६॥
 अष्टाभिर्गुणितं पिण्डं पट्टिभिर्भागहारितम् ।
 यच्छेष तद्भूवेज्जीव मरणं भूतहारितम् ॥
 वास्तुक्रोडे गृहं कुर्यान्न पृष्ठे मानव सदा ।
 वामपार्श्वेन स्वर्पति नात्रकार्या विचारणा ॥२७॥

चौमठ पदो वाला वास्तु प्रासाद के आदि में प्रयोजित होवे । मध्य में
 चतुष्पद ब्रह्मा और द्विपद प्रथमा आदिक पूजित होंगे । वर्ग में क्षिणी आदि
 देव बड़े गये हैं । उनके दोनो गौर भन्ध भी द्विपद गुर होते हैं । ये सभी चतु-
 पट्टि पदो वाले देव परिकीर्तित नियम गये हैं ॥१६।२०॥ चरवी, विदाशी, पूतना
 पाप राक्षसी ईशानाद्य हैं । इनके घनभर बाह्य में हेतुकादि देवाद्य हैं । हेतुक
 त्रिपुरास्त, अग्नि, वेनामक, मम, अग्निजिह्व कालका, कराल, एकपादक ॥
 ऐनाभी दिशा में भीमलण, पाताल में प्रेतनायक, भाकाश में मन्थमायी इतने
 भनन्तर क्षेत्रपालो का यजन करे । दैर्घ्यराशि को विस्तार से अभिहित करे । इस
 तरह से वास्तु का करार और घाट से भाग करके शेष को आश्रित करना
 चाहिए ॥२१ से २४ तक । फिर आठ में गुणित कर ऋक्षभाग को भाजित
 करे । जो शेष हो वह ऋग्य होता है । भागो से हरण करके व्यय होता है ।
 ॥२५॥ ऋक्ष को चतुर्गुण करके नौ से भाग द्वाजित करे । जो शेष रहता है वह
 जीव होता है और भूत हारित मरण है ॥२६।२७॥ वास्तु के क्रोड (गोद)
 में मानव को गृह करना चाहिए मदा गृह में न करे । वाम पार्श्व से सोना है-
 हममें कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥२८॥

मिहन्-मातुलामात्र द्वार बुद्धेदयोत्तरम् ।

एव च वृद्धिचवादी स्यात्पूर्वेदक्षिणपदिचमम् ॥२९॥

द्वार दीर्घाद्वि विस्तार द्वाराप्यष्टौ स्मृतानि च ॥३०॥

स्वतल्पे प्लवतीचत्वं सर्पेण सूत्रभाजनम् ।
 पुनहीनन्तु रोद्रेण वीर्यघ्न दक्षिणे तथा ॥३१॥
 वह्नी बन्धश्च बाधो च पुत्रनाम, सुतृप्तिदम् ।
 घनदे नृपपंडाद बन्धन रोगद जले ॥३२॥
 नृपभातिमृतापत्य ह्यनपत्यञ्च वैरिदम् ।
 अर्थदे चार्धहानिश्च दोषद पुत्रमृत्युदम् ।
 द्वाराण्युत्तरसञ्ज्ञानि पूर्वद्वाराणि वञ्च्यहम् ॥३३॥
 अग्निभीतिर्बहुकन्या घनसम्मानक पदम् ।
 राजघ्न रोगद पूर्वं फलतो द्वारमोग्निदम् ॥३४॥
 ईशानादो भवेत्पूर्वमार्गयादो नू दक्षिणम् ।
 नष्टत्यादो पश्चिम स्याद्द्वामध्यादो तु चोत्तरम् ॥
 दक्षभागे कृते भागे द्वागणा च फलाफलम् ॥३५॥
 अश्वत्थप्लक्ष्मग्रोधा पूर्वादो स्यादुदुम्बर ।
 गृहस्य शोभन, प्रोक्त ईशाने चैव शाल्मलि ॥
 पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च ॥३६॥

सिंह, कन्या और सुता में द्वार मुद्र करे । इसके अनन्तर उत्तर में इसी प्रकार से वृश्चिकादि में पूर्व-दक्षिण और पश्चिम होवे । दीर्घ के साथे विस्तार वाला द्वार होना चाहिए । घाठ द्वार रहे गये है ॥३१॥३०॥ स्वतल्प में प्लवतीचत्वं है—सर्प में सूत्र बाजन है—रोद्र में पुत्रहीनता होती है—दक्षिण में वीर्य का हनन करने वाला है ॥३१॥ वह्नी दिना में बाध होता है—बाधु दिशा में पुत्र का लाभ एवं सृतिप्रद है । घनद दिशा में नृप को पीडा देने वाला—जल में बन्धन और रोगप्रद होता है ॥३२॥ नृप से भय—पुत्रापत्यता (सन्तान का नृप हो जाना—ममति का अभाव तथा वैरियो को देने वाला होता है । अर्थद में भय की हानि—दोषप्रद और पुत्र की मृत्यु देने वाला है । अथ में पूर्वद्वार उत्तर राजा वास द्वारों को बतलाता है ॥३३॥ अग्नि वा भय बहुत कन्याओं का होना—घन तथा सम्मान प्रदान करने वाले पद का पाना—राजा का

हनन—गेयप्रद पूर्व से पश्चिम से द्वार घर्मीष्ट होता है ॥२४॥ ईशान आदि में पूर्व होना है—अग्नेय आदि में दक्षिण—नैऋत्य आदि में पश्चिम और वायव्य आदि में उत्तर होना है । भाग के दष्टभाग करने पर द्वारों का फलफल होता है ॥२५॥ पूर्वादि में दक्षत्य (पीपल)—पूव (पाखर)—न्यग्रोध (बड़) और रुम्बर (गूबर) गृह का शोभन कहा गया है । ईशान में शान्ति प्रप्ताद तथा गृह का पूजित होता हुआ बिन्दो का हरण करने वाला होता है । ॥२६॥

२१—प्रानादलक्षण

प्रानादाना लक्षणैश्च वक्ष्ये गोनक तच्छृणु ।
 चतुर्पष्टाद कृत्वा दिग्विदिभूपलक्षितम् ॥१॥
 चतुष्कोण चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्यसंस्थिता ।
 चत्वारिंशदभिश्चैव भित्तीना कल्पना भवेत् ॥२॥
 ऊर्ध्वक्षेत्रसमा जङ्घा तद्ध्वे द्विगुण भवेत् ।
 गर्भविस्तार विस्तीर्णा मुकाटभिश्च विधीयते ॥३॥
 तत्त्रिभागेन वस्त्व्य पञ्चभागेन वा पुन ।
 निर्गमस्तु मुकाट्घ्रेश्च उच्छ्राय शिखरादङ्ग ॥४॥
 चतुर्धा शिखर कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम् ।
 चतुर्थे पुनरन्यत्र कण्ठमाग्न्युलसाधनम् ॥५॥
 अथवापि सम वान्तु कृत्वा षोडशभागिकम् ।
 तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भेन्तु कारयेत् ॥६॥
 भागद्वादशिका भित्ति ततश्च परिकल्पयेत् ।
 चतुर्भगिन भित्तीनामुच्छ्राय स्यात्प्रमाणतः ॥७॥
 द्विगुण शिखरोच्छ्रायो भित्तुच्छ्रावाच्च मानतः ।
 शिखरादङ्गं चादौ विधेयास्तु प्रदक्षिणा ॥८॥

चतुर्विधं तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधं ।

पञ्चभागेन सभज्य गर्भमानं विचक्षण ॥६॥

भागमेव गृहीत्वा तु निर्गमं कल्पयेत् पुनः ।

गर्भमुखसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥

एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्य हि लक्षणम् ॥१०॥

सूत्रजी ने कहा—हे शौनक ! इस प्रासादों का लक्षण बताऊँगा उसे

तुम सुनो । दिशा और विदिशाओं में उपनक्षित उपयुक्त चौपट पदों वाला
करके चारों ओर भीकौर और सूर्य राहों से भर्षात् बारह द्वार करे और
अवतानीस भित्तियों की कल्पना होनी चाहिए । ऊर्ध्व दीर्घ के समान जवा
उसके ऊपर में द्विगुण होवे । गर्भ के विस्तार में विस्तीर्ण शुक्रादि की जाती है
॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ वह त्रिभाग से भगवा पञ्च भाग से करे । निर्गम और
शुक्रादिका शिखर का भर्षगामी उच्छ्राय (ऊँचाई) होवे ॥४॥ चार प्रकार
से शिखर करके त्रिभाग में बेली बन्धन कर फिर उसके ही चतुर्थ में प्रामूल
साधन बण्ड करे ॥५॥ मध्यमा वास्तु की पौडश भाग वाला समान करके उसके
उसके मध्य में आदि में चार भाग को गर्भ करावे ॥६॥ इस के अनन्तर द्वादश
भाग की भित्ति की कल्पना करनी चाहिए । प्रमाण से चतुर्भाग से भित्तियों
की ऊँचाई के मान से होवे । भित्ति की ऊँचाई से शिखर की ऊँचाई होनी
होनी चाहिए । शिखरार्ध के अर्धभाग से प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करनी
चाहिए ॥७॥८॥९॥ बुध पुरुषों के द्वारा चार दिशाओं में निर्गम (निकास
भाग) जानना चाहिए । विचक्षण पुरुष की पञ्चवीं भाग गर्भ का मान सभा-
जित करके उसमें न फिर एक भाग अग्रतः करके निर्गम की कल्पना करनी
चाहिए । यह सूत्र के समान भाग से भावे मुख मण्डप करे । यह साधारण
प्रासाद का लक्षण उद्दिष्ट किया गया गया है ॥१०॥

निष्कृष्टमानसो वश्ये पीठो निष्कृष्टसमो भवेत् ।

द्विगुणो भवेद् गर्भः समन्ताच्छीनक ध्रुवम् ।

तद्विधा च भवेद् भिन्निर्जङ्गा तद्विस्तरार्धगा ॥११॥

द्विगुणं शिखरं प्रोक्तं जङ्घायाश्चैव शौनक ।

पीठगर्भावरं कर्म तन्मानेन शुक्राङ्गिकाम् ॥१२॥

निर्गमस्तु समाख्यात शेष पूर्ववदेव तु ।
 लिङ्गमान रगृतो ह्येष द्वारमानयोच्यते ॥१३॥
 कराग्र वेदवत्कृत्वा द्वार भागाष्टम भवेत् ।
 विस्तरेण समाख्यात द्विगुण स्वेच्छया भवेत् ॥१४॥
 द्वारवत्पीठमध्ये तु शेष शुषिरक भवेत् ।
 पादिक शेषिक भित्तिद्वाराद्धेन परिग्रहात् ॥१५॥
 तद्विस्तारसमा जङ्घा शिखर द्विगुण भवेत् ॥
 उक्त मण्डपमानन्तु स्वरूप चापर वद ॥१६॥
 श्रवेद कारयेत् क्षेत्र यत्र तिष्ठन्ति देवता ।
 इत्थ कृतेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥१७॥
 नेमि पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्तत ।
 गर्भन्तु द्विगुण कुर्यान्नेम्या मान भवेदिह ॥
 स एव भित्तेरुत्तरो शिखरो द्विगुणो मत ॥१८॥

इसके अनन्तर लिङ्ग मान कहा है । पीठ लिङ्ग के समान होना चाहिए । हे शीतक । चारो ओर निश्चय ही द्विगुण भाग से गर्भ होना चाहिए । इस प्रकार की भित्ति हो ओर जघा उसके विस्तार से अर्ध भाग वाली होनी चाहिए ॥११॥ हे शीतक । दुगुना शिखर कहा गया है जो कि जघा में होना चाहिए । पीठ गर्भ से घबर बर्म उसके मान शुक्र इन्द्रिका होवे । १२। निर्गम तो कह दिया गया है । शेष सब पूर्व की भांति ही होवे । यह लिङ्ग का मान कहा गया है । अब यह द्वार का मान कहा जाना है ॥१३॥ वेद को भित्ति कराग्र करके घातवा भाग द्वार होना चाहिए । विस्तार से यह बताया गया है स्वेच्छा से दुगुना हो जाता है ॥१४॥ द्वार की भित्ति पीठ के मध्य में शेष शुषिरक होता है । द्वाराध के भाग से परिग्रह से शेषिक पादिक भित्ति होती है ॥१५॥ उसके विस्तार के समान जघा ओर दुगुना शिखर होता है । शुक्राद्धि पूर्व की भांति ही जान लेना चाहिए ओर निर्गम की ऊँचाई होनी है । यह मण्डप का मान कहा गया है अब दूसरा स्वरूप बनताओ ॥१६॥ श्रवेद क्षेत्र करना चाहिए जहाँ

पर देवता स्थित रहा करत हैं । इस प्रकार मान के करने से इसका चाह्य भाग विनिगत हो जाता है ॥१७॥ प्रागाद के चारो ओर पाद से विस्तीर्ण नेमि होती है और गर्भ द्विगुण नमि के मान में करना चाहिए जो कि पहा होता है । वह ही भित्ति का उत्सेध दुगुना सिद्ध माना गया है ॥१८॥

प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि मान योनिञ्च मानत ।
 वैराज पुष्पकाक्ष्यञ्च कैलासो मालिकाह्वय ॥
 त्रिपिष्टपञ्च पञ्चते प्रासादा मवयोनय ॥१९॥
 प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदामत ।
 वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टाक्षश्चेह च पञ्चम ॥२०॥
 एतेभ्य एव सम्भूता प्रासादा सुमनोहरा ।
 सवप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिधन्व एव न ॥२१॥
 मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापरः ।
 भद्रक सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा ॥२२॥
 नन्दिवर्द्धनसप्तश्च श्रीवत्सश्च नवैत्यमी ।
 चतुरस्रा समुद्भूता वैराजादित गम्यताम् ॥२३॥
 बलभी गृहरोजश्च शान्तागृहश्च मन्दिरम् ।
 विमानश्च तथा ग्रह मन्दिर भवन तथा ॥
 उत्तमभ शिविकावेदम नवते पुष्पकोदम्बवा ॥२४॥
 बलयो दुन्दुभि पद्मो महापद्मस्तथापरः ।
 मुकुली चास्य उप्लीपी शङ्खश्च कलशस्तथा ॥
 गुणवृक्षस्तथान्यञ्च वृत्ता कैलाससम्भवा ॥२५॥
 गजोऽय वृषभो हृषी गरुडः सिंहनामकः ।
 भूमुतो भूधरश्चैव श्रीजय पृथिवीधरः ॥
 वृत्तायता समुद्भूता नवते मालिकाह्वयात् ॥२६॥
 वयश्चक्र तथान्यञ्च मुष्टिक वज्रसज्जितम् ।

यत्र स्वस्तिव भङ्गी च गदा श्रीवृक्ष एव च ॥
विजयो नामत इवेतस्त्रिपिष्टिपममुदभवा ॥२७

अथ प्रासादो वा यान और मान स लोनि बतमाऊंगा । वैराज, पुष्पा-
काश्य बैलाम, मालिकाह्वय और त्रिपिष्टप ये पाँच प्रासाद सर्व योनि वाले होते
हैं ॥१६॥ प्रथम प्रासाद जो वैराज नाम वाला होता है वह चतुरस्र होता है ।
द्वितीय उसके आधन वाला है । तीसरा गृन् होता है तथा चतुर्थ वृत्तायत होता
और पाँचवाँ अष्टास्र होता है ॥२०॥ सर्व प्रवृत्तिभूत स्त्री में मुमनोहर प्रासाद
सम्भूत होते हैं जो कि चालीस होते हैं ॥२१॥ मेघ, मन्दर, विमान तथा अपर
भद्रक सर्वतो भद्र, दयक, नन्दन, नन्दि यथन, श्री धरत—ये भी हैं जो वैराज
से चतुरस्र सम्भूत होते हैं ऐसा जान लो ॥२२॥२३॥ बलभी, गृह राज, शाला-
गृह, मन्दिर, विमान ब्रह्म मन्दिर, भवन, उत्तम, शिथिका देशम, ये भी पुष्पक
से उदभव होने वाले हैं । बलय, दु दुमि, वय महावय, मुकुली, उष्णीषी, राद्ध
बलन, शुभावृक्ष य वृत्त प्रासाद बैलाम सजक से सम्भूत होने वाले हैं ॥२४॥२५॥
गल, वृषभ, हस, गरुड, सिंह, भुमुल, भूपर श्रीजय, पृथिवीपर ये वृत्तायत भी
मालिक सभा वाले से उदभव प्राप्त करने वाले होते हैं । वज्र, वक्र, मुष्टिक,
वधू वक्र, स्वस्तिव, भङ्गी, गदा, श्री वृक्ष, विजय और इवेत ये त्रिपिष्टिका से
समुदभव प्राप्त करने वाले हैं ॥२६॥२७॥

त्रिवोण पद्ममद्धन्दुचतुष्कोण द्विरष्टकम् ।

यत्र यत्र विधातव्य सस्यान मण्डपस्य तु ॥२८

राज्यञ्च विमर्च्येव ह्यायुर्वर्द्धनमेव च ।

पुत्रलाभ स्त्रिय पुष्टिस्त्रिवोणादिप्रसाद भवेत् ॥२९

सुर्याद् घ्नजादिव रयाता द्वारि गर्भगृह तथा ।

मण्डप समसस्याभिर्गुणित सूत्रतस्तथा ॥३०

मण्डपस्य चतुर्थांशाद् भद्र वायो विजानता ।

साह्यगवाक्षकोपेनो निर्गवाक्षोज्यवा भवेत् ॥३१

साद्वर्भित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुन ।
 भित्तेर्द्विगुण्यतो वापि कर्त्तव्या मण्डपा- क्वचित् ॥३२॥
 प्रासादे मञ्जरी कायाभिचित्रा विषमभूमिका ।
 परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूयिता ॥३३॥
 आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मण्डपगोमित ।
 शतशृङ्गसमायुक्तो मेरु प्रासाद उत्तम ॥३४॥
 मण्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रंभिभिरलकृताः ।
 गठनाकारमानाना भिन्नाद्भिन्ना भवन्ति ते ॥३५॥
 कियन्तो येषु चाधारा निराधाराश्च केचन ।
 प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादा सम्भवन्ति ते ॥३६॥

त्रिकोण-चतुर्भुज-चतुष्कोण और द्विष्टक जहाँ-वहाँ मण्डप का
 स्थापन हो करना चाहिए ॥३२॥ राग्य—वैभव—प्रायु की वृद्धि—पुण्यताम-
 स्त्री की पुष्टि ये फल त्रिकोणादि के क्रम में होते हैं ॥३३॥ ध्वजादिक करे जो
 कि द्वार पर स्थान है तथा गभगृह करे । सम मन्त्र्याग्रे में घुणित मण्डप करे ।
 तथा ज्ञाता पुरष को मूय से मण्डप के कृत्यं अंश से भद्र करना चाहिए । वह
 सार्ध गवाक्ष से युक्त अथवा बिना गवाक्ष वाला होवे ॥३०॥३१॥ सार्ध भित्ति के
 प्रमाण से अथवा फिर भित्ति के मान में या भित्ति की द्विगुणता से कहीं पर
 मण्डप बनाने चाहिए । प्रासाद में विषम भूमिका वाली चित्र मञ्जरी करनी
 चाहिए । परिमाण के विरोध से भूविन रेखा करे । चार द्वार वाला और चार
 मण्डपों से शोभित आधार जो शतशृङ्गो (शिखरो) से समायुक्त हो वह मेरु
 प्रासाद उत्तम होता है ॥३२॥३३॥३४॥ उसके मण्डप तीन भद्रों से अलंकृत
 करने चाहिए । गठनाकार मान वालों के वे भिन्न से मित्र होते हैं ॥३५॥ जिनमें
 कुछ आधार होते हैं और कुछ निराधार हो होने हैं । वे प्रासाद प्रति छन्दक
 भेद में सम्भूत दूमा करते हैं ॥३६॥

अन्यान्य सस्कारात्तेषा गठनानामभेदतः ।

देवनाना विशेषाय प्रासादा बहव स्मृताः ॥३७॥

प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम् ।
 तानेव देवतानाञ्च पूर्वमानेन कारयेत् ॥३८॥
 चतुरस्त्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विता ।
 चन्द्रशालान्विताः कार्या भेरी शिखरसयुताः ॥३९॥
 पुरतो वाहनानाञ्च कर्त्तव्या सधुमण्डपा ।
 नाट्यशाला च कर्त्तव्या द्वारदेशसमाश्रया ॥४०॥
 प्रासादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिष्वपि ।
 द्वारपालाञ्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक्-पृथक् ॥४१॥
 किञ्चिद् दूरत कार्या मठास्तत्रोपजीविनाम् ।
 प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता ॥४२॥
 प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभि पूजयेत्तर ।
 वासुदेव सर्वदेव सर्वभाक् तद्गृहादिकृत् ॥४३॥

अन्य अन्य सत्कार मे गठन वाले उनका अभेद से देवताओं के विशेष के लिये बहुत से प्रासाद बहे गए हैं ॥३७॥ स्वयम्भू देवताओं का प्रासाद मे नियम नहीं होता है । उनको देवताओं के पूर्वमान से कराना चाहिए ॥३८॥ वहाँ चतुरस्त्रायता, चतुष्कोण समन्वित, चन्द्रशालान्वित और भेरीशिखर समुत्त करने चाहिए । प्रागे के भाग मे वाहनो के छोटे गरुड बनाने चाहिए । द्वारदेश मे समाश्रय रखने वाली नाट्यशाला भी करनी चाहिए ॥३९॥४०॥ प्रासाद मे देवताओं के दिशा-विदिशाओं मे भी पृथक् पृथक् मुख्य द्वारपाल करने चाहिए । ॥४१॥ कुछ दूर चलकर वहाँ पर मठोपजीवियों के भी मठ बनाने चाहिए । फल, पुष्प और जल से युक्त प्रावृता जगती करनी चाहिए । मानव प्रासादो मे स्थाप्य सुरो का पूजनोपचारी से यजन करना चाहिए । उन गृहादि का करने वाला सर्व सेवनकारी सबके देव भगवान् वासुदेव ही हैं ॥४२॥४३॥

२२—सर्वदेव प्रतिष्ठा वर्णन

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां सर्वेषां वदाम्यहम् ।
 मुनिध्यादौ मुरम्यञ्च प्रतिष्ठा कारयेद् गुरु ॥१॥

ऋत्विग्भिः सह चाचार्यं वरयेन्मध्यदेशगम् ।
 स्वशास्त्रोक्तविधानेन अथवा प्रणवेन तु ॥२॥
 पञ्चभिर्वहुभिर्वाथ कुर्यात् पाठार्थमेव च ।
 मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनः ॥
 मन्त्रन्यासं गुरुं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥३॥
 प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डपं दशहस्तकम् ।
 कुर्याद् द्वादशहस्तं वा स्तम्भैः षोडशभिर्धुतम् ॥
 ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्ता मध्ये वेदीञ्च कारयेत् ॥४॥
 नदीसङ्गमतीरोत्या बालुका तत्र दापयेत् ।
 चतुरस्रं कामुं कामं वत्सुलं कमलाकृतिं ॥५॥
 पूर्वोदितं समारभ्य कर्त्तव्यं कुण्डपञ्चकम् ।
 अथवा चतुरस्राणि सर्वाण्येतानि कारयेत् ॥६॥
 शान्तिं कर्मविधानेन सर्वकामार्थमिदृशे ।
 शिरस्थाने तु देवस्य आचार्यां ह्यममाचरेत् ॥
 ऐशान्या केचिदिच्छन्ति उपलिप्स्यावन्ति शुभाम् ॥७॥

श्रीमूतजी ने कहा—अब मैं ममस्त देवों की प्रतिष्ठा को सलेप में बत-
 लाता हूँ । गुरु को सुधीमन किसी विधि में मुख्य प्रतिष्ठा करानी चाहिए ।
 ऋत्विजों के साथ आचार्य का जो कि मध्यदेशज हो वरण करना चाहिए ।
 अपनी शाखा में उक्त विधान के द्वारा अपना प्रणव से करे ॥२॥ पाँच प्रणव
 घट्ट मुद्रिकाओं से पाद्य-अर्घ्य आदि करे तथा मन्त्र ग्राम वस्त्र एवं गन्ध-माल्य
 और अनुलेपनों द्वारा करके फिर गुरु को कर्म का आरम्भ करना चाहिए ॥३॥
 प्रसाद के प्राये के भाग में दश हाथ प्रमाण वाले एक मण्डप की रचना करनी
 चाहिए । अथवा दशह हाथ के प्रमाण वाले मण्डप करे जिसमें सोलह स्तम्भ
 निर्मित किये गये हों । आठ ध्वजाओं से युक्त चार हाथ प्रमाण वाली मध्य में
 एक वेदी का निर्माण कराना चाहिए ॥४॥ नदी के सङ्गम के तट पर रहने
 वाली बालुका को वहाँ डलवाना चाहिए । चतुरस्र (चौसोर) कामुं (धनुष)
 की प्रभा के तुल्य वत्सुल (गोवाकार) अथवा कमल के पुष्प की आकृति वाले

पूज आदि दिशाओं में प्राग्भ्रम करके पाँच कुण्डों की रचना करे । अथवा वे कुण्ड सभी अनुक्रम ही निर्मित करावे ॥१६॥ समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए शान्ति कम क विधान में आचार्य की शिरस्थान में देवता का हाथ बनना चाहिए । कुछ मनीषी गण इस शुभ भूमि का लेखन कराकर ऐशानो दिशा में करने का मन रखते हैं ॥१७॥

द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके ।

न्यग्नाधादुन्म्वरादवन्मयेत्तत्पातामगादिस ॥१८॥

तोरणा पञ्चहस्ताश्च वन्मपुष्पाद्यनवृता ।

निगनेद्व्यममर्कव चत्वारश्चानुरा दिस ॥१९॥

पूर्वद्वारे मृगेन्द्रन्तु हयराजन्तु दक्षिण ।

पश्चिमे गापतिनाम मुरसादूलमुत्तरे ॥२०॥

अग्निमीलेति मन्त्रेण प्रथमं पूर्वतो न्यसेत् ।

द्वीतेत्यग्नि च मन्त्रेण दक्षिणस्या द्वितीयकम् ॥२१॥

अग्निश्चाग्नाहि मन्त्रेण पश्चिमस्या तृतीयकम् ।

अग्नीदधीति मन्त्रेण उत्तरस्या चतुर्थकम् ॥२२॥

पूर्वे अम्बुद्वारं धार्या अग्नेय्या धूमर्षिणी ।

याम्या वै वृत्तुष्पा तु नैऋत्या द्यामता महेन् ॥२३॥

वायव्या वाण्डरा श्रेया वायव्या पीतयणिका ।

उत्तर रक्तवर्णा तु शुक्लवर्णा च पताङ्गिका ॥

उद्वृष्वा तथा मध्ये द्वात्रिंशेति पूर्विका ॥२४॥

अग्निं मगुप्तिमन्त्रेण यमोनामेति दक्षिणे ।

पूर्वया रसाट्नामेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च ॥२५॥

वान इत्यग्निदिग्वाप आप्यायन्तेति चोत्तरे ।

तमीदानीमनश्चय त्रिगुणैरेति मध्यमे ॥२६॥

तोरण व समाप्त में चार द्वार करके न्यग्नाध (बट), उद्वृष्वर (गुत्तर)

अम्बर (पीपल), वायव्य मोर, अग्नि व पाँच हाथ प्रमाण वान तोरण कर, या हि वस्त्र तथा पृष्ठा से गुथिमयित हो । चारों दिशाओं में चार गतं पक्ष-

एक हाथ के छोड़े ॥८६॥ पूर्व दिशा के द्वार में मृगेन्द्र, दक्षिण में हयराज, पश्चिम में गोपति और उत्तर दिशा के द्वार पर सुर शाहूँल रखे । “अग्नि-मीले” — इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पहिले पूर्व दिशा में न्यास करना चाहिए । “ईदित्वेति” — इस मन्त्र से दक्षिण में दूसरा न्यास करे ॥१०११॥ “अग्न भावाहि” — इस मन्त्र के द्वारा पश्चिम में तृतीय रखे । “धन्वी देवी” — इस मन्त्र से उत्तर दिशा में चतुर्थ को व्यस्त करे ॥१२॥ पूर्व दिशा में पताका मेघ के समान वर्ण वाली लगावे । आग्नेयी दिशा में भूध वर्ण वाली — धाम्य दिशा में कृष्ण वर्ण वाली — नैऋत्य में श्यामल वर्ण से युक्त — वारुणी दिशा में पारुद्धर-वायव्य में पीन वर्ण की, उत्तर में रक्त वर्ण वाली और ईशान दिशा में शुक्ल वर्ण वाली पताका होनी चाहिए । एक मध्य भाग में बहून में रुद्र और बायीं वाली पताकाएँ होनी चाहिए । पूर्व में इन्द्र विद्या-मग्नि समुत्ति मन्त्र के द्वारा ‘यमो नागा’ — इससे दक्षिण में, पश्चिम और उत्तर में ‘रक्षो हन्तावा’ इससे पूजा करे, बात-इससे अभियेक करके ‘आप्यायम्ब’ — इससे उत्तर में । तमोशान-विष्णुलोह-इसमें मरुत में यजन करे ॥१२ से १५॥

कलशौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यौ तोरणान्तिके ।

वस्त्रमुपसमायुक्ताश्चन्द्रनाथैः स्वलङ्कृताः ॥१७॥

पुष्पाञ्जितानिर्वहूर्लरादिवर्णाभिमन्त्रिता ।

दिवपालाश्च ततः पूज्याः सास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१८॥

त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निमूर्द्ध्वेति चापरे ।

अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता ॥१९॥

किञ्चिदघातु आचत्वा मिश्रादेवीति सप्तमी ।

इमारुद्रेति दिवपालान्पूजयित्वा विचक्षणः ।

होमद्रव्याणि वामव्ये कुप्यत्सोपस्कराणि च ॥२०॥

शङ्खान्साश्चोदितान्श्चेतान्नेश्याम्या विन्यसेद् गुरुः ।

आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धिं यान्ति न सशयः ॥२१॥

हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृतिप्रणवेन च ।

अस्त्रैश्चैव समस्तानां न्यासोऽथ मार्गकामिकः ॥२२॥

अक्षतान्विष्टरञ्चोव अस्त्रेणैवाभिमन्त्रितान् ।

विष्टरेण स्पृशेद् द्रव्यान्यागमण्डपसमुत्तान् ।

अक्षतान्विकिरेत्पश्चादस्त्रपूतान्समन्ततः ॥२३॥

इसके अनन्तर दो दो कलश तीरण के समीप में निवेदित करने चाहिए ।

वस्त्र युग्म प्रयाति दो वस्त्रों से युक्त एव चन्दन आदि से समलङ्कृत हुए बहुत से पुष्पो तथा वितानों से समन्वित घोर पादि वर्ण से अभिमन्त्रित दिशाघो के पालक देव शास्त्र में दृष्ट कर्म के द्वारा पूजित होने चाहिए ॥१७॥ १८॥ 'त्रातारम्'—इन्द्र मन्त्र से घोर दूसरे 'अग्नि सूर्वा'—इस मन्त्र से, इन वृक्ष में दूसरी श्रुचा इतथैव प्रचारो—यह कही गई है । किञ्चिद् घातु आवास्या भिक्षा देवी—इस मन्त्रमी से—इमा रुद्र—इससे विचक्षण पुरुष को दिक्पाली का पूजन करना चाहिए । वायव्य दिशा में उपस्कर के सहित होम के द्रव्य रखते ॥१६॥२०॥ शास्त्र में कथित श्रेष्ठ शस्त्रों को नेत्रों के हेतु विन्यस्त करे । मासीकन के द्वारा समस्त द्रव्य मुट्टि को प्रा'न हो जाते हैं—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥२१॥ हृदय आदि अङ्गों का व्याहृति प्रणव के द्वारा न्यास करे घोर समस्तों का न्यास अस्त्र के द्वारा करे । यह न्यास समस्त कायनाभो के लिये होता है ॥२२॥ अक्षतों को घोर विष्टर को अस्त्र मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करे । याग मण्डप से समुत्त द्रव्यों का विष्टर से स्पर्श करे । फिर अस्त्र द्वारा पून किये हुए अक्षतों को चारों घोर फैलावे ॥२३॥

शक्नी दिशमवारम्भ यावदीशानगोचरम् ।

अववीर्याक्षतान्सर्वान्निषयेन्मण्डप तत ॥२४॥

गन्धार्यैरर्घ्यपात्रे च मन्त्रशाम न्यसेद् गुरु ।

तेनार्घ्यपात्रतोयेन प्रोक्षयेद् यागमण्डपम् ॥२५॥

प्रतिष्ठा यस्य देस्य तदारय कलश न्यसेत् ।

ऐशान्या पूजयेद् यान्ये अस्त्रेणैव च चङ्दनीम् ॥

कलश चङ्दनीञ्चैव ग्रहान्वास्तोष्पति तथा ॥२६॥

आसने तानि सर्वाणि प्रणवारय जपेद् गुर ।

सूत्रग्रीव रत्नगर्भ वस्त्रमुख्येन वेष्टितम् ॥

सर्वोपधि गन्धलिप्तं पूजयेत्कलशं गुरु ॥२७॥
 देवस्तु कलशे पूज्यो वर्द्धन्या वस्त्रमुत्तमम् ।
 वर्द्धन्या तु समायुक्तं कलशं भ्रामयेदनु ॥२८॥
 वर्द्धनीधारया सिञ्चन्नग्रतो धारयेत्ततः ।
 अग्न्यर्घ्यं वर्द्धनीं कुम्भस्थण्डिले देवमर्चयेत् ॥२९॥
 घटश्चावाह्यं वायव्या गणानां त्वेति सद्गणम् ।
 देवमीशानकोणे तु जपेद्वास्तुपतिं बुधः ॥
 वास्तोष्पतीति मन्त्रेण वास्तुर्दोषोपशान्तये ॥३०॥
 कुम्भस्य पूर्वतो भूतं गणदेवं वसि हरेत् ।
 पठेदिति च विद्यारचं कुर्यादालम्बनं बुध ॥३१॥
 योगे योगेति मन्त्रेण मन्तरं ज्वलने कुक्षौ ।
 आचार्यं ऋत्विजं साढ्वंस्नानपीठे हस्तया ॥३२॥

ऐन्द्री दिशा से भ्राम्य करके ईशान दिशा पर्यन्त अक्षतो का घब किरण
 कर इसके अन्तर मण्डप का निरन करावे । फिर गुरु को गन्धादि से युक्त
 अर्घ्य पात्र में मन्त्र ग्राम का ग्रास करना चाहिए । उस अर्घ्यपात्र के जल से
 सम्पूर्ण पात्र मण्डप का शोधण करे ॥२४॥२५॥ जित देवता की प्रतिष्ठा करनी
 हो उसके नाम का एक कलश ग्धस्त करे । ऐशानी दिशा में उसका यजन करे
 और साम्य दिशा में अस्त्र मन्त्र के द्वारा हो वर्द्धनी का यजन करे । कलश
 वर्द्धनी, ग्रह तथा वास्तोष्पति इन सबका ग्रामन पर गुरु प्रणव नाम का जाप
 करे । गुरु की चाहिए कि इस कलश के प्रीचा में सूत्र—मध्य में रत्न रख कर
 मुख्य वस्त्र से वेष्टित करे तथा सर्वोपधि एव गन्ध से प्रणिप्त कर कलश का
 पूजन करे ॥२६॥२७॥ देव का कलश में ही यजन करना चाहिए । कलश का
 पूजन कर वर्द्धनी से युक्त कलश को पीछे भ्रमित करे ॥२८॥ इसके पश्चात्
 वर्द्धनी की धारा से सिञ्चन करता हुआ आगे धारण करे । फिर वर्द्धनी और
 कुम्भ का अग्न्यर्घन करके स्थण्डिल में देव का समर्पण करे ॥२९॥ वायव्य में
 घट या आवाहन करके "गणानां त्वा"—इस मन्त्र से सद्गण देव को ईशान

कोण में जाकर करे । बुध याजक को "वास्तोष्मिनि"—इस मन्त्र के द्वारा वास्तु दोषों के उपशमनार्थ वास्तु पतिका जाप करना चाहिए ॥३०॥ कुम्भ के पूर्व भाग में भूत गणदेव के लिय बलि का आहरण करे । "पठेत्"—इसमें विद्याओं का बुध को प्रानम्भन करना चाहिए ॥३१॥ "योगे योग"—इस मन्त्र के द्वारा ज्वलन बुधो से सत्तरण करते हुए फिर ऋत्विजों के साथ प्राचार्य को स्नान पीठ पर हरण करना चाहिए ॥३२॥

विविधैर्द्रव्यैश्च पुण्याहजयमङ्गलैः ।

कृत्वा ब्रह्मरथे देव प्रतिष्ठन्ति ततो द्विजा ॥३३॥

ऐशान्यामानयेत्पीठ मण्डपे विन्यसेद् गुरु ।

भद्र वर्णैस्तथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु ॥

सस्नाप्य लक्षणै द्वारं कुर्व्याद् द्वाराभिवादनैः ॥३४॥

अधुतस्मिन्नाधुत कृत्स्नं वा ताम्रभञ्जने ।

अक्षिणी चाञ्जयेच्चास्य सुवर्णस्य शलाकया ॥३५॥

अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण नेत्रोद्घाटन्तु कारयेत् ।

लक्षणै क्रियमाणे तु नाम्नैक स्थापको वदेत् ॥३६॥

इममे गाङ्गमन्त्रेण नेत्रयो शीतलक्रिया ।

अग्निमूर्द्धोति मन्त्रेण दद्याद्वल्मोकमृत्तिकां ॥३७॥

विल्वोदुम्बरमश्वत्थं वटं पालाशमेव च ।

यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चवपायकम् ॥३८॥

पञ्चगव्यं स्नापयेच्च सहदेव्यादिभिस्ततः ।

सहदेवी बला चं व सतमूली सतावरी ॥३९॥

कुमारी च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च ।

याम्नोपधीति मन्त्रेण स्नानमापधिमञ्जलं ॥

या. फलिनीति मन्त्रेण फलस्नान विधीयते ॥४०॥

अनेक भक्ति के ब्रह्म घोषों के द्वारा तथा पुण्याह और जय मङ्गल ध्वनियों के द्वारा देवता को ब्रह्मरथ में स्थित कराके फिर द्विजगण धनिष्ठ करते

है ॥३३॥ उस पीठ को गुरु को चाहिए कि ऐशानी दिशा में ले जावे धीरे फिर माण्डव में उसका न्यास करे । “अद्द कर्ण” — इससे स्नान कराके इसके अनन्तर सूत्रबन्धनज से सस्नपन कराकर दूरभि बाहनों से लक्षण में द्वार करे ॥३४॥ काश्य पात्र में अथवा ताम्र पात्र में मधु, घृत से युक्त करके सुवर्ण चालाका से देवता के नेत्रों को अञ्जित करे ॥३५॥ “अग्नि ज्योति” — इस मन्त्र का उच्चारण करके देव के नेत्रों को उद्घाटित करना चाहिए । लक्षण के किये जाने पर स्थापक एक को नाम द्वारा बोले ॥३६॥ “इमस्मै गाङ्गा” — इत्यादि मन्त्र से नेत्रों की शीतल किया करे । फिर “अग्निपूर्वा” — इस मन्त्र से बाँनी की मृत्तिका को अर्पित करे ॥३७॥ “यज्ञाय” — इत्यादि मन्त्र के द्वारा शिव-वहुम्बर-अश्वत्थ-बट और पलाश इनके पञ्च दण्डों को समर्पित करे ॥३८॥ पहिले पञ्च गव्य से स्नान करावे । पञ्चगव्य में गो को पाँच वस्तुएँ होती हैं जिन में दूध-दधि, घृत, योमूत्र धीरे गोपय ये हैं । इनके धनान्तर सहदेवी आदि से स्नान करावे जिनमें सहदेवी—बला—गतमूली—शतावरी—कुमारी—गिलोय—सिन्धु—ज्याष्टी ये सब हैं । इन समस्त घोषधियों जल जल से ‘या मायघोति’ — इत्यादि मन्त्र से स्नान कराना चाहिए । ‘या, कलाभि’ — इत्यादि मन्त्र के द्वारा, फलों द्वारा स्नान का विधान होता है ॥३९॥४०॥

द्रुपदाशिवेति मन्त्रेण कार्थ्यं मृद्वर्तनं कुर्वन् ।
 कलशेषं च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुकमात् ॥
 रत्नानि चैव धान्यानि ओषधिं चतुष्टयिकां ॥४१॥
 समुद्राश्चैव विन्यस्य चतुरश्रतुरो दिशः ।
 क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्येति वा पुनः ॥४२॥
 आप्यायस्व दधिकालो या ओषधीरित्येति च ।
 तेजोऽसीति च मन्त्रश्च कुम्भार्चवाभिमन्त्रयेत् ॥
 समुद्रारयश्चतुर्भिश्च स्थापयेत् कलशे पुनः ॥४३॥
 स्नातश्चैव सुवर्गश्च धूपो देवश्च गुग्गुलुः ।
 अभिषेचाम कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत् ॥४४॥

पृथिव्या यानि तीर्थानि स्रितं सागरास्तथा ।
 या ओषधीति मन्त्रेण कुम्भाच्चर्वाभिमन्त्रयेत् ॥
 तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सवपातकं ॥४५॥
 अभिषिच्य समुद्रैश्च चार्घ्यं दद्यात्ततः पुन ।
 गन्धद्वारेण गन्धश्च न्यास वै वेदमन्त्रकै ॥४६॥
 स्वशास्त्रविहितै प्रार्थनैर्म मन्त्रेति वक्ष्यकम् ।
 कविहाविति मन्त्रेण अन्त्ये-मण्डप शुभम् ॥४७॥

वृष पुरुषो के द्वारा 'द्रुपदा शिव'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्धर्तिव करना चाहिए । कलशो में विन्यास करके उत्तरादि में अनुक्रम में करे । रत्न, धान्य, जीवधि, तप्तपुष्पिका, चार समुद्र, चार दिशाएँ, क्षीर, दधि जो कि क्षीरोद और घृताद का है । इन सबका विन्यास कर "भात्यामस्व दधिकन्तो" "या ओषधीरिति"—"तेजोक्षीनि"—इन मन्त्रों से कुम्भ को अभिमन्त्रित करे । फिर चार समुद्र सशक कलशा से स्नान कराना चाहिए ॥४१॥४२॥४३॥ स्नान कराये हुए और सुन्दर पोशाक धारण करके जाने पर भूगल की धूप देनी चाहिए । कुम्भो में अभिषेक करने के लिये उन उन तीर्थों का विन्यस्त करना चाहिए ॥४४॥ पृथ्वी मण्डल में ब्रितने जो जो भी तीर्थ, नदियाँ तथा सागर हैं और जो जो भी ओषधियाँ हैं उनको "या ओषधि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कुम्भ में अभिमन्त्रित करे । उस अभिमन्त्रित किये हुए जन से जो स्नान करे वह समस्त पापको से मुक्त हो जाता है ॥४५॥ समुद्रो में अभिषेक करके फिर प्रक्षय देना चाहिए । गन्ध द्वारा दुराघर्षों—इत्यादि मन्त्र के द्वारा गन्ध का न्यास करे और वेदीक्त मन्त्रों के द्वारा तथा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा "इमं मन्त्रः"—इमं मन्त्रं देवे तथा कविहो—इस मन्त्र से फिर शुभ मण्डप में ले जावे ॥४६॥४७॥

सम्भवायेति मन्त्रेण शम्पाया विनिवेशयेत् ।
 विश्वनाथशुभमन्त्रेण कुर्यात् सवन्निवृत्तम् ॥४८॥

स्थित्वा चैव परे तत्त्वे मन्त्रन्यासन्तु कान्येत् ।
 स्वशास्त्रविहितो मन्त्री न्यासस्तस्मिन्स्तथोदित ॥४६॥
 वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीय स्वभावतः ।
 यथाशास्त्र निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत् ॥४७॥
 अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
 कलश सहिरण्यश्च शिरस्याने निवेदयेत् ॥४८॥
 स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत् ।
 स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैर्वेदोक्तवायवा गुरु ॥४९॥
 श्रीसूक्त पावमानश्च घास दास्य सहाजिनम् ।
 वृषाकपिश्च मित्रश्च बहुश्च पूर्वतो जपेत् ॥५०॥
 रुद्र पुरुषसूक्तश्च श्लोकाध्यायश्च सुक्रियः ।
 ब्रह्माण पितृमंत्रञ्च अघ्वय्युर्दक्षिणे जपेत् ॥५१॥

किर "शास्त्रवाद"—इत्यादि मन्त्र मे शास्त्र मे निवेदित करावे ।
 'विश्वतःप्रणव'—इत्यादि मन्त्र से सख निष्कल करे ॥४८॥ परतएव मे स्थिर
 होकर मन्त्र का न्यास करावे, अपने शास्त्र से विहित मन्त्री का न्यास उम प्रकार
 से कहा गया है ॥४९॥ वस्त्र से आच्छादित करके स्वभाव से पूजन करना
 चाहिए । शास्त्र के अनुसार जो निवेदन करने के योग्य नैवेद्य हैं उन्हें पाद के
 मूल मे समर्पित करे ॥५०॥ इसके अनन्तर प्रणव से संयुक्त वस्त्रो के युग्म से
 वेष्टित किये हुए और हिरण्य से संयुक्त कलश को शिर के स्थान मे निवेदन
 करे ॥५१॥ फिर कुण्ड के समीप मे स्थित होकर अग्नि की स्थापना करे ।
 अग्नि की स्थापना वेद मे विहित मन्त्रों के द्वारा गुरु की करता चाहिए ॥५२॥
 श्री सूक्त—पावमान—घास दास्य सहाजिन—वृषाकपि और मित्र इन बहुत ऋषियों
 को पूर्व की ओर जपे अर्पित् जाप करे या पढ़े ॥५३॥ रुद्र पुरुष सूक्त और
 श्लोकाध्याय, ब्राह्मण और पितृ मंत्र को मुन्दर क्रिया करने वाला अघ्वयु
 दक्षिण दिशा मे जप करे ॥५४॥

वेदवन वामदेव्य ज्येष्ठसामग्धनरम् ।
 भेरुष्टानि च सामानि छन्दोग पश्चिमे जपेत् ॥५५॥
 मघवसिरमश्चैव कुम्भसूक्तमपर्वण ।
 नीलरुद्राश्च मन्त्रश्च मघवश्चोत्तरे जपेत् ॥५६॥
 कुण्ड चाश्वेण सप्राज्य घाचार्यस्य विशेषतः ।
 ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा ॥
 जाततेद नमनीय अग्रतस्तन्निवेशयेत् ॥५७॥
 अश्वेण उवाच येद्वह्नि वचनेन तु वेष्टयेत् ।
 अमृतीकृत्य त पश्चान्मन्त्रं सर्वेष्वेव देशिक ॥५८॥
 पान गृह्य करान्याश्च कुण्ड भ्राम्य तत पुनः ।
 वैष्णवेन तु योगेन पर तेजस्तु निक्षिपेत् ॥५९॥
 दक्षिण स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताश्चोत्तरेण तु ।
 साधारणान् मन्त्राणां स्वशास्त्रविहितेन वा ॥
 त्रिधु विधु ततो दद्यात्परिधिं विष्टरं सह ॥६०॥
 ब्रह्मादिगणहरेणानां पूज्या साधारणान् तु ।
 दर्भेषु स्थापयेद्वह्नि दर्भेष्वेव परिवेष्टितम् ॥
 दर्भतोयेन सस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्धयति ॥६१॥

वेदवन, वामदेव्य ज्येष्ठ साम रघनर, भेरुष्ट सामों को छन्दोग
 पश्चिम दिशा में जप करे ॥५५॥ मघवं सिर, कुम्भ सूक्त जो कि मघवोक्त है—
 नील रुद्रों को घोर मंत्र का मघवं अतः उत्तर दिशा में जप ॥५६॥ अश्व मन्त्र
 के द्वारा कुण्ड भली-भाँति प्रोक्षण करके हवा विशेष रूप से घाचार्य का सम्प्रो-
 क्षण करके ताम्र के पात्र में मघवा शराव (सकोरा) में मघवा विभव के
 अनुसार जो भी हो अग्नि का साक्षर जपे जो घोर सन्निवेशित करे ॥५७॥
 अश्व मन्त्र में अग्नि की जवावे घोर वचन में वेष्टन करे । इसके पश्चात् घाचार्य
 मघव मन्त्रों के द्वारा अमृतीकरण करे ॥५८॥ दानों हाथों से पात्र की दृष्टि
 कर फिर कुण्ड के सब ओर भ्रमण करावे घोर वैष्णव योग के द्वारा परतेज

का निशेप करना चाहिए ॥५६॥ साधारण मन्त्र के द्वारा या अपने शास्त्र में विहित के द्वारा दक्षिण में ब्रह्म को और उत्तर में प्रसीता को स्थापित करे । इसके अनन्तर दिशाओं में बिष्टरो सहित परिधि देनी चाहिए ॥६०॥ साधारण तथा ब्रह्मा, विष्णु हर और ईशान का पूजन करना चाहिए । फिर दमों के द्वारा परिवेष्टित बलि को दमों में स्थापित करना चाहिए । दमों के जल से मस्पर्श किया हुआ वह मन्त्र से हीन भी हो तो वह विशुद्ध हो जाता है । ॥६१॥

प्रागग्र, उदगग्र इव प्रत्यग्र रखेष्टित ।
वितर्तर्वेष्टितो बलि स्वयं सान्निध्यता प्रजेत् ॥६२॥
अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित् ।
आचार्या केचिदिच्छन्ति जातकर्मादिनन्तरम् ॥६३॥
पवित्रन्तु तत कृत्वा कुर्वादाज्यस्य सस्कृतिम् ।
आचार्योऽज्य निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम् ॥६४॥
आज्यभागाभिधारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये ।
पञ्च पञ्चाहुतौहुत्वा आज्येन तदनन्तरम् ॥६५॥
गर्भाधानादितस्तावद्यावद् भोदानिक भवेत् ।
स्वशास्त्रविहितमन्त्रं प्रणवेनाप्य होमयेत् ॥६६॥
तत पूरार्हाति दत्त्वा पूरार्त्तपूरामनोरय ।
एवमुत्पादितो बलि सर्वकर्मसु सिद्धिद ॥६७॥
पूजयित्वा ततो बलि कुण्डेषु बिहरेत्तथा ।
इन्द्रादीनां स्वमन्त्रं च तथाहुतिशत शतम् ॥६८॥

प्रत्यग्र, प्रागग्र, उदगग्र, बलिष्टित और वितर्तदमों से वेष्टित बलि स्वयं ही सान्निध्य को प्राप्त जाता है ॥६२॥ मन्त्र से जाता ने अग्नि को रक्षा के लिये जो भी कर्म कहा है उसे कुछ आचार्य जातकर्मा के अनन्तर चाहते हैं ॥६३॥ इसके पश्चात् पवित्र करके घृत का संस्कार करना चाहिए । इसके अनन्तर आचार्य देख कर भी नीराज भी अभिमन्त्रित करे । आज्य (घृत)

को मिद्धि वे लिय आज्य के घादि भाग से अभिधारा के अन्त पयन् अवस्थाए
करे और फिर उस अज्य से पाँच पाँच घाहुतियों द्वारा हवन करे ॥६४॥६५॥
गर्भाधान से घादि लेकर जब तक गोदानिक होवे अपने शस्त्र में विहित मन्त्रों
के द्वारा या प्रणव से होम करना चाहिए ॥६६॥ इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर
पूर्णत्यूष मनोरथ हावे । इस प्रकार से उत्तरदिशि बलि सम्पूर्ण वर्षों में 'मिद्धि
वा प्रदान करने वाला होता है ॥६७॥ इसके पश्चात् घग्नि का पूजन करके
पुण्डरीक विह्वन करे । इन्द्र घादि देवों की अरुने अपने मन्त्रों के द्वारा सो सो
घाहुतियों देव ॥६८॥

पूर्णाहुति शतस्यान्त सर्वेषां च होमयेत् ।
स्वामाहुतिमयाज्येषु होता तत्कलशे न्यसेत् ॥६९॥

देवताश्च मन्त्राश्च तथैव जातवेदसम् ।
आत्मानमेकत कृत्वा तत पूर्णा प्रदापयेत् ॥७०॥

निष्कृत्य वहिराचार्यो दिवपालानां प्रति हरेत् ।
भूतानां च देवानां नागानां च प्रयोगत ॥७१॥

तिलाश्च समिधश्च होमद्रव्य द्वय स्मृतम् ।
आज्य तयो सहकारि तत्प्रदान यदङ्गयो ॥७२॥

पुरुषसूक्त पूर्वोक्तं रुद्रश्च तु दक्षिण ।
ज्येष्ठसाम च भीरुण्ड तन्मयामीति पश्चिमे ॥७३॥

नीलरुद्रो महामन्त्र बुधसूक्तमथर्वण ।
ह्रत्वा सहस्रमेकं च देव शिरसि मत्पयत् ॥७४॥

एव मध्ये तथा पाद पूर्णाहुत्या तथा पुन ।
शिरस्थानेषु जुहुयादाविशेषं अनुक्रमात् ॥७५॥

देवानामाग्निमन्त्रं च मन्त्रं च अथवा पुन ।
स्वनास्त्रविहितैर्विधि गायत्र्या वाय त द्विजा ॥

गायत्र्या वायवाऽऽचार्यो व्याहृतिप्रणवेन तु ॥७६॥

एवं होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्तु देशिक ।

चरणावग्निमीले तु ईषित्वो गुल्फयोः स्थिताः ॥७७॥

सो अग्नितियो के घन में सबके मिले पूर्णाहुति का होम करना च हिये।

इसके घनन्तर अपनी आहुति को तोता आग्यों में उस कलश में न्यास करे ।

॥६६॥ देवता, मन्त्र और अथर्ववेद तथा आत्मा को एकत्र करके फिर पूर्णाहुति

देनी चाहिए ॥७०॥ आचार्य को बाह्य निकाल कर दिशानों के निमित्त

घनि का हरण करना च हिए । भूतो को—देवों तथा माओं को सबको बलि देवे

॥७१॥ निम और ममिवा ये दो होम के द्रव्य हैं । इन दोनों द्रव्यों का घूव

गृहकारी पदार्थ होता है । बिनके बड़ो में उसका प्रधान होता है ॥७२॥ पूर्व में

पुरुष सूक्त और वक्षिण में रुद्र सूक्त, ज्येष्ठसाम और भीरुण्ड तन्नयामि, यह

पश्चिम में नील रुद्र महामन्त्र, कुम्भसूक्त और घर्गण इन सब एक-एक को

सहस्र बार हवन कर शिर में देव को कल्पित करे ॥७३॥७४॥ इस प्रकार में मध्य

में तथा पाद में फिर उसी प्रकार से पूर्णाहुति द्वारा शिर स्थानों में हवन करना

चाहिए और अनुक्रम से पाविष्ट करे ॥७५॥ देवों का आदि मन्त्रों के द्वारा अथवा

म्वसास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या मायत्री के द्वारा अथवा द्विज एवं आचार्य

प्रणव एवं व्याहुति के द्वारा इस प्रकार से होमकी विधि को सुवम्पद करके

फिर आचार्य मन्त्रों का न्यास करे । चरणों में 'घनि मीले'—इस मन्त्र का

न्यास करे गुल्फों में 'ईषित्वो'—इसका न्यास करे ॥७६॥७७॥

अग्नयायाहि जघे द्वे शस्त्रोदेवीति जानुनी ।

बृहद्रथन्तरे ऊरु उदरंस्थानिलो न्यसेत् ॥७८॥

दीर्घायुष्टाय हृदये श्रीञ्च ते गलके न्यसेत् ।

आतारामिन्द्र वक्षे च नेशाम्यान्तु त्रियुगमकम् ॥

मूर्द्धा भव तथा मूर्ध्नि ह्यालम्नाद्धोममाचरेत् ॥७९॥

उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ग्रहाण. पते ।

वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम् ॥८०॥

पिण्डिकालभनं कृत्वा देवस्यत्वेति मन्त्रवित् ।

दक्षामान्सह रत्नैश्च धानूनीपवयस्तथा ॥

लोहबीजानि सिद्धानि पञ्चाद्देवन्तु विन्यसेत् ॥८१
 न गर्भं स्थापयेद्देव न गर्भन्तु परित्यजेत् ।
 ईपन्मध्य परित्यज्य ततो दोषापन तु तत् ॥८२
 तिलस्य तु समाश्रन्तु उत्तर किञ्चिदानयेत् ।
 ॐ स्थिरो भव शिवो भव प्रजाम्यश्च नमो नम ॥८३
 देवस्य त्वा सवितुर्वं पद्भ्यो वं विन्यसेद् गुरु ।
 तन्ववर्णकलामात्र प्रजानि भुवनात्मजे ॥८४
 पद्भ्यो विन्यस्य सिद्धार्थं ध्रुवार्थैरभिमन्त्रयेत् ।
 सम्पातकलशेनैव स्थापयेत्सुप्रक्षितम् ॥८५

दोनो जाधों में 'अग्न आयाहि'—इसका जानुधों में 'सखी देवी'—इस मन्त्र का घोर उदरो में आतिल—इसका न्यास करे ॥७८॥ हृदय में 'दीर्घा-गुह्याय'—इस मन्त्र का घोर गले में 'श्रीपत'—इसका न्यास करे । वक्षस्थल में 'त्रातारमिन्द्राय'—इसका एवं दोनो नेत्रों में 'त्रिपुण्णकार'—इसका न्यास करना चाहिए । मूढभिज'—इससे मूढों में न्यास करे और घालन हीन करे ॥७९॥ इसके अनन्तर देव का उत्पादन करे तथा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मण पते'—इस मन्त्र से करना चाहिए । वेद पुण्याह शब्द के द्वारा प्राप्तादो की प्रदक्षिणा करे ॥८०॥ मंत्रों के देता को 'देवस्यत्व'—इससे पिण्डितान्मभन करके रस्त्रों के सहित दिक्पात्रों को—घातुमो को—घोषधियों को और सिद्ध लोह बीजों को विन्यस्त करके पाँचे देव का विन्यास करना चाहिए ॥८१॥ गर्भ में देव को स्थापित न करे और गर्भ का परित्याग भी नहीं करना चाहिए । पोडा सा मध्य का परित्याग करके इसके अनन्तर दोषापन करे ॥८२॥ तिल का कुछ समान उत्तर लावे । गुरु को 'ॐ स्थिरोभव शिवोभव प्रजाम्यश्च नमो नम । देवस्य त्वा सवितुर्वं पद्भ्यो वं'—इससे विन्यास करना चाहिए । भुवनारमत्र में तरव वर्ण कलामात्र प्रजनों का पद्भ्यो—इससे विन्यास करने ध्रुवार्थों में सिद्धार्थों को अभिमन्त्रित करे । सुप्रक्षित को सम्पात कलश के द्वारा ही स्थापन करावे ॥८३॥८४॥८५॥

दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत्
 अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य सती देव क्षमापायेत् ॥८६॥
 पात्रं बस्त्रयुगं छत्रं तथा दिव्यामुरीयकम् ।
 ऋत्विग्मयश्च प्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तिः ॥८७॥
 चतुर्थी जुहुयात्पश्चाद्यजमानं समाहितम् ।
 आहुतीनां शतं हुत्वा ततः पूर्णं प्रदापयत् ॥८८॥
 निष्कम्य बहिराचार्याः दिक्पालानां वलिं हरेत् ।
 आचार्यं पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसृजयेत् ॥८९॥
 यागान्ते कपिला दद्यादाचार्याय च चामरम् ।
 मृकुटं कुण्डलं छत्रं केयूरं फटिसूत्रकम् ।
 व्यञ्जनं ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कारं समण्डलम् ॥९०॥
 योजनञ्च महतीं कुप्यति कृतकृत्यश्च जायते ।
 यजमानो विमुक्तः स्थावस्थापकस्य प्रसादतः ॥९१॥

फिर दीशो—धूपो घोर सुगन्धो क हाग घोर नैवेद्या के द्वारा पूजन करना चाहिए अर्घ्य देकर—नमस्कार करके हमके प्रमन्नर देवता से क्षमापन करने की क्रिया करे ॥८६॥ पात्र—बस्त्र युग्म तथा दिव्य अमुरीयक घोर शक्ति पूर्वक दक्षिणा देनी च हिए ॥८७॥ उसक पीछे यजमान को पूर्ण सावधान होकर चतुर्थी का हवन करना चाहिए । इस प्रकार से एक सौ आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति दवे ॥८८॥ आचार्य बाहिर निकल कर दिक्पालों के लिये बलि का हरण करे । आचार्य पुष्प हाथों में लेकर 'क्षमस्व'—इन्से विमर्जन करे । याग की समाप्ति हो जाने पर आचार्य को एक कपिला गौ का दान करे तथा चामर मुकुट—कुण्डल—छत्र—केयूर—फटिसूत्र—व्यञ्जन एवं सोपस्कार तथा समण्डल ग्राम वस्त्रादि देवे । इससे यजमान कृतकृत्य होता है घोर स्थापक के प्रासाद से विमुक्त हो जाता है ॥८६॥९०॥९१॥

२३ —महाङ्गयोग कथन

मर्गादिकुट्टरिश्चैव पूज्यं स्वायम्भुवादिभिः ।

प्रिप्रार्थं, स्वेन धर्मेण तद्धर्मं न्यासं च शृणु ॥१॥

यजन याजन दान ब्राह्मणस्य प्रतिग्रह ।
 अघ्यापनश्चाध्ययन पटकर्माणि द्विजोत्तमे ॥२॥
 दानमध्ययन यज्ञो धर्मं क्षत्रियवैश्ययो ।
 दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिवैश्यस्य शस्यते ॥३॥
 शुश्रूषव द्विजातीना शूद्राणा धर्मसाधनम् ।
 कार्त्तवर्मं तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपि भर्तत ॥४॥
 भिक्षाचर्याथ शुश्रूषा गुरो स्वाध्याय एव च ।
 सन्यासकर्माग्निकार्यैश्च धर्मोऽय ब्रह्मचारिण ॥५॥
 सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् ।
 ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्पर ॥६॥
 याचीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
 उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिक ॥७॥
 अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दान सुराचनम् ।
 गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽय द्विजमत्तन ॥८॥

ब्रह्माजी ने कहा—सर्गादि के करने वाले हरि स्वायम्भुव आदि के द्वारा
 तथा विप्रादि के द्वारा अपने धर्म से पूजने के योग्य हैं । हे व्यास ! धर्म उस
 धर्म का श्रवण करो ॥१॥ यजन करना—यज्ञ कराना—दान लेना—ब्राह्मणों
 को दान देना—वेद-शास्त्रों का अध्ययन करना तथा अघ्यापन कराना ये द्विज के
 श्रेष्ठ धर्म होते हैं ॥२॥ दान देना—अध्ययन करना और यज्ञ धर्म
 करना—ये क्षत्रिय और वैश्य के धर्म हैं । क्षत्रिय का कर्म दण्ड देना तथा
 वैश्य का धर्म कृषि करना प्रधान कहा जाता है ॥३॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और
 वैश्य इन द्विजानियों को सेवा करना ही शूद्रों का धर्म साधन कर्म होता है ।
 तथा शूद्रों का कार्त्तवर्म और धर्म से अपाहि यज्ञ भी जीविका का साधन होता
 है ॥४॥ भिक्षाचरण करना—गुरु की सेवा करना और स्वाध्याय करना—
 सन्यास धर्म और अग्नि कार्य हवनानि ये ब्रह्मचारी के धर्म कृत्य होते हैं ॥५॥
 समस्त आश्रमों के दो प्रकार होते हैं । दो प्रकार से चार भेद होते हैं । ब्रह्म

पारी—उप पुर्वाणु—नैष्ठिक और ब्रह्मतत्पर होते हैं ॥६॥ जो विधिपूर्वक गुह के पास ब्रह्मवर्ष विधि से रह कर वेदों का अध्ययन करे और फिर समावर्त्तन कर के गार्हस्थ्य आश्रम को ग्रहण करता है उसे उपपुर्वाणु जानना चाहिए । जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करके मरण पर्यन्त ब्रह्मवर्ष का पालन करता है वह नैष्ठिक होता है ॥७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अग्नि कर्म—प्रतिदिवस की मत्कारपूर्वक सेवा—यज्ञ करना—दान देना और देव पूजन करना यह गृहस्थ का सक्षेप में धर्म बड़ा गया है ॥८॥

उदासीन साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ।
 कुटुम्बभरणे युक्त साधकोऽपि गृही भवेत् ॥९॥
 ऋणानि शीघ्रपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ।
 एकाकी यस्तु विचरेदुदासीन स मौनिक ॥१०॥
 भूमी मूलफलादिव स्वाध्यायस्तप एव च ।
 सविभागो ययान्याय धर्मोऽयं वनवासिन ॥११॥
 तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च ।
 स्वाध्यायं चैव निरतो वनस्थस्त्वापसोत्तम ॥१२॥
 तपसा कपितोऽक्षयं यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।
 सन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थित ॥१३॥
 योगाभ्यामरतो नित्यमाकर्षुर्जितेन्द्रियः ।
 ज्ञानाय वर्तते भिक्षु प्रोच्यते पारमेष्ठिक ॥१४॥
 यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यवृत्तो महामुनिः ।
 सम्यक् चन्दनमम्पन्न स योगी भिक्षुश्च्यते ॥१५॥
 भैक्ष्य श्रुतश्च मौनित्व तपो ध्यानं विदीपत ।
 सम्यक्च ज्ञानवैराग्य धर्मोऽयं भिक्षुके मत ॥१६॥

उदासीन और साधक भेद में गृहस्थ भी दो प्रकार का हुआ करता है । जो घर में कुटुम्ब के भरण-पोषण में युक्त रहा करता है वह साधक गृही होता है ॥९॥ देव ऋषि और पितर इन तीनों के ऋणों को दूर कर शयति चुका कर

द्विरक्षयती भाषां प्रोह घन-वन्द्यं वा त्याग करके एककी जो विवरण किया करता है वह मौखिक उदासीन गुणों होता है ॥१०॥ घन में निवास करने वाले का यह धर्म होता है कि प्रीति में शयन करे—घन के मूल और फलों का भोजन करे—स्नानाय करे—तपश्चर्या करे और स्यान्त्याय मविभाग करे ॥११॥ जो घन में तपश्चर्या करता है—देवों का यजन किया करता है—हवन करता है और महा स्वाध्याय में निरत रहता करता है वह वनवासियों में परमश्रेष्ठ मान्य होता है ॥१२॥ तपस्या में जो अत्यन्त वर्धित होता हुआ निरन्तर ध्यान में ही परावृत्त रहता है उसे धानप्रस्थ आश्रम में रहने वाला सम्पात्ती ही समझना चाहिए ॥१३॥ नित्य ही योग व ध्यान में रति रखने वाला और सच्चिदानन्द परावृत्त बन कर इच्छा वाचा—इन्द्रियों की जीत कर वरा में रहने वाला ज्ञान के निचे ही वस्तु न करता है वह पारमेष्ठिक भिक्षु कहा जाता है ॥१४॥ जो ब्राह्मण में ही रति रखने वाला—नित्य कृत मन्त्रक तथा चन्दन मन्त्रमन्त्र मन्त्र मुनि होता है वह मोक्षी भिक्षु कहा जाता करता है ॥१५॥ भिक्षा करना—ध्यान तथा वेद का ज्ञान—मौन वन पारण करना—परमेश्वर-विशेष रूप से ध्यान लगाना और ज्ञानी ज्ञानि ज्ञान एवं वैराग्य का रहना ये ही भिक्षु का धर्म कहा गया है ॥१६॥

ज्ञानमन्यानिनः केचिद् वेदमन्यासिनोऽपरे ।

वर्मसन्त्यासिनः केचित्त्रिविध पारमेष्ठिक ॥१७॥

योगी च त्रिविधो श्रेयो भौतिक क्षत्र एव च ।

तृतीयोऽन्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्तिसमाश्रित ॥१८॥

प्रथमा भावना पूर्व मोक्षे दुष्करभावना ।

तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेष्ठरी ॥१९॥

धर्मात्मजायते मोक्षो ह्यर्पात् कामोऽभिजायते ।

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं नमं वैदिकम् ।

ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्वात्प्रवृत्तं चान्तिदेवदृत् ॥२०॥

क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्याम एव च ।
 भार्जवश्चानसूया च तीर्थनिष्ठरणं तथा ॥२१॥
 सत्य सन्तोष आस्तिक्यं यथा चेन्द्रियनिग्रहः ।
 देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥२२॥
 अहिंसा प्रियवादित्वमपेक्षुन्यमरुक्षता ।
 एते आश्रमिका धर्माश्चानुवर्ण्यं ब्रवीम्यतः ॥२३॥
 प्राजापत्य ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
 स्थानमेन्द्रं क्षत्रियाणां नग्रामेष्वपत्तायिताम् ॥२४॥
 वैश्यानां मास्तं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम् ।
 गन्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारे च वर्त्तताम् ॥२५॥
 अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
 स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥२६॥

यह पारमेश्विक तीन प्रकार के होने हैं—कुछ तो ज्ञान सन्यासी होते हैं
 पर्याप्त ज्ञान के बल से हृदय में सबका पूर्ण त्याग भाव रखने वाले होते हैं—
 दूसरे वैद सन्यासी दृष्टा करते हैं और तीसरे प्रकार के धर्म सन्यासी होते
 हैं ॥१७॥ योगी भी तीन प्रकार के होते हैं—भौतिक योगी—अन्न योगी और
 तृतीय योगभूति समाप्ति भक्त्याधर्मी होता है ॥१८॥ प्रथम में प्रथमा भावना
 होती है—भोक्त में दुष्कर भावना होती है और तीसरे में अन्तिम पारमेश्वरी
 भावना दृष्टा करती है ॥१९॥ धर्म से भोक्त दृष्टा करता है और धर्म से काम
 की उत्पत्ति होती है । इस तरह से यह बौद्धिक धर्म प्रवृत्ति परक और निवृत्ति-
 परक दो प्रकार का होता है । जो ज्ञानपूर्वक कर्म होता है वह निवृत्ति परक
 होता है और जो अग्नि एव देव परक कर्म होता है वही प्रवृत्ति कर्म कहा जाता
 है ॥२०॥ क्षमा—दम—दया—दान—लोभ का अन्त्यास—सरलता—अनसूया व्यर्थ
 दूसरों के दोषों का प्रकट करने का अभाव—तीर्थों का घटन—सत्य—सन्तोष—
 आस्तिकता की भावना—इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना—देवताओं का समर्पण—
 विशेष रूप से ब्राह्मणों की पूजा—अहिंसा—प्रिय बोधना—विशुद्धता का न होना—

सुखायन का अभाव ये मन्त्र ध्यात्रियों वालों के धर्म होते हैं । अतएव मैं अब
 चतुर्वैद्य को बनलाता हूँ । ११॥२॥ ॥२३॥ क्रिया वाले ब्राह्मणों का प्राजापय
 स्थान कहा गया है । सप्तामी में पलायन न करने वाले शवियों का ऐन्द्र स्थान
 कहा गया है । अपने धर्म का अनुवर्त्तन करने वाले वैद्यों का भास्व स्थान
 होता है । परिचर्या में सबदो सत्जन रहने वाले धृष्टा का वायव्य स्थान बताया
 गया है ॥२४॥२५॥ ऊर्ध्व रतन घटठासी सहस्र ऋषियों का जो स्थान कहा
 गया है वही गुरुवामियों का होता है ॥२६॥

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थानं तदं यतीकनाम् ।
 यतीनां यत्तचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतताम् ।
 आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं यन्मानवर्त्तने मुनि ॥२७॥
 योगिनाममृतस्थानं व्योमाख्यं परमाधरम् ।
 आनन्दमेश्वरं यन्मान्युक्तो नावर्त्तने नर ॥२८॥
 मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञानात् सत्तेपात्तद्वदे शृणु ।
 यमा पञ्चत्यहिताद्या अहिता प्राप्ताहितात् ॥२९॥
 मत्स्य भूतहितं वायव्यमस्तेयं स्वग्रहं परम् ।
 अर्मधुन ब्रह्मचर्यं सवेत्यागोऽपरिग्रहं ॥३०॥
 नियमा पञ्च सत्त्वाद्या वाह्यामाम्बनर द्विधा ।
 गोच सत्यश्च सत्योपस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहं ॥३१॥
 स्वाध्याय स्यान्मन्त्रजप प्रणिधानं हरेयजि ।
 आसनं पद्मवाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जप ॥३२॥
 मन्त्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः ।
 एव द्विधा त्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकं स च ।
 पुम्भवो निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचयस्त्रिधा ॥३३॥

सप्तर्षियों का जो स्थान होता है यह स्थान बन में रहने वाले यतियों
 का होता है जो यत्तचित्त होते हैं और न्यास करने वाले तथा ऊपर रेता होते
 हैं । यह अमृत ब्रह्म स्थान है जहाँ मन्त्र मुनि पुरातनचित्त नहीं हुआ करता

है ॥२७॥ योगियों का शोभमङ्गल परमाक्षर अमृत स्थान होता है । वह आनन्दमय तथा ऐश्वर्य स्थान है जहाँ से फिर मानव का पुनरावर्तन दोन सप्ताह में नहीं होता है ॥२८॥ आठ यज्ञों के विशेष ज्ञान से भुक्ति हुम्ना करती है । उसे मैं अब संक्षेप में बतलाता हूँ । उसका श्रवण करो । अहिंसा यदि पवित्र योग होने है । प्राणिमयी की कायिक वाचिक एवं मानसिक हिंसा का न करना ही अहिंसा बही जाती है ॥२९॥ भूतो का हित करने वाला वाक्य मत्स्य होता है । पराई वस्तु का न ग्रहण करना प्रत्येक है । मैत्र्यु का न करना ब्रह्मचर्य होता है । समस्त वस्तुओं का परिग्रह न करना ही त्याग है ॥३०॥ मत्स्य आदि पवित्र नियम होने हैं । वे बाह्य और अन्तर के भेद से दो प्रकार के होते हैं । शीत—मत्स्य एवं शरीर है—पञ्चर्या—इन्द्रियो का निग्रह है—स्वाध्याय—मन्त्रों का जप है—प्रणिधान—हरि का ध्यान है—पञ्चक आदि आसन हैं—वायु पर जप प्राप्त कर लेना ही प्राणायाम होता है ॥३१॥३२॥ मन्त्र के ध्यान से जी मुक्त होता है वह भगवंत कहा जाता है । इस प्रकार से वह दो एवं तीन प्रकार का है । पूरण करने से वह पूरक होता है । निभज होने से शुम्भक और रेवन से रेचक कहा जाता है ॥३३॥

सपुद्गादिशमात्र म्यावतुविद्यतिक पर ।

पट्त्रिगन्मात्रिक श्रेष्ठ प्रत्याहारश्च रोषनम् ॥३४॥

ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यान स्याद्वारणा मनसो धृतिः ।

अहं ब्रह्मैत्यवस्थान समधिप्राप्त्यै स्थितिः ॥३५॥

ब्रह्मात्मा पर ब्रह्म सत्य ज्ञानमनन्तकम् ।

ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्त्वमसि केवलम् ॥३६॥

अहं ब्रह्मात्मचहं ब्रह्म अगरीरमनिन्द्रियम् ।

अहं एतत्पुद्गलमहं हृद्गुणमिन्द्रियजम् ॥३७॥

जाग्रत्स्वप्नमुषुप्त्यादियुक्तज्योतिस्तदीयकम् ।

नित्यं शुद्धं बुद्धिमुत्तमं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥३८॥

योऽनावादित्यपुरुष सोऽभावहमखण्डितम् ।

इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात् ॥३६॥

बारह मात्रामो वाला लघु पाणायाम होता है और चौबीस मात्रामों वाला पर होना है तथा छत्तीस मात्राओं से युक्त परम श्रेष्ठ होना है । रोचन करने की ही प्रत्याहार कहते हैं ॥३५॥ ब्रह्मात्म का चिन्तन करने की ही ध्यान कहते हैं । मन की धृति की धारणा कहा जाना है । मैं ही ब्रह्म हूँ—इस प्रकार की जो अवस्थिति होने पर ब्रह्म की स्थिति का प्राप्त हो जाना है उसे ही समाधि कहा जाना है ॥३५॥ मैं आत्मा हूँ ब्रह्म पर है और वह सत्य एव ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त है । ब्रह्म का विज्ञान ही आनन्दमय है और वह केवल तत्त्वमसि है ॥३६॥ मैं ब्रह्म हूँ—मैं बिना शरीर वाला और इन्द्रियों से रहित हूँ—मैं मन, बुद्धि, महद्कार आदि से वरित हूँ और आपत्, सुषुप्ति आदि से युक्त सभी की उद्योति स्वरूप हूँ । मैं नित्य-बुद्धि युक्त सत्य एव आनन्दस्वरूप प्रद्वितीय हूँ । जो यह आदित्य पुरुष है वह मैं प्रत्यक्षित हूँ—इस प्रकार से अपने आपकी ध्यान करने वाला ब्राह्मण इस सप्ताह के महा बन्धन से विमुक्त हो जाता है ॥३७॥ ३८॥ ३९॥

२४—तित्य त्रिया शीघ्र चर्णन

अहन्यहनि य कुर्यात् त्रिया स ज्ञानमाप्नुयात् ।

ब्राह्मो मुहूर्तो चोत्थाय घर्ममयं च चिन्तयेत् ॥१॥

चिन्तयेद् यदि पथस्यमानन्दमजर हरिम् ।

ऊप बाले तु सप्राप्ते कृत्वा चावश्यक बुध ॥

स्नायाप्रदीपु शुद्धामु शीघ्र कृत्वा यथाविधि ॥२॥

प्रातः स्नानेन पूयन्ते येष्वपि पापकृतो जना ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातः स्नान समाचरेत् ॥३॥

प्रातः स्नान प्रगमन्ति दृष्टादृष्टवर हि तत् ।

मुग्धा मुग्ध्य मन्त लानाद्या सन्भवन्ति हि ॥

अतो नैवाचरेत् वर्माण्यकृत्वा स्नानमादित ॥४॥

अलक्ष्मीः कालकर्णौ च दुःस्वप्न दुर्विचिन्तितम् ।

प्रातः स्नानेन पापानि धूयन्ते नान सदाय ॥५॥

न च स्नान विना पु मा प्राशस्त्य कर्म न स्मृतम् ।

होमे जप्ये विपेक्षेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥६॥

अशक्तावशिरस्क तु स्नानमस्य विधीयते ।

आर्देण वाससा वापि मार्जनं कारयिक स्मृतम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो प्रति दिन इस क्रिया को करता है वह ज्ञान को प्राप्त किया करता है । यह मुहूर्त म ठठ कर अर्घान् घट्या का त्याग करके सर्व प्रथम धम और धय का चिन्तन करना चाहिये । ऊपा काल के सम्प्राप्त होने पर बुध पुरुष को आवश्यक कृत्य करके हृदय में यथावन पर सत्यत आनन्दस्वरूप प्रजर श्रीहरि का चिन्तन करे । यथा विधि दीव कार्य करके फिर मुट्ट नदियों में स्नान किया सम्पन्न करे ॥१॥२॥ पापों को करने वाले भी मनुष्य प्रातः काल में स्नान करने से पवित्र हो जाया करते हैं । इसलिये पूर्व प्रवर्णा के द्वारा प्रातः काल के समय में अवश्य ही स्नान करना चाहिए । प्रातः-काल में किया जाने वाले स्नान की प्रशंसा की जाती है क्योंकि वह दृष्ट और प्रदृष्ट के करने वाला होता है । गुल से गीते हुए मनुष्य की संबंध लाता (नार) भादि का स्वयं हुआ करता है । इसलिये आदि में स्नान न करके कभी भी अन्य कर्मों का आरम्भ न करे ॥३॥४॥ प्रातः काल में नित्य किये हुए स्नान से अलक्ष्मी, कालकर्णौ, दुःस्वप्न, दुर्विचिन्तित (बुरी आवना) एवं सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५॥ स्नान के बिना पुराणों के प्रशस्त कर्म नहीं बनाये गये हैं । होम और मन्त्र जाप के करने में तो विशेष रूप से स्नान करना ही चाहिए । ६॥ यदि सर्वज्ञ स्नान करने की शक्ति में न हो और ऐसी शक्ति शरीर में न हो तो बिना शरीर को मियेये हुए ही स्नान अवश्य ही करना चाहिए । द्रवना भी न किया जा सके तो गोला दात्र करके उसमें ही शरीर का मार्जन अवश्य करे—ऐसा बड़ा गया है ॥७॥

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च ।
 वारुणं यौगिकं तद्वत्पङ्कजं स्नानमाचरेत् ॥८॥
 ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रं कुशं सोदकं विन्दुभिः ।
 आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम् ॥९॥
 गवा हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।
 यत् तु सातपथ्येण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥१०॥
 वारुणं चायगाहं च मानसं त्वात्मवेदनम् ।
 यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम् ।
 आत्मतीर्थमिति स्यात् सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥११॥
 क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम् ।
 धूपामार्गं च बिल्वं च करवीरं च धारणम् ॥१२॥
 उदङ्मुखं प्राङ्मुखं वा कुर्यात्तु दन्तधायनम् ।
 प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जलं चक्षुषीं देये समाहितं ॥१३॥
 स्नात्वा मन्त्रपंचेदेयान् नृपोऽपि नृगास्तथा ।
 आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य चाग्नयतः ॥१४॥
 समाज्यं मन्त्रं रात्मानं कुशं सोदकं विन्दुभिः ।
 आपोहिष्टाभ्याहूतिभिः सावित्र्या वारुणं शुभं ॥१५॥

ब्राह्म स्नान को आग्नेय स्नान कहा गया है—व यद्य स्नान को दिव्य स्नान बताया गया है—वारुण स्नान को यौगिक कहा गया है । इसी प्रति पङ्कज स्नान करे ॥८॥ जल की छूँदों के सहित कुशों के द्वारा मन्त्रों से जो स्नान किया को मन्त्रम करके मंजन दिया जाता है उसे ब्राह्म स्नान कहते हैं । भस्म से मस्तक से लेकर पाद पर्यन्त जो देह-धूनन किया जाता है उसे आग्नेय स्नान कहा जाता है ॥९॥ गौरी के गुणों से उठी हुई रज से जो स्नान किया जाता है उस उत्तम स्नान को वायव्य स्नान कहते हैं । जो आतप रहते हुए वर्षा की छूँदों से स्नान होता है उसे दिव्य स्नान कहा जाता है ॥१०॥ मानस स्नान को वारुण स्नान कहते हैं और आत्मवेदन यौगिक स्नान होता है जिसमें योग के द्वारा परिचिन्तन दिया जाता है । ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित आत्मतीर्थ

नित्य किया बीच वर्णन]

कहा गया है ॥११॥ दूध जिन वृक्षों से निकला करता है उन वृक्षों की बनाई हुई—मालती लता की टहती से बनाई गई परम शुभ—प्रणामाय (धोपा) की विन्ध की ओर करवीर की दाँतुन को उत्तर की ओर मुख करके प्रयत्न पूर्व की ओर मुख वाला होकर करना चाहिए । क्या कर ओर धीकर धुवि देस में समाहित होकर उसका उपयोग करके फिर स्थाप देवे ॥१२॥१३॥ फिर स्नान करके देवों का—श्रुतिपत्रों का पितृगण का तर्पण करना चाहिए । विधि के सहित प्राचमन करके नित्य ही पुन प्राचमन करके मोत होकर उदक बिन्दुओं के सहित कुशाग्रों से मन्त्रों के द्वारा अपना समाज्जन करे और वह "प्रापोहिष्ठा मयौभुज" इत्यादि व्याहृतिपत्रों से—प्राविशे से ओर शुभ वारणों से करना चाहिए ॥१४॥१५॥

ॐकारव्याहृतिपुत्रा गायत्री वेदमातरम् ।
प्रातः काले ततः स्थित्वा दक्षेण सुसमाहित ॥१६॥
प्राणायाम ततः कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुति ॥१७॥
या सन्ध्या सा जगत्सूतिमायातीना हि निष्कला ।
ऐश्वरी केवला गतिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥१८॥
ध्यात्वा रक्ता मिता कृष्णा गायत्री वै जपेद्दुष्ट ।
प्राङ्मुख सतत विप्र सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥१९॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुर्वते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्यवेत् ॥२०॥
अनन्यचेतस मन्तो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्या प्राप्ता पूर्वपरा गतिम् ॥२१॥
योज्यत्र कुर्वते यत्न घमकायै द्विजोत्तम ।
विहाय सन्ध्याप्रसूतिं स याति नरकापुतम् ॥२२॥
फिर ओझार व्याहृतिपत्रों से युक्त वेदमाता गायत्री का जप करके तमनस्क होकर भगवान् भास्कर देव के प्रति जलाञ्जलि समर्पित करे ॥१९॥
इनके अनन्तर प्रातः काल में कुशासन पर स्थित होकर सुसमाहित होते हुए

प्रणाम करके सन्ध्या की उपासना करे—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥१७॥
 जो यह सन्ध्या है वह जगत् की जननी है—माया में अतीव घोर निपटला है ।
 यह वैद्यन ऐश्वरी शक्ति तीनों तरफों से समुत्पन्न होने वाली है ॥१८॥ बुध
 पुत्र को चाहिए कि गायत्री के स्वरूप का रक्त-मिश्र घोर वृषण वर्ण का
 ध्यान करके फिर इसका जप करे । विप्र को सर्वदा पूर्व की ओर मुत्त करके
 सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए ॥१९॥ जो विप्र सन्ध्या नहीं करता है वह
 परमहीन ही होता है और समस्त बर्णों के कर्मे के अयोग्य होता है । और भी
 वह जो बुद्ध करता है उसके फल को भोगने वाला नहीं होता है ॥२०॥ घन-य
 चित्त वाले होते हुए वेद का पारगामी ब्राह्मण विधि-विधान के साथ सन्ध्या की
 उपासना करके पूर्ववर्ण गति को प्राप्त हुए हैं ॥२१॥ जो द्विज श्रेष्ठ धन्य कर्मों
 में जो कि धर्मयुक्त होते हैं यस्तु किया करता है और सन्ध्या की प्रणति की प्रणति
 का त्याग न करे वह दश महस्र वर्ष पर्यन्त नरक का गामी होता है ॥२२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।

उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनु परः ॥२३॥

महद्यपरमा नित्या शतमध्या दशापराम् ।

गायत्री वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुख प्रयत्नं शुचि ॥२४॥

अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयस्य समाहित ।

मन्त्रैस्तु विविधं सारं श्रुत्यजु सामसजितं ॥२५॥

उभयोरपि महायोग देव देव दिवाकरम् ।

सुर्वीतं प्रणति भूमौ मूर्धानमभिमुखित ॥२६॥

ॐ गमोऽन्नाय शान्ताय वारुणायहेतवे ।

निवेदयामि चात्मन नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥२७॥

त्वमेव ब्रह्म परममापोज्यामीरमोऽमृतम् ।

भूर्भुवः स्वस्त्वमोक्षार मर्षो रुद्र मनातन ॥२८॥

एतद्देव मूर्ध्नि हृदये जपन्ना स्तवनमुत्तमम् ।

प्रातः काले च मध्याह्ने नमस्तुभ्यो दिवा च ॥२९॥

अथागम्य गृह विप्र समाचम्य यथाविधि ।

प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जानवेदसम् ॥३०॥

अतएव सम्पूर्ण श्रवणो से ब्राह्मण को सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिए । उस सन्ध्या में उपासित देव परमभोग तनु हो जाता है ॥२३॥ विद्वान् ब्राह्मण को निरय प्रति एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए—यह सर्वोत्तम है । यदि इतना न बन सके तो एकांशो आठ बार एक ही माला गायत्री के जाप की करे—यह मध्यम है और इतना भी व्यस्ततावश न कर सके तो कम से कम दस बार तो अवश्य हो गायत्री का जाप प्रति दिन करना चाहिए—यह सबसे निम्न श्रेणी की जाप संस्था है । विद्वान् को पूर्व की ओर मुख करके और परम प्रपन्न होकर ही परम शुचिता के साथ गायत्री का जाप करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर बहुत सावधान होते हुए उद्यम्य भगवान् आदित्यदेव का उपस्थान करे । यह उपस्थान परम साररूप विविध ऋत्-यजु और सामवेद की सहायता वाले मन्त्रों के द्वारा करे ॥२५॥ महायोग देवों के भी देव भगवान् दिवाकर (सूर्य) का उपस्थान करके अभिमन्त्रित होते हुए भूमि में मस्तक टेक कर सूर्यदेव को प्रणाम करे । प्रणाम करने का मन्त्र यह है—
“बोम् न सौतहाय सात्ताय-इत्यादि”—अर्थात् स अर्थात् आकाश के उत्का-स्वरूप—परम शान्त—तीनों कारणों के हेतु—ज्ञानस्वरूप वाले आप के लिये मेरा नमस्कार है । मैं आपने आपकी भावके लिये निवेदित करता हूँ ॥२६॥ २७॥ आपही परम ब्रह्म हैं । आपो ज्योति रस एवं अमृत हैं । आप भूभुवः स्व हैं—आप मोक्षार-तर्क-रूप एव सनातन हैं ॥२८॥ इस उत्तम स्तवन का हृदय में गूर्य जाप करके शत काल में और मध्याह्न के समय में भगवान् दिवाकर को नमस्कार करे ॥२९॥ इसके अनन्तर विप्र अपने घर में आकर विधिपूर्वक प्राचमन करके अग्नि की प्रज्वलित करे और विधि के साथ उसे अग्नि में हवन करना चाहिए ॥३०॥

ऋत्विक्पुत्रोऽथपत्नी वा सिष्यो वापि महोदरः ।

प्राप्यानुज्ञा विरोपेण जुहुयाद्वा यथाविधि ॥

विना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम् ॥३१
 देवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत् ।
 गुरुर्चावाप्युपासीत हितश्चास्य समाचरेत् ॥३२
 वेदाभ्यास ततः कुर्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ।
 जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद् विचारयेत् ॥३३
 अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम ।
 वैदिकाश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥३४
 उपेयादीश्वरश्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये ।
 साधयेद्विविधानर्थान्बुद्धुमर्थं ततो द्विज ॥३५
 ततो मध्याह्नपमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
 पुष्पाक्षनान्तिलकुशान् गोमयं शुद्धमेव च ॥३६
 नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरसु च ।
 स्नानं समाचरेन्मैव परकीये कदाचन ॥
 पञ्च पिण्डाननुदधृत्य स्नानं दुप्यन्ति निरयशः ॥३७

श्रुतिवत्-पुत्र-पत्नी-शिष्य पणवा सहोदर भई को माज्ञा प्राप्त करके
 विशेष रूप से यथा विधि हुवन करना चाहिए । मन्त्र के बिना जो कोई भी
 कर्म होता है वह इस लोका में तथा परलोक में फल प्रदान करने वाला नहीं
 होता है ॥३१॥ समस्त देवों को नमस्कार करे और उन्हें उपहारों को समर्पित
 करे । फिर गुरुदेव और इनके जो भी हित हो उनकी उपासना करनी चाहिए
 ॥३२॥ इस कृत्य के सम्पन्न करने के अनन्तर द्विज को अपनी शक्ति से प्रयत्न
 पूर्वक वेदों का अभ्यास करना चाहिए । जब करे-शिष्यों को अध्यापन करे—
 धारण करे और विचारण करे ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठ । फिर शास्त्रों का अवे-
 क्षण करे तथा धर्म आदि का निरीक्षण करे । वैदिक निगमों को तथा सभी
 वेद के अङ्ग व्याख्यान-निरुक्त आदि शास्त्रों का परिशीलन करे ॥३४॥ अपने
 योगक्षेम की प्रसिद्धि के लिए ईश्वर का उपगमन करे और इसके पश्चात् द्विज
 को बृद्धव के लिए मात्र प्रकार के अर्थों का माग्य करना चाहिए ॥३५॥

हमके अन्तर मध्याह्न के तत्पश्चात् स्नान के लिए मृत्तिका लावे । पुष्प-अक्षत-
निम-बुझा घोर शुद्ध गोमय लाना चाहिए ॥३६॥ नदी-देवताद-भङ्गाय प्रयत्ना
घरोवर से स्नान करना चाहिए । किन्तु दूसरो के स्थान में कभी भी स्नान नहीं
करे । नित्य द्वाि पाँच पिराई का उद्धार न करके लोग स्नान को दूषित कर
दिया करते हैं ॥३७॥

मृदेक्या शिर क्षात्प द्वाग्धा नाभेस्तथोपरि ।
अथत्र तिमृभि धात्प पादौ पद्भिस्तथैन च ॥३८॥
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका ।
गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्ग लेपयेन्नत ॥
प्रधात्पाक्षाय विधिवन्नत स्नायात्समाहित ॥३९॥
लेपयित्वा तु तीक्ष्णस्तल्लिङ्गं रेव मन्त्रत ।
अभिमन्त्र्य जल मन्त्रैरानिङ्गं वरुणं शुभैः ॥
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यत ॥४०॥
प्रेथप ओंकारमादित्य त्रिनिमज्जेज्जलानये ।
आचान्त पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रयितु ॥४१॥
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहाया विश्वनीमुत्तम ।
स्व यज्ञस्य वषट्कार मापो ज्योतीरसोऽमृतम् ॥४२॥
द्रुपदा वा विरम्भस्येद् व्याहृतिप्रभुवान्विताम् ।
सावित्री वा जपेद्विद्वास्तथा चेवाधमपंत्यम् ॥४३॥

एक मृत्तिका से शिर को घोंना चाहिए— दो से नाभि के ऊपर के भाग
की प्रक्षालन करे—तीन मृत्तिकाओं से पयोमात्र को घोर हो से पैरो का प्रक्षाल-
न करना चाहिए । बंधे हुए आँवने के फल के बराबर एक मृत्तिका समझनी
चाहिए । फिर गोमय (गोबर) का प्रमाण लेकर उससे अङ्ग का लेपन करने
घोर प्रक्षालन करके फिर आचमन करे तथा फिर विधि पूर्वक समाहित होकर
स्नान करना चाहिए ॥३८-३९॥ घोर में स्थित होती हुए लेप करके उसके लिंगों
से ही मन्त्र से जल से पालिश पुन आरुह्यो द्वारा मन्त्रित करके स्नान के

समय में भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए क्योंकि आप नारायण का स्वरूप है ॥४०॥ श्रोतार आदित्य का प्रेक्षण करके अलाशय में तीन बार निमज्जन करे । मन्त्र वेत्ता को निम्न मन्त्र से आचान्त होकर पुनः आचमन करना चाहिए ॥४१॥ मन्त्र—“अन्तश्चरति—अमृतम्”—इह है अर्थात् विश्व तो मुझ आप प्राणियों के अन्तर्गत में गुहा में चरण करते हैं । आप प्रज स्वरूप हैं—वपट्कार—आप—ज्योति—रस और अमृत हैं । ४२॥ ‘द्रुपदा—इह मन्त्र को तीन बार बोले अथवा व्याहृतियों तथा प्रणव से युक्त सावित्री का जाप विद्वान् को करना चाहिए । एवं मधमर्पण मन्त्र का उच्चारण करे ॥४३॥

ततः समार्जनं कुर्यादपोहिष्ठाभयं भुव ।

इदमाप प्रवहत् व्याहृतिभिस्तथैव च ॥

ततोऽभिमन्त्रत तायमापोहिष्ठादिमन्त्रकं ॥४४

मन्तर्जलमयाम्गो जपेत्त्रिरधमर्पणम् ।

द्रुपदा दाय सावित्री तद्विष्णो परम पदम् ॥

आवत्तयेद्वा प्रणव देवदेव स्मरेद्धरिम् ॥४५

आप पाणी समादाय जप्त्वा वै मार्जने धृते ।

विन्यस्य मूर्ध्नि हस्तोय मुच्यते गर्वपातकं ॥४६

सन्ध्यामुपास्य चाचम्य सस्मरेन्नित्यमीश्वरीम् ।

अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वं पुणान्विताञ्जलि ॥४७

प्रक्षिप्यालोपयेद्द्वयमुदयस्य न शक्यते ।

उदुत्य चित्रमित्येव चक्षुरिति मन्त्रतः ॥४८

हम धुनि मदेतेन सावित्र्या च विधेयतः ।

अग्नौ सोरर्वेदिकंश्च गायत्रीञ्च ततो जपेत् ॥४९

मन्त्राश्च त्रिविधान् पश्चात् प्राक्पूजे च कृतामने ।

तिष्ठश्च वीक्ष्यमाणोऽर्जं जप कुर्यात्समाहित ॥५०

इसके उपरान्त “आपो हिष्ठाभयो भुव” —इत्यादि मन्त्रों से समार्जन करे

“इदमाप प्रवहत्”—इसमें तथा व्याहृतियों से एवं “आपो हिष्ठा”—इत्यादि मन्त्रों

में जल को अभिमन्त्रित करे ॥४४॥ जन के मध्य में चुपचाप मधमर्षण मन्त्र का तीन बार चप करे । मधवा 'मधवा'—इसका या नाबित्री का किम्बो 'तद्विष्णो परम पदम्'—इसका अथवा प्रणव का आवर्तन करे और दबो के भी देर थो हरि का स्मरण करना चाहिए ॥४५॥ हाथ में जन लेकर अम-मर्षण मन्त्र का जाप करके साजन करने पर वि-प्राप्त धर्मक उस जल को समस्त पातकों के सहित छोड़ देना चाहिए ॥४६॥ मन्त्रश की उपासना करने प्राचमन करे और ईश्वरी का निश्च ही स्मरण करना चाहिए । इसके अनन्तर ऊपर की ओर पुष्पाञ्जलि लेकर भगवान् कादित्य देव का उपासना करना चाहिए ॥ ४७ ॥ उम पुष्पों की पञ्चमि को प्रक्षिप्त करके देव का प्रालोचन करे । उदयचल में स्थित का नदी किया जा सकता है । "ब्रह्म विष्णु" और 'तत्त्वज्ञान'—इत्यादि मन्त्रों से हन शुचि भवेत् इसके तथा विशेषतया नाबित्री में एव अन्य सोर तथा वैदिक मन्त्रों द्वारा उपासना करे । इसके अन-न्तर गायत्री मन्त्र का जाप करे ॥४८॥४९॥ नट पर पूर्व की ओर मुख करके स्थित होकर मूर्ध्न का दर्शन करते हुए यदि समाहित होकर कुणागत पर बैठ-कर विविध मन्त्रों का जाप करे ॥५०॥

स्फटिकाब्जाक्षराक्षः पुनर्जीवसमुद्भवं ।
वर्तव्या स्वक्षमात्वा स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता ॥५१॥
यदि स्यात्क्विलनवासा वं वारिमव्ययनश्चरत् ।
अन्यथा च शुचौ भूम्या दर्भेषु च समाहित ॥५२॥
प्रदक्षिण समावृत्य नमस्कुर्यात्ततः क्षितौ ।
प्राचम्य च यथाशास्त्र शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥५३॥
ततः सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणास्तथा ।
यादावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च ॥५४॥
देवान् ब्रह्मर्षीश्चैव तर्पयेदक्षतोदकं ।
पितॄन् देवान् मुनीन् भक्त्या स्वसूतोक्तविधानतः ॥
देवर्षीस्तर्पयेद्भीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन् ॥५५॥

यज्ञोपवीती देवाना निवीती ऋषितर्पणे ।

प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत ॥१६॥

निष्पीड्य स्नानवरत्र च समाचम्य च वाग्यतः ।

स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्टं पत्रैस्तथाम्बुभिः ॥१७॥

यह जान करने की माता के विषय में बतलाते हैं कि माता स्फटिक-
कमलगद्दा-रत्नाक्ष भगवा पुत्रजीव की विमित होनी चाहिए । वह मन्तरा
प्रक्षमात्ता बही गई है ॥१६॥ यदि सोले वस्त्रों वाला हो तो जल के मध्य में
स्थित होकर ही जप करे मध्यमा सुवि भूमि में दर्शमन पर स्थित होकर गमा-
हित होते हुए जप करे ॥१७॥ फिर प्रदक्षिणा करके भूमि में नमस्कार करे
और धारणोक्त विधि के अनुसार प्राचमन करके अपने शक्ति के अनुष्ठान
स्वाध्याय करे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त देवगण—ऋषियगं और पितरों का
सम्पन्न करना चाहिए । यदि वे सोझार का उच्चारण करके मन्त्र में "नम
तर्पयामि"—इसे श्रोतकर तर्पण करना चाहिए । देवी को और ब्रह्म ऋषियों को
तर्पण मशरु विधित जल से करे । अपने सुशोक्त विधान से शक्ति के साथ
पितर-दैव और मुनियों का तर्पण करना चाहिए । उदकाञ्जलियों के द्वारा
धीमान् पुष्ट को देवपियों का तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिए ॥१४॥
॥१५॥ हे भारत । देवों का तर्पण करने के समय में यज्ञोपवीती रहे—ऋषियों
के तर्पण के समय में निवीती रहे और पितृगण के तर्पण में प्राचीनावीती
रहते हुए उस तीर्थ से तर्पण करे ॥१६॥ स्नान के वरत्र का निष्पीडन कर
प्राचमन करे और वाग्यत अर्पण मौन होकर अपने गन्तों के द्वारा पुष्टों से-
पत्रों से तथा जलो से देवों का जपन करना चाहिए ॥१७॥

ग्रहाण चङ्कर नूपे तर्पय मधुमूदनम् ।

अग्न्याश्राभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हर ॥१८॥

प्रदद्यादाथ पुष्पादि मूकैर्न पुरोयेण तु ।

प्रापो वा देवता सर्वास्तेन मन्त्रैर्ममचिता ॥१९॥

नित्यक्रिया होव वरान]

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देव परिसमाहित ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक् ॥६०॥

नतं ह्याराधना पुष्प विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मात्तादिमध्यान्ते चेतमा धारयेद्भरिम् ॥६१॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु ।
निवेदयेच्च आत्मान विष्णवेऽमलतेजसे ॥६२॥

तदध्यातमनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रिन ।
देवयज्ञ भूतयज्ञ पितृयज्ञ तथैव च ॥

मानुष ब्रह्मयज्ञश्च पञ्च यज्ञान् समाचरेत् ॥६३॥
यदि स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञ कुता भवेत् ।

कुत्वा मनुष्ययज्ञं वै तत स्वाध्यायमाचरेत् ॥६४॥
ब्रह्मा-शङ्कर-मूर्खं तथा मधुवूदन एव अन्य जी भवने अभिमान (माने

हुए) देवगण हो सनका क्रोध रहित होकर भक्ति भाव से समर्पण करे ॥६५॥
पुरुष सूक्त के मन्त्रों के द्वारा पुष्पाक्षत गन्धादि सम्पूर्णा उपचारों को समर्पित
करे । भयवा जल के द्वारा ही समस्त देव समर्पित करने चाहिए ॥६६॥ परि-

समाहित होकर प्रणव पूर्वक देव का ध्यान करे और नमस्कार के द्वारा पृथक्-
पृथक् पुष्पों का विन्यास करना चाहिए ॥६७॥ इनको आराधना करना पुण्य
नहीं किन्तु यह एक वैदिक नियम है । इसलिये प्रादि-मध्य और अन्त में वित्त

से भगवान् हरि को धारण करना चाहिए ॥६८॥ इसका ध्यान मन में रखने वाला परम
विष्णु के लिये "तद्विष्णो परम पदम्"—इत्यादि मन्त्र से और पुरुष सूक्त से
अपनी आत्मा को निवेदित करे ॥६९॥ उसका ध्यान मन में रखने वाला परम

शान्त रहते हुए 'तद्विष्णो'—इत्यादि मन्त्र से मन्त्रित होकर देवयज्ञ-भूतयज्ञ-
पितृयज्ञ-मानुष यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—इन पाँच यज्ञों को करना चाहिए ॥६९॥
यदि तर्पण करे तो इनके बोधे ब्रह्मयज्ञ कैसे होगा । मानुष यज्ञ करके इसके

अनंतर स्वाध्याय करना चाहिए ॥७०॥

वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञ न तु स्मृत ।
भूतयज्ञ स विज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वय बलि ॥७१॥

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
 दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्न पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तम ॥६६॥
 एक तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्देश्य सत्तम ।
 नित्यश्राद्धं तदुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥६७॥
 उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितम् ।
 वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥६८॥
 पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदचंयेद् द्विजम् ।
 मनोवाक्कर्मभिः शान्तं स्वागतं स्वगृहं ततः ॥६९॥
 भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुर्गुणम् ।
 पुष्कलं हस्तमात्रं तु तच्चतुर्गुणमुच्यते ॥७०॥
 गादोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथिं स्वयम् ।
 अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं तथा ॥७१॥
 भिक्षां वै भिक्षावे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे ।
 दद्यादन्नं यथाशक्ति श्रियिभ्यो लोभवर्जितम् ॥
 भुञ्जीत च घृभिः साढं वाग्यनोऽन्नमपूरयन् ॥७२॥

वैश्वदेव करना चाहिए । यह दैवयज्ञ कहा गया है । भूतयज्ञ उसे ही समझना चाहिए । जसमे भूमे के लिये बनि वा माहरण किया जाता है ॥६५॥ द्विज श्रेष्ठ को श्रान्तो के लिये—श्वपक्षो व लिये घोर पतित आदि को बाहिर भूमि में धूल देना चाहिए । पक्षियों के लिये भी धूल देना चाहिए ॥६६॥ श्रेष्ठतम पुरुष को पितरों का उद्देश्य करके एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए । इसे नित्य श्राद्ध कहते हैं जो कि पितृगण के उद्देश्य से किया जाता है । यह पितृयज्ञ गति के प्रदान करने वाला होता है ॥ ६७ ॥ अथवा सावधान रहते हुए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ धन्न चरघुन करके वेदों के तत्त्वों के विद्वान् द्विज के लिये उपपादित करना चाहिए ॥६८॥ अतिथि का नित्य ही पूजन करे । अपने घर पर समागत शान्त द्विज को मन-वाणी और कर्म से नियत हुए स्वागत-सत्कारों व द्वारा नमस्कार कर और अर्चना करे । ॥६९॥ प्राण पात्र धन्न का भिक्षा कहते हैं । उसका चतुर्गुण पुष्कल कहनाता

नित्यक्रिया जीव बलान्]

है और इसका नतुंगुं हा हस्त मात्र कहा जाता है ॥७०॥ प्रतिपि को जितने समय में एक गाय का दोहन होता है उतने काल सकस्य प्रतीक्षा करना चाहिए । भस्मान्तो को तथा प्रतिपिषो को अपनी शक्ति भर पूजन करना चाहिए । ७१॥ ब्रह्मचारी भिक्षु के लिए विधि पूर्वक भिक्षा देनी चाहिए । तोम से रहित होकर भक्षिषा (याचको) के लिए यथाशक्ति धन का दान करना चाहिए । भक्ष को बुराई न करते हुए मोन होकर अपने बंधुओं के पाप मोक्षण करे ॥७२॥

भुङ्क्त्वा तु द्विज पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तम ।
भुञ्जते चेन् स मूढात्मा तियम्योनिञ्च मच्छति ॥७३॥
वेदान्मारोऽन्वह शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमा ।
नाशयत्पापु पापानि देवानामचन तथा ॥७४॥
यो मोहादववाऽऽनस्यात्कुत्वा देवानाचनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरादव जायत ॥७५॥
अशौच सप्रवक्ष्यामि यशुचि पातकी सदा ।
अशौच चैव समगच्छुचि सप्तगवर्जनात् ॥७६॥
दशाह प्राहुराशौच सर्वे विप्रा विपश्चित ।
मृतेषु वाय जातेषु ब्राह्मणाना द्विजात्तम ॥७७॥
आदन्तजननात्मस्य आनूडादेकरानकम् ।
त्रिरात्रमोपनयनाद्दशरात्रमत परम् ॥७८॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन दशभि पञ्चभिर्विश ।
शुद्धं न्मासेन वै मूढो यतीना नास्ति पातकम् ॥
रात्रिभिर्नामनुन्याभिर्गर्भेवावेपु शौचकम् ॥७९॥

द्विजों में श्रेष्ठ द्विज पाँच महायज्ञों को न करके यदि स्वयं मोक्षण कर लेता है तो वह मूढ़ भ्राम्यमान है और दूसरे जन्म में वह निपग्न योनि में पन्न ग्रहण किया करता है ॥७३॥ नित्य प्रति देवों का सम्मान और शक्ति से महायज्ञों की क्रिया में समर्थ तथा देवों का भजन ये पापों को शीघ्र ही नष्ट

कर देते हैं ॥७४॥ जो भी मोह से बधना आनन्द से देवताओं को धर्मेना न करके भोजन कर लेता है वह नरकी की प्राप्ति होता है और शूकर को जति में जन्म ग्रहण क्रिया करता है ॥७५॥ भव में अशीव भी बताऊंगा । पातक करने वाला पुण्य सर्वदा अनुचित रहा करता है । समय में भी अनुचित हो जाता है यदि भुवि का उसे कभी समय ही न होता हो ॥ ७६ ॥ विहाद पुण्य है द्विज श्रेष्ठ ! मृत होने पर और जन्म होने पर ब्राह्मण को दस दिन व्रत प्राणीच कहते हैं ॥७७॥ जम तक शायक के दाँव नहीं निकलता है और उसकी मृष्ट्य हो जाये तो उसका प्राणीच तुरन्त ही दूर हो जाता है । जब सब चूड़ा बर्ध न हो तब तक एक रात्रि का प्राणीच होता है । उस मयन सप्तरा हो जाने पर तीन रात्रि का प्राणीच भूतक का होता है और इसके पाने तो दस रात्रि तब प्राणीच मृग का होता है ॥७८॥ यह ब्राह्मण के प्राणीच के विषय में बताया गया है किन्तु क्षत्रिय वर्ण वाले पुण्य का प्राणीच बारह दिन तक रहता है तथा वैश्य का प्राणीच एकदश दिन तक होता है और शूद्र का प्राणीच एक मास पर्यन्त रहा करता है । यतियों की पातक नहीं होता है । यम के लक्ष हो जाने पर जितने भी यम का गर्भ हो खतरी ही राक्षसों तब जबका प्राणीच रहा करता है और दसके पदलक्ष हो वह मुक्त होता है ॥७९॥

२५-दान धर्म वर्णन

अथात सप्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् ।
 अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ॥१॥
 दानेभ्युपयित तस्मीर्भुक्तिमुक्तिरुत्तमम् ।
 न्यायेनोपार्जयेद्विद्वान् दानभोगकृतञ्च नृप ॥२॥
 अध्यापनं याजनञ्च वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम् ।
 गृणीत दृषिमाणिज्यं दातृवृत्तोऽप्यवाजेयेत् ॥३॥
 यक्षोयते तु पार्श्वमस्तदानं सात्त्विकं विदुः ।
 नित्यं तैमिरिजं चाध्मं विषयं दानमोऽस्ति ॥४॥

दान धर्म बर्णन]

अहन्यहनि गतिकश्चिद्दीयतेऽनुपकारिते ।
अनुद्दिश्य फल तस्माद् ग्राह्याणाम तु नित्यशः ॥५॥

यत्तु पापोपशान्त्यं च दीयते विदुषा करे ।
नैमित्तिक तदुद्दिष्टं दानं मद्भिन्नमुद्धितम् ॥६॥

अपत्यविजयैश्चर्यस्वगार्यं यत्प्रदीयते ।
दानं तस्कांम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७॥

ब्रह्मजी बंसे—इसके घनानर सब में सर्वे बंधु दान के धर्म के निषय में बनलाऊंगा किसी मनुजित दान देने के पात्र पुरुष को थडा पूर्वक किया हुआ दान का प्रतिपादन बिना पुरुषों के द्वारा मुक्ति एवं मुक्ति का प्रदान करने वाला दान बताया गया है । ग्याय से उपार्जन करे यही वित्त दान के फल का योग कहा गया है ॥१॥ २॥ ग्राहण के नियम व्यापन करना—याजन करना और प्रतिग्रह ग्रहण करता ये ही वृत्ति बताई गई है । कुपीद (अज्ञ)—कृपे और वाणिज्य वनं यह क्षत्रियों की वृत्ति है । इसके द्वारा मर्जन करे ॥३॥ जो दान किसी भी योग्य पुरुष को दिया जाता है वही दान मात्सिक कहा गया है । दान करने ही प्रकार का होता है—नित्य—नैमित्तिक—काम्य और विमल दान होता है ॥४॥ जो निरा प्रति हर एक दिन कुछ भी किसी मनुष्यारी को अर्पित करने की अपने उपकार की प्राप्ति न हो, दान दिया जाता है वह नित्य दान होता है । किसी फल का उद्देश्य न रखकर ग्राहण को नित्य दान दिया जाता है ॥ ५ ॥ जो किसी पाप की उपशान्ति के लिये विद्वान् पुरुषों के हाथ में दान दिया जाता है समुत्पत्तों ने उस दान को नैमित्तिक दान बताया है ॥ ६ ॥ सन्नात्र—विजय—ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से जो दान दिया जाता है यह काम्य दान कहा गया है और धर्म का विनियम करने वाले ऋषियों ने इसे काम्य की पूति के लिये किया गया काम्य दान कहा है ॥७॥

इन्द्रप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
नेतना सत्त्वमुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८॥

इधुभि सन्नना भूमि यवगोधूमशालिनीम् ।
 ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ॥
 भूमिदानात्पर दान न भूत न भविष्यति ॥६
 विद्या दत्त्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते ।
 दद्यादहरहस्तास्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ॥
 सर्वपाप विनिर्मुक्तो ब्रह्म स्थान मवाप्नुयात् ॥१०
 वैशाखा पीर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च ।
 उपोष्याम्यर्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः ॥
 गन्धादिभि समभ्यर्च्यं वाचयेद्वा स्वयं वदेत् ॥११
 प्रीयता घर्मवाचाभिन्नया मनसि वर्तते ।
 यावज्जीव कृत्वा पाप तत्क्षणादेव नश्यति ॥१२
 कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसपिपा ।
 ददाति पत्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥१३
 घृतान्नमुदकश्चैव वैशाखाश्च विशेषतः ।
 निदिश्य घर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥१४

केवल भगवद्गीति प्राप्त करने के लिये ब्रह्म के वेला पुरषो मे जो दान
 दिया जाता है और सत्त्व सम्पन्न वित्त से जिसको दिया जाता है वह परम गिव
 विमल दान कहा गया है ॥८॥ ईश की सदा उपज से सम्पन्न भूमि—यव—गोधूम
 (गेहूँ) के उपज वाली भूमि का जो किसी वेद के विद्वान् को दान देना है वह
 प म पद को प्राप्त हो जाता है और फिर इस सत्कार में जन्म ग्रहण नहीं करना
 करना है । भूमि का दान सबसे परम एवं श्रेष्ठ दान होता है । ऐसा उत्तम
 अन्य कोई भी दान न जब तक हुआ है और न भविष्य म भी होगा ॥ ६ ॥
 जो विद्य का दान है जिसको कि ब्राह्मण के लिये दिया जाता है उसका बड़ा
 फायदा ब्रह्मलोक में होता है । वसु विद्या का दान नित्य प्रति बड़ी थप्पा से
 ब्रह्मचारी को देना चाहिए । ब्रह्मचारी को विद्या का दान करने वाला पुरुष
 समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर ब्रह्मस्थान को प्राप्त किया करता है
 ॥१०॥ वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन बागह ब्राह्मणों को उपवास कराकर

- दान धर्म वर्णन]

विद्वान् को मधु घोर तिल निष्ठि मे उनका सम्पन्न करना चाहिए । मन्वाशन
पुष्पादि से भली भानि कर्चना करके उनमें बन्दर, वे या मय बोले ॥११॥
धम वाणिषों मे प्रनष्ट होवो उन प्रकार से मन मे वर्तमान होता है । पूरे
जीवन मे जो भी पाप किये है वे मय उसी सख में नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥
ब्राह्मणजिन में तिलो वो रखकर हिरण्य—मधु घोर घृत के सहित वो ब्राह्मण
के निचे दान देना है वह सब दुःकृती से तर जाता है ॥१३॥ वैशाखी पूर्णि-
मासी के दिन घृत—घृत घोर जल विशेष रूप से धर्मराज का निर्देश करक
ब्राह्मणों को दान देना है यह भय से मुक्त हो जाता है ॥१४॥

द्वादश्यामचयेद्विष्णुमुपोऽन्नाघपणाननम् ।
सर्वपापविनिमुक्तो नरो भवति निश्चितम् ॥१५॥
यो हि या देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नर ।
ब्राह्मणान्पूजयेद्दत्ताङ्गजयेद्योषित सुरान् ॥१६॥
मन्तानकाम सतत पूजयेद् वं पुरन्दरम् ।
ब्रह्मवचनकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मनिश्चयात् ॥१७॥
आरोग्यकामोऽय रवि घनकामो हुताशनम् ।
किंशा मिद्धि कामस्तु पूजयेद् वं विनायकम् ॥१८॥
भोगकामो हि शशिन वलकामः समीरणम् ।
मुमुक्षुः सर्वसमारात् प्रयत्नेनाचंयेद्धरिम् ॥
लकाम सर्वकामो वा पूजयेत्तू पदाधरम् ॥१९॥
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति मुत्तमस्यमपन्नदः ।
तिनप्रद प्रज्जामिष्टा दीपदल्लक्ष्मस्तमम् ॥२०॥
भूमिद सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्रचाणि विश्वानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥२१॥

द्वादशी के दिन मे पापों के प्रनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु की उपो-
षित होकर जो भर्चना करना है वह मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विनिमुक्त निश्चय
ही हो जाया करता है ॥१५॥ जो मनुष्य जिस देवता की आराधना करने की

दान धर्म वर्णन]

घोषघ स्नेहमाहार रोगिरोगप्रशान्तये ।
ददानो रोगरहित मुखो दीर्घायुरेव च ॥२५॥
असिपत्रवन मार्गं दुरघातममन्वितम् ।
तौक्षणातपश्च तरति ह्यदोषान्प्रदानत ॥२६॥
यद्यदिष्टतम लोके यज्ञास्य दयित गृहे ।
तन्निद गुणवत्ते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥२७॥

बभ्रु (घन) का दान करने वाला चन्द्र देव के सातोक्ष्य की प्राप्ति करता है और अश्व का दाता अग्नि के लोक की प्राप्ति करता है । वृष्य का दाता पुष्ट श्री का लाभ करता है । गौ का दाता बभ्रु के विष्टय को पाता है ॥२२॥ यान तथा वागा के दान करने वाला पुरुष भार्या को पाता है । अश्व के दान देने वाला ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है । पाण्य का दाता ग्राह्यत मुक्त प्राप्त किया करता है । बभ्रु का दान करने वाला आरयत बभ्रु की प्राप्ति करता है ॥२३॥ वेदों के शाठापी में दिया हुआ ज्ञान श्वय लोक में प्रतिष्ठित होता है । गौरी को पान देने से मनुष्य समस्त पापों में प्रमुक्त हो जाता है । ईपनी के दान से भातव दीप्त अग्नि वाला होता है ॥२४॥ घोषघ—स्नेह घोर माहाण रोग वाले के रोग को शान्त करने के निचे जो दान करने वाला है वह सदा रोगी से रहित—अश्व मुखी तथा लम्बी उम्र वाला होता है ॥२५॥ छाता घोर उपानव भर्षान् जूनी के प्रदान करने पर अक्षिपत्र वन नाम वाले तरक के मार्ग को जो हि फुटा की पाठा में मुक्त होता है उसे घोर अत्यन्त तीव्र पाठा के कष्ट को तैर जाया करता है ॥२६॥ जो जो भी बभ्रु ससार में प्रपने प्रायको घर में यभीष्टतम घोर प्रिय हो वह बहो बभ्रु किमी गुण वाले विप्र को दान में प्रदान करती चाहिए । इससे अश्व मुख की प्राप्ति हुमा करती है ॥२७॥

अयने विपुले चैव ग्रहणे चन्द्रमूर्ययो ।
सकान्त्यादिपु कलिपु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥२८॥
प्रयाणान्दिपु तीर्थेषु गयामाश्च विजेषत ।
दानधर्मस्त्रयो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ॥२९॥

स्वर्गादच्युतिवामेन दान पापोपशान्तये ।

दीयमानन्तु या माहाद्विप्राग्निष्वध्वरेषु च ॥

निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं घ्नन्नेतर ॥३०॥

वस्तु दुर्भिक्षवलायामनाद्य न प्रयच्छति ।

त्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गह्ति ॥३१॥

ध्यान मे—विपुव अर्थात् सकान्ति के समय म तथा चन्द्र एव सूर्य के ग्रहण के समय पर एव म य सकान्ति आदि के समयों पर जो दान किया जाता है वह कभी क्षय की प्राप्ति न होने वाला होता है ॥ २९ ॥ प्रयाग आदि महान् तीर्थों में घोर विनेय रूप से गया नामक तीर्थ में दान करने के फल में बड़ा फल प्राणियों का म य कोई भी फल इन सवार में नहीं होता है ॥२९॥ स्वयं प्राप्त करके फिर वही से कभी भी अच्युति न हो अर्थात् स्वर्गलोक का त्याग न करना पड़े एवं किए हुए समस्त पापों के उपशान्त करने के लिये दिये हुए दान की मोह वग होकर जो विप्र-प्रणि घोर अध्वरा में निवारण कर देता है वह पापात्मा पुरुष तिर्यग्योनि की प्राप्ति हुआ करता है ॥ ३० ॥ जो दुर्भिक्ष (अकाल) के समय में अन्न आदि का दान नहीं दिया करता है अर्थात् जो अन्न प्राप्त न होने के कारण विप्रगण भूल से मर रहे हो उन्हें अन्न नहीं देना है वह ब्रह्म हत्या ही होता है और बहुत ही निर्दोष होता है ॥३१॥

२६-सप्तद्वीप उत्पत्ति और वंश वर्णन

अग्निप्रश्नाग्निवाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमास्तथा ।

मघा मेघातिथिर्नव्य शवस पुन एव च ॥

ज्योतिष्मान्द्रसमा जात पुत्रा ह्येते प्रियव्रतात् ॥१॥

मेघाग्निवाहुपुत्रान्तु त्रया योगपरायणा ।

जातिम्मरा महाभागा न गज्जाय मना दधु ॥

विभज्य मत्त द्वीपानि सप्ताना प्रददौ नृप ॥२॥

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिराल्पुता ।
जलोपरि मही याता नौरिचारते सरिजले ॥३॥
जम्बुद्वीपद्वयो द्वीपो शाल्मलश्चापरो हर ।
कुशः कोशस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥४॥
एते द्वीपाः समुद्रेस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासपिर्दधिदुग्धजलान्तका ॥५॥
द्वीपास्तु द्विगुणो द्वीपः समुद्रश्च वृषध्वजः ।
जम्बुद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षणोजनविस्तृतः ॥६॥
चतुरसीतिसाहस्रं योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः पौडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥७॥
अथ पौडशाहस्रं कणिकाकारसंस्थितः ।
हिमवान्हेमकूटश्च निपधश्चास्य दक्षिणे ॥
नील इवेतश्च शृङ्गो च उत्तरे वपयवताः ॥८॥

श्रीश्री भगवान् ने कहा—राजा प्रिय यह मे दस पुत्र उत्पन्न हुए थे ।
उनके नाम—अग्निघ्न अग्निबाहु—वपुष्मान्—द्युतिमान्—मेघातिथि—भक्ष्य—
पावन—पुत्र और ऽगोनिष्माद् ये थे ॥ १ ॥ मेघा—अग्निबाहु और पुत्र ये तीनों
योगात्सप्त में परामण और महान् भग वाले जानिस्पर हुए थे जिन्होंने कभी भी
भयना मन राज्य के सूची का उपभोग करने में नहीं लगाया था । केवल प्रिय-
या वृष के सात ही पुत्र ऐसे थे जिनके लिये राजा ने मातों की भूमि का सात
द्वीपों में विभाजन करने दे दिया था ॥२॥ पचास करोड़ योजनों के प्रमाण से
युक्त यह वृषों नदी के जल में एक तोका की भाँति प्रप्लुत थी ॥३॥ सात द्वीपों
के नाम—जम्बु द्वीप—जल—शाल्मल द्वीप—हे हर ! कुश—कोश—शाक
द्वीप और सातवाँ पुष्कर द्वीप है ॥ ४ ॥ ये सातों द्वीप सात समुद्रों से आवृत
थे । हे वृषध्वज ! उन सात समुद्रों के नाम ये हैं—लवण—समुद्र—क्षु—सुरा—
सपि (धुन)—दधि—दुग्ध सागर और जन सागर है ॥५॥ एक द्वीप से दूसरा
द्वीप तथा इसी भाँति एक सागर से दूसरा समुद्र दुगुना विस्तार वाला होता है
जम्बुद्वीप में स्थित मेरु गिरि एक लाख योजन के विस्तार वाला है ॥ ६ ॥

चौरामी गरुड योजन बाजी इस मेरु पर्वत की ऊँचाई होती है । षोडश योजन नीचे के भाग में प्रविष्ट है और बत्तीस योजन मूर्द्धा में विस्तृत है ॥७॥ सोलह सहस्र नीचे बलिका व आकार में सन्निभ है । द्विमवान् और हेमकूट तथा इसके दक्षिण में निषध है । उत्तर दिशा में नील—श्वेन और शृङ्गी पर्वत सन्निभ हैं ॥८॥

प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातनाः ।

शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन ॥९॥

। जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निध्रादभवन्नव ।

नाभि विपुस्पदचैव हरिवप इनावृतः ॥१०॥

रम्यो हिरण्यगन्धश्च कुरुभद्राश्च एव च ।

केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्सज्जगत्खण्डकाददौ ॥११॥

नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूदपभो हर ।

तत्पुत्रो भर्ता नाम शालग्रामे स्थितो यती ॥१२॥

सुमतिर्भर्तस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत् ।

इन्द्रश्च भूतस्तत्पुत्र परमेष्ठी ततः स्मृतः ॥१३॥

प्रतीहारश्च तत्पुत्र प्रतिहर्ता तदारमजः ।

सुनस्तस्मादथो जान प्रस्तारतस्मुतो विभु ॥१४॥

पृथुश्च तत्पुत्रो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ।

नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रो बुद्धिराट् ततः ॥१५॥

ततो धीमान्महानेजा भौवनस्तस्य चात्मजः ।

त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्पुत्रः ॥१६॥

शतजिद्रजसस्तस्य विष्वग्ज्योतिः सुतः स्मृतः ॥१६॥

हे शूद्र ! प्लक्ष आदि द्वीपों में जो सनातन मनुष्य निवास किया करते हैं वे शङ्कर । उनमें युगावस्था किसी भी प्रकार से नहीं होती है ॥९॥ जम्बू-द्वीप के अधिपति नृा में विमल नाम अग्निध्र था उससे नौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनमें नाम नाभि—विपुस्प—हरि वप—इनावृत—रम्य—हिरण्यगन्ध यष्ट है ।

दुर्ग-भद्रादयः श्रीर केतुमाल ये । राजा ने उनके लिए जन्ही की सजा धाने खड़ी को दे दिया ॥१०॥११॥ हे हर । नाभि मे भद्र देवी मे श्रुपभ नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था । उसका पुत्र भरत नाम वाला था श्री सातप्राप की उपामना मे स्थित श्रीर जाधारी था ॥ १२ ॥ भरत का सुमति पुत्र हुआ श्रीर उसका पुत्र तेजस हुआ । तेजस का तनय इन्द्र गुम्न हुआ श्रीर फिर हमने परमेशी नाभ पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥१३॥ परमेशी का धात्मज प्रतीहार हुआ था गया इनका पुत्र प्रतिहर्ता हुआ । फिर इसका पुत्र प्रस्तार समुत्पन्न हुआ श्रीर प्रस्तार का पुत्र विभु हुआ था ॥१४॥ विभु का धात्मज नक्त हुआ श्रीर नक्त का भय तथा गयका पुन नर श्रीर इसका पुत्र बुद्धि शब्द उक्ता हुआ था ॥१५॥ हमने महान् तेजस्वी धीमान् जीवन पुत्र हुआ श्रीर इसका धात्मज त्वष्टा हुआ । त्वष्टा का पुत्र विरजा श्रीर विरजा का पुत्र रज हुआ था । रज का पुत्र सत्-श्रित् हुआ श्रीर इसका पुत्र विष्वक्पति हुआ था ॥१६॥

२७ — वर्ष और कुल पर्वत वर्णन

मध्ये स्थितवृत्तो वर्षो भद्राक्षः पूर्वतो भवेत् ।
पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्यान्वृषमध्वज ॥१॥
ततः किम्पूरुषो वर्षो धेरोदक्षिणतः स्मृतः ।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥
पश्चिमे केतुमालश्च रम्पकः पश्चिमोत्तरे ॥२॥
उत्तरे च कुरोर्वर्षः कटवृक्षसमावृतः ।
सिद्धिः स्वामादिकी रुद्र वज्रयित्वा तु भारतम् ॥३॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्तान्नवर्णो यमस्तिमान् ।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा ॥
मयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरमवृतः ॥४॥
पूर्वे किरातास्तस्यास्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।
मान्धा दक्षिणतो रुद्र नुरुष्कास्त्वाप चोत्तरे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया ब्रह्मवा शूद्राश्चान्तर्यामिनः ॥५॥

महेन्द्रो मनय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ।
 विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्ताग्र कुलपर्वता ॥६॥
 वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरसा शिवा ।
 तापी पयोध्या मरू कावेरी गोमती तथा ॥७॥
 गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी ।
 केतुमाना ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती ॥८॥
 अपिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी ।
 विदर्भा च शतद्रुश्च नद्य पापहरा शुभा ॥
 आभा पिबन्ति सलिल मध्यदेशादप्यो जना ॥९॥

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषभ ध्वज । इलावर्ती वर्ष मे स्थित है । इसके पूर्व दिशा मे भद्राश्र वर्ष है । पूर्व और दक्षिण मे हिरण्यव वर्ष है । इसके अगतर किम्बुक्ष वर्ष मेरु के दक्षिण मे स्थित कहा गया है । दक्षिण मे भारग वर्ष बन या गया है तथा दक्षिण और पश्चिम मे हरि वर्ष स्थित है । पश्चिम मे केतुपात है और पश्चिम उत्तर मे रम्यक वर्ष है ॥१-२॥ उत्तर दिशा मे बुरु का वर्ष है जो कि बहुर वृक्ष मे समावृण है । हे रुद्र ! भारत को बर्णित करने सर्वत्र स्थाभाविकी निदि होती हैं ॥३॥ दण्डोय क-रोरमान् ताम्र कर्ण-गभस्तिवान्-ताम्रद्वीप और बटाह-मिहल तथा वारण यह उनमे नवम द्वीप है जोकि सागर से सवृण होता है ॥४॥ इसने पूर्व मे विरात लोग निवास किया करते हैं और पश्चिम मे यवन जाति वाले मानव रहते हैं । दक्षिण दिशा मे अन्ध लोग तथा हे रुद्र ! उत्तर दिशा मे सुरष्टक निवास करते हैं । ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और सूद्र मन्तर मे वास करने वाले हैं ॥५॥ यही पर सान वृत्त पर्वत हैं जिनके नाम—महेन्द्र—मनय—सह्य—शुक्तिमन्-अस पर्वत—विन्ध्य और पारिभद्र हैं ॥६॥ वेदस्मृति-नर्मदा-वरदा-सुरसा-शिवा—तापी-पयोध्या—मरू—कावेरी—गोमती—गोदावरी—भीमरथी—कृष्णवर्णा—महानदी—केतुमाना—ताम्र पर्णी—चन्द्र भागा—सरस्वती—अपि कुल्या—कावेरी—मृत गङ्गा—पयस्विनी—विदर्भा और शतद्रु हैं । ये सभी नदियाँ परम

धूम एव पापों के हरण करने वाली हैं । इन समस्त नदियों का जल मध्य
देशादि के मानव पान किया करत हैं ॥६॥

पाञ्चाला कुरवो मत्स्या यौधेया सपटञ्चरा ।
कुन्तय शूरसेनाश्च मध्यदेशजना स्मृता ॥१०॥
वृषभ्रज जना पाया सूतमागधवेदय ।
कापायाश्च विदेहाश्च पूर्वस्या कोशलास्तथा ॥११॥
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा ।
विष्णान्तर्निभया दशा पूर्वदक्षिणत स्मृता ॥१२॥
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिन ।
कार्गटा काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिन ॥१३॥
अम्बष्ठद्रविडा लाटा कम्बोजा स्त्रीमुक्ता शका ।
घान्तवाग्निनश्चेव जेया दक्षिणपश्चिमे ॥१४॥
स्त्रीराज्या सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ।
पश्चिमेन च विडोवा माथुरा नैपथ्यं सह ॥१५॥
माण्डव्याश्च तुपाराश्च मूलिकाश्चमया खशा ।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे ॥१६॥
सम्बकास्तननागाश्च माद्रगाग्धारवाङ्गिका ।
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीची दिशमाश्रिता ॥१७॥
त्रिगर्त्तनीलकोताभद्रह्यपुष्पा सटङ्कुरा ।
अभीपाहा सकाशमीरा उदरपूर्वेण कीर्तिता ॥१८॥

पाञ्चाल—कुरु—मत्स्य—यौधेय—सपटञ्चर—कुन्ति धीर शूरसेन ये मध्य
देश के मनुष्य रहे जात हैं ॥१०॥ हे वृषभ्रज । पाया—सूत—मागध—वेदि—
कापाय—विदेह तथा काशल ये देश पूर्व में स्थित हैं ॥ ११ ॥ कलिङ्ग—वङ्ग—
पुण्ड्र—अग—वैदर्भ—मूलक ये देश विन्दा के घनान्तर्गत् रहते हैं और पूर्व तथा
दक्षिण में स्थित हैं ॥१२॥ पुलिन्द भरमा—जीमूत—नय राष्ट्र निवासी—कार्गटि
कम्बोज और घाट ये दक्षिणापथ के निवासी होन हैं ॥१३॥ अम्बष्ठ—द्रविड—

प्राज्ञ द्वीपादि वर्णन]

दीर्घे द्वारे का नाम तिसिर या ॥१॥ सुसोदय-नन्द-शिव-शेखर-ध्रुव सातमी
 पुत्र या । ये सब प्लक्ष द्वीप के स्वामी हुए थे ॥२॥ गोमेद-चन्द्र-नारद-दुन्दुभि
 गोमक-मुमना-सैल यह मानवी वैभ्राज हुआ या ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से
 निम्नग भी मान हुए थे । उनके नाम अनुतमा-शिखी-विषाणा-विदिव-कमु-
 समृन्ध मोर मुहृत ये हैं ॥४॥ वपुष्माव् पात्मज द्वीप का स्वामी या । उसके
 पुत्र बर्ग नामधारी हैं । इवेत-हरित-जीमून्-रोहित-वैद्युन्-मानस मोर
 मानवी समूह या ॥ ५ ॥ कुमुद-उन्नत-दोल-महिष-बलाहक-कौच-
 ककुषाद् ये सब गिरि हैं मोर नदियाँ ये हैं-योनितोषा-विभृङ्गा-चन्द्रा-
 मुवपा-विमोचनी-विष्टति सातवीं है । ये सब पाषो की शान्ति प्रदान करने
 वाली कही गई हैं ॥६॥

ज्योतिष्मत् कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान् ।
 उद्भिदो वेणुमान्चैव द्वारयो लम्बनो धृति ॥
 प्रभाकरोऽय कपिलस्तन्नामा वर्षपट्वति ॥८॥
 विद्रुमो हेमनैलश्च द्युतिमान्पुण्यवास्तया ।
 कुनेनयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचल ॥९॥
 धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तया ।
 कौञ्चद्वीपे द्युतिमत् पुत्रा सप्त महात्मन ।
 कुशलो मन्दगश्चोऽणु पीवरोऽयान्धकारक ॥
 मुनिश्च दुद्रुभिश्चैव सप्तैते तन्मुता हर ॥११॥
 कौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारक ।
 देवावृक्ष महाशैलो दुन्दुभि पुण्डरीकवान् ॥१२॥
 गौरी कुमुदतो चैव सन्ध्या रात्रिमंनोजवा ।
 ररातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगा ॥१३॥
 धावद्वीपेश्वराङ्गव्यात्मस पुत्रा प्रजसिरे ।

जलदम्ब कुमारश्च सुकुमारो मगोवक ॥

कुनुमोद समोदाकि सप्तमश्च महाद्रुम ॥१४

कुगडीर मे ग्गोनिष्पान् के मात पुत्र हुए थे उनके अग्रण करो ।

उद्भिद—वगुमान्—ईर्य—सम्बन—वृत्रि—अभाकर—ररित ये उनके सात नाम हैं । इनके नामों से ही वर्षों की पद्धति को रचना हुई थी ॥८॥ विद्रुम—हेमरीत पुत्रिमा—मुपवान्—कुट्टेराय—हरि और सतवा मन्दराचल ये सात पर्वत हैं ॥९॥ पनराता—निब—गवित्रा—मम्मनि—विद्युदम्भा—मही और काशा ये सात नदियाँ हैं जो नमस्त प्रकार के पानी कहें करन वाली हैं ॥ १० ॥ जोश द्वीप में महान् आत्मा व ते सतमान् के मात पुत्र हुए थे । उनके नाम कुगत—मन्दग—ठप्पण—वीरर—मन्धकारक—मुनि और दुन्दुभि हे हर ये सात उनके पुत्रों के पुत्र नम हैं ॥ ११ ॥ कोञ्च—वामन्—जीवरा मन्धकारक—देवावृन्—महारीत—दुपुनि और पुम्बरीरवान् ये सत पर्वत हैं ॥ १२ ॥ गौरी—कुमुद्री—सग्न्या—रात्रि—मज्जवा—मशानि और पुत्तगेवा ये मात उस कीच द्वीप में बहुत बानी नदियाँ हैं ॥१३॥ राक द्वीप के स्वामी भय से मात पुत्र समुद्रश्च हुए थे । उनके नाम जलद—कुमार—मुकुमर—मगोवक—कुमुमोद—समोदाकि और सातवें पुत्र का नाम महाद्रुम था ॥१४॥

सुकुमारो कुमारो च नलिना धेनुका च या ।

इधुश्च वेणुका चैव गभस्तो सप्तमो तथा ॥१५

शबलात्पुम्बरेशाच्च महावीरश्च घातकि ।

अभूदपद्मयश्चैव मानसात्तपूर्वत ॥१६

योजनाना सहस्राणि ऊर्ध्वं पश्चादुच्चिद्रुत ।

तावच्चैव च विष्मार्णं सर्वत परिमण्डल ॥१७

स्याद्दूश्चैनोदधिना पुष्कर परिवेष्टितः ।

श्वाद्भवनस्य पुरतो हस्यते लोचनमिषिनि ॥१८

दिगुणा साञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुर्विर्वजिता ॥१९

लोचानोवस्तन. दानो योजनायुतविमृतः ।

तममा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽप्यण्डकटाहत. ॥२०

पाताल नरकादि वर्णन]

उप द्वीप मे सात नदियाँ है उनके नाम सुकुमागी-कुमारी-नलिनी—
धेनुका-वसु—वेणुका-गमस्ती ये हैं ॥ १३ ॥ सबल घोर पुष्करेश से महावीर
घोर धातकि ये मानस के उत्तर-पूर्व मे दो घर्ष हुए थे ॥१६॥ पञ्चम सहस्र
योजन ऊपर की ऊँचे घोर उतना हो सब ओर से परिमण्डल विस्तार वाला
था ॥१७॥ पुष्कर ममुद्र के दन से परिदेष्टि है । उदक के प्राये लोक मस्तिपति
दिशलाई देती है ॥१८॥ दुगुनी स्वर्णप्रयी भूमि है जोकि सब प्रकार के जन्तुयो
मे रहित है ॥१९॥ वहाँ पर मोकालोक पर्वत है जोकि दश हजार योजन के
विस्तार वाला है । बह पर्वत अन्यकार से व्याप्त है घोर धन्वकार मण्डकटाह
से व्याप्त है । २०॥

२६-पाताल नरकादि वर्णन

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रायोऽपि कथ्यते ।
दशसाहस्रमेकैक पाताल वृषभध्वज ॥१॥
अतल वितलश्च नितलश्च गमन्तिमत् ।
महास्य सुतलश्चाप्य पातालश्चापि सप्तमम् ॥२॥
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्यरा शैलकाश्चना ।
भ्रमयन्त्यत्र दंतेषा वसन्ति च भुजङ्गमा ॥३॥
रोद्रे तु पृष्कगद्वोपे नरका मन्ति तान् भृशु ।
रोरव सूरुरो वोधस्तालो विशमनस्तथा ॥४॥
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽप्य विमोहिनः ।
रघिरोऽप्य वैतरणी कृमिगः कृमिभोजन ॥५॥
भसिपत्रवनः कृष्णो नानामधश्च दारुणः ।
तगा पूयवद् पापो वह्निज्वालोद्भूवोऽग्निरव ॥६॥
सदशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावोचिरेव च ।
श्वभोजनोऽप्यप्रतिष्ठोऽप्यवोचिर्नरकाः स्मृताः ॥७॥
पापिनस्तेषु पच्यन्ते विपश्चाग्निदायिनः ॥८॥
उत्प्युगिरि वै लोका रुद्र भूतादयः स्थिता ॥९॥

वारिवह्नयनिलाकाशे वृत्त भूतादिना च तत् ।

तदण्ड महता रद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ॥

अण्ड दशगुण व्याप्त व्याप्य नारायण स्थित ॥६

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषभ ध्वज । इस भूमि की ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन कही जाती है और एक—एकका दश सहस्र वाला पाताल है पाताल भी सात है—उनके नाम घनतल—वितल—नितल—गभस्तिष्ठ—मह रू—सुतल और अष्टम पाताल सातवाँ है ॥१२॥ कृष्णा—शुक्ला—घट्टणा—शीता—सकरा और शैलकाश्वना ये वहाँ पर भूमियाँ हैं । दंतैर और भुजङ्गम वहाँ निवास किया करते हैं ॥३॥ शेर पृथ्वी की प म नरक है जब उनके नामों का श्रवण करो । शेरव—गूर—बोधस्ताल—विशमन—महाज्वाल—तप्त कुम्भ—सवण—विमोहित—रुधिर—बैड—रूपी—कृमिग—कृमिभोजन—घतिपत्र घन—कृष्ण—नानाभक्ष—पूष वह—पाप—वाह्यज्वालोज्ज्वल—घतिव—तदग—कृष्ण सूत्र—तम—प्रवीचि—अभोजन—प्रतिष्ठ—उष्णवीचि—य नरक कहे गये हैं । पापी लोग इन चक्र नरकों में अपने किये हुए पापों के फलों की पीड़ा भोगा करते हैं जाकि विष्ट—नाश तथा घनि के देने वाले होने हैं । हे रद्र ! इनके ऊपर—उत्तर में राक है जहाँ पर भूनादि स्थित रहा करते हैं । जल—अग्नि—वायु और वाकाश म वह भूनादि से वृत्त है । हे रद्र ! यह अण्ड महान् प्रधान के द्वारा वेष्टित है यह अण्ड दश गुना व्याप्त है और वहाँ नारायण व्याप्त होकर स्थित है । ४ से ६॥

३०—ज्योतिषशास्त्र वर्णन

पडादित्ये दशा ज्येथा सोमे पञ्चदश स्मृता ।

अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदश स्मृता ॥१

शनेश्वरे दश ज्येथा गुरारेकानविंशति ।

राहोर्द्वादशवर्षाणि एवविंशति भार्गवे ॥२

रवेर्दशा दुग्धदा स्यादुद्धे गन्धनाशकृत् ।

विभूनिदा सोमदशा मुक्कमिष्टाश्रदा तथा ॥३

दुःखप्रदाकुजदशा राज्यदे स्याद्विनाशिनी ।
 दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोपवृद्धिदा ॥४॥
 शनेर्दशा राज्यनाशवन्धुदुःखकरी भवेत् ।
 गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखवर्मादिदायिनी ॥
 राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत् ॥५॥
 हस्तपञ्चदश शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत् ॥६॥
 मेघमङ्गारकक्षेत्र वृष शुक्रस्य कीर्तितम् ।
 मिथुनस्य बुधो ज्ञेय सोमः कर्कटस्य च ॥७॥

श्री हरि भगवान् बोले—छै घादित्त में दशा ज्ञाननी चाहिए । चन्द्रमा
 में पन्द्रह दशा बताई गई है । मङ्गल में घाठ—बुध में सत्रह कही गई हैं ॥१॥
 शनीयर में दश और गुरु की दशम तथा राहु की बारह वर्ष की और शुक्र
 की द्वाकीस वर्ष की दशा होती है ॥ २ ॥ रवि की दशा दुःख दायिनी होती
 है । यह सबैय और मूत्र का नाश करने वाली होती है । चन्द्रमा की दशा विभूति
 के प्रदान करने वाली होती है और यह सुख तथा मिष्टान्त के देने वाली है । ३।
 मङ्गल की दशा दुःख देने वाली और राज्य घाति के विनाश करने वाली होती
 है । बुध की दशा दिव्य स्त्री का प्रदान करने वाली राज्य देने वाली तथा
 कोप की वृद्धि करने वाली है ॥ ४ ॥ शनि की दशा राज्य के नाश करने वाली
 और बन्धुघो को दुःख करने वाली होती है । गुरु की दशा राज्य प्रदान करने
 वाली तथा सुख एवं धर्म भादि के देने वाली होती है । राहु की दशा राज्य
 का नाश करने वाली व्याधि देने वाली और दुःख दायिनी होती है ॥ ५ ॥
 शुक्रदेव की दशा हारी—घोड़े देने वाली और राज्य—स्त्री एवं लाभ कराने
 वाली हुषा करती है ॥ ६ ॥ मङ्गल का क्षेत्र मेघ है और शुक्र का क्षेत्र वृष
 होता है । मिथुन का बुध जन्मा चाहिए तथा बर्क का सोम होता है ॥७॥

सूर्यक्षेत्रं भवेत् सिंह कन्याक्षेत्रं बुधस्य च ।
 भार्गवस्य तुलाक्षेत्रं वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च ॥८॥

धनुः सुरगुरोश्चैव शनेर्मवङ्कुम्भको ।
 मीनः सुरगुरोश्चैव ग्रहक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥६॥
 पौर्णमास्या द्वयं यत्र पूर्वाषाढाद्वयं भवेत् ।
 द्विर्वाषाढं स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥१०॥
 अश्विनी रेवती चित्रा घनिष्ठा स्पादलङ्कृतौ ॥११॥
 मृगाहिकपिमार्जारिश्चान्न शूकरपक्षिणः ।
 नकुलो मूपिकश्चैव यात्रायां दक्षिणे शुभः ॥१२॥
 विप्रवन्द्या शवो रुद्रः शङ्खभेरीवसुधरा ।
 वेणुस्त्रीपूर्णकुम्भानां यात्रायां दर्शनं शुभम् ॥
 जम्बूक-छट्ट-खराद्याश्च यात्रायां वामके शुभाः ॥१३॥
 कार्पासीपथितैलश्च पक्वप्राङ्गारभुजङ्गमाः ।
 मुक्तवेशी रत्नमाल्य नम्राद्यशुभमीक्षितम् ॥१४॥

मिह का स्वामी गुर्यं होता है और क या का मधिपति बुध होता है ।
 अङ्गारका घर्षात् मङ्गल का क्षेत्र वृश्चिक होता है । तात्पर्य यह है कि मेष और
 वृश्चिक दोनों का स्वामी भीम हैं तथा तुला और मृग दोनों का स्वामी शुक्र
 होता है । वृहापति धन का स्वामी है तथा मकर और कुम्भ इन दोनों का
 स्वामी घनि होता है । मीन का भी धन का साथ स्वामी गुरु होता है । इस
 तरह ये ग्रहों के क्षेत्र बना दिए गये हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ पौर्णमासी से जहाँ पर
 दा पूर्वाषाढा हो वह दो षाषाढ वाला जानना चाहिए विष्णु कर्कट में शयन किया
 करते हैं ॥ १० ॥ अलङ्कृति में अश्विनी—रेवती—चित्रा और घनिष्ठा ये
 नक्षत्र लिये जाते हैं ॥ ११ ॥ मृग—पक्षि—वृजि—मार्जार—श्चान्न—शूकर
 पक्षी—नकुल और मूपिक ये यात्रा में दक्षिण रहने वाले शुभ होते हैं ॥ १२ ॥
 विप्रवी—कन्या—शव (मृत दृष्ट)—छट्ट—भेरी—वसुधरा—वेणु—पूर्ण कुम्भ ये
 हे रुद्र । यात्रा के समय में दशन दन वास शुभ माने जाते हैं । जम्बूक—छट्ट
 (ऊँट) और खर आदि यात्रा में बाईं ओर हो तो शुभ कहे गये हैं ॥ १३ ॥
 कार्पास—मोपथि—तैल—पक्व—प्राङ्गार—भुजङ्गम—मुक्त वशी वामी—रक्त वरुण

की माला और नून (नशादीर) आदि ये सब धातु मिललाई देते हैं तो मनुष्य होते हैं ॥ १४ ॥

हिक्काया लक्षण वक्ष्ये नभेत्पूवं महाफलम् ।
 आग्नेये शोकमन्तापी दक्षिणे हानिमाप्नुयात् ॥ १५ ॥
 नैऋत्ये शोकसन्तापी मिष्टान्नञ्चैव पश्चिमे ।
 अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत् ॥
 ईशाने मरणं प्रोक्तं हिक्कायाश्च फलाफलम् ॥ १६ ॥
 विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभः ।
 यस्मिन्नुक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके ॥ १७ ॥
 त्रयं वक्ष्ये प्रदातव्यमेकैकं स्कन्धयोर्व्यसेत् ।
 एकैकं बाहुयुग्मे नु एकैकं हस्तयोर्द्वयोः ॥ १८ ॥
 हृदये पञ्च श्लक्ष्णैः एकं नाभौ प्रदापयेत् ।
 श्लक्ष्णैकं न्यसेद्गुह्ये एकैकं जानुके न्यसेत् ॥ १९ ॥
 नक्षत्राणि च शेषाणि रविपादे नियोजयेत् ।
 चरणस्थेन श्लक्ष्णेन मत्स्यायुर्जायते नरः ॥ २० ॥
 विदेशगमनं जानौ गुह्यस्थे परदारवान् ।
 नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टा हृत्स्थेन स्यान्महेश्वरः ॥ २१ ॥
 पाणिस्थेन भवेत्तोरः स्थानप्रष्टो भवेद्भुजे ।
 स्कन्धस्थिते घनपतिर्भुजे मिष्टान्नमाप्नुयात् ॥
 मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्रं स्याद्यदि स्थितम् ॥ २२ ॥

यब दिक्की के लक्षण बताये जाते हैं । यदि हिक्का पूर्वे दिशा में होवे तो इसका महाव फल होता है । अग्नि कोण में यह शोक एवं सन्ताप की देने वाली होती है । दक्षिण दिशा में होने वाली हिक्का हानिप्रद होती है ॥ १५ ॥ नैऋत्य कोण की हिक्का शोक एवं सन्ताप की देने वाली है । पश्चिम में होने वाली मिष्टान्न प्रदान करने वाली है । वायव्य दिशा की हिक्का भयं प्रदा है और उत्तर में होने से कलह होता है । ईशान दिशा में होने से

मरण होता है । इस प्रकार से ह्रिक्रा के ये फलाफल होते हैं ॥ १६ ॥ रवि का चक्र चिरे । भास्कर एक नक्षत्र के सदृश होता है । जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से प्रादि लेकर तीन नक्षत्र मस्तक पर विन्यस्त करे । तीन भुज में व्यस्त करे और एक-एक दोनो कन्धो पर विन्यस्त करे । एक-एक दोनो बाहुओं में और एक-एक दोनो हाथों में व्यस्त करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस नराकृति रविचक्र के हृदय में पाँच नक्षत्र उसी क्रम से लिखे और एक नाभि में विन्यस्त करना चाहिए । एक नक्षत्र गुह्य में रखे और एक-एक दोनो घुटनों में विन्यस्त करे ॥ १९ ॥ शेष नक्षत्रों को रवि के चरणों में विन्यस्त कर देना चाहिए । चरण में स्थित नक्षत्र में मनुष्य भूत प्रायु वाला होता है ॥ २० ॥ जानु में स्थित नक्षत्र में विदेश में गमन होता है और जो गुह्य में स्थित नक्षत्र है उससे पत्नी स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला होता है । नाभि में स्थित नक्षत्र में भ्रष्ट सन्तोष वाला होता है तथा हृदय में स्थित नक्षत्र से महेश्वर उपा करता है ॥ २१ ॥ हाथ में स्थित नक्षत्र से चोर होता है और भुजा में स्थित नक्षत्र से स्थान भ्रष्ट होता है । स्वर्ग में स्थित नक्षत्र का यह फल है कि वह धन का स्वामी होता है तथा भुज में स्थित नक्षत्र से मिष्टान्न की प्राप्ति वाला है । मस्तक में स्थित नक्षत्र से पट्ट वस्त्र वाला होता है ॥ २२ ॥

३१-चन्द्रशुद्धि कथन ।

सप्तमोपचयाद्यस्यश्चन्द्र सर्वत्र शोभन ।
 शुक्लपद्मे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥
 सपूज्यमानो लोर्नस्तु गुरुवद् दृश्यते शशी ॥१॥
 चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणुत अपि ।
 त्रिषु त्रिषु च श्लोषेण श्रुतिग्यादि वदाम्यहम् ॥२॥
 प्रवासस्य पुनर्नष्ट मृतावस्य जयावहम् ।
 हास्यावस्य क्रीडावस्य प्रमोदावस्यमेव च ॥३॥
 विपादावस्य भोगस्ये ज्वरावस्य व्यवस्थितम् ।
 धम्पावस्य स्वस्यावस्य द्वादशावस्यग भवेत् ॥४॥

प्रवासो हानिर्मुल्युश्च जयो हासो रतिः सुखम् ।
 शोको भोगो ज्वरः कम्प सुस्थावस्था क्रमात् फलम् ॥१॥
 जन्मस्य कुरुते तुष्टिं द्वितीये नास्ति निर्वृतिः ।
 तृतीये राजसम्मानं चतुर्थे कलहागमः ॥६॥
 पञ्चमेन मृगाङ्गणे स्त्रीलाभो वै तथा भवेत् ।
 घनधान्यागमः षष्ठे रतिः पूजा च सप्तमे ॥
 अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोपसञ्चयः ॥७॥
 दशमे कायपेनिष्पत्तिर्ध्रुवमेकादशे जयः ।
 द्वादशेन शशाङ्केन मृत्युरेव न सप्तमे ॥८॥

श्री हरि ने कहा—सप्तम उपवसादि में स्थित चन्द्रमा सब जगह शोभन होता है । शुक्लपक्ष में द्वितीय—पञ्चम और नवम लोको के द्वारा संपूज्यमान तथा गुरु के समान चन्द्र दिखनाई देता है ॥ १ ॥ चन्द्र की बारह भवस्थायों होती हैं उनका भी अब अवलोकन करो । अधिपति भादि तीन—तीन नशाधो में बहती है जिसकी मैं अब बतलाता हूँ ॥ २ ॥ वे बारह भवस्थायें ये हैं—प्रवासावस्था—पुनः नष्टावस्था—मृगावस्था—अयावलावस्था—हासप्रवस्था—विषादावस्था भोगावस्था—ज्वरावस्था—कम्पावस्था—स्वस्थावस्था ये बारह भवस्थायें हैं । इस प्रकार से द्वादश भवस्थायों में चन्द्र गमन करने वाला होता है ॥ ३ ॥ ४॥ इन भवस्थायों का क्रम में फल भी बड़ा जाता है प्रवास का होना—हानि मृत्यु—जय प्राप्त करना—हास—रति—गुरु—शोक—भोग—ज्वर—कम्प और सुख ये हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ जन्म में रहने वाला चन्द्र तुष्टि किया करता है । द्वितीय चन्द्र निर्वृति (मानन्द) नहीं करने वाला होता है । तीसरे घर में रहने वाला चन्द्र राज सम्मान का प्रदान कराने वाला होता है । चतुर्थ चन्द्र कलह कराने वाला है ॥ ६ ॥ पंचवीं चन्द्र स्त्री का लाभ देने वाला है और छठवें चन्द्र में घन धान्यादि का आगम होता है । सातवें चन्द्र में रति और पूजा होती है । आठवें घर में स्थित चन्द्रमा मारक होता है और इसमें प्राणों का भी सन्देह रहा करता है । नवम चन्द्र में कोप का सञ्चय होता है ॥ ७ ॥ दशम चन्द्र में कायों

की मिट्टि होती है तथा ग्यारहवें चन्द्र म जय होता है । बारहवा चन्द्र अत्यन्त मंगुल है । इसमें निश्चय ही मृत्यु होती है और कुछ भी सशय नहीं होता है ॥ ८ ॥

कृत्तिवादो च पूर्वेषा सप्तर्शाणि च वै वजेत् ।
 मघादो दक्षिणे गच्छेदनुगाधादि पश्चिमे ॥९॥
 प्रशस्ता चात्तरे यात्रा घनिष्ठादि च सप्तसु ॥१०॥
 अश्विनी रेवती चित्रा घनिष्ठा समलङ्कृता ।
 मृगाश्रिचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभा सदा ॥
 वन्याप्रदाने यात्राया प्रतिष्ठादिषु कमसु ॥११॥
 शुक्लचन्द्रो जन्मस्थो शुभदो च द्वितीयके ।
 दक्षिणशुक्लजीवाश्च राशौ चाथ तृतीयके ॥१२॥
 भौममन्दराशौ द्वाका बुधः श्रुश्रुतुदके ।
 शुक्लजीवो पञ्चमो च चन्द्रकेतुगमाहितौ ॥१३॥
 मन्दाका च कुजः पठे गुरुचन्द्रौ च सप्तमे ।
 जगुक्कावष्टमः श्रुश्रु नवमस्थो गुरः शुभः ॥१४॥

यत्र यात्रा के लिये प्रशस्त गतया के विषय में विभिन्न दिशाएँ बतवाई जाती हैं—कृत्तिवादि सात नक्षत्रों में पूर्व दिशा में यात्रा करे—मघादि सात नक्षत्रों में दक्षिण दिशा में यात्रा करे—अनुगाधा मादि सात नक्षत्रों में पश्चिम में यात्रा शुभ होती है तथा घनिष्ठा आदि सात नक्षत्रों में उत्तर दिशा में यात्रा प्रशस्त होती है ॥ ९ ॥ १० ॥ अश्विनी—रेवती—चित्रा और घनिष्ठा ये नक्षत्र राम नन्दराज त्रिषा में शुभ होते हैं । मृगशिरा—अश्विनी—चित्रा—पुष्य—मूला—हस्ता ये नक्षत्र व या व दान करने में—यात्रा में और प्रतिष्ठा आदि कर्मों के करने में मङ्गल शुभ माने जाते हैं ॥ ११ ॥ जय गृह में स्थित पुत्र और चन्द्र तथा दूसरे गृह में स्थित पुत्र पर शुभ फल देता पाते होते हैं । चन्द्र—बुध—शुक्र और गुरु तीनों पर में स्थित होते पर शुभ फल प्रदान करने पाते हैं ॥ १२ ॥ मङ्गल—शनि—चन्द्र—सूर्य और गुरु शीघ्र पर में होते अशुभ हैं । शुक्र और गुरुस्थिति

पौनर्वे पर मे हों तथा चन्द्र एव केतु से समाहित होवें तो श्रेष्ठ होने हैं ॥१३॥
 राशि भोर मूयं तथा मङ्गल छटे हो भोर शुभ चन्द्र मत्तम हो बुध भोर शुक्र
 मष्टम हो तो श्रेष्ठ कहे गये हैं । नवम घर में स्थित बृहस्पति सदा शुभ होता
 है ॥ १४ ॥

अर्काकिचन्द्रा दशम एकादशेऽतिला ग्रहा ।
 बुधोऽथ द्वादशे चैव भागंव. सुखदो भवेत् ॥१५॥
 तिहेन मकरः श्रेष्ठ कन्यया मेघ उत्तम ।
 तुलया स मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कट ॥१६॥
 धनुषा वृषभ धौलो मिथुनेन च वृश्चिक. ।
 एतत्पट्टक प्रीत्यै भवत्येव न सशयः ॥१७॥

सूर्य भोर मूयं का पुत्र अर्को तथा चन्द्रमा दशम घर में एव ग्याहवें
 घर में स्थित तमस्त ग्रह शुभ होते हैं । बारहवें घर में बुध तथा शुक्र तुल्य देने
 वाले होते हैं ॥१५॥ मकर उच्च स्थानीय ग्रहो के विषय में बतनाते हैं—तिह से
 शुक्र मकर श्रेष्ठ होता है । कन्या व शुक्र मेघ उत्तम होता है । तुला से मीन
 भोर कुम्भ से कर्क उत्तम है ॥ १६ ॥ धन से वृषभ भोर मिथुन से वृश्चिक
 यह पट्टक प्रीति के लिये होता है भोर कुल भी सत्य की बात नहीं है ॥१७॥

३२—द्वादश राशि वर्णन

उदयास्त समारण्य राशी भानु स्थितो हर ।
 स्वराश्यायं शंखेदह्निषड्भि पट् भिस्तया निशाम् ॥१॥
 मोने मेघे च पञ्च स्युश्चतस्रो वृषकुम्भयो ।
 मकरे मिथुने तिस्र पञ्च चापे च कर्कटे ॥२॥
 मिहे च वृश्चिके पट् च सप्त कन्यातुले तथा ।
 एता नग्नप्रमाणेन घटिका परिकीर्तिताः ॥३॥
 रमपूर्वावसानेषु रमाधिप्यरिसागरा ।
 लङ्कोर्या हि तद्वत् नगना मेपादयोऽथवा ॥४॥

मेघलग्ने भवेद् वन्ध्या वृषे भवति कामिनी ।

मिथुने शुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे ॥५॥

मिहं चैवात्पुत्रा च कन्याया रूपसयुता ।

तुलाया रूपमश्वर्यं वृश्चिके पर्वशा भवेत् ॥६॥

मौभास्य धनुषि म्याच्च मकरे नानगामिनी ।

कुम्भे चैवात्पुत्रा स्यान्मौने वैराग्यसयुता ॥७॥

श्री हरि भगवान् बोले—हे हर ! उदय चान में जिन राशि पर सूर्य
रिषत होता है उन चपत्ती राशि में छे राशियों दिन में घोर छे राशियों रात्रि
में वह गमन किया करता है ॥ १ ॥ इस प्रकार से छे-छे राशियों में गति
किया करता है । इन रीति में सब विश्व-भिन्न राशियों की लान घटिया बताई
जाती है । मोन घोर मेघ की पाँच पटी होती है—वृष और कुम्भ की चार
पटी होती हैं—मकर और मिथुन की तीन-तीन पटिया होती हैं तथा इन
एक वर्ष की पाँच पटी हुआ करती है ॥ २ ॥ मिह और वृश्चिक की छे पटी
है तथा कन्या और तुला की सात पटी होती है । इस प्रकार में चहोतर में
लग्न के प्रमाण में सम्पूर्ण राशियों की घटिकाएँ बताई गई हैं ॥ ३ ॥ घादि
और घन में सब सम्भार पर्वान् छे-छे घटियों की तथा पाँच चार और तीन
घटियों की मेघ घादि राशियों की लान होती है ॥ ४ ॥ मेघ लग्न में जा कन्या
हो वह बन्ध्या होती है—वृष लग्न में कामिनी—मिथुन में गरम शुभग और
का लग्न में जन्म ग्रहण करने वाली वेश्या वृत्ति वाली सत्य पुत्रों वाली होती
है—कन्या लग्न में उत्पन्न कन्या रुद्र लावण्य में समन्वित होती है । तुला लग्न
में जन्मन वाली व रूप और ऐश्वर्य दोनों ही होते हैं । वृश्चिक लग्न में मनु-
त्पन्न कन्या बहुत ही पर्वगा होती है ॥ ६ ॥ मकर लग्न में उत्पत्ति वाली कन्या
मौभास्य शानिनी होती है मकर लग्न में पंडा हुंन वाली कन्या नीच का गमन
करने वाली होती है । कुम्भ में उत्पन्न घात पुत्र वाली तथा मोन लग्न में
समुत्पन्न कन्या वैराग्य में गपुत्र होती है ॥ ७ ॥

तुलावकंठको मेघो मकरश्चैव राशयः ।
 चरकाय्याणि कुय्याञ्च स्थिरकाय्याणि चैव हि ॥८॥
 पञ्चाननो वृष कुम्भो वृश्चिकः स्युः स्थिराणि हि ।
 कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुन द्विस्वभावतः ॥९॥
 द्विस्वभावानि कर्माणि कुम्पादिषु विचक्षण ।
 यात्रा चरेण कर्तव्या प्रवेष्टव्य स्थिरैण तु ॥
 देवस्थापनवैवाह्य द्विस्वभावेन कारयेत् ॥१०॥
 प्रतिपन्नाय पक्षी च नन्दा चैकादशी स्मृता ।
 द्वितीया मत्तमी मद्रा द्वादशी वृषभध्वज ॥११॥
 जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रश्मि नयोदशी ।
 चतुर्थी नवमी रिक्ता सा वज्र्याश्च चतुर्दशी ।
 पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमा च शुभा स्मृता ॥१२॥
 चर सीम्यो गुरु क्षिप्रौ मृदु शुक्रौ रविध्रुव ।
 शनिश्च दाहका ज्यो भोग उग्र मशी सम ॥१३॥

तुला—वकं—मेघ और मकर ये राशियाँ चर कार्य वाली हैं क्योंकि ये चर स्वभाव वाली हैं । इनमें चर कार्य ही करने चाहिए । सिंह—वृष—कुम्भ और वृश्चिक ये स्थिर राशियाँ होती हैं । इनमें स्थिर कार्य करने चाहिए । कन्या—धन—मीन और मिथुन ये द्विस्वभाव वाली राशियाँ होती हैं । इन राशियों में विचक्षण पुरुष की ऐसे ही कार्य करने चाहिए जो द्विभाव वाले हैं । यात्रा सर्वदा चर लग्नों में करे और गृह प्रवेश आदि काम्य स्थिर लग्नों में ही करना चाहिए । देवता की स्थापना और वैवाह्य कार्य द्विस्वभाव वाली लग्नों में करने चाहिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ यव नियमों की शुभाशुभ मज्ञा घटाने हैं—प्रतिपदा—पक्षी और एकादशी—इन तिथियों की नन्दा मज्ञा है—द्वितीया, मत्तमी और द्वादशी—इन तिथियों की ह वृषभध्वज । मद्रा मज्ञा होती है । मष्टमी—तृतीया और नयोदशी हे रश्मि । इन तिथियों की जया नाम वाली कहा जाता है । चतुर्थी—नवमी और चतुर्दशी—ये तिथियाँ रिक्ता कही जाती हैं और

ये वञ्चित माने जाती हैं मर्यात् कोई भी शुभ कार्य रिक्ता तिथियो में नहीं किया जाता है । पञ्चमी-दशमी और पूर्णिमा ये तिथियाँ पूर्ण संज्ञा वाली होती हैं तथा परम शुभ बही गई हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ अब ग्रहों के स्वभाव और स्वरूप बताये जाते हैं—गुरु चर एवं सौम्य है । शुक्र क्षिप्र तथा मृदु होता है । रवि ध्रुव है । शनि परम दारुण जानना चाहिए । भीम उग्र होता है । चन्द्र मम है ॥ १३ ॥

चरक्षिप्रं प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवं ।
 दारुणोयंश्च योद्धव्यं धात्रियैर्जयवाङ्क्षिभिः ॥
 नृपाभिपेकोऽग्निकार्यंश्च सोमवारे प्रशस्यते ॥१४॥
 मौमे तुले प्रमाणश्च कुर्याच्चैव गृहादिकम् ।
 सैन्यापत्यं शौर्यं युद्धं सस्त्राभ्यासं कुजे स्मृतम् ॥१५॥
 सिद्धिवायंश्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृतम् ।
 पठनं देवपूजा च वस्त्राद्याभरणं गुरौ ॥१६॥
 कन्यादानं गजारोहं शुक्रं स्यात्समयः स्त्रियाः ।
 स्याप्य गृहप्रवेशश्च गजबन्धः शनौ शुभः ॥१७॥

चर और क्षिप्र ग्रहों के दिन प्रयाण करने और मृदु तथा ध्रुव में प्रवेश करना चाहिए । दारुण तथा उग्र में अब की भावाङ्क्षा रखने वाले क्षत्रियों को युद्ध करना चाहिए । नृप का धर्मियेह का कार्य तथा क्षत्रिय काय चन्द्रवार में ही परम प्रशस्त होता है ॥ १४ ॥ मम तुल में प्रमाण और गृहादिक का कार्य करना चाहिए । सैन्यापत्य सेना से सम्बन्धित कार्य, दूरतापूर्ण युद्ध और सस्त्रादि के अभ्यास का काम कुज में बताया गया है । सिद्धि वाय-मन्त्र सम्बन्धी कार्य—यात्रा बुध में बरे । पठन-देवों की पूजा तथा वस्त्रादि एवं आभरण धारणादि का कार्य गुरुवार में बरे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कन्या का दान-गजारोहण मर्यात् हाथी की सवारी करना—ये कार्य शुक्रवार में बरे । स्त्री के समय-स्वापना के योग्य काम तथा गृह प्रवेश और गजबन्ध शनिवार में शुभ होते हैं । १७ ॥

३३—पुरुष और स्त्री लक्षण ।

नरन्मोलक्षण वक्ष्ये सर्वपाच्छगु शङ्कर ।
 शम्भेदिनी मुहुतलो कमलोदरसन्निभो ॥१
 दिनप्रागुली नाभ्रनग्री मुमुक्षो गिरयोजिह्वनी ।
 क्रमोन्नतो च चरणी स्याता नृपवरस्य हि ॥२
 विस्मयापाण्डरनखो वक्त्रश्चैव शिरोऽक्षतम् ।
 भूर्पाकारो च चरणी मधुष्को चरणागूली ॥
 दुःखदारिद्र्यशो स्याता नान काय्या विचारणा ॥३
 शल्परोमयुता श्रेष्ठा जङ्घा हस्तिकरोपमा ।
 रोमैर्कंक वृषके स्याद् भूपानान्तु महात्मनाम् ॥४
 द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तर्जय च ।
 रोमत्रय दस्त्रिणां रोगी निर्मा सत्तानुक ॥५
 पश्यान्निङ्गै च धनवान् म्याञ्च पुत्रादिवर्जित ।
 मूललिङ्गो दरिद्र स्याद् दृष्टेकवृषणो भवेत् ॥६
 विषमे स्त्रीवशलो वै नृप स्याद्बृषणे समे ।
 ----- निमंत्रेत् ॥

नर ॥७

यो हरि भक्तवान् बोले—हे शङ्कर । मर हम नर श्रियो के लक्षण सीर में बताते हैं उनका धरण धार करें । जो परम श्रेष्ठ नृप होते हैं मर्याद नृप के समकक्ष पुरुष होत हैं उनके चरण मुहु छले वाले होने हैं और उनके तनों में कभी भी पत्तीना नहीं होता है । इनके चरण कमल पुष्प के मध्य भाग के सदृश दृढा करने हैं । इन चरणों की मधुनिया एक दूसरे में द्रिष्ट अर्थात् मीठी हुई दृढा करती है । इन चरणों के नाभ्र नाभ्र के समान होते हैं गिर से उज्ज्वल एव सुन्दर गुन्नी बाने होते हैं । ये चरण क्रम के सदृश वज्र दृढा करने हैं ॥ १ ॥ २ ॥ विशेष रूप से दक्ष पाण्डर वर्ण के नरों बाने—गिरोग्रज वदन—मूष के समान फेंके हुए धावार बाने चरण—मधुष्क मधुनिया बाने

चरण जिनके होने हैं ये लगण दुःख घोर दरिद्रता के देने वाले हैं—इसमें तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ ३ ॥ हाथी के सूँठ के समान उतार-चढ़ाव वाली घीर बहुत ही कम रोमी वाली जीव श्रेष्ठ होती है । महात्मा आत्मा वाले नृपों के रूपको म एव-एक ही रोम हुआ करता है ॥ ४ ॥ सद् एव असद् बुद्धि वाल पण्डित के तथा श्रान्ति के राम के छिद्रों में दो-शे रोम हुआ करते हैं । जो दरिद्र होने हैं उनके रूपको म तीन-तीन रोम होते हैं । बिना मांस वाले जिनके जानु होते हैं वे रोगी हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ स्वल्प लिङ्ग वाला पुरुष धनवान् होता है किन्तु पुत्रादि से रहित हुआ करता है । जो स्थूल लिङ्ग धारी पुरुष होगा है वह दरिद्र हुआ करता है । एक ही वृण जिनके होना है वह दुःखी होता है । ६ ॥ वह विषम होने पर स्त्री के समान चञ्चल होता है तथा सम वृण होने पर वह पुरुष नृप होता है । जिसके वृण लम्बे होने हैं वह मनुष्य भला प्राणु वाला जाना है, द्रव्यहीन घोर कुमण्डल होता है । पाण्डुर घोर मलिन मणियों से मनुष्य सुखी होता है ॥ ७ ॥

नि स्वस्य शब्दमूत्रा स्युर्नृपा नि शब्दधारय ।
 भोगाढ्या समजठरा नि स्वा स्युघटसन्निभा ॥८॥
 सर्पदरा दरिद्रा स्यु रेखाभिश्चायुस्त्वते ।
 ललाटे यस्य दृश्यन् तिस्रो रेखा समाहिता ॥
 मुली पुत्रसमायुक्त स पष्टि जीवते नर ॥९॥
 चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनात्तर ।
 विरात्यव्दमक रेखा अविर्गन्ता गतायुष ॥
 भावर्णान्तरिता रेयास्तिवश्च स्यु रातायुष ॥१०॥
 सप्तयायुद्विरेया तु पष्ट्यायुन्तिमृभिर्भंगत् ।
 व्यताव्यताभी रेयाभिविशत्यायुर्भवेन्नर ॥११॥
 चत्वारिंशच्च वर्षाणि हीनरेयन्तु जीवति ।
 भिन्नाभिश्च रेयाभिर्गमृत्युनंस्य हि ॥१२॥

त्रिगुण पट्टिष्व वापि ललाटे यस्य दृश्यते ।

धनपुनसमायुक्त स जीवेच्छरद- शतम् ॥१३॥

नि श्चाम लेखर शब्दयुक्त मूत्र वाले नृप नि शब्द धारी होते हैं । भोशों से युक्त-समान जठर वाले-नि.स्व घट के समान होते हैं । सर्व के समान उदर वाले मनुष्य दिग्द्र होते हैं । श्व रेखाओं के द्वारा आयु बतलाई जाती है । जिसके ललाट में समाहित तीन रेखाएँ दिखलाई दिया करती हैं वह मनुष्य परम सुखी-पुनो से युक्त और साठ वर्ष पर्यन्त जीवित रहा करता है ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ जिसके ललाट पर दो रेखाएँ दिखलाई हैं वह चासीम वर्ष तक जीवित रहता है और केवल एन हो रेखा जिसके दिखलाई देती है वह बीस वर्ष तक ही जीवित रहा करता है । कर्ण पर्यन्त जो रेखाएँ होती हैं वह गतायु होती है । जिसके तीन रेखाएँ आकाश निर्गम होती हैं वह गतायु अर्थात् तीस वर्ष की उम्र वाला पुरुष होता है ॥ १० ॥ इसी प्रकार की यदि दो रेखाएँ हो तो मत्तर वर्ष की उम्र होती है और तीन रेखाओं से युक्त यदि ललाट होता है तो साठ वर्ष तक जीवित रहता है । जो रेखाएँ कुछ व्यक्त और कुछ अयक्त हो तो बीस वर्ष की आयु वाला मनुष्य होता है ॥ ११ ॥ तीन रेखा वाला मानव चासीम वर्ष तक जीवित रहता है । जिस के ललाट में निम्न रेखाएँ होती हैं उनके मनुष्य की अपमृत्यु होती है ॥ १२ ॥ जिस मनुष्य के ललाट में त्रिगुण और पट्टिष्व वा चिह्न दिखलाई दत्त हैं वह पन तथा पुनो से युक्त तीस वर्ष तक जीवित रहा करता है ॥ १३ ॥

तर्जण्या मध्यमागुल्फा आयुरेखा तु मध्यत ।

सप्राप्ता या भवेद्ब्रूम जीवेच्छरद शतम् ॥१४॥

प्रथमा ज्ञानरेखा तु हा गुष्टादनुवर्त्तते ।

मध्यमा मूलगा रेखा आयुरेखा अत परम् ॥१५॥

कनिष्ठाया समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत् ।

अच्छिन्ना वा विभक्ता वा न जीवेच्छरद शतम् ॥१६॥

यस्य पाणितले रेखा आयुस्तस्य प्रकाशयेत् ।

शतवर्षाणि जीवच्च भोगी रुद्र न सशय ॥१७॥

कनिष्ठिका समाश्रित्य मध्यमायामुपागता ।

पट्टिवर्षायुष बुद्ध्यादायूरेखा तु मानव ॥१८॥

हे रुद्र ! तजनी और मध्यमा प्रगुनि व मध्य से आयु की रेखा जो सम्प्राप्त हा तो वह मनुष्य सो वर्ष पश्यन्त जीवित रहा करता है ॥ १४ ॥ प्रथम ज्ञान की रेखा हाती है जो अंगूठे से अनुवर्तित होती है । मध्यमा मूल म समन करने वाली रेखा है । इससे आगे फिर आयु की रेखा होती है ॥ १५ ॥ कनिष्ठिका व गुनि म समाश्रित होकर आयु की रेखा समाविष्ट होती है । वह अङ्गुलि हो या विभक्त हो किन्तु वह मानव सो वर्ष के जीवन की आयु व जा होता है ॥ १६ ॥ हे रुद्र ! जिस मनुष्य के हाथ के तल म रेखा होता है वह भी आयु को प्रकाशित दिखा करती है वह परम भोग करने वाला पुरुष सो वर्ष तक जीवित रहता है इसमें कुछ भी शक्य नही है ॥ १७ ॥ कनिष्ठिका अंगुलि का समाश्रय रखर जो मध्यमा अंगुलि म धा जाती है वह आयु को प्रकट करने वाली रेखा बनताही है जि मनुष्य साठ वर्ष की आयु वाला होता है ॥ १८ ॥

३४—स्त्रीलक्षण ।

यस्यास्तु कुक्षिना ज्ञेया मुगश्च परिमण्डनम् ।

नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता या वक्ष्य कुचरश्मिनी ॥१॥

या च वाञ्छनवर्णाभा रक्तहस्ततराहा ।

महत्याणान्तु नारीणा भूतेत्यापि पतिव्रता ॥२॥

पञ्चनेत्रा च या वक्ष्य मण्डलाक्षी च या भवेत् ।

भर्ता च श्रियते तस्या नियते दुःखभागिनी ॥३॥

पूगचन्द्रमुखी पक्ष्या वा नमूयममप्रभा ।

विशाननत्रा शिम्बोद्री वा वक्ष्य नभो मुखम् ॥४॥

रेखाभिर्वह्निं वलेशं स्वल्पाभिर्धनहीनता ।

रक्ताभिः नुलमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेक्ष्यता व्रजेत् ॥५॥

कार्म्येपि मन्त्री पतनी स्यात्पत्नी स्यात्करणेषु च ।

स्नेहं भाग्या माता स्याद् वेद्या च दायते शुभा ॥६॥

अक्रुश मण्डलं चक्र मस्या पाणिपते भवेत् ।

पुत्रं प्रनूयते भारी नरेन्द्र लभते पतिम् ॥७॥

श्री हरि ने कहा—जिम कन्या के देश तो कुञ्चित (घुघराते) हो और मुग परिमण्डल घर्षात् उर्गुताकार हो तथा नाभि दक्षिण की ओर आवर्त जाती हो वह कन्या पुत्र के बढ़ाने वाली है ॥ १ ॥ जिम कन्या का वर्ण सुवर्ण के समान हो और हृत्पद्म रक्त कमल के मध्य हो वह महान् भारियों में सब ही परम पतिप्रसन्न धर्म वाली हुआ कन्या है ॥ २ ॥ जिम कन्या के देखे-निरखे ती देग हो और मण्डलवत् मान मेघ हो उसका कभी भीत्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वह निश्चय ही दुःखों के भोगन वाली हुआ करती है ॥ ३ ॥ जो कन्या पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली और प्राग् पालीन सूर्य के समान प्रभा वाली हो—जिसका विलान (बँट) भेद हो तथा दिग्घ के पत्र के मध्य रक्त धार के छोटे हो वह कन्या परम सुखी का उपभोग किया कन्या है ॥ ४ ॥ घट्टी—की रेखाओं के द्वारा म विषय प्राप्त होता है और अस्वल स्वल्प रखाओं के होने पर घन की कभी हुआ करती है । रक्त रखाओं ने मुग प्राप्त होता है और कृष्ण बल वाली रखाओं से प्रेक्ष्यता का प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ कार्म्य के करने में वह पत्नी मन्त्री के समान होती है और साधनों में वह एक साथी अर्थात् मित्र के तुल्य होती है । स्नेह में माया माता और दायन में शुभ वेद्या के तुल्य होती है ॥ ६ ॥ जिसके पाणि (हाथ) ठल में अक्रुश—मण्डल चक्र के विहृत होते हैं ऐसी स्त्री पुत्र का प्रवव किया करती है और वह नृपति को अपना स्वाधी प्राप्त करती है ॥७॥

यस्यास्तु रोमसो पाश्वो रोमसो च पयोधरो ।

उदरतो चाधराष्टो च क्षिप्र मारुचने पतिम् ॥८॥

यस्या पाणितले रेखा प्राकार तोरण भवेत् ।
 अपि दासकुले जाता राज्ञीन्वमुपगच्छति ॥९
 उद्धृता कपिला यस्या रोमराज्ञी निरन्तरम् ।
 अपि राजकुले जाता दासीत्वमुपगच्छति ॥१०
 यस्या त्रिनामिकागुष्ठौ पृथिव्या नैव तिष्ठतः ।
 पतिं मारयते क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते ॥११
 यस्या गमनमात्रेण भूमिकम्प प्रजायते ।
 पतिं मार्ग्यने क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते ॥१२
 चक्षु स्नेहेन सोभाग्य दन्तस्नेहेन भोजनम् ।
 त्वच स्नेहेन शय्याश्च पादस्नेहेन वाहनम् ॥१३
 स्निग्धोन्नतो ताग्रतखो नाय्याश्च चरणी शुभौ ।
 मरस्याङ्गुलाब्जचिह्नौ च चक्रसङ्गलनक्षितौ ॥
 अश्वेदिनी मृदुतलो प्रशस्तौ चरणी स्त्रियाः ॥१४
 गुभे जङ्घे विरामे च ऊरु हस्तिकरोपमौ ।
 अश्वत्थपत्रसदृश विपुल गुह्यमुत्तमम् ॥१५
 नाभिं प्रगल्भा गम्भीरा दक्षिणावर्त्तिका गुभा ।
 अरोमा त्रिवली नाय्या हस्तनी रोमचर्जितौ ॥१६

जिसके पार्श्व भाग रोमो वाले हो और स्तन भी रोमो से युक्त हों
 तथा जिसके अग्रोष्ठ उत्तम हो वह कन्या दीप्त हो अपने पति को मारने वाली
 होती है ॥ ८ ॥ जिस कन्या के पाणिनय रेखाओं का प्राकार तोरण जैसा
 हो वह दाम कुन में भी उत्तम होती हुई राज्ञी के पद को प्राप्त किया करती है
 ॥ ९ ॥ जिसकी रोमों की पक्ति उद्धृता और कपिल होती है वह चाहे राजकुन
 में भी क्यों न समुत्पन्न हुई हो दासी के पद को ही प्राप्त किया करती है ॥१०॥
 जिस कन्या की त्रिनामिका अंगुलि और पैर का अंगूठा भूमि पर टिक्ता है वह
 कन्या दीप्त हो अपने पति के मारने वाली होती है तथा स्वेच्छा चारिणी हो
 जाती है । जिस के गमन करने से भाग में भूमिकम्प होता है वह भी दीप्त

पति के मारने वाली होती है और फिर वह स्वेच्छो जैमे आचार वाली हो
 आया करती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ बधूमो के स्नेह से हीभाग्य—दाँडो के स्नेह
 से भोजन—त्वचा के स्नेह से पाया मुख और पादो के स्नेह से बाह्य हाता
 है ॥ १३ ॥ मिनख एव उन्नत—ताम्र के समान नखो वाले—मम्य, म कुश,
 कमल के बिहो वाले—चक्र, लाङ्गल के बिहो से उपरधित—मृदु तलो से
 युक्त—प्रस्येद स रहित नारी के पश्म शुभ एव प्रगस्त हुमा राते हैं ॥ १४ ॥
 जिन जाँपा में रोम न हो वे शुभ है और जो ऊरु हाथो के कर के समान हो
 तथा पीपम के पत्र के तुल्य विपुन उत्तम मुह्य माग हो—नाभि दक्षिण की
 ओर आवर्तित होने वाली सम्भोर होती है वह शुभ मानी जापा करती है ।
 भारी की बिवनी जो कि उदर पर पटा करती है बिना रोमो वाली होनी चाहिए
 तथा हृदय और स्तन भी रोमो से रहित शुभ हुआ करत हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

३५ सामुद्रिक शास्त्र ।

समुद्रोक्त प्रवक्ष्यामि नरम्बीनक्षणं शुभम् ।
 येन विज्ञातमात्रेण प्रतीनानागनाश्रमा ॥१॥
 अन्वेदिनी मृदुतली कमनोदरमग्निमी ।
 दिलष्टाङ्गुली ताम्रनखी पादावुष्णो शिराग्निमी ॥
 कूर्मोघ्नी गूढगुल्फी मुषाष्णी नृपते स्मृती ॥२॥
 सूर्पाकारी विरुदो च वक्रो पादो शिराम्वी ।
 मशुष्की पाभ्ङ्गरात्री नि स्वस्य विरलाङ्गुली ॥३॥
 मार्गायोत्कटकी पादो कणायमहर्षो तथा ।
 विच्छिद्यो चैव वज्रस्य ब्रह्मक्षी गङ्गकुमतिमी ॥४॥
 युगम्पायत्ने तुल्या जङ्घा विरलरोमिका ।
 मृदुरोमा ममा जङ्घा तथा करिकरप्रभा ॥
 ऊर्गो जानवस्मृत्या नृपस्योपचिताः स्मृता ॥५॥
 नि स्वस्य शृगालजङ्घा रोमवंकश वृषके ।
 नृपाणां शोनिपाणाश्च द्वे द्वे ध्रिये च घोरिताम् ॥
 अर्थनि स्वा मानवा भुदू सुभाज्ज निन्दिता ॥६॥

केशाश्चैव कुञ्चिताश्च प्रवासे अभ्यसे नरः ।

निर्मासजानु सोभाग्यमल्पैर्भग्नैरत स्त्रिया ॥

विकटैश्च दरिद्रा स्यु समामे राज्यमेव च ॥७॥

श्री हरि भगवान् ने कहा—यद्य इस ममुद्र के द्वारा कवित नर और स्त्री के लक्षण बनाने है जिनके ज्ञान मान स प्रतीत और प्राप्ति माने वाले प्राथमो की पूर्ण जानकारी हो जाती है ॥१॥ अश्वेदी अर्थात् प्रभेद न माने वाले—रोमल तलो वाले—कमल के पुष्प के मध्य भाग के समान—मिती हुई पैंगुलिनी वाले—नाभ के दण के तुल्य नखों से युक्त—उष्ण—शिरोऽम्भन—कूम के समान उन्नत—गूढ गुल्फी (टक्की) वाले और सुन्दर पाणि भागो वाले चरण नृपति के बनाव गये है अर्थात् इस प्रकार के पंर युग्म होने है ॥२॥ गूर के धाकार के समान भावृति वाले—विशेष रूप से रूपे वक्र (तिरछे) शिराल—समुद्र—पाण्डर वर्ण के नखों से युक्त—दूर—दूर अंगुलिनी वाले—मार्ग के लिये उत्तरार्ध अर्थात् उच्च कर उठन वाले—कपाय के सहज पंर वक्र के विच्छेद करन वाले होते हैं और लड्डु के समान पंर प्रसन्न होते हैं । ये अशुभ पैरो के लक्षण बनाय गये हैं ॥३॥ युग के आवनन में समान हो और त्रिरल रीमो वाली ही—और रीम ही वे भी अत्यन्त मृदु होने चाहिए और हाथी की सूँड के समान उतार चढ़ाव की मुडोल हो—दोनों ही समान जाँरे होनी हैं यह नृपति का होना सूचित करती है । ऊरु और घुटने भी तुल्य हो तो नृप के लिये ही ऐसे लक्षण बनाये गये हैं ॥४॥ निस्व हावर शृणव के समान जो जघा होनी हैं जिनके रोम कूथों में एक—एक ही रोम होता है—ऐसी जघा नृपों की तथा योगिनी की दृष्टा करती है । जो योगिनी योग होते हैं उनके रोम—नृपों के दो—दो रोम होते हैं । यह भी चित्त श्री के लिये युव है । मीन और इनसे घणिक जिनके रोम होते हैं वे मानव बन होना—नृपों के भोगने वाले और समाज में त्रिभिन्न ही दृष्टा करने हैं ॥ ५ ॥ जिनके कुञ्चलि रोग होते हैं वह मनुष्य प्रजा में मरता है । बिना पंर के जानुओं वाला भीमाश्रमाली होता है । निम्न और अन्तो न भी भीमाश्रम होता है । स्त्री के विकट हो तो दरिद्रा होती है तथा समाज होने पर राज्य प्राप्ति का लक्षण होता है ॥७॥

महद्भिरायुरास्यात् ह्यल्ललिङ्गो घनो नर ।
 अथत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गो धनाजिह्मत ॥८॥
 मेढ्रे वामनते चैव सुतार्थरहितो भवेत् ।
 वक्रैश्च यथा पुत्रवान्स्याद्धारिद्रव विनत त्वव ॥९॥
 अल्पे तु तनयो लिङ्गे शिरालेऽथ सुखी नर ।
 स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे भवेत्पुनादिमयुत ॥१०॥
 वोपगूढे नृपो दीर्घभुंस्तेश्च धनवजित ।
 चलवान्गुदशीलश्च लघुशेफ स एव च ॥११॥
 दुर्बलस्त्वेकवृषणो विषमाम्ब्याश्चनस्त्रिध ।
 समाम्ब्या क्षिप्रिषोक्त प्रलम्बेन शनाद्भवान् ॥१२॥
 ऊर्ध्वं द्वाभ्या बहुध्वायु मूर्धनर्मणिभिरीश्वर ।
 पाण्डुरैर्मणिभिनि स्वा मनिनं मृगभागिन ॥१३॥
 सगच्छनि शब्दमृदा स्पृष्टैरिडाश्च मानवा ।
 एकद्वित्रिचतु पञ्चपडभिर्घाताभिरेव च ॥१४॥
 दक्षिणावर्त्तचनितमूनाभिश्च नृपा स्मृता ।
 विवीर्णमूना नि म्नाश्च प्रधानमुखदायिका ॥१५॥

महात् होने में आयु बननाई गई है । छोटी उपस्थ पात्रा पुष्प घनी होना है किन्तु वह मन्त्रि से होने रहा करता है । जो स्थूल निगधारी पुष्प होता है वह धन में रहित होता है ॥ ८ ॥ बाईं ओर नन मेढ्रे के होने पर मर्यात् जननेन्द्रिय वामभाग में झुकी हुई रहने पर सुत और मर्य में होने रहता है । ग्रन्थिया मर्यात् दाहिनी ओर चक्र रहने पर अनुप पुत्र लाता होता है किन्तु यदि ग्रन्थ नीचे की ओर झुका हुआ हो तो वह दरिद्री रहा करता है ॥९॥ घन लिग के होने पर तनय होता है और शिराल होने पर वह सुखी होता है । स्थूल और ग्रन्थि युक्त उपस्थ के होने पर मानव पुत्रादि में मयुत हुआ करता है ॥१०॥ वोपों के गूढ होने पर नृप होता है तथा पीर और मुख होने में वह धन में रहित होता है । लघु मेक वक्ता पुत्र बनवान् और मुख-

शील हुआ करता है ॥११॥ एक वृषण वाला पुत्र्य दुर्बल होता है । जिसके विषम वृषण हात हैं वह चल स्त्री वाला हुआ करता है । सम वृषणो वाला पुत्र्य राजा भर्षा भूमिका स्वामी होता है । प्रलम्ब वृषण से शतायु हुआ करता है ॥१२॥ दो से ऊर्ध्व—बहुतो मे आयु और रुक्ष मणियों से ईश्वर तथा पाण्डर मणिया से नि स्व (धन ज्ञान हीन) और मलिनो से सुख भागी होते हैं ॥१३॥ शब्द क सहित और बिना शब्द के मूत्र वाले पुरुष दरिद्र होते हैं । एक-दो-तीन-चार-पाँच और छे धाराओ से तथा दक्षिण की ओर आवृत्त से चलन वाली मूत्र धाराओ से भी नृप कहे गये हैं विकीर्ण मूत्र वाले निर्धन होते हैं । प्रधान धारा सुलक्षणी हाती है ॥१४॥१॥

एकधाराश्च वनिता स्निग्धमणिभिर्हृतं ।
 समं स्त्रीरत्नधनिना मध्ये निम्नंश्च कन्यया ॥१६॥
 शुक्लं नि स्वा विदुर्ध्वंश्च दुभगाश्च प्रकीर्त्तिता ।
 पुष्पगन्धे नृपा शुके मधुगन्धे धन बहु ॥१७॥
 पुत्रा शुके मत्स्यगन्धे तत्र शुके च कन्ययाः ।
 महाभागी मासगन्धे यज्जरा स्यान्मदगन्धिनि ॥१८॥
 दरिद्रा धारगन्धे च दोषांयु शीघ्रमयुती ।
 अशीघ्रमंधुन्यल्पायु म्यूलस्फिक्कम्याह्नौजिभन ॥१९॥
 मामलस्फिक्कमुषो स्याच्च सिंहस्फिक्कभूपति स्मृत ।
 भवत्तिहवटी राजा निम्ब कपिकटिर्नर ॥२०॥
 सपौदरा दरिद्रा स्यु पिठरैश्च घटं समा ।
 धनिनो विपुलं पाद्वीनि स्वा रक्तेश्च निम्नगे ॥२१॥

एकधारा वाली वनिता—उन्नत एक स्निग्ध तथा सम मणियों से स्त्री रूप रत्न के धनी और मध्य म निम्ना से कन्यया होती है ॥१६॥ शुक्लो से से नि स्व—विशेष रूप से शुक्ला से दुर्भगा कही गई है । पुत्र के समान गन्ध वाले पुत्र (वीर्य) म नृप—मधु के तुल्य गन्ध वाले पुत्र म बहुत अधिक धन हाता है ॥१७॥ मत्स्य के समान गन्ध वाले वीर्य म बहुत पुत्र और पुत्र म

ऐसा न हो तो कन्याएं होती हैं । मांस के सदृश गल्प होने पर वह पुरुष महान भागी होता है तथा मर के तुल्य बन्ध होने पर यज्वा होता है ॥१८॥
 धार के समान यदि युक्त न गद्य होता है तो दोष आयु धीर शीघ्र मैथुन वाला होता है । स्थूल स्फिक् वाला और अगोघ मैथुन करण वाला—अल्प आयु वाला धीर धन हीन होता है ॥१९॥ मानव स्फिक् वाला सुखी होता है तथा मिह के तुल्य स्फिक् अर्थात् कुनो वाला भूपति होता है । मिह के तुल्य कटिकाला पुरुष राजा होता है और कपि (बन्दर) के सदृश कटि वाला मानव धन हीन हुआ करता है ॥२०॥ मय के समान उदर वाल दरिद्र हुआ करने हैं । घटों के तुल्य पिठरो से धन युक्त हान हैं । विपुल पाश्वों से तिस्व होत हैं और निम्नगामी रक्त पादों से भी निधन होने हैं ॥२१॥

ममयक्षाश्च भोगाड्घा निम्नकक्षा घनाङ्गिता ।
 नृपाश्चोत्तराद्या रयुर्जिह्वा विषमकक्षका ॥२२॥
 मस्यादरा बहुघना नाभिभि नुमिन स्मृता ।
 विस्तीर्णा निबटुनाभिनिन्नाभि क्लेशमागिन ॥२३॥
 वलिमध्यगता नाभि धूलवाना करोति हि ।
 वामावर्त्तश्च माध्य वं मघा दक्षिणतस्तथा ॥२४॥
 पार्श्वायता चिरायु स्याद् भूपरिष्ठादनेश्वर ।
 अथो गवाड्घ कुर्प्याच्च नृपत्वं पञ्चनखिका ॥२५॥
 एकवलि शतायु स्याद्भुभोगी द्विवलि स्मृत ।
 त्रिवलि हमाप आचाप्य ऋतुभिवलिभि सुखी ॥
 अगम्यानामी जिह्वावलि भूपा पाद्वीश्च मासले ॥२६॥
 मृदुभि सुमर्मरचैव दक्षिणावर्त्तरोमभि ।
 विपरीतं परप्रेष्या निर्द्रव्या मुषवर्जिता ॥२७॥
 अनुदत्तेशूचूर्वदच भवन्ति मुभया नरा ।
 निघना विषमदोघी पोतापचितननरे ॥२८॥

जिन मनुष्या के वक्ष समान होत हैं व भोगा से मुक्त हुआ करते हैं

घोर जिनके बद्ध निम्न होते हैं वे घन से उज्ज्वल वर्णात् हीन होते हैं । उन्नत
 बद्धो वाले नृप एवं विषम बद्धा बाल पुरुष कुटिल प्रवृत्ति से युक्त होते हैं । १२२।
 मत्स्य (मत्स्यो) के समान उदर बाल पुरुष बहुत अधिक घनां होत हैं । मत्स्य
 के तुल्य नाभियो से युक्त पुरुष सुखी बनाय गया है । विस्तीर्ण—बहुत घोर निम्न
 नाभियां से युक्त बलशाली के भोगने वाले होते हैं । १२३ । जिस नाभि के मध्य में
 बलि होती है वह गूल की बाधा करने वाली होती है । वाम भाग की घोर
 जिसका भावर्त होना है वह साध्य होना है तथा दक्षिणावर्त नाभि मेघा को
 प्रकट करती है । १२४। पश्चिम में घायन विराट् देन वाली होती है । भूपण्डित
 होने से घना का स्वामी जाना है । नीच की घोर होने वाली गोमो से सम्पन्नता
 प्रकट करती है तथा पश्च की वर्णिका के तुल्य नाभि मृगत्व की सूचक है । १२५।
 एवं वलि विषम हो वह वायु प्रदान करने वाली है । दा वलि विषम हो वह
 पुरुष श्री का भोग करने वाला जाना है । तीन वलि भूमिका पति एवं धारण
 होना सूचित करती है घोर ऋजु वर्णात् समान वलिधा से पुरुष सुखी बना गया
 है । जिसकी वलि जिह्वा (कुटिल) हो वह मगध्या स्त्री के समान करने वाला
 होता है घोर मानस वाधों से युक्त नूर होत है । १२६। मृदु घोर सुसमान तथा
 दक्षिण की धार भावत वायु गोमो से युक्त भी नूर होत है । इनके विपरीत
 जिनके हैं वे परप्रेत—दृश्य हीन घोर मुख से रक्त हुआ करते हैं । १२७।
 धनुर्धन चूचको से मनुष्य मुख वर्णात् पद्म भाग वात होत है । विषम—रीध
 घोर पीतोपचित्तः से मनुष्य निधन हुआ करते हैं । १२८।

समोन्नतश्च हृदयमवम्प मानसं पृथु ।

नृपणासपमानाश्च नृपराजसिखान्वधम् ॥२९॥

अयं यान्ममयथा स्यात्तीर्णवर्णाभिर्जितः ।

वक्षोभिरिषमं निम्नं चाम्प्रेण विधनास्तथा ॥३०॥

विषमं त्रैलोक्यं भिरिष्या गच्छिनश्चैव मानवाः ।

उन्नतं भोगिनो निम्नं निम्नं पीनं च नान्यथा ॥३१॥

निम्नं निम्नं पिच्छं चाम्प्रेण चाम्प्रेण चाम्प्रेण ॥

नूरं स्यात्पिच्छं पीनं मानसं नो मृगान्वधम् ॥३२॥

कम्बुश्रीवक्ष नृपतिलम्बकरणोतिभक्षक ।

भरोमशाभुग्नपृष्ठ शुभश्चाशुभमन्यथा ॥३३॥

कक्षाऽथत्वदना श्रेष्ठा सुगन्धिर्मृगरोमिका ।

अन्यथा त्वर्थहीनाना वारिद्वयस्य च कारणम् ॥३४॥

समाप्ती चैव भुग्नात्परो श्लिष्टो च निपत्तो शुभो ।

आजानुलम्बिनी बाहू वृत्तो पीनो नृपेश्वरः ॥

निम्बाना रोमशो ह्रस्वो श्रेष्ठो करिकरप्रभो ॥३५॥

नृपो का हृदय वक्ष से रहित—यम एवं उद्यत होता है एवं मानव
घोर घृण्यो हुमा करता है । जो प्रथम श्रेणी के मनुष्य होते हैं उनका हृदय
उपर—रोमो वाला तथा शिरास्तक होता है ॥२६॥ समान वक्ष स्थल वाला पुष्प
भर्गवान् हुआ करता है । जिसका वक्ष स्थल पीन होता है वह ऊर्जित होता है
विषम अर्थात् लसोक्त वक्ष वाले पुष्प निम्ब अर्थात् निर्धन होते हैं तथा वे
दाह से भी निषा हुआ रहता है ॥३०॥ जिनके जघन (ह्रस्व) विषम होते हैं
वे भी निम्ब होते हैं । प्रसिद्ध उन्नत होने पर मनुष्य भी हुमा करते हैं ।
निम्न होने पर निषत एवं पीन होने से धन मुक्त हुआ करते हैं ॥३१॥ विषिष्ट
कण्ठ वाला पुरा भी निम्न होता है शिरा शुष्क यो वाला पुरुष सुखी होता
है । मक्षि के समान पीवा (गरदन) वाला मानव धूर्त होता है घोर मृग
के तुल्य जिष्ठता कण्ठ होता है वह सामान्य लोगों के सामने वाला हुआ करता
है ॥३२॥ तन्मू के सहज विम्वी पीवा होती है वह नृप का लक्षण होता
है । विम्वी रहत लम्बा होता है वह अत्यन्त भयान्य काल वाला होता है ।
जिना रोमो वाला घोर अभुग्न पृष्ठ वाला शुभ एवं अशुभ दोनों ही हुमा करते
हैं । पीन के पक्ष के तुल्य सुन्दर मन्त्र वाली एवं मृग के सहज रोमो वाली
कता शुभ एवं श्रेष्ठ होती है अन्धकार म होने के दाहिने का कारण हुआ
करती है ॥३३॥ समान मग (मृग) छोटे म भुग्न एवं दिग्ग तथा विपुल
शुभ हुआ करते हैं । पृष्ठ के तक लम्बे—पृष्ठ एवं पीन भुग्नो नृपेश्वर ही हुमा
करती है । जो निम्ब होते हैं उदही बाहुएं रोमो वाली—ह्रस्व (छोटी) होती
है । हाथी की सूँठ की प्रमा रहने वाली भुग्नो श्रेष्ठ हुआ करती है ॥३५॥

हस्ताऽगुलय एव स्युर्वयुद्धारनिभा शुभा ।
 मेधाविनाश्च सूक्ष्मा स्युर्भृत्याना चिपिटा स्मृता ॥
 स्थूलाङ्गुलीभिनि स्वा स्युर्नता स्युः मुकृषेस्तदा ॥३६॥
 कपितुल्यकरा नि स्वा व्याघ्रतुल्यकरेवलम् ।
 पितृवित्तविनाशश्च निम्नात्करतलाभरा ॥३७॥
 मणिवन्धेनिगूढैश्च सुश्लिष्टैः शुभगन्धिभिः ।
 नृपा हीना करच्छेद सशब्देर्धनवर्जिता ॥३८॥
 सवृत्तैश्चैव निम्नेश्च घनित परिकीर्तिता ।
 प्राक्तानकरदातारा विपमंविपमा नरा ॥३९॥
 करं करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनैः ।
 परदाररता पोने रक्षन्ति स्वा नरा मता ॥४०॥
 तुप्ततुल्यनयाः क्लीवाः कुटिलैः स्फुटितैर्नरा ।
 नि स्वाश्च कुनत्तैस्तद्वद्विबर्णैः परतर्ककाः ॥४१॥
 ताम्रैर्भूषा घनाढ्याश्च अङ्गुष्ठं सपदैस्तथा ।
 अङ्गुष्ठमूलजं पुत्री स्वादीर्घाङ्गुलिपर्वक ॥४२॥
 दीर्घायु शुभगश्चैव निधनो विरलाङ्गुलिः ।
 घनाङ्गुलिश्च सघनस्तिस्रो रेखाश्च यस्य च ॥
 नृपते करतलगा मणिवन्ध्यात्समुत्थिता ॥४३॥

हाथों की अंगुलियाँ जो वायु द्वार के महान होती हैं वे शुभ हुआ करती हैं । जो मेधावी पुरुष होत हैं उनकी हाथों की अंगुलियाँ सूक्ष्म हुआ करती हैं और जो भूख श्रेणी के मानव हुआ करते हैं उनकी अंगुलियाँ चिपिटी बड़ी गई हैं । जिनकी अंगुलियाँ स्थूल होती हैं वे नि स्व हुआ करते हैं और मुहान अंगुलिओं वाले नर होते हैं ॥ ३६ ॥ बन्दर के समान बगै वाले मानव निधन होते हैं । व्याघ्र के तुल्य हाथों वाले पुरुष बनी होत हैं । निम्न (नीचे) करतल वाले मनुष्यों के पितृवित्त का विनाश हो जाया करता है ॥३७॥ मुहान— निगूढ और शुभ गन्ध वाले मणि वन्ध (निशा अंगुलि वय त करतल भाग का

नाम) के होने से नृप होता है । मयच्छ कर छेदो से हीन एव घन से वञ्चित होता है ॥३८॥ मृत्यु और निम्न करो वाले घनी वतवाये गये हैं । प्रोक्तान करो वाले पुरुष दाता होते हैं । जिनके कर विषम होते हैं वे मनुष्य भी विषम प्रवृत्ति वाले होते हैं ॥३९॥ लाघा (लाय) के गमान आमा वाले जिनके कर एव करतल होते हैं वे ईश्वर पर्याप्त स्वामी हुआ करते हैं । पीत पर्याप्त वाले पराई स्त्रियों से रति करने वाले और हृष्टता युक्त जिनके करतल होते हैं वे मनुष्य निस्व पर्याप्त निषेध हुआ करते हैं ॥४०॥ जिन पुरषों के तुल्य नख होते हैं वे कभीच अर्थात् पुस्त्र हीन हुआ करते हैं । जिनके माधून कुटिल एव स्फुटित होने हैं वे निम्न होते हैं । कृत्यो वाले और शिखर युक्त नखो वाले मनुष्य पराया नष्ट करने वाले हुआ करते हैं ॥४१॥ ताग्र वर्ण के नखो वाले भूत तथा घनाढ्य होने हैं । जिनके भ्रूणों में घन की रेखा होती है वे भी घन सम्पन्न होते हैं । भ्रूण के मूत्र में यव हा तो पुत्री दीर्घाङ्गुलि पर्याप्त वाला पुरुष दीर्घ धामु वाला सुभग होता है । विरल भ्रूणुलिफों वाला निर्धन होता है । जिसकी भ्रूणुलिफा घनी होती है वह भी पुरुष घन-तमन्वित हुआ करता है और जिसके तीन रेखाएँ होती हैं वह घनी होता है ॥ ४२ ॥ नृपति की भ्रूणुलिफा परतल से गमन करती हुई मणि बन्ध तब मनुष्यित हुआ करती है ॥४३॥

युगमीनाङ्गुलिनरो भवेत्तमप्रदो नर ।

वज्राकाराश्च घनिना मत्स्यपुच्छनिभा युधे ॥४४॥

मह्यतपत्रशिविकागजपयोपमा नृपे ।

कुम्भाङ्कुशपताकाभा भृङ्गालाभा निधोश्चरे ॥४५॥

दामाभादन गवाढधाना त्वम्निकाभा नृपेश्वरे ।

चक्रानितोमरधनुर्दन्ताभा नृपते करे ॥४६॥

उलूनलाभा यज्ञाढघा वेदीभाक्षामिहोत्रिणि ।

वापीदेवकुल्याभाश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके ॥४७॥

अट्गुप्तमूलगा रेखा पुत्राश्च मुखदायका ।

प्रदेशिनीगता रेखा कनिष्ठामूलगामिनी ॥

शतानुपञ्च कुण्ठे द्वित्रया सरते भयम् ॥४८॥

दा मोन की रसायों स युक्त मनुष्य सप्तपद हुआ करता है । बय के मासार क समान बाकार की रखाएँ बनियो व हुआ करती हैं । बुध पुराण क मरत्य की प्रौढ क समान रखा हुआ करता है ॥४४॥ शस्त्र—मानपथ (द्वय)—सिद्धिका (पापनी)—यज्ञ और पथ के तुल्य देखे गए होता सूचित किया करती हैं । कुम्भ—अङ्गु—पनाका पीर मृणाल क सहज बाभा बानी नेलाए निधोभर क करतल स हुआ करती हैं ॥४५॥ दाम (रज्जु) की बाभा वाली रेखा मकादगो व होती है । खस्त्रिक (गणिया) की बाभा स युक्त रेखा नृपेश्वर क करतल स हुआ करती है । चक्र—अधि (सङ्ग)—नामर—चतुर्धर इन की बाभा बागी रेखाएँ राजा व करतल मे होती हैं ॥४६॥ उत्पलन क समान रेखा वाले पुष्प यत्र उच हात है और बरी के तुल्य रेखा धनिहोत्री क कर मे हुआ करती है । बावडी—देव कुल्य के सहज रेखाएँ तथा त्रिबोण की रेखा धार्मिक पुष्प क करतल मे हुआ करती है ॥४७॥ जिनके भगुड के मूल स गमन करने वाली रेखा होती है उनके पुत्र परम सुख देने वाली हुआ करते हैं । कनिष्ठिका अङ्गुलि के मूल स गमन करने वाली प्रदक्षिणी धंगुलि गत रेखा त्रिष पुष्प के होती है यह उस ती वर की प्रायु वाला किया करती है और यदि यह रेखा स्थित हो तो भी भयो स पार करने वाली होती है ॥४८॥

नि स्वाश्व बहुरेखा स्युर्निद्रं व्याश्चिबुकं शूरा ।

मामनन्दं धनापता धारकैरेपरं नृपा ॥४९॥

विम्बापगेश्च स्फुटितं रोष्ठं रुद्धंश्च खण्डितं ।

विपमं धनं होनाश्च दन्ता स्निग्धा घना शुभा ॥५०॥

तोक्षणा दन्ता समा थ्रष्टा जिह्वा रक्ता समा शुभा ।

श्लक्षणा दीर्घा च विजेया तापु श्वेती घनक्षमे ॥५१॥

कृष्णा च परपा वन सप्त सौम्यश्च सप्ततप्त ।

भूपानाममल श्लक्षणा विपरीतश्च दु विनाथ ॥५२॥

बहुत मो रेखाएँ जो दिली के करम हो तो वे उसे निर्धन किया करती हैं । ऊन विबुव (तोखी) जल पुष्प स इन हीन होते हैं । जिनकी विबुव

मानल हीनी हैं वे मानस धन-गम्यन्न हुआ करते हैं । जिनके मगर थोड़े-थोड़े रक्तिमा लिये होते हैं वे नृप होते हैं ॥४६॥ बिम्ब के फल के समान रक्त वर्ण बाल मध्य गिरके हुआ करते हैं वे भी नृप होते हैं स्फुटित—खण्डित और रुध एव विषम ओष्ठों वाले मनुष्य धन हीन हुआ करते हैं । दांत स्निग्ध और धन परम धुम होते हैं ॥४७॥ तीक्ष्ण और सघन दांत भी श्रेष्ठ होते हैं और जिह्वा रुक् वर्ण वाली एव सम धुम होती है । श्वेत तालु और श्वदण एव शेष जिह्वा धन शय सूचित करने वाली होती है ॥४८॥ धन के शय सूचित करने वाली परम (पठोर) और कृष्ण वर्ण वाली जिह्वा भी हुआ करती है । धुम सम-मृदा गोम्य होता है । भूषो का मुख अमल एव श्वदण होता है और जो दुःखिता होत है उनका मुख डमक विपरीत प्रवस्था वाला हुआ करता है ॥४९॥

महादुःख दुर्मेगाणा स्त्रोमुख पुनमाप्नुयात् ।

प्राद्व्याना वल्लं न वक्त्रं त्रिद्रव्याणां च दीर्घकम् ॥५०॥

भीरव्यत्र पापकर्मा धूर्तानाश्चतुरस्रकम् ।

निम्न वक्त्रपुत्राणां कृपणानां च ह्रस्वकम् ॥५१॥

सम्पूर्ण भोगिना कान्त श्मश्रु स्निग्ध शुभ मृदु ।

सहस्रश्वस्फुटिताश्च रक्तश्मश्रुश्च चौरक ॥

रेक्ताल्पश्मश्रुश्च कर्णां स्यु पापमृद्वद ॥५२॥

निर्मासश्चिपिटर्गोभा कृपणा ह्रस्वकर्णका ।

शङ्कुकर्णश्च राजानो रोमकर्णा गतायुष ॥५३॥

बृहत्कर्णाश्च धनिनो राजान परिकीर्तिताः ।

फणो स्निग्धेरनद्धश्च व्यालम्बर्मासर्तनृपाः ॥५४॥

भोगी वं निम्नगण्ड म्यान्मन्थो सम्पूर्णगण्डका ।

शुकनास मुरती स्वाक्ष शुक्लनासोऽतिजीवनः ॥५५॥

शिवाप्रकृपनास स्वाद्गम्यापमने रत ।

दीर्घनासे च सौभाग्य चौरश्चाकुक्षिनेन्द्रिय ॥५६॥

मृष्टपुश्चिपिटनाम म्यादीनभाग्यवता भवेत् ।

स्वल्पचिद्रा मुण्डा च श्वक्त्रा च नृपेश्वरे ॥५७॥

जो दुर्भाग्य वाले मानव होते हैं उनका मुग्ध महा दुःख पूर्ण होता है और स्त्री—मुग्ध पुत्र को प्राप्ति किया करना है । जो आर्य मनुष्य होते हैं उनका मुग्ध वस्तु-लाकार (गोन) होना है और जो द्रव्य होत मनुष्य हुमा करते हैं उनका मुग्ध दीपंता वाला होता है अर्थात् लम्बा होना है ॥५३॥ पाप कर्मों के करने वाला के मुग्ध भीरुता से परिपूर्ण रहता करते हैं । धूर्तों का मुग्ध चारों ओर की चेष्टाओं से सम्पन्न होते हैं । पुत्र रहित मानवों का मुग्ध निम्न होता है तथा क्षयणों का मुग्ध छोटा होता है ॥ ५४ ॥ सम्पूर्ण और कान्त मुग्ध भोगी पुरुषों का होना है । दमशू (द डो-मूँछ) स्निग्ध और मृदु सुभ होनी हैं । जिनकी दमशू महान और प्रफुटित अथ भाग वाली हो तथा रक्त-दमशू हो वह चोर होता है । जिनके रक्त-प्रत्य-वर्ण्य दमशू तथा कण होत हैं वे पाप मृग्यु वाले पुरुष हुमा करते हैं ॥५५॥ निर्मास अर्थात् बिना मांस बाने—चिपिट बानी वाले पुरुष भोगी होते हैं । ह्रस्व (छोटे) बानों वाले मनुष्य कज्जल होते हैं । शङ्कु (कील) के सदृश जिनके कान होते हैं वे राजा होत हैं । जिनके कानों पर रोम होते हैं वे गतायु हुमा करते हैं । बड़े-बड़े बानों वाले मनुष्य धनी हुमा करते हैं तथा स्निग्ध-घनद और व्यासम्ब बानों वाले एव मासल पुरुष वृत्र होते हैं ॥५६॥५७॥ जिनके गण्ड (कर्ण) निम्न होते हैं वे भोगी होते हैं और जिनके गण्ड म्यल सम्पूर्ण होते हैं वे मन्थो पद के प्राप्त करने वाले होते हैं । मुक्त (तोता) के समान जिनकी नासिका होनी है वे मुनी हुमा करते हैं । मुक्त नाक वाले अत्यधिक जीवन वाले हुमा करते हैं ॥५८॥ जिनकी नासिका के अग्र कूप छिन्न होते हैं वे पुरुष अगम्या (गमन न करने के योग्य) स्त्री के साथ गमन करने में रति रगन वाले हुमा करते हैं । दीर्घ नाक वाला पुरुष सीमाग्यशाली होता है और अकुञ्चित इन्द्रिय (नाक) वाला मानव चोर होता है ॥५९॥ चिपिट नासिका वाला मनुष्य मृग्यु युक्त होता है तथा हीन भाग्य वाला भी होता है । स्वहस छिद्र वाली नासिका वाले तथा सुन्दर पुर वाले एव अवक्र नाक वाले नृपेश्वर हुमा करते हैं ॥६०॥

क्रूरे दक्षिणवक्त्रा स्याद्वलिनाश्च श्रुत सकृत् ।

स्याद्विनिष्पिण्डित हनार्दी सानुनादश्च जीवतु ॥६१॥

वक्रान्तं पश्यन्मार्गेणोचने मुखभाषितम् ।
 मार्जान्मोचने पश्यन्मार्गेण मधुषिद्धम् ॥६२॥
 ऋग् वेकरनेश्वाश्च हरिताला मकम्भम् ।
 जिह्वाश्च मोचने शूरा मेनान्त्यो मजलोचना ॥६३॥
 गम्भीराद्या ईश्वरा, स्तुमन्त्रिणा मूलनक्षत्रम् ।
 नीलोत्पलाद्या विद्रुम मौमाय म्यम्भच्छुण्डम् ॥६४॥
 म्यात्तुप्लुतारकाद्याकामदण्डमन्वाडम् किम् ।
 मण्डलाद्याश्च पाषा म्युनिश्च म्युर्दीननाचना ॥६५॥
 म्यक् म्लिन्या विप्ला भागा म्हायुर्गोभिर्मन्त्रता ॥६६॥
 विष्णुलाघता मुक्तिनो दरिद्रा विपमभूव ।
 घनी दीर्घावसन्तश्चूयलिन्दुततमुभूव ॥६७॥

यस्यैव ही घोर प्रक रहते वाणी नाशिता दूर पुण्य का सफल होता है । धनियों को एक बार ही छोड़ शायी है जो नि विनिर्मिच्छित्त होना है । मनुनाद क मरिच घोर दूद वाणी बोध हुआ करता है ॥ ११ ॥ वक्रा जिनका भक्त माग हा घोर वय पत्र के समान बाधा जाने जो क्षेत्र होना है वे पुष्ट मुख भागी हुआ करता है । मात्रा (विन्ना) की छानों जैती जित मन्त्रों की मधि होती है व वाणी हुआ करता है । मनु के मह्य विज्ञान वय काल नय जिनके होते हैं वे दुष्ट घांका जाने शानक होना है ॥६२॥ देव (भौं पिच्छा हुई जीव वांछे) नय वाणी पुण्य कूर स्वभाव के होते हैं । जिन मेध जाने मनुष्य कर्मय मुक्त हुआ करता है । जिह्वा नयो जाने म्हावीर होना है । हाभी के समान घांको वांछे पुण्य मेनान्त्यो (मन्त्रादि) हुआ करता है ॥६३॥ गम्भीर नयो वाले ईश्वर (मन्त्री) होता है और मूल नक्षत्रों नाम पुण्य भागी हुआ करने है । नील कमल के समान नया जाने शानक बड़े विद्रुम हुआ करता है । प्याम वर्ण की चट्टानों जाने पुण्य का बहुत मन्त्र माथ होना है । जिनके नेत्रों के गारवा कृष्ण वय के हा तथा घांछ कर ज्योतन हो घांछ समार हो और मण्डल के मुख्य वेव हो ऐसे पुण्य वाणी-नि स्व घोर दीन भोग्यों वाले हुआ करते हैं । जिनके स्वयं म्लिन्य हावी है वे बहुत मोघों के भोग्य वा

होने हैं । जिनकी नाभि उन्नत होती है वे मत्स्यागु होने हैं ॥६४॥६५॥६६॥
विशाल घोर उन्नत भौह जिन मनुष्यों की होती है वे सत्तार में सुखी होते हैं
घोर विषम भ्रुकुटियों वाले दन्त्रि होने हैं । दीप समस्त भू वाला घोर बाल-
चन्द्र के समान भू वाला पुरुष धनी हुआ करता है ॥६७॥

आड्यो नि स्वश्च खण्डभ्रुमध्ये च विनतभ्रुव ।
स्त्रीध्वगम्यास्वासक्ता स्यु सुतार्य परिवर्जिता ॥६८॥
उन्नतैर्विपुलं शङ्खलंलाटैर्विषमैस्तथा ।
निधना धनवन्तस्तत्र यद्वन्द्यसदृशंनरा ॥६९॥
आचार्या युक्तिविशालः शिरालं पापकारिण ।
ऊन्नतानि शिराभिश्च स्वस्तिकाभिधनेश्वरा ॥७०॥
निम्नैर्ललाटैर्बघाहं क्रूरकर्मरतास्तथा ।
सवृतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः ॥७१॥
धनश्रुन्निग्धरुदितमदोनमशुभ नृणाम् ।
प्रचुरस्वेदिन रुक्ष रुदितश्च सुसावहम् ॥७२॥
अकम्प हसित श्रेष्ठ निमीलितमघावहम् ।
असकृद्धसित दुष्ट सोमादस्य ह्यनेकधा ॥७३॥
ललाटोपसृतास्तिस्रा रेखा स्यु अतर्विषाम् ।
नृपत्व स्याच्चिन्नमृत्निरायु पञ्चनवत्यय ॥७४॥

खण्ड भ्रू वाला पुरुष आड्य घोर नि स्व होता है । जिसकी भ्रू मध्य
में विनत हो वह भगवन् स्त्री में व्यामक्त होता है घोर सुतार्य परिवर्जित होता
है ॥६८॥ उन्नत-विशाल-शङ्ख तथा ललाटो वाले पुरुष निधन होने हैं । धन-
चन्द्र के समान मनाटो वाले मनुष्य धन वाले हुआ करते हैं ॥६९॥ युक्ति के
समान विशाल ललाटो से युक्त आचार्य होते हैं । विशाल ललाट वाले पुरुष पाप
कर्मों के करने वाले होते हैं । उन्नत शिराओं से समन्वित ललाटो वाले घोर
स्वस्तिक के सदृश ललाटो वाले मनुष्य धनेश्वर हुआ करते हैं ॥७०॥ जिनके
ललाट निम्न हो वे वध के योग्य होते हैं तथा क्रूर कर्म करने में रति रखने

गामुद्रिच नाम्न]

वाले हुआ करते हैं । समूह जन को वाले मनुष्य कजूम स्वभाव के होते हैं तथा
उत्तर ललाट वाले नृप होते हैं ॥७१॥ बिना शशुषो वाला निम्न घटित भदीन
तथा मनुष्य होता है । जिस रदन में अधिक प्रसवेद होता है और रस होता है
वह रदन सुता वह हुआ करता है ॥७२॥ बिना कम्प वाला हमित श्रेष्ठ माना
गया है । जो निमीकित हमित होता है वह श्रेष्ठ के दन वाला होता है । बार-
बार हैपना दोष युक्त होता है । उन्माद युक्त का हमित अनन्त बार हुआ करता
है ॥७३॥ ललाट पर उपमृत्त नील रेखाएँ यह सूचिन करती हैं कि ऐसे पुरुष
सौ वर्ष पर्वन्त जीन बाल होन हैं । बार रेखाएँ भूति होना प्रकट किया
परती हैं और पात्र रेखाएँ नष्ट वष की घायु बनन या करती हैं ॥७४॥

अरेखेनापुनर्वतिविच्छिन्नामिद्व पुश्चला ।
पेशान्तोपगताभिश्च यशोन्यायुनरा भवेत् ॥७५॥
पञ्चभि सप्तभि पडभि पञ्चाशद्वहभिस्तथा ।
चत्वारिंश रक्ताभिस्त्रिंशद्वह लम्ब गामिनि ॥
विशतिर्बामवक्त्राभिराप्तुः क्षुद्राभिरुपवम् ॥७६॥
घनाकारै शिरोभिन्नु नृप निवमयो घनो ।
त्रिपिदैश्च पितृमृत्युघनाद्य परिमण्डले ॥
घटमूर्द्धा पापहनिघनाद्य परिब्रजित ॥७७॥
कृष्णंराकुचित केने नित्यचैरेकमम्भवे ।
अभिज्ञायं दन मृदुभिर्न चातिग्रहमिन्नुं पा ॥७८॥
बहुमूलैश्च विषमं स्यूनाग्रं कपिलेनया ।
निम्नेदंवातिकुटिलंवेनैरमितमूर्द्धजे ॥७९॥
यद्यद्यात्र महादक्ष शिरान् मानवर्जितम् ।
तन्मन्याश्नुम सर्वं शुभ नर्व ततोऽन्यथा ॥८०॥
विपुलस्त्रियु गम्भीरो दीपं नूक्ष्मश्च पञ्चमु ।
पटुतश्चतुर्हंभ्यो रक्त गत ममो नृप ॥८१॥
नामि म्वश्च नुद्धिश्च नय गम्भीरगौरितम् ।
पुम स्यादनिक्किरीणं ललाट पदनमुर ॥८२॥

षष्ठु कथदन्तनासा पटन्युमुंसकृकाटिका ।

उन्नतानि च ह्रस्वानि जङ्घा ग्रावा च लिङ्गवम् ॥८३॥

पृष्ठश्चत्वारि रक्तानि करतात्वघरा नया ।

नम्रान्नपादजिह्वाश्चा पञ्च सूक्ष्माणि सन्ति वै ॥८४॥

अरेख ललाट से भी नन्वे वय की मायु प्रकट होती है । त्रिचिह्न रेखाओं से मनुष्य पृथक् होत है । केश न्त म उपगत रक्षाघा से द्रव्य की मायु वरक्त होती है ॥७५॥ पाँच-पै सात से पचाम वय की अ मू, बहुत-नी रेखाओं से चालीस साल की—रक्त रेखाओं से जो भू लग्न गाम्भी हो तीस साल की मायु प्रकट हाती है । बाई छोड़ कर रहने वाली रेखाओं से बीस वर्ष की उम्र तथा शुद्ध रेखाओं से भर्तर मायु प्रकट हुआ करती है ॥ ७६ ॥ धन के समान आकार वाल शिरो से मनुष्य शिवमय धनी एव नृप होते हैं । विपिट शिरो वाला के पिता की मृग्य होती है और पश्मिदन शिर से मानव धनी होता है । घट के समान मूर्धा वाला पुरुष पाप से हवि वाला होता है और धनादि से रहित होता है अर्थात् सूर्य प्रदायक वस्तुओं का उस आभाव रहता है ॥७७॥ बुष्ण वर्ण वाले—घोट कुम्भित—स्निग्ध—एव—एक उत्पन्न जिसके अग्र भाग अभिन्न हो तथा मुलायम और अत्यन्त धने न हों ऐसे केशों वाले पुरुष नृप होते हैं ॥७८॥ बहुमूल—विपन्न स्थूय अग्र भाग वाले—रूपिल वर्ण से युक्त—निम्न—अत्यन्त कुटिल धने तथा बल्लो वाल पुरुष अशुभ होते हैं । पङ्क जो—जो भी हो वह महान् रुखा—शिराल अर्थात् जिसमें शिराये चमक रही हो तथा मांस से रहित हो वे सभी अशुभ होते हैं । इनके विपरीत सब शुभ बहे गये हैं ॥७९॥ तीन से विपुल—दीर्घ और गम्भीर—पाँच से सूक्ष्म—छँ उन्नत—चार ह्रस्व और सात रक्त हो तो वह मनुष्य नृप होता है ॥८०॥ नाभि—स्वर और बुद्धि ये तीन गम्भीर बताये गये हैं । पुरुष का लल ट—वदन और उर स्थल विस्तीर्ण होना चाहिए ॥८१॥ नेत्र—कक्ष—श्रोत—नासिका—मुख और कृकाटिका (पाँटी) ये छँ उन्नत होने चाहिए । जाघ—घोवा (गरदन) और लिङ्ग तथा पृष्ठ ये छँ होने चाहिए ॥८२॥ कर—गु—मग्न और भल ये चार रक्त वर्ण

वाले परम शुभ होने हैं । नेत्रान्त—पद—जिह्वा—घ्राण ये पात्र सूक्ष्म शुभ एवं प्रशस्त होने हैं ॥८४॥

दशनाङ्गुलिपर्वणि नखकेशत्वचः शुभाः ।
 दीर्घाः स्तनान्तरं बाहुदन्तलोचननासिका ॥८५॥
 नखाणां लक्षणं प्रोक्तं वटामि रत्नीषु लक्षणम् ।
 राश्याः सिन्धो ममो पादौ तलो ताम्रो नखौ तथा ॥
 दिनप्राङ्गुली चांग्रनाथो ता प्राप्य नृपतिर्मवेत् ॥८६॥
 निगूढगु कोपचितो पद्मकान्तिनगो शुभो ।
 यस्वेदिनो मृदुतलो मत्स्याङ्कु शम्बुजाश्वितो ॥
 यश्चाठजहतचिह्नो च राजया पादो ततोऽन्यथा ॥८७॥
 जङ्घे च रोमरहिते सुवृत्ते विमरे शुभे ।
 अनुत्थणं मन्धिदेशं मम जानुद्वयं शुभम् ॥८८॥
 कुरु करिकराकारावरोमो च नमो शुभो ।
 श्वत्थपत्रमदृश विपुल गुह्यमुत्तमम् ॥८९॥
 श्राणीतलाटक स्त्रीणां उरु कूर्मोन्नतं शुभम् ।
 गूढो मणिरक्ष शुभदो नितम्बश्च गुरु शुभ ९०

दशत—अङ्गुलि पर्व—नख—नेत्र—रत्ना ये दीर्घ शुभ होने हैं । मनो वा मध्यान्तर भाग—पद—दन्त—लोचन और नासिका ये भी दीर्घ प्रशस्त होने हैं ॥८५॥ अब तल पुरुषों के नखण बनाने गये हैं । हमने पांच अक्ष स्त्रियों के लक्षण बताये हैं । रत्नी के पाद स्त्रिय—भक्त होने हैं तथा उनके पद तल और नख ताम्र वर्ण के हुआ करते हैं । अङ्गुलिवां एक दूसरे से सटी हुई मिनट होती हैं तथा पद्म भाग उत्पन्न होता है । ऐसे नखणों वाली तांगे का प्राप्त कर पुरुष नृपति हो जाता है ॥८६॥ रत्नी के चरण निगूढ गुह्य बाजे—उपचित—पद्म के समान कानि मे युक्त तलो वाले—विना श्वेद (दमीना) वाले—पद्मस्त मुवा—यम—मन्मथ, धनुष, श्वज, वज्र, अठ्ठ और हार क जिह्वों मे युक्त परम शुभ हुआ करते हैं । इसके विपरीत मधुम है ॥८७॥ नाथी की जड़ रोमों से रहित

सुवृत्त—बिना शिरोधो वाली सर्पात् तिनमे शिराए न चमकती हो ऐसी परम शुभ होती है । नागी का मन्त्रि भाग उन्करा नदी होता चाहिए । दोनों जानु (घुटने) समान हो—य लक्षण शुभ बताय गया है ॥८८॥ नारी के ऊरु हाथी के सूड के समान उचार—चंद्राव दाने—बिना रोमो वाले घोर समान शुभ है । अश्वत्य (पीपल) के पत्र के समान विपूल गुह्य भाग उत्तम बताया गया है ॥८९॥ नारिया की थोली—जलाट—उर म्पल कूर्म के समान उन्नत शुभ होता है । मणि नारियो का गूढ शुभ प्रदान करने वाला होता है तथा नारियो के निमम्ब गुरु होता ही शुभ माने गया है ॥९०॥

विन्तीर्णा माधोपत्रिना गम्भीरा विपुला शुभा ।
 नाभि प्रदक्षिणावर्त्ता मध्य त्रिवलिशाभितम् ॥९१॥
 अरोमजो स्तनां पीनो घनावविषमो शुभो ।
 कठिना रामशा शस्ता मृदुग्रीवा च बम्बुभा ॥९२॥
 आरक्तावधरो थ्रोष्ठो माभल वत्सु न मुखम् ।
 कुन्दपुष्पसमा दन्ता भापित काकिलासमम् ॥९३॥
 दाक्षिण्ययुक्तमशठ ह्रमशब्दमुखावहम् ।
 नासा समा ममपुटा स्त्रीणान्तु रचिरा शुभा ॥९४॥
 नीलोत्पलनिभ चक्षुर्नासलग्न शुभावहम् ।
 न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रूवी चाय ललाटकम् ॥
 शुभमर्द्धन्दुनस्थानमनुह स्यादनामकम् ॥९५॥
 अमासल कणयुग्म सम मृदु समाहितम् ।
 स्निग्धनीलाश्च मृदवा मूर्द्धजा कुञ्जिना शुभा ॥९६॥
 स्त्रीणा सम गिर थ्रोष्ठ पाद पाणितलेज्जवा ।
 वाजिक्ञ्जरथ्रीवृक्षयुपयवतामरं । ९७
 ध्वजचामरमालाभि शीलकुण्डलवेदिभि ।
 नह्नातपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वस्तिरामद्रथं ॥
 लक्ष्मणैरङ्कुशाद्यैश्च स्त्रिय स्यू राजवल्लभा ॥९८॥

विष्णीर्मा—माम से उपचिन्—विपुल घोर गम्भीर नाभि स्त्रियों की शुभ होनी है जोकि दाहिनी घोर भावत्त वाली हो घोर मध्य भाग त्रिवली से सुसोभित होता चाहिए ॥ ६१ ॥ नारी के स्तन रोमों में रहित—पीन—घने घोर अविषम सुन्दर होने हैं । नारी की छोटा बठिन—गोमो से युक्त—कम्बु के सहस्र भास्वर वाली मृदु प्रसन्न होती है ॥ ६२ ॥ थोड़ी-थी रक्तिमा से युक्त भ्रष्टर नारी के श्रेष्ठ होने हैं । स्त्री का मुख वत्तून घोर भावत्त शुभ होता है । कुन्द की ज्यों के समान श्वेत एवं मुद्गर नारी के दांत प्रसन्न माने गये हैं तथा नारी का भाषित जोकिना की नरक दानिक समान मयुर एवं श्रुति प्रिय होना ही परम शुभ वन या गया है ॥ ६३ ॥ नारी के भाषण की प्रशस्तता तथा धानी जानी है जब उमरा भाषण वादित्य से युग—शाब्द से रहित घोर हृम की ध्वनि के समान सुगन्धे वाता हो । स्त्री की नाभिक मम एवं समान पुटो वाली रश्मि घोर शुभ होती है ॥ ६४ ॥ मोन उत्पन्न के सहस्र नारी के तल शुभावह होने हैं जो समस्त न ही । बहुत बड़ी नली वल्लि बाल चन्द्र के समान भीहें शुभ होने हैं । नारी का ललाट चर्चकद्र के समान मस्यान वाला जो अधिक तुल्य न हो घोर समो न रहित शुभ होता है ॥ ६५ ॥ नारी के दोमो शान मानन न हास्य समान—मृदु एवं समानित होने चाहिए—ऐसे ही बाल शुभ बताये गये हैं । स्त्री के वन स्निग्ध—नील—मृदुल घोर धुव-राले शुभ होने हैं ॥ ६६ ॥ स्त्रियों का मस्तक समथ्रेष्ठ होता है । स्त्रियों के धार्य घोर वर से मध्व—मज्ज—भीवृक्ष—पूत—यव—नोम—ध्वज—चामर—माता—मौन—गुण्डल—वेदी—शस्त्र—सूत्र—पत्र—मन्त्र—स्वात्मिक मन्त्र घोर प्रकुम धारि धुर विहो में से प्रविवाधिक लक्षण प्राप्त हो तो एनी नारी राज वन्दन होती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

निगुटमणिवन्धो च पद्मगर्भोऽपि कर्णे ।

न निम्न नाभिन शोभा भवेत्तस्तन शुभम् ॥

रेखाविता स्वविषया कृतशक्तिभोगिनी स्त्रियम् ॥ ६६

रेखा या मणिवन्धोत्पा गता मध्यागुलीकरे ।

गता पाणिनले या च योर्ध्वमादतले स्थिता ॥

स्त्रीणां पुंसां तथा नास्याद्राज्याय च सुखाय च ॥१००॥

कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम् ।

प्रदेशिनीमध्यमाभ्यामन्तरालगता सती ॥१०१॥

ऊना कनायुष कुर्याद्रिंशत्तां चागुष्ठमूलगा ।

बृहत्पृष्ठास्तथा क्षीणा प्रमदा परिकीर्तिता ॥१०२॥

स्वल्पायुषो बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुष ।

गुणन्तु लक्षणा स्वाक्षा प्रोक्तन्त्वगुभयं यथा ॥१०३॥

कनिष्ठिकाऽनामिका वा यस्या न स्पृशत महीम् ।

अगुष्ठे वा गतानां तज्जनी कुनटा च सा ॥१०४॥

ऊर्ध्वद्वाम्भा पिण्डिकाभ्यां जङ्घा चातिशिरालके ।

रोमस्ये चातिमास च कुम्भाकार तथोदरम् ॥

वामावृत्ता निम्नमल्प दुःखितानां गुह्यकम् ॥१०५॥

ग्रीवस्य हृन्मयस्य निःस्वा दीर्घस्य च वल्लभम् ।

पृथुलस्य प्रचण्डाश्च स्त्रियः स्युर्नाम सप्तय ॥१०६॥

नारिणो के मणिबन्ध विगड शुभ है । स्त्रियो के कर पय के मध्य भाग

के समान प्रगस्त हत हैं । स्त्रियो का करतल न अधिक निम्न और न अधिक उन्नत हो शुभ होता है । ये लगभग ना ३ के रेखाचित और पवित्रवा पर्याप्त मोभानय वाली एक सम्मोह गालिनी किया करते हैं । ६६ ॥ जो रेखा नागो के मणिबन्ध से उठकर कर की मध्यभागुलि तक घाने वाली है और ऊर्ध्व पाद तल में रेखा स्थित होनी है । ऐसी रेखा स्त्रियो के कर या पाद में हो या पुत्रयो के हो वह राज्य और सुख के देने वाली हुआ करती है ॥ १०० ॥ कनिष्ठिका म गुलि के मूल भाग में उठी हुई रेखा गतायु बनाती है प्रदेशिनी और मध्यमा म गुलियों के मन्तराल में जान वाली रेखा गत वय की आयु बताती है और मनोत्व की सूचिका होती है ॥ १०१ ॥ बुद्ध कम हुई तो वृद्ध कम आयु बढ़ने वाली होती है । अगुष्ठ के मूल में गमन करने वाला रेखा यह बतनाती है कि उसके बहुत पुत्र होते हैं किन्तु ये बगदाएँ ढील बनाई गई हैं ॥ १०२ ॥ बटन से छिन्न होन वाली रेखाएँ स्वल्प आयु प्रकट किया करती हैं तथा

सामुद्रिक शास्त्र]

दीर्घाच्छिन्ना रेखाए महायुग प्रकट करती हैं। यहाँ जब स्त्रियों के समस्त धुन नष्ट हो जाती है। इन उपर्युक्त लक्षणों के जो विपरीत लक्षण नारियों के होते हैं वे प्रमुख दूषा करते हैं ॥ १०३ ॥ जिन नारियों की कनिष्ठिका या अनामिका पैर की प्रथम भूमि का स्पर्श नहीं किया करती है प्रथम प्रमुख स्पृशण करता हो वह अज्ञात होकर जाने वाली होती है ॥ १०४ ॥ दोनों विण्डितकों (विण्डितियों) में ऊपर जिसकी बाँधे सोमो बानी एवं अत्यंत गिरालक हो एवं अत्यंत मीनम हो और कुम्भ के प्रकार के मध्य उदर हो—गुह्यनाम वामानिम्बा होनी है और दीर्घ दीर्घा बानी के गुण का स्पृशण हो जाता है। यदि प्रीति पृथुव हो तो वह प्रचण्ड अश्रुवाव की स्त्री होती है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १०५ ॥

केकरे पिङ्गले नेत्रे श्यामे नासिकाश्रमनी ।
 स्मिते कृष्ण गण्डयोश्च या ध्रुव व्यभिचारिणी ॥१०७॥
 प्रलम्बितो तलाटे तु देवर हन्ति चाङ्गना ।
 उदरे श्वशुर हन्ति पतिं हन्ति स्मिचाङ्गयो ॥१०८॥
 या तु रोमोत्तरोष्ठी स्यान्न शुभा भक्तु रेव हि ।
 स्तनी सरोमावशुभो कलौ च विपमो तथा ॥१०९॥
 करोला विपमा दन्ता ननेनाय च भवन्ति ते ।
 चौर्ध्वाय कृष्णमासाश्च दीर्घा भक्तुश्च मृत्यवे ॥११०॥
 जम्बादरूपहस्तश्च वृक्कादिस्तत्रैव ।
 गिरालं विपमं शूलं वित्तहीना भवन्ति हि ॥
 समुन्नतोत्तराक्षी या कल्पहै रुद्रमायिणी ॥१११॥
 श्शीपू दोषा विष्णुानु यशसारा गुणास्ततः ।
 नरस्त्रीनक्षत्र प्रोक्तं वक्ष्ये तु जानदायकम् ॥११२॥
 त्रिम नागो न नय करे (भेदे) हो—विह्वल तथा श्याम वर्ण बानि हो योग चक्षुः नेत्रो बानी हो यह नारी प्रसन्न होती है। जब कोई नारी

हंसती या मुक्कराती है उस समय में जिसके कपोली में गड़्डे पड़ जाते हो तो यह निश्चय ही समझ लेना चाहिए कि वह व्यभिचारिणी होती है ॥ १०७ ॥ सलाट में जो प्रलम्बिनी होती है यवार्जु जिमवा सलाट सम्बा होता है वह भ्रङ्गना देवर का हनन करने वाली होती है । जिस नारी का उदर सम्बा होता है वह भ्रसुर को मारने वाली होती है । ऊर्ध्व स्थिक वाली नारी पति का हनन किया करती है ॥ १०८ ॥ जिसका होटी पर रोम होते हैं वह स्त्री अपने स्वागो के लिये शुभ नहीं दूमा करती है । रोमों से युक्त स्तन भी स्त्री के असुभ होते हैं और विरज वान असुभ दूमा करते हैं । करान एव विषम दाँत नारी के वसन के लिये हो हुआ बात है । कृष्ण माग जिन दाँतों का होता है वे खोरो के बताने वाले होते हैं । दोष दाँतों वाली भर्ता की मृत्यु के लिये होती है ॥ १०९ ॥ ११० ॥ राक्षस व-से हाथ हो-बुध, काक आदि के मुख्य-सिंहाल—विषम और मुष्क जिनका हाथ हो है वे बलहीन होती हैं । उत्तर मोठ जिसका मनुष्य होते है वह रुचक या रक्षी और रक्षा भाषण करने वाली होती है ॥ १११ ॥ ये विरुद्ध स्थितियों में दोष दूमा करते हैं । जहाँ घागर मुन्दर होता है वहाँ गुण भी दूमा करते हैं । इन प्रकार से यही तक नर और नारियों के लक्षण बताय गये हैं । प्रक जान शायद शिष्य बतलाया जायगा ११२

३६-पवन विजय स्मरौदय

हरे श्रुत्वा हरो गीगी देहस्थ ज्ञानमन्त्रवीद ॥१

कुजा वह्नी रवि पृथ्वा शौरिराप प्रवीतित ।

वायुसंस्थ स्थिता राहुर्दक्षरन्ध्रावभासक ॥२

गुरु शुक्रस्तथा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्ग्व ।

वामनाड्यान्तु मध्यस्थान् वारयेदात्मनस्तथा ॥३

यदा चार डहायुक्तस्तथा कर्म समाचरेत् ।

स्थानसेवा तथा ध्यान वाणिज्य राजदर्शनम् ।

अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नत ॥४

दक्षतादीप्रवाहे तु शनिभौमश्च सैहिक ।

इतश्चैव तथाप्येन पापानामुदयो भवेत् ॥५

शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात् ।
 देहमध्ये स्थिता नाड्या बहुस्थाः सुविम्बरा ॥६॥
 नाभेरधस्ताद्यं स्कन्दं शङ्खं गस्तत्र निर्गताः ।
 द्विमस्रतिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिता ॥७॥
 चक्रवच्च स्थितास्तान्नु सर्वा प्राग्गह्वरा स्मृता ॥
 तानां मध्ये ध्ये श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमा ॥८॥

सूत्रश्री ने कहा—हरि कथन का प्रमाण करके हर ने योगी को देह में स्थित ज्ञान बतलवाया । कुत्र (भीम) वह्नि, रवि, पृथ्वी, गौरि साप वहे यय हैं । वायु में स्थित रहने वाला गह्व है जो दशगुण प्रमाणक होता है । गुरु, शुक्र तथा क्षुण्ण भीष्य चन्द्र वाम भागों में सप्त मन्त्रण करावे और जब पार इडा से मुक्त हो तब जो शक्ति व स्थान, तैज, ध्यान, वाणिज्य और राजदर्मन वसी का समावेश करना चाहिए । एक समय भी शुभ कर्म प्रवृत्त पूर्वक कराने चाहिए ॥१॥ से ४॥ इस नाडी प्रमाण में गति, भीम और सिंह का इस (सूत्र) इस प्रकार में पाये जा उदय होता है ॥१॥ स्वरोदय में इस तरह शुभ एवं अशुभ का विवेक जाया जाता है । इस २६ के मध्य में रहने से ऊपर वाली सुविम्बरा में युक्त नाडियाँ स्थित रहती हैं ॥६॥ नाभि के नीचे के भाग में जो शक्ति है वही पद में पशु, निर्मित होने हैं जो दो गतर महत्त्व नाभि के मध्य में व्यवस्थित हैं । वे मात्र चक्र को नीचे वहाँ पर स्थित हैं और यही प्राणों की हस्ता करने वाली कही गई हैं । ७॥ उन मन्त्रों के मध्य में वाम दक्षिण और मध्य में रहने वाली तीन श्रेष्ठ बताई गई हैं ॥८॥

वामा सोमात्मिका शोक्ता दक्षिणा रविनाभिमा ।
 मध्यमा च भवेदग्नि पतता कान्तपिण्डी ॥
 वामा क्षमृताया च जगदाध्यायने स्थिता ॥९॥
 दक्षिणा रोब्रभायेन जगन्लोपयते मया ।
 द्वयोर्वहि तु मृत्युं स्यात् सर्वकाम्यविनाशिनी ॥
 निर्गमे तु भवेद्रामा प्रवेगे दक्षिणा स्मृता ॥१०॥

इडाचारे तथा सोम्य चन्द्रमूर्धगतस्तथा ।

वारयेत्क्रूरवर्मणि पाण पिङ्गलसंस्थित ॥११॥

यात्राया सर्वकार्येषु विषयहरणे इडा ।

भाजने मंथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका ॥१२॥

उच्चाटमारणाद्य पु वमस्वेतेषु पिङ्गला ।

मंथुने चैव सप्रागे भाजने सिद्धिदायिका ॥१३॥

शोभनेषु च कार्थ्येषु यात्राया विषयमणि ।

शान्तिमुक्त्यथमिद्वयं च इडा योज्या नराधिपे ॥१४॥

द्वाभ्याश्चैव प्रवाहे च क्रूरमोम्यविवर्जने ।

विषय त तु जानीयात् सस्मरेत्तु विचक्षण ॥१५॥

वाम पाग मे स्थित सोम (चंद्र) स्वरूपा बहो गई है और दक्षिण भाग मे स्थित नाडी रवि के तुल्य होती है तथा मध्य भाग क म रुविणी स्थित है जो फल देने वाली है । वामा प्रसृत क्रूर वाली होती है जो जगत् के व्याप्य या करने में अर्थात् मनुष्य करने के कार्य व लिए स्थित होती है ॥१६॥ दक्षिणा जो होती है वह गेद्र भाग से सदा इस जगत् का पोषण किया करती है । दोनों के पार होने में मृग्यु हाती है जो कि ममस्त काशों के विनाश करने वाली होती है । निगम करने में वामा होता है और प्रवेग करने में दक्षिणा बताई गई है । ॥१७॥ इडाचार मे जब सोम्य करे तथा चंद्र मूर्धगत हो तब प्राणों के पिङ्गल संस्थित होने पर क्रूर कर्षों को करना चाहिए ॥११॥ यात्रा में, समस्त कार्यों में और विषय क अपहरण करने में इडा होती है तथा भोजन में मंथुन में और युद्ध में पिङ्गला नाडी सिद्धि क प्रदान करने वाली होती है ॥१२॥ उच्चाटन और मारण आदि कार्यों में पिङ्गला मंथुन सप्राग और भोजन में सिद्धि प्रदायिनी होती है ॥१३॥ राजाओं के शोभन कार्यों में, यात्रा में विषय में शान्ति और उक्त प्रर्थों की सिद्धि के लिये इडा का योजन करना चाहिए । ॥१४॥ दोनों के प्रवाह में और क्रूर तथा मोम्य कार्य क विवर्जन में उमको विषय जानना चाहिए तथा विचक्षण पुरुष की मली-भाति स्मरण रत्नना चाहिए ॥१५॥

सौम्यादिशुभकार्येषु लाभोदयजोविते ।
 गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ॥१६॥
 युद्धादौ भोजने घाते स्थोणाश्चैव तु सगमे ।
 प्रशस्ता दक्षिणा नाडी प्रवेगे क्षुद्रकर्मणि ॥१७॥
 शुभाशुभानि कार्याणि लाभालाभौ जयाजयौ ।
 जीवो जीवनाय पृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा ।
 वामाचारेऽथवा दक्षे प्रस्थये यत्र नायकः ॥१८॥
 तनुस्य पृच्छते यस्तु तत्र निद्रितं सशयः ।
 वैच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ।
 तत्र भागे स्थितः पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ॥१९॥
 वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सक्रमत् शिवा ।
 घोरे घोरानि कार्याणि मौम्ये वै मध्यमानि च ॥
 प्रस्थिते भागतो हसे द्वाभ्यां वै सर्ववाहिनी ॥२०॥
 तदा मृत्युं विजानीयाद्योगी योगविचारदः ।
 यत्र यत्र स्थितः पृच्छेद्दामदक्षिणासमुक्ताः ॥२१॥
 तत्र तत्र सम दिश्याद्वातस्योदयन सदा ।
 अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।

वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ॥२२॥

सौम्य आदि शुभ कार्यों में तथा लाभ आदि जय एवं जीवित में, गमन और आगमन में सब जगह वामा ही पूजित होती है ॥१६॥ युद्ध आदि में, भोजन में, घात में तथा स्थिरों के गङ्गाप करके के कार्य में, प्रवेश करने में एवं अन्य क्षुद्र कर्म में दक्षिणा नाडी को प्रशस्त बताया गया है ॥१७॥ शुभ और अशुभ कार्य, जान-पान तथा घलाम, जब और भय एव जीव जीवन के लिये कभी कुछ भी न पूछे । वहाँ मध्यमा नाडी निद्रा हुआ करती है । वामा-चार में अथवा दक्षिणाचार में त्रिमं ताम्र को विश्वास हो ॥१८॥ तनु में स्थित होगा हुआ जो पूछता है वहाँ पर निद्रि अवश्य ही होती है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । जब आत्मा में वैच्छन्द वामदेव वहन किया करता है उस

भाग में स्थित होना हुआ। पूर्यता है तो सम्पूर्ण सिद्धि फल रहित हो जाया करती है ॥१६॥ वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में जहाँ पर शिव मन्त्र मण किया करती है तो घोर में घोर कार्य घोर सोम्य में मन्त्रम कार्य बरे । भाग में हय के प्रस्थित होने पर घोर दोनों से सर्व वां नो हो तो उस समय में योग के महामन्त्र की योगी को निश्चय ही मृत्तु जाननी चाहिए । जहाँ जहाँ पर वाम दक्षिण समुच्च स्थित होना हुआ पूछे वहाँ वहाँ पर सदा ध्यान का उदयन सम बतावे । अथ भाग में वामिका श्रेष्ठ होती है घोर पृष्ठ भाग में दक्षिण शुभा हुआ करती है । वाम से वामिका कही गई है घोर दक्षिण में दक्षिणो शुभ बताई गई है ॥२० स २२॥

जीवी जीवति जीवेन यच्छन्य तत् स्वरो भवेत् ।

यत्किञ्चित्कार्यमुद्दिष्ट जयादिगुभनक्षणम् ॥२३

तत्सर्वं पूणताडयान्तु जायते निविवल्लत ।

अन्यताडयादिपर्यंत पक्षत्रयमुदाहृतम् ॥२४

यावत्पण्डीन्तु पृच्छाया पूर्णया प्रथमी जयेत् ।

रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु वषयेत्तदशङ्कित ॥२५

वामाचारसमी वायुर्जायते वमंसिद्धिद ।

प्रवृत्त दक्षिणे मार्गे विपमे विपमाक्षरम् ॥२६

अन्यत्र वामवाह तु नाम वं विपमाक्षरम् ।

तदासी जयमाप्नोति याध सप्राममध्यत ॥२७

दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम् ।

जायते नात्र सदेहो नाडीमध्ये तु सक्षयेत् ॥२८

पिङ्गुलान्तर्भाति प्राणे समनीयाहवञ्जयेत् ।

यावन्नाड्योदय चारस्ता दिक्ष यावदापयेत् ॥२९

न दातु जायते सोऽपि नात्र वाग्यं विचारणा ।

अथ सप्राममध्ये तु यत्र नाडी सदा बहेत् ॥३०

सा दिशा जयमाप्नोति दून्वे भङ्गं विनिदिशेत् ।

जातचारै जय विद्यान्मृतके मृतमादिनेत् ।

जय पराजय चैव यो जानाति स पण्डितः ॥३१॥

जीव जीव से ही जीवित रहा करता है । जो मृत्यु है वह स्वर होना है । जय भादि का शुभ नक्षण बाता जो कुछ भी कार्य उद्दिष्ट होता है वह सभी निर्विकल्प रूप से पूर्ण नाही मे होता है । अन्य नाही भादि पञ्चम तीन पक्ष पतनये गये हैं ॥२३॥ २४॥ यशो तक पृच्छा मे पूर्ण मे पयम जय प्राप्त करता है और रिक्ता मे द्वितीय को धनशुद्धि होता हुआ कह देवे ॥२५॥ वामाचार के समान वायु वरुं को मिद्धि देने वाली होती है । दक्षिण मार्ग के प्रवृत्त होने पर ही होता है । विषम होने मे तो विषमाक्षर होता है ॥२६॥ अन्य स्थान में वाम बाहू हान पर जो नाम विषम अक्षर बाता होता है सब वह मोक्षा सप्राप्त के मध्य में जय की प्राप्ति किया करता है । ॥२७॥ दक्ष पात के प्रवाह में यदि नाम मे सम अक्षर हो तो अवश्य ही होता है । इनमे कुछ भी संदेह नहीं है । नाही के मध्य मे तथित करना चाहिये ॥२८॥ प्राण के पिङ्गमा मे भ्रन्तर्गत होने पर क्षमतीय युद्ध में जय प्राप्त करता है । जय तक नाही का उदय हो तय तक चार होता है । जब तक उस दिशा को प्राप्त करे ॥२९॥ हम विध्य में कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये । इस क क्षमन्तर सप्राप्त के मध्य में जहाँ नाही लक्ष्य वहन करती है वही दिशा जय को प्राप्त होती है । मृत्यु होने पर भङ्ग का निर्वेश होता है । जानाचार में जय समझना चाहिए और मृतक में मृत का आदेश कर देना चाहिए । इस प्रकार मे जय और पराजय को जो जानता है वह पण्डित होता है ॥३० ३१॥

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र मञ्चरते शिवम् ।

कृत्वा तत्पदमार्ज्जानि यात्रा मन्तव्योभवा ॥३२॥

शशिनूर्ध्वप्रवाहे तु मनि युद्ध ममाचरेत् ।

तत्रम्यः पृच्छते यस्मिन् स सायुजेयते ब्रुवन् ॥३३॥

मादिना बहते वायुस्ता दिग्ग यावदाजयेत् ।

जायते नाद मन्देह इन्द्रो यत्रप्रतः स्मितः ॥३४॥

मेघाद्या दश या नाड्यो दक्षिणा वागमस्थिता ।

चरस्थिरद्विमार्गे ताम्नाहरो तादृश क्रमात् ॥३५॥

निर्गमे निर्गम याति सग्रहे सग्रह विदुः ।

पृच्छक्स्य वच श्रुत्वा घण्टाकारेण लभयेत् ॥३६॥

वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्त्वस्थित शिवे ।

ऊर्ध्वऽग्निरथ आपश्च तिर्य्यक्सस्यः प्रभञ्जनः ।

मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा ॥३७॥

ऊर्ध्वं मृत्युरथ शान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधी ।

मध्ये स्तम्भं विजानीयान्मोक्षं सर्वत्र सर्वंगे ॥३८॥

वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में जहाँ शिव स्मरण करते हैं वहाँ यह करके जो पाद को प्राप्त करता है वह यात्रा सन्तत शोभन प्रयात् प्रचक्षी हुमा करती है ॥३२॥ चन्द्र और सूर्य के प्रवाह होने पर युद्ध करे। वही पर स्थित जी पूछना है वह साधु विभ्रर ही अव प्राप्त करता है प्रयात् विजयी होता है ॥३३॥ जिस दिशा को और वायु बहन करता है उस दिशा को तब तक विजय किया करता है। इसमें कुछ भी प-देह नहीं हैं चाहे सामने इन्द्रदेव ही क्यों न छडे हों ॥३४॥ मेघी आदि जो दश नाडियाँ हैं जो कि दक्षिण एवं वाम भाग में स्थित हैं वे चर-स्थिर और द्विमार्ग में क्रम से बंसे में बना ही होता है। निर्गम में निर्गम को प्राप्त करता है और सग्रह में सग्रह जानना चाहिए। पृच्छक के वचन का श्रवण कर घण्टाकार से देखना चाहिए ॥३५॥३६॥ है शिवे। वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में पञ्च तत्त्व स्थित हैं। ऊर्ध्व भाग में अग्नि है, नीचे के भाग में जल है, तिर्य्यक् सस्य वायु है, मध्य भाग में पृथ्वी तत्त्व है और आकाश सर्वदा सर्वत्र ही जानना चाहिए ॥३७॥ ऊर्ध्व में मृत्यु है, अधोभाग में शान्ति होती है-तिर्य्यक् भागों में उच्चाटन होता है-मध्ये में स्तम्भन जानना चाहिए और सर्वत्र सर्वंग में मोक्ष होता है ॥३८॥

३९—रत्नपरीक्षा—वज्रपरीक्षा

परीक्षा वच्मि रत्नानां वलो नामासुरोऽभवत् ।

इन्द्राद्या निजिनास्तेन निजैर्नु तैर्न शक्यते ॥१॥

वरव्याजेन पशुता याचिनः स सुरैर्ममे ।
 बलो ददौ स्वपशुतामतिमत्त्वो ममे हृत ॥२॥^१
 पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रित ।
 बलो लोकोपकाराय देवाना हितकाम्यया ॥३॥
 तस्य सत्त्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा ।
 कायस्यावयवा सर्वे रत्नबीजत्वमाययु ॥४॥
 देवानामथ यक्षाणा सिद्धाना पवनाशिनाम् ।
 रत्नबीजमय ग्राह मुमहानभवत्तदा ॥५॥
 तेषा तु पतता वेगाद्विमानेन विहायसा ।
 यद्यन्पपात रत्नाना बीज बबबन किञ्चन ॥६॥
 मन्द्रोदघौ सरिति या पर्वते वाननेऽपि या ।
 तत्तदाकरता यात स्थानमाधेयगौरवात् ॥७॥

मूनजी ने कहा—अब मैं रत्नों की परीक्षा यतनाता हूँ । बल नाम धारी
 एक पशुर हुआ था । उसने इन्द्र आदि समस्त देवगणों को जीत लिया था
 और वह इनसे नहीं जीता जा सका था । १॥ देवगणों के द्वारा मन्त्र से उग से
 बरके बहाने से पशुता की याचना की गई थी । बल ने अपने धामको पशुता
 प्राप्त करने के लिये दे दिया था और प्रसन्न सरस वाला वह मन्त्र से मारा
 गया था ॥ २ ॥ अपने बबन रुखी पाश से निबन्धन से प्राप्त हुआ वह पशु के
 समान स्तम्भ में प्रवेश कर गया था । बल ने यह कार्य लोको के उपचार के
 लिये और देवों के हित की कामना से ही किया था ॥ ३ ॥ सत्त्व से विमुक्त उनके
 शरीर के समस्त अवयव रत्नों के बीजत्व को प्राप्त हो गये थे ॥ ४ ॥ इसके प्र-
 न्नर देवों के—यज्ञों के—मिथों के और पवन के प्रदान करने वालों के रत्न
 बीजमय ग्राह उस समय में मुमहान् हो गया था ॥ ५ ॥ आकाश मार्ग से विमान
 के द्वारा उनके महान् वेग से गिरने वाले रत्नों का जो-जो भी कुछ बीज गिरा
 था वह समुद्र में, नदी में, पर्वत में अथवा जलन में स्थान एवं प्रायेण के शीतल
 से वही वह स्थान उनका आश्रय बन गया था ॥ ६ ॥ ७ ॥

तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च ।
 प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च ॥८॥
 वज्रमुक्ता तु मणय सपञ्चरागा समरक्ता प्रोक्ता ।
 अपि चेन्द्रनीलमणिवरवंदुर्ध्याश्च पुष्परगाश्च ॥९॥
 वक्त्रेण सपुलक रूधिरारसमन्वित तथा स्फटिकम् ।
 विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्ट सप्रहे तज्ज ॥१०॥
 आकारवर्गो प्रथम गुणदोषो तत्फल परीक्ष्य च ।
 मूल्यञ्च रत्नकुशलं विज्ञेय सर्वसास्याणाम् ॥११॥
 कुलभेदपूजयन्ते यानि चोपहृतेऽहनि ।
 दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा ॥१२॥
 परीक्षापश्चिद्भाना रत्नाना पृथिवीभुजा ।
 धारण सप्रहा वापि कार्यं श्रियमभीप्सता ॥१३॥
 शास्त्रज्ञा कुशलाश्चापि रत्नभाज परीक्षका ।
 त एव मूल्यमानाया वेत्तार परिकीर्तिता ॥१४॥
 महाप्रभाव विबुधैर्पस्माद्वज्रमुदाहृतम् ।
 वज्रपूर्वा परीक्षेय ततोऽस्माभि प्रकीर्त्यते ॥१५॥

उनमें रत्न पैदा होते हैं और उनमें राक्षस विष—व्याध—व्याधियों
 के नाशक तथा घटा के हनन करने वाले भी उत्पन्न होते हैं तथा विगुण भी
 होते हैं ॥८॥ वज्र (हीरा), मुक्ता (मोती) पञ्चराग, मरकत ये मणियाँ
 कही गई हैं । इन्द्र नीलमणि वैदूर्य पुष्पराग, वक्त्रेण सपुलक, रूधिरारस सम-
 न्वित, स्फटिक, विद्रुम मणि इनके गण्ड म मणियों के जानाघो ने यस्त से कहा
 है ॥९॥ सर्व मणियों के आकार और वण फिर उनके गुण एवं दोष तथा
 उनके फलों का परीक्षण करे । इनके पश्चान् सम्पूर्ण शास्त्रा के विद्वान् रत्नों
 की विद्या में परम कुशल लोगो से उनका मूल्य भी जानना चाहिए ॥११॥
 बुढ़ी लगनो में तथा अरहत दिन में जो रत्न उत्पन्न होते हैं वे दोषो से उपयुक्त
 हुआ करते हैं और गुणों की सम्पत्ति में हीन होते हैं ॥१२॥ श्री की अभोप्ता
 रखने वाले पृथ्वी के स्वामी के द्वारा भवो-भाति परीक्षण करने परम परिशुद्ध

रत्नों का धारण करना या सग्रह करना चाहिए ॥१३॥ राशियों के ज्ञान और परम कुशल रत्नों के रखने वाले पुरुष ही इनकी परीक्षा करने वाले हुए करते हैं और वे ही इन रत्नों की मूल्य मात्रा के जानने वाले बताय गये हैं ॥१४॥ विबुध लोगो ने महान् प्रभाव वाले वज्र (हीरा) को बतलाया है । यह वज्र परीक्षा सर्वप्रथम होती है जो कि इस समय में हमारे द्वारा परि कीर्तित की जानी है ॥१५॥

तम्पास्थिलेशो निपपातयेत् भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव ।
 वज्राणि वज्रायुधनिजिगीषोर्भवन्ति नागाकृतिमन्ति तपु ॥१६॥
 हैममानङ्गसौराष्ट्रा षोडशकानिङ्गकोशता ।
 वेण्वातटा समीचीना वज्रम्पाष्टविहारका ॥१७॥
 आताम्रा हिमशैलजाश्च गशिभा वज्रान्तटीया स्मृता
 सौवीरे रससिताब्जमेघमहशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजा ।
 कालिङ्गा कनकावदातरचरा पोतप्रभा कोशले
 द्यामा पुण्ड्रभवा मलङ्गत्रिपय नात्यन्तपीतप्रभा ॥१८॥
 अत्यथं लघुवर्णतश्च गुणवत्पादवेषु सम्यक्प्रम
 रेण्माविन्दु कलङ्ककाकपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ।
 लोकेऽस्मिन्परमाणुमायमपि यद्वज्रं क्वचिद् दृश्यते ।
 तस्मिन्देव समाश्रया ह्यवितथ तोक्षणाप्रवार यदि ॥१९॥
 वर्ज्येषु वर्णपुक्त्या देवानामपि विग्रहः प्राक्त ।
 वर्णैर्मप्यश्च विभागः कार्यो यस्याश्रयादेव ॥२०॥
 हरितश्वेतपीतत्रिङ्गश्यामताम्रा स्वभावतो रचिरा ।
 हरिर्वरुणशङ्खद्रुतवहपितृपतिमरुता स्वका वर्णा ॥२१॥
 विप्रम्य गङ्गकुमुदम्फटिकाचदान
 स्यात्क्षत्रियस्य क्षत्रवभ्रुविलान्ननाम ॥
 वैश्यस्य पान्थदनीदलसन्नितास शूद्रस्य
 धौतकरवालमगानदीप्ति ॥२२॥

जिनमें भूमि के प्रदेशों में जिनकी भी प्रकार से ही उसका प्रस्थितेश
 गिर गया था वनम वज्रायुध (इन्द्र) के विजिण्डु के अनेक प्राकृति वाले वज्र
 हुआ करते हैं ॥१६॥ हेम—मातङ्ग—सोराष्ट्र—पोण्डु—वालिङ्ग—कोशल—
 वेण्वातट—ससौवीर ये पाठ वज्र के विहारक होते हैं ॥१७॥ हिमशैल में
 समुत्पन्न वज्र (हीरा) थोड़े से नाम वरुण वाले हुआ करते हैं । वेण्वातटीय
 वज्र चन्द्रमा की सी छाभा में युक्त होते हैं । सौवीर वज्र प्रसिद्धाद्वय एव भेष
 के सहस्र हुआ करते हैं । जो सोराष्ट्र में समुत्पन्न वज्र होते हैं वे ताम्र वरुण के
 हुआ करते हैं कानिङ्ग वज्र वनक के समान प्रसदान एव रुचिर होते हैं ।
 कोशलदेश में उत्पन्न हुए वज्र पीत वरुण की प्रभा से समन्वित होते हैं । पुण्ड्र
 में जिनकी उत्पत्ति होती है वे श्याम होते हैं । मतङ्ग में प्रभव होने वाले
 अत्यन्त पीत वरुण की प्रभा से युक्त नहीं होते हैं ॥१८॥ बहुत ही अधिक लघु
 वरुण से युक्त गुण वाला वज्र होता है जिनके पार्श्व भागों में मसी-भाति समान
 रेखा—किन्दु—बलङ्ग—बाव—पदक और त्रासादि से जो रहित होता है ।
 ऐसा वज्र इस लोक में कहीं पर एक परमाणु के बराबर भी मिलनाई देता
 है और यदि अग्रधारा जिनमें तीक्ष्ण हो तो निश्चय ही उसमें देवों का समाश्रय
 होता है । यह पूर्णतया मरुत बात है ॥१९॥ वज्रों में वरुणों की युक्ति से देवों
 का भी विग्रह बतलाया गया है । वरुणों के आश्रय से ही वरुणों से विभाग करना
 चाहिए ॥२०॥ हरित्—श्वेत—पीत—पिङ्ग—श्याम और ताम्र ये वरुण सभी
 स्वाभाविक रूप से ही रुचिर हुआ करते हैं । ये वरुण हरि—वहण—इन्द्र—
 अग्नि—पितृगति और मरुत देवों के आने वरुण होते हैं ॥२१॥ विप्रका वरुण
 शङ्ख कुमुद और स्फटिक के समान अवकाश होता है । क्षणिक का वरुण क्षण
 वज्र और विलोचन के सहस्र छाभा वाला होता है । वंश्य का वरुण कान्त
 बदली (बेला) के दन्त के तुल्य होता है और सूद्र का वरुण धीव वरबास के
 सहस्र दीप्ति से युक्त हुआ करता है ॥२२॥

द्वौ वज्रवरुणौ पृथिवीपतीना सङ्घि प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ ।
 य स्याज्जवाविद्रुमभङ्गशोणो यो वा हरिद्राससन्निकाश ॥२३॥

राजगीशा-व्यपरीक्षा]

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्त्वावर्णिकम् ।

कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योन्यं कथंचन ॥२४॥

अधरोत्तरवृत्तो हि यादृक्स्याद्वर्णसङ्कुर ।

ततः कष्टनरो वय्पी वर्णान्ति सङ्कुरो मतः ॥२५॥

न च मार्गविभागमात्रवृत्त्या विदुषा वय्परिग्रहो विधेयः ।

गुणवद्गुणमप्यदा विभूतिविपरीतो व्यमनोदयस्य हेतुः ॥२६॥

एकमपि यस्य शृङ्गं श्रेयार्थविभिर्भवंतं ॥२७॥

गुणवदपि तत्र धार्यं श्रेयार्थविभिर्भवंतं ॥२७॥

स्फुटितानि विशीर्णं शृङ्गं देयं मन्वस्ये पृथक्त्वपेक्षेतमध्यम् ।

न हि वय्भूतोऽपि वयमानु श्रियमन्त्याश्रयलालमा न कुर्यात् २८

यस्यैकदश क्षतजावभासो यद्वा भवेत्सोद्विग्वर्णान्ति ॥

न तत्र कुर्याद् द्विगुणमागमानु स्वच्छन्दमृत्योरपि जीवितान्ताम् ॥२९॥

वय के दो बल पृथिवी पतियो व लिये मत्पुत्रों ने बतलाये हैं और
ये वल सब साधारण पुरो के नियमों वल गये हैं । एक वर्ण तो वह होता
है जो जवा विदुष के भद्र के समान जान हो और दूसरा इनके विचार में
हरिद्र के रन के समान जाना है ॥२३॥ अन्य वर्णों का स्वामी होने के
कारण सभी वर्णों के गुणों में वल युक्त होता है । इसलिये स्वच्छन्द से राजा
धारण कर सकता है किन्तु राजा के प्रतिष्ठित धर्म कोई भी वर्ण वाला किसी
भी प्रकार में धारण न करे ॥२४॥ अधोत्तर वृत्त वाला जमा कि वर्णों की
सङ्ख्या वाला हो । उसमें वल गले या धारण करने वाला कष्टनर होता है ।
ऐसा वर्णों का सङ्कुर माना गया है ॥२५॥ मार्ग के विभाग मात्र की वृत्ति से
हो विद्वान् पुरुष को वय का परिग्रह कभी नहीं करना चाहिए । जो पुरो से
ममन्विन वय होता है वह गुण और ममद को भी विभूति होता है । इनके
विपरीत वय व्यमनो (वयो) के उदय का कारण हुआ जाना है ॥२६॥
जिन वय का एक भी शृङ्ग दिदलित प्रपञ्च विनीर्ण यदि दिवसाई देना है
तो चाह धर्म गुणों में युक्त भी जो न हो उसे श्रेय के चाहने वाले पुरो को
मदन में सभी धारण नहीं करना चाहिए ॥२७॥ स्फुटित धर्म के मदन

बिशीरुं जिम हीरा का शृङ्ग देश हो और मन रखे वाले पृथ्वी (विन्दु रेखा) से मध्य भाग स्पष्ट हो—ऐसे वज्र के धारण करने वाले का यह वज्र शीघ्र श्री नहीं करता है और उसे मन्त्राध्यक्ष की सालता भी नहीं करनी चाहिए । ॥२८॥ जिसका एक भाग क्षतजा के समान घबड़ाहित होना है भयवा तोहित वरुं से चित्रित ना हो उसे शीघ्रता में ग्रहण नहीं करना चाहिए तथोक्ति वह स्वच्छन्द मृग्यु के भी जो वत का मन्त्र करने वाला होता है ॥२९॥

कोट्यध पार्श्वानि धाराश्च पङ्कष्टी द्वादशेति च ।

उत्तुङ्गसमतीक्ष्णामा वज्रस्याकरजा गुणा ॥३०॥

पट्काटिशुद्धममन स्फुटतीक्ष्णधार

धर्णान्वित लघु सुपार्श्वमपेतदोषम् ।

इन्द्रायुधाशुविसृतिच्छुग्नितान्तरिक्षमेव त्रिध

भुवि भवेत्सुलभ न वज्रम् ॥३१॥

तीक्ष्णाग्र विमलमपेतसर्वदोष धर्मे य प्रयत्नतनु सदैव वज्रम् ।

वृद्धिरस्त प्रतिदिनमेति यावदायु स्त्रीमन्त्रस्तुतधनधान्यशोपशूनाम् । ३२

व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभगानि च ।

दूरात्तस्य निवर्त्तन्ते कर्माण्याथर्वणानि च ॥३३॥

यदि वज्रमपेतमर्षदोष विभृयात्तएडुनविशति गुम्फे ।

मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुण रूपलक्षणमप्रमूल्यम् ॥३४॥

त्रिभागहीनाद्धन्तदद्धदोष नयादश निशदतोऽर्द्धभाग ।

अशीतिभागोऽथ सताशभाग सहस्रभागोऽल्पममानयोग ॥३५॥

यत्तण्डुलैर्द्वादशभि कृतस्य वज्रस्य मूल्य प्रथम प्रविष्टम् ।

द्वाभ्या क्रमाद्धानिमुपागतस्य त्वेकावमानस्य विनिश्चयोऽयम् ॥३६॥

जिम वज्र की कोटियाँ, पार्श्व भाग और धाराएँ छै-पाठ तथा धारह हो तथा उत्तुङ्ग—सम और तीक्ष्ण घट्टवाली हो य हीरे के धार (खान) में उत्पन्न होन वाले गुण हुवा करते हैं ॥३०॥ छँ कोटियो से युक्त—शुद्ध—ममल—स्फुट एवं तीक्ष्ण धाराओं वाला—वर्ण से युक्त—लघु—मच्छे पार्श्व भागों वाला—अपूर्ण दोषों से रहित और इन्द्रायुध की किरणों की विभूति से

छुटित मन्तरिक्त बाला इस प्रकार का वस्त्र (हीरा) इस भूजोक में मुनम नहीं
 हुआ करता है ॥३१॥ तीक्ष्ण मयभाज से समन्वित—दिना मल बाना—गमरत
 दोषों से विद्यजित वस्त्र को जो कोई प्रथम जरीर प्राणा सर्वदा धारण किया
 करता है उसकी धाये दिन वृद्धि होती है और नष्ट जब तक जीवित रहना है
 उसे स्त्री—धन—सुत धन—धान्य—गो और पशु जो का पूर्ण सुख रहता है ।
 ॥३२॥ उस पुरुष से उद्घात (मर्ष)—अग्नि—दिप—व्याघ्र—सम्भर और
 जल के भय तथा आघर्वण नर्म प्रयात् मार्गलोचल टनादि कर्म दूर से ही
 निवृत्त हो जाया करते हैं ॥३३॥ यदि ऐसा वस्त्र प्रयात् हीरा जो सब प्रकार
 ने दोषों से रहित हो और बीम लक्षण (नाशक) के धारण गुरुव बाना हो
 उसे कोई पुरुष धारण करता है तो मणि पात्र के विद्वान् लोग उसका त्रिगुण
 रूप लक्षण और मय मूल्य कहा करते हैं ॥३४॥ निभाग होन का अर्थ और
 उसका पंचदोष, प्रयोदन, मोमका पच भाग, अशोति भाग, धनाश भाग, महस
 भाग इसका समान योग होना है ॥३५॥ बहुत बारह के द्वारा किया वस्त्र का
 मूल्य प्रथम ही बताया गया है । क्रम ने दो के द्वारा ज्ञानि हो उपागत पञ्चाश
 मान का यह विनिश्चय होता है ॥३६॥

न नापि तण्डुलैरेव वज्राणा धारणाक्रम ।

अष्टाभि सर्पगौरैस्तण्डुल परिकल्पयेत् ॥३७॥

यत्तु सर्वगुणैर्बुद्धत वज्र तरत वारिणि ।

रत्नवर्गे समस्तऽपि तस्य धारणमिष्यते ॥३८॥

अल्पेनापि हि दोषेण तत्त्वानवद्येण दूषितम् ।

स्वमूल्यादृशम भाग वज्र लभति मानव ॥३९॥

प्रकटानेकदोषस्य स्वल्पस्य महतोऽपि वा ।

स्वमूल्याच्छून्यो भागो वज्रस्य न विधीयते ॥४०॥

स्पृष्टदोषम न ह्यरे वज्र यद्यपि दृश्यते ।

रत्नानां परिपत्त्यर्थं मूल्यं नम्य भवेत्तदु ॥४१॥

केवल ताण्डुलो (चावल) ने ही जो गुरुव पहिले ज्ञान वा गया है गहरी
 इस वज्र (हीरा) के धारण का क्रम नहीं होता है । बल्कि घाट सपेद सरसो

से उस तलवुल की परिवर्तना कर लेगी बालिए ॥३७॥ जो समस्त गुणों से युक्त वज्र वन में तैर जाया करेगा है और सम्पूर्ण रक्त वर्ण के होने पर भी उसका धागु करना असोष्ट होता है ॥३८॥ लक्ष्य घोर भलव्य भल्प दोष से भी हृषिक प्रपन्न मूल्य से दमय जाय जही मानव प्राय करता है तथा प्रकट मनेक दोषों धात छोटे प्रपचा बटे का प्रपने मूल्य से सौधो भाग वज्र का नहीं होता है ॥३९॥४०॥ दोषों से गृष्ट वज्र यद्यपि प्रवद्धागो म विद्यताई दिया करता है । विन्दु रत्ना के पवित्रियन मूल्य से उपका मूल्य बोधा हो होता है ॥४१॥

प्रथम गुणसम्पदाभ्युपेत प्रतिबद्ध समुपति यच्च दोषम् ।

अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहानाऽपि मणिर्न भूषणाय ॥४२॥

नार्थ्या वज्रमधार्य गुणवदपि सुतप्रसूविमिच्छन्त्या ।

अस्यत्र दीर्घचिरदहस्वाद् गुणैर्विमुक्तास्त ॥४३॥

अपता पूष्णरागेण तथा गामेदकेन च ।

चंदूर्यस्फटिकाम्नाञ्च काचश्चापि पृथग्विध ॥४४॥

प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जना ।

परीक्षा तेषु कर्तव्या विद्वद्भिः सुगोक्षकैः ।

क्षारोन्लेखनमाताभिर्मन्त्रेण कार्यं परीक्षणम् ॥४५॥

पृथिव्या दानि रत्नानि य आनय सोढयातव ।

सर्वाणि विनिवेदय तच्च तर्जं विलिखते ॥४६॥

गुरुता मवरत्नाना गौरवाधारवारणम् ।

वज्रं ता वंगीत्येन सूरय परिचक्षते ॥४७॥

जातिरजाति विलिखन्ति वज्रकर्तृविम्बा ।

नर्प्यं वज्रं विलिखति नाग्येन विलिख्यते वज्रम् ॥४८॥

वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन ज्ञातय ।

न तेषां प्रतिपद्धाना मा भवत्पूष्वंगामिनी ॥४९॥

तिर्य्यवक्षतवारकेषाश्चित्कथञ्चिदपि दृश्यते ।

तिर्य्यगालिम्पमानाना स पार्श्वेषु विहस्यते ॥५०॥

यद्यपि विजोर्णकोटि म विन्दुरेखान्वितो विवर्णो वा ।

तदपि धनधान्य पुत्रान्करोति सेन्द्रायुधो वज्र ॥४१॥

सौदामिनीविस्फुरिताभिराम राजा यथोक्त कुलिश दधान ।

पराक्रमान्तपरप्रताप समस्तमामन्तभुव भुनक्ति ॥४२॥

सर्व प्रथम गुणों की सम्पदा में जो युक्त हो उसको ही ग्रहण करना उचित है । जहाँ पर दोष दिखाई देता हो उस वज्र को राजा के द्वारा ग्रहण के स्वरूप में धारण नहीं करना चाहिए क्योंकि गुणों में हीन मणि वही भी भूषण के लिये उपयुक्त नहीं हुमा करता है ॥४२॥ पुत्र के प्रसव की इच्छा वाली मारी को गुणों से युक्त ही वज्र को धारण करता चाहिए । अन्यत्र क्षीर्षं विषिट (पन्मल) के समान ह्रस्व और गुणों में विमुक्त धनधारण किया जाता है ॥४३॥ धय (लोह)—पुष्कराय—गामेदक—वेदूयं—सकटक और पृथक् प्रकार के काँचों के द्वारा कुशल पुरुष वज्र के प्रतिरूप भवति इमिटेशन (नकली हीरा) किया करते हैं । परतएव भनी नीति परीक्षा करने वाले रत्नशास्त्र के विद्वानों की इनका परीक्षण (जाँच) कर लेनी चाहिए । शारोहनेखनशास्त्राओं के द्वारा परीक्षण काय करना चाहिए ॥४४॥४५॥ पृथिवी मण्डल में जितने रत्न हैं और अन्य जो लोह घातुण हैं वे सब वज्र के द्वारा विनिश्चित होती हैं विन्दु उनमें किसी के भी द्वारा वज्र विनिश्चित नहीं हुमा करता है ॥४६॥ समस्त रत्नों में वज्र की गुह्यता होती है । इस औरव के आधार का धारण भी होता है । मूरि वृन्द वज्र में अन्य सबसे विपरीत समंता बनाने हैं । ॥४७॥ वज्र की बुधविन्द जाति प्रजाति की विनिश्चित करते हैं । वज्र के द्वारा ही वज्र विनिश्चित होता है । अन्य किसी के भी द्वारा वज्र विनिश्चित नहीं किया जाता है ॥४८॥ वज्र—मुक्तामणि जो कोई भी जातिपा है उनके प्रतिबद्ध करने पर उनकी भा ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है ॥४९॥ निर्यक् (तिरछा) क्षत होने में यदि बुध की किसी प्रकार से दिखाई देती है तो निर्यक् त्रामिन्ध मानों के यह पार्श्वों में विहन्यमान हो जाता है ॥५०॥ यद्यपि विजोर्ण कोटियो वाला—विन्दु रेखा में युक्त प्रथवा विवर्ण हो तोभी सेन्द्रायुध वज्र धन-धान्य और पुत्रों के करने वाला होता है । सौदामिनी (विष्णु) की विस्फुरित वे

समान मुद्र विस्फुरण वाला हीरा को जैसा कि बताया गया है, धारण करने वाला राजा राक्रम से प्राकान्त पर प्रभाव वाला सम्पूर्ण साम तो ही भू का उपभोग किया करता है ॥२१॥२२॥

३८—मुक्ता परीक्षा

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशहस्रमत्स्याहिमुक्त्युद्भववेणुजानि ।
 मुक्ताफलानि प्रयितानि लोके तेषां शुक्ल्युद्भवमेव भूरि ॥१॥
 तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यत रत्नपरस्म जातु ।
 वेध्यन्तु शुक्ल्युद्भवमेव तेषां शपाथवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः ॥२॥
 त्वक्मारनागेन्द्रतिमिप्रभूत यच्छृङ्ग यच्च वर हजातम् ।
 प्रायोविक्तानि भवन्ति भासा सस्तानि माङ्गल्यतया तथापि ॥३॥
 या मौक्तिकानामिह जातमाष्टो प्रकीर्तता रत्नविनिश्चयज्ञैः ।
 यम्बुदभव तध्वधम प्रदिष्टमुत्पलाने यच्च गजेन्द्रकुम्भात् ॥४॥
 स्वयानिमध्यच्छवितुल्यवर्ण शाङ्ग वृहत्कोणपलप्रमाणम् ।
 उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्ण प्रभया विहीनम् ॥५॥
 ये कम्बव शाङ्ग मुखावमपीतस्य शङ्खप्रवरस्य गोत्रे ।
 मत्तङ्गजाश्चापि विशुद्धव्यास्त मौक्तिकाना प्रभवा प्रदिष्टा ।
 उत्पद्यते मौक्तिकमेपु वृत्तमापीतवर्ण प्रभया विहीनम् ॥६॥
 पाठीनपृष्ठस्य समानवर्ण भीमात् सुवृत्त लघु चात्तिस्त्रयम् ।
 उत्पद्यते वारिचगणनेपु मत्स्याश्च ते मध्यचरा पयोधे ॥७॥
 गूतजी ने कहा—मुक्ताफल भर्षात् मोती द्विपेन्द्र—जीमूत—वराह—

शह—मत्स्य—अहि (मय) और मुक्ति स उत्पन्न तथा वेणु से जन्म ग्रहण करने वाले प्रसिद्ध हैं । उन सबम प्रकार म मुक्तिया (सीपी) से उद्भव प्राप्त करने वाले मोती ही अधिक हैं ॥१॥ अबमे रत्न पर एक की ही मूल मात्रा विनिवेशित की जाती है । जो मोप से समुत्पन्न मोती होते हैं उन सबमें वे ही मोती विद्ध हुआ करते हैं बाकी मय प्रकार से समुत्पन्न मुक्तामो को इस शास्त्र के ज्ञाता लोग प्रवेध ही बतलाते हैं ॥२॥ त्वक्मार नागेन्द्र (हाथी) तिमि (रोहू

मछली) से समुत्पन्न मोती भीम जो मत्स्य में उद्भूत मोती तथा बराह से उत्पन्न होने वाला मुक्ता ये प्रायः भा से विमुक्त ही होते हैं तो भी माङ्गल्यता से इनको प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ रत्नों के विशेष निश्चय करने के ज्ञान को रखने वाले विद्वानों ने जो मोक्तियों की आठ जातियाँ बतलाई हैं उन सबसे शङ्ख से समुत्पन्न मोती सधन प्रकार का बताया गया है । जो मुक्ता महेन्द्र क कुम्भ स्थल से उत्पन्न होता है वह अपनी यानि के मध्य भाग की छवि के तुल्य वर्ण वाला होता है । शङ्ख में समुत्पन्न मोती जो है वह वृहत्कीर्ण पल के बराबर होता है । हाथी के कुम्भ स्थल के मध्य में जो मुक्ता उत्पन्न होता है वह घोडा-सा पीत वर्ण का घोर प्रभा में रक्षित होता है ॥४॥ जो कम्बु से उत्पन्न होने वाले मोती हैं वे शङ्ख मुखवर्णपीत रङ्गों में श्रेष्ठ के शीत में हुमा करते हैं । भतङ्ग (हाथी) से उत्पन्न भी विमुक्त वर में होने वाले मुक्ता होते हैं । ये मोक्तियों की उत्पत्ति बतला दी गई है । इम जो मोती उत्पन्न होता है वह वृत्ताकार वाला—चोटी ती पीतिमा वाला घोर प्रभा में उत्पन्न होता है ॥६॥ मोत से जो मोती उत्पन्न होता है वह मृग घोर पाटीन (मछली) की पीठ के समान वर्ण वाला—लघु घोर पत्यन्त सूक्ष्म हुमा करता है । जनक्यों के मुखों में वह मोती उत्पन्न होता है । ये मछलियाँ समुद्र के मध्य में विचरण करने वाली हुमा करती हैं ॥७॥

वराहदृष्टाग्रभव प्रदिष्ट तस्यैव दृष्टाकुरतुल्यवर्णम् ।

वज्रचित् कथञ्चित् म भुव प्रदेशे प्रजायते भूकरवद्विशिष्ट ॥८॥

वर्षोपलाना ममवर्णोभ त्ववसारपर्वप्रभव प्रदिष्टम् ।

ते वेणुवो भव्यजनीपभोग्ये म्याने प्रराहन्ति न सार्वजन्ये ॥९॥

भोजङ्गम मोतविमुक्तवृत्त सस्यानताङ्ग्युज्ज्वलवर्णशोभम् ।

नितान्तधीतप्रविकल्पमाननिस्त्रिधाधारासमवर्णान्ति ॥१०॥

प्राप्यातिरत्नानि महाप्रभाणि राज्य धिय ना महती दुरापाम् ।

तेजोऽन्विता पुण्यश्रुतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिदिरोभवस्य ॥११॥

जिज्ञासया रत्नघन विधिज्ञं शुभे मूहूर्ते प्रयतैः प्रयत्नात् ।

रथाविधान मुमहद्विधाय हर्म्योपरिष्ठ प्रियते यदा तत् ॥१२॥

तदा महादुन्दुभिमन्द्रघोषं विद्युत्लताविस्फुरितान्तरालैः ।

पयोधरकान्तिविलम्बितम्रघनैर्धनैराध्रियतेऽन्तरिक्षम् ॥१३॥

न त भुजङ्गा न तु यातुधाना न व्याघ्रयो नाप्युपसर्गदोषा ।

हिसन्ति यस्या हि शिर समुत्थ मुक्ताफल तिष्ठति कोपमध्ये ॥१४॥

बराह (शूकर) की दाढ़ से उत्पन्न मोती उसी की दाढ़ के शूकर के समान वर्ण वाला बताया गया है । नही पर किसी प्रकार से भ्रूमण्डल के भाग में वह शूकर की भाँति विशिष्ट उत्पन्न हुआ करता है ॥८॥ वर्षा के उपलो के समान वर्षा की शोभा वाला बाँस के पर्व से प्रभवं होने वाला मोती बताया गया है । वे बाँस भी सर्वसाधारण मनुष्यों के उपभोग में आने वाले स्थान में नहीं हुआ करते हैं जिनके पर्वों से मोती होते हैं बल्कि परम भव्य जनों के उपभोग स्थान में ही ऐसे बाँस होते हैं ॥९॥ जो सर्प से उत्पन्न होने वाला मुक्ता होता है वह मीन के समान विद्युत् वृत्त वाला होता है और सस्थान से अथवा उज्ज्वल वर्ण की शोभा से सम्पन्न होता है । यह बहुत ही घोर घोर प्रवि-कल्पमान वज्र की धारा के तुल्य वर्ण तथा कान्तिमान् हुआ करता है ॥१०॥ समस्त रत्नों की घटिक्रमण कर देने वाले ऐसे महा प्रभा में युवन रत्नों की प्राप्त करके राज्य और वरुण ही दुर्लभ श्री को मानव प्राप्त कर लेते हैं । सर्प के शिर में उत्पन्न मुक्ताफल अर्थात् मणि का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य सेज से मुक्त और परम पुण्यधारी ही जाते हैं ॥११॥ ऐसे रत्न धन की प्राप्त करने के लिये बड़ी ही जिज्ञासा होती है और विधि के जानने वाले किसी शुभ मुहूर्त में प्रयत्नों में मुक्त होकर प्रयत्न हुआ करते हैं । ये लोग अपनी सुरक्षा का बड़ा भारी विधान पहिले कर लेते हैं जो कि हर्म्य के ऊपर उस समय में किया जाता है उस समय में विशाल दुन्दुभियों के मन्द्र ध्वनियों से युक्त—विजली की चमक से आकाश का अन्तराल परिपूर्ण होता है तथा पयोधरों की आकाश से नीचे झुके हुए एवं नम्र घने मेघों से आकाश आच्छिन्न होता है ॥१२॥१३॥ त्रित पुरष के कोप के मध्य में सूर्य के शिर से समुत्पन्न मणि रहा करती है उसे भुजङ्ग—यातुधान—व्याघ्रियाँ और अन्य कोई भी उपसर्ग दोष हिसित नहीं किया करते हैं ॥१४॥

नाम्नेति मेघप्रभम धरित्री वियद्गतं तद्विवुधा हरन्ति ।
 अचि प्रभावावृतदिग्भिभागमादित्यवद् दु सविभाव्यविम्बम् ॥१५॥
 तेजस्तिरस्कृत्य हुतादानेन्दुनक्षत्रताराप्रभव समग्रम् ।
 दिवा यथा दीप्तिकर तथैव तमोऽपमाढास्वपि तन्निशासु ॥१६॥
 विचित्ररत्नद्युतिचारुतोमा चतुःसमुद्रा भवनाभिरामा ।
 मूल्य न वा स्यादिति निश्चयो मे कृत्स्ना मही तस्य सुवर्णपूर्णा ॥१७॥
 होनोऽपि यस्तत्त्वभते कदाचिद्विषाकयोगान्महत शुभस्य ।
 मापत्त्यहीना स मही समग्रा भुनक्ति तत्तिष्ठति यावदेव ॥१८॥
 न केवलं तच्छुभगुल्लूपस्य भाग्यं प्रजानामपि तस्य जन्म ।
 तद्योजनानां पारित. सहस्रं सवानानयान् विमुक्षीकरोति ॥१९॥
 नक्षत्रमालेय दिवो विशीर्णा दन्तावला तस्य महासुरस्य ।
 विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पय मु परमु पयसा पनात ॥२०॥
 सम्पूर्णचन्द्राशुक्लापरान्तेर्गणप्रवेकस्य महानुलस्य ।
 तच्छुक्तिमस्तु स्थितिमाप बीजमासन् पुराज्यम्यभजानि यानि ॥२१॥
 मेघ से समुत्पन्न मोक्षिक इस धरित्री तब तक भा नहीं पाता है । उसे

तो देवगण आकाश में ही हरण का विद्या करते हैं । जिसको अचियो की प्रभा
 से ममस्त दिशाओं के भाग आवृत्त होते हैं । वह सूर्य के समान बड़े कट से
 देखने के योग्य विम्ब आकाश होता है ॥१५॥ इसके क्षेत्र में अग्नि-चन्द्र-नक्षत्र
 ताराओं से उत्पन्न समस्त क्षेत्र भी तिरस्कृत हो जाया करता है । अन्धकार से
 परिपूर्ण रात्रियों में भी दिन के समान दीप्ति करने वाला हुमा करता है ॥१६॥
 विविध रत्नों की द्युति से सुन्दर जन वाले भवनों में परम अविराम चारों
 समुद्रों वाली और सुवर्ण से भरी पृथ्वी यह सम्पूर्ण मही भी उमरने की मूल्य
 नहीं हो सकती है ऐसा मेरा पूर्ण निश्चय है ॥१७॥ यदि कोई हीन पुरुष भी
 किसी समय किसी महान् शुभ कर्म के विपाक के योग से इस महा दुर्लभ रत्न
 को प्राप्त कर लेता है तो वह फिर सम्पन्न भाग्य से रहित इस समग्र भूमण्डल
 को अब तक भी यही रहता है भोगा करता है ॥१८॥ वह बेचल राजा को
 ही शुभ करने वाला नहीं होता है बल्कि प्रजाओं के भाग्य से भी उसका जन्म

हृमा करता है । उसका ऐसा घटनुत श्वाय होता है कि चारों ओर महर्षी
 योत्रन तक समस्त जनर्षी को दूर भगा दिया करता है ॥१६॥ उस महामुर
 की देनाब ल जाहंग म नशनी की म ता क समान मिशीर्ण हुई है । विविध
 वर्ण वाले जल के स्वामी के जल में डिगुड वर्ण वाली वह गिरी थी ॥२०॥
 सम्पूर्ण चद्र के प्रभु कषाप के समान कान्ति वाले—महान् गुण स समन्वित
 मणिया म श्रेष्ठ क बीजेने पुक्ति वाता म स्थिति प्राप्त की थी पहिले भी ओ
 मय भवन थे ॥२१॥

यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधि पपाते मुचामुवतामगिरत्नबीजम् ।

तस्मिन्वयस्नायधरावकीर्णं मुक्तां सितं मौक्तिकतामबाप ॥२२॥

सदृश्लिकपारलीकिकसौराष्ट्रिकतामवर्णपारशया ।

कोवेरपाण्डप्रहाटकहमका इत्याकरास्त्वष्टी ॥२३॥

शुक्लमुद्भवत नाति निकृष्टवर्ण प्रमाणसम्पानगुणप्रभाभि ।

उत्पद्यते वद्धं नपारमीरुपानाललाकान्तरसिंहलेपु ॥२४॥

चिन्त्या न तस्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाण च यतंत विद्वान् ।

न च अवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाङ्गनया भवन्ति ॥२५॥

एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शाखान् समन्वितस्य ।

मूल्यमहस्याणि तु रूपगणा निभि शतैरप्यधिकानि पञ्च ॥२६॥

यन्मापकाद्धेन ततो विहीन तत्तत्रचभागद्वयहीनमूल्यम् ।

यन्मापकास्नीन् विभृपात्महस्ते द्वे तस्य मूल्यपरमं प्रदिष्टम् ॥२७॥

प्रद्धाधिकी द्वौ वहताऽस्य मूल्यं त्रिभि शतैरप्यधिकं महत्तम् ।

द्विमापकोन्मापितगौरवस्य शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम् ॥२८॥

जिस प्रदेश में अम्बुनिधि में मुचामुवतामगिरत्न बीज गिरा था

उसमें जन के नीचे के नग में बिखरी हुई जो शुक्ति (बीज) थी उसमें वह बीज
 स्थित होना हुआ मौक्तिक व स्वरूप की प्राप्ति हो गया था ॥२२॥ उसके सौह
 निक, पारलीकिक, सौराष्ट्रिक, ताम्ररण, पारशव, कोवेर, पाण्डव हाटक, हेमव
 य म ठ साकर है ॥२३॥ शुक्ति में तमु पञ्च मोती प्रमाण, सम्पान, गुण और
 प्रमा स धति निकृष्ट वर्ण पात्र नहीं होता है । यह वद्धेन पारमीरु पात्रान

मोक्षान्तर निहतो मे उ पन्न होता है ॥२४॥ उसके साकर में उन्नत होने वाली विशेषताओं को कोई चिन्तन नहीं करना चाहिए बल्कि विद्वान् पुरुष को उसके रूप और प्रमाण में ही यत्न करना चाहिए । उसके गुण और मणुषों की कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई है क्योंकि सभी जगह सब प्रकार की सृष्टि घाते हुआ करते हैं ॥२५॥ शुक्ति में समुत्पन्न एक मोड़ी ब्रह्म साण में समुन्मिन्न हो जाये तो उसका तीन और पाँच गी से अधिक महत्त्वो रूप मूल्य होता है ॥२६॥ जो एक उर्ध्व के मध्य भाग के बराबर हो या उससे भी कम हो तो वह उसके पञ्चभाग इत से होत मूल्य वाला होता है । जो तीन मापकों के बराबर होता है उसका मूल्य दो महत्त्व रूप होता है—ऐसा बताया गया है ॥२७॥ दो अर्ध अधिक बहुत करने वाले समान मूल्य एक महत्त्व में तीन सौ अधिक हुआ करता है । दो मापक और द्वापदन से गौरव युक्त वा मूल्य साठ सौ में अधिक कहा गया है ॥२८॥

अर्द्धाधिक मापकमुन्मितस्य सप्तत्रिंशत्स्वितथ गतानाम् ।

गुह्याश्च पङ्क चारमन्य भवेत्ते मूल्य पर तस्य वदन्ति तज्ज्ञा ।

अष्टपद्व्यंभमापकुन शत म्यामूल्य गुणोन्मस्य समन्वितस्य ॥२९॥

यदि पौडशभिर्भेदतून घग्ग तत्प्रवदन्ति दाविकास्यम् ।

अधिक दशभि शतस्य मूल्य समाप्नोत्यपि दानिशस्य हस्तात् ॥३०॥

द्विगुणंदशभिर्भेदतून घग्ग तद्भवक वदन्ति तज्ज्ञा ।

नवनमतिमाप्नुयस्त्वमूल्य यदि न स्याद् गुणमम्पदा विहीनम् ॥३१॥

निशता घरण पूर्ण निश्चयन्तस्येति कात्थंते ।

चत्वारिंशद् भवेत्तस्या पौ मूल्यो विनिश्चयः ॥३२॥

चत्वारिंशद् भवेन्निश्चयो विनिश्चयः लभेत सा ।

पट्टिर्निकर्शीर्ष त्यातस्य मूल्य चतुर्दश ॥३३॥

अर्थातिर्नवतिश्च व कूप्येति परिकीर्त्तिता ।

एकादश त्यातव च तयामूल्यमनुक्रमात् ॥३४॥

आदाय तत्पकलमेव ततोऽन्नभाण्डे जम्बीरजातरसयोजनया पिरकम् ।

पृष्ट तनो मृष्टतनूकृतपिष्टमूर्त कुम्भाद्यपेष्टमनुमोक्तिकाशुविद्धम् ॥३५॥

प्राधा अधिक मापक और उन्नित मोती का मूल्य तीन सौ बीस होता है । इस विषय के ज्ञाता लोग छै गुणों के प्रमाण वाले का परम मूल्य दो सौ रुपये बतलाते हैं । इसके अर्थ प्रमाण वाला यदि उत्तमापक हो और गुणों से समन्वित हो तो उसका मूल्य एक सौ रुपये होता है ॥२६॥ यदि सोनह से से अनून धरण हो तो उसे दाकिरारण कहते हैं । दश से अधिक सौ रुपये भी किसी व निश (मूल) के हाथ में प्राप्त हो जाता है ॥२७॥ दुगुने दश से अनून धरण हो तो उसके ज्ञाता लोग उसे भवक कहा करते हैं । यदि यह गुणों की सम्पदा न बिहीन न हो तो उनका अपना मूल्य भी सप्तति (नौ सत्तर) प्राप्त हो जाता है । ३१॥ तीन सौ का पूर्ण धरण शिखरान्तर-यह कहा जाता है । उसका सबभ अधिक मूल्य चालीस होता है—यह बिल्कुल निश्चिन होता है । ॥३२॥ जो चालीस निव्य होता है उसका मूल्य तीस रुपये ही प्राप्त होते हैं । साठ निकर शीर्ष जा हो उसका मूल्य बीसह होता है ॥३३॥ सस्ती और नखे दूप्ता—यह परिशोक्ति किया गया है । इन दोनों का मूल्य एकादश और नौ अनुक्रम से होता है ॥३४॥ उन सबको लेकर अन्न के पात्र में जम्बीर जात रस की घोशना द्वारा विषय करे फिर रोमन तनूक विष्ट मूलों से धर्पण करे तो प्रत्येक भौक्तिक शीघ्र ही यथेच्छया विद्ध कर सके । अर्थात् फिर तुरन्त ही अपनी इच्छा के अनुसार मोती वेध के योग्य हो जाता है ॥३५॥

मृत्तिममस्त्यपुटमध्यगतन्तु कृत्वा पञ्चात्पचेत्तन्तु ततश्च वितानपत्या ।
दुग्धे ततः पयमि न विपचेत्मुद्याया पक्व ततोऽपि पयमा शुचिचिकणेन ।
शुद्ध ततो विमलवस्त्रनिधर्पणेन स्यान्मोक्त्रिक विपुलसद्गुण-

कान्तियुक्तम् ॥३६॥

व्याडिर्जगाद जगता हि महाप्रभावसिद्धो विदग्धहिततत्परया दयालु ।

इवेतवाचसम तार हेमाशसतयोजितम् ॥३७॥

रसमध्ये प्रधाम्येत मोक्तिक देहभूषणम् ॥

एव हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जना ॥३८॥

यस्मिन्वृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मोक्तिके ।

उष्णे सतवरो स्नेहे निशा तद्वासयेज्जले ॥३९॥

श्रीहिभिर्मन्दनीय वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् ।

यत्तु नायाति वैवर्ण्यं निज्ञेय तदकृत्रिमम् ॥४०॥

सित प्रमाणवत् स्निग्ध गुरु स्वच्छ सुनिर्मलम् ।

तेजोऽधिक सुवृत्तञ्च मौक्तिक गुणवत्स्मृतम् ॥४१॥

प्रमाणवद् गौरवरश्मियुक्तं सितं सुवृत्तं समसूक्ष्मवैद्यम् ।

अक्रैतुरप्यानहति प्रमोदं यन्मौक्तिकं तद्गुणवत् प्रदिष्टम् ॥४२॥

एवं समस्तेन गुणोद्भवेन यन्मौक्तिकं यागमुपागतं स्यात् ।

न तस्य भर्त्तारमनर्थं जात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः ॥४३॥

मृत्तिका में लिप्त करने के मत्स्य पुट में रखने और फिर जितान पत्ती से घोड़ा पावन करे । फिर दुग्ध में तथा इसके पश्चात् जल में पावन करे । मुघा में पक्व करे और फिर मुचि विच्छेदण पत्र के माप पकावे । इसके करने के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से मार्मिको ना निषण्ण करने लगे वे मोती परम शुद्ध और बहुत मद्गुण एवं वाग्नि में युक्त हो जाते हैं । महा प्रभास निद्रा एवं दधानु ध्याति ने समार के लागी पर कृष्ण कर्क चतुर्गो क हिन पर ध्यान देकर ऐसा कहा था ॥३६॥३७॥ ऐसे ही चोच के सम चोचो और जो हेवान दान से योजित हो ऐसे देह के भूषण मोक्तिक का रस के मन्त्र में धारण करना चाहिये । इसी प्रकार से निद्रा देश में कुशल पूज्य किया करने हैं ॥३८॥ त्रिमौक्तिक में बनावटी होने का मन्देह हो उठे उगण लवण महिच मोद म मरु रात्रि चल में धामित करे अथवा पुनः सम्य न उपवेष्टित कर जीर्णो के माष मदन करे । ऐसा करने पर जिसमें कोई भी विषमता न आवे वो समस्त लेना चाहिये कि वह अकृत्रिम प्रमाण बनती मोक्तिक तो है बनावटी नहीं है ॥३९॥४०॥ सित, प्रमाणवत्, स्निग्ध, गुरु, स्वच्छ, सुनिर्मल, अधिक तेज से युक्त और सुवृत्त मोक्तिक गुणों से समन्वित कहा गया है ॥४१॥ प्रमाणवत् गौरव और रश्मियों से युक्त सित, सुवृत्त तथा सम एवं सूक्ष्मवैद्य राजा जो न लीदश में करने वाले के मन का भी प्रमोद देने वाला हो वही मोती गुण गुण से समन्वित बताया गया है ॥४२॥ इस प्रकार में मापूण गुणों के बदन से जो मोक्तिक

योग को प्राप्त हुआ हो उस मोची के स्वामी तथा धारण करने वाले को अनर्थ स समुत्पन्न कोई एव भी दोष उपस्थित नहीं होता है ॥४३॥

३६—पशराम परीक्षा

दिवाकस्तम्य महामहिम्नो महामुरस्पोत्तमरत्नबीजम् ।

अमृगं गृहीत्वा चरितुं प्रवस्ये निस्त्रिंशतीलेन नभस्थलेन ॥१॥

जेना मुराणा मभरेष्वजस्र वीर्यावलेखोद्धतमानसेन ।

लङ्काधिपेनाद्धपथ समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभ निरुद्ध ॥२॥

तत्सिंहलीचारु नतम्प्रविम्बविक्षोभितागाधमहाहृदायाम् ।

पूगद्रुमाघद्यतद्वयाया मुम च सूर्य्य सरिद्रुत्तमायाम् ॥३॥

तत प्रभृति सा गङ्गा तुल्यपुष्पफलोदया ।

नाम्ना रावणगङ्गाति प्रथिमानमुपागता ॥४॥

तत प्रभृत्पेन च सबरोपु कूतानि रत्नैर्निचिन्तानि तस्या ।

सुवर्णनाराचशतरिवात्तवहिप्रदीप्तनिशितानि भान्ति ॥५॥

तस्यास्तटेपूज्ज्वलत्तारुणा भवन्ति नौपे च पशरागा ।

सौगन्धिकात्या कुहविन्दजाश्च महागुणा स्फाटिबसप्रसूता ॥६॥

वन्दूकगुञ्जामकनेन्द्रगापजवासमासुवनमवर्णशोभा ।

भ्राजिष्णवो दाडिनरोजवर्णस्त्रियापरे किशुकुमुष्पभास ॥७॥

सून जी ने कहा—उस महान् महिमा स युक्त महामुर का उत्तम रत्न बीज यह दिवाकर है जो अमृग (हथिर) ग्रहण करके निस्त्रिंश नील इस नभ स्थल के द्वारा बरण करने के लिये प्रस्थान करता था ॥ १ ॥ समरो म निर-
न्तर मुगे का जीतने वाले—वीर्य—पराक्रम के सब से उद्यत मन बाल लङ्का के स्वामी ने अथ पथ में आकर स्वर्भानु की डी भाँति इस बलात् रोक दिया था ॥ २ ॥ सिंहल द्वीप की जलनाभो के प्रति सु दर निम्ब विम्बो म विक्षो-
भिता और अगाध महान् हृद वाली—दोनों ओर व तटों पर पूगों की वृन्नावला म मुताभित सरिताओ म परमोत्तम मे सूर्य ने मोचन किया था ॥ ३ ॥ सभी स नेकर वह गङ्गा गङ्गा के समान पुष्पों के फरीश्वर वाली “ रावण गङ्गा ”

इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी ॥ ४ ॥ तब से ही प्रारम्भ कर के उसके पूरे रात्रियों में रहने से निश्चित रहा करते हैं । सुवर्ण नाराचरतो के समान भीतर—बाहिर से प्रदीप्तो से निश्चित मानित होते हैं ॥ ५ ॥ उन नदी के तटों पर घोर जलो में उज्ज्वल एवं नार राग बाल पद्मराग होते हैं । सौमन्यिक घोर कुरु विन्दज—भद्राशु गुणो बाले तथा वे स्फटिक सम्प्रभूत होने हैं ॥ ६ ॥ वस्तुतः पुन—गुणोक्त—वस्तुतः—और जवा के समान तथा प्रभूत (रक्त) के समान वस्तु की सोमा बाल—भ्राजिष्णु तथा भद्राशु के दान के तुल्य वस्तु बाले घोर भद्राशु हाथ के पुन के समान दीप्ति बाल हैं ॥ ७ ॥

मिन्दूरपद्मोत्पलकु कुमाना लाक्षान्मस्यापि समानवर्णा ।

रान्द्रऽपि रागे प्रभया स्वयं च भान्ति स्त्रलक्ष्या स्फुटमध्य-
शोभा ॥८॥

भान्तिश्च भामामनुवध्यागमानाद्य रश्मिप्रकरेण द्रुम् ।

पार्श्वानि सर्वाण्यनुगृह्यन्ति गुणोपपन्ना स्फटिकपद्मना ॥९॥

धुमुन्मतीलव्यनिमित्तरामप्रत्युपस्तम्भुत्तुल्यभाम ।

तथापरेऽस्तरकटकारीपुष्पत्विया हिमनर्वात्स्वपाञ्चे ॥१०॥

चकारपुष्पाङ्गितमारनागा नेत्रावभामश्च भवन्ति कैचित् ।

अन्ये पुन मन्ति च पुष्टिरनागा तुल्यत्वियः काकलशोत्त-
मानाम् ॥११॥

प्रभावका ठ पद्मरागं प्राय समाना स्फटिकोद्भवाताम् ।

घातीलकत्पलचारुभास भोग्निकात्या मणयो भवन्ति ॥१२॥

काम तु राग कुरुविन्दज न मेव यादवस्फटिकाद्भवेपु ।

निर्गन्धोऽन्तवह्ना भवन्ति प्रभाववन्ताऽपि न तं समस्तं ॥१३॥

ये तु रावणगङ्गाया जायन्ते कुरुविन्दका ।

पद्मरागधन राग विभ्रमा स्फटिकोत्पल ॥१४॥

मिन्दूर—पद्मराग—धुमुन्मतील—और नाराच के समान वर्ण वाले हैं ।

रान्द्र राग के हान पर भी पद्मरी ही प्रभा से स्वनक्षत्र तथा स्पष्ट मध्य की दाता बाले हान हैं ॥ ८ ॥ दूर में ही मूर्ति की दीप्ति की दिग्गों के सम-

दाय से अनुदेय क योी को प्राप्त कर गुणों से सम्पन्न तथा स्फटिक से समुत्पन्न समस्त पाञ्च भूगो को मनुरञ्जित किया करते हैं ॥ ९ ॥ गुण कुसुम्भ और नील के व्यतिभिन्न राग से प्रत्युष रक्त कमल की तुल्य दीप्ति वाले होने हैं । अथ मरुतर कण्टकारी के पुष्प के समान कांति वाले हैं और कुछ हिमून के सुन्दर कांति में युक्त हुषा करते हैं ॥ १० ॥ चकोर—पुष्कोकिल और सारस के नेत्रों के समान प्रवर्धित होने वाले कुछ हुषा करते हैं । कुछ उत्तम एवं पुष्किल वारु नद के समान कांति वाले होते हैं ॥ ११ ॥ प्रभाव—कठिनता—और गुस्सव के भोग में प्राप स्फटिक से उद्भव होने वाले समान ही होते हैं । गोगिषकोय मणिर्मा छोटी नील—रत्नोत्पल के समान दीप्ति धामी हुषा करती है ॥ १२ ॥ जो पुरुषि इ में समुत्पन्न है उनमें राग यथेष्ट होता है वह स्फटिक से उद्भव प्राप्त करने वालों में जगता होता है यथा मनी है । वे उन सम्पूर्णों से प्रभाव वाले होते हुए भी विना भविष्ये वालों और प्रत्यक्ष होते हैं ॥ १३ ॥ जो रावण मङ्गा में कुहव तक उत्पन्न होते हैं वे पक्षराग के समान घना राग धारण करने वाले और स्फटिक जैसे धनिषों को धारण करने वाले हुषा करते हैं ॥ १४ ॥

वर्णानुपायितस्तथा अन्धदेशे तथा परे ।

न जायते हि ये वैचि मूल्यलसमवाप्नुयु ॥१५॥

तथैव स्फाटिकोत्थाना देश तुम्युषसज्जके ।

सधर्माणि प्रजायन्ते म्वल्पमूल्या हि त स्मृता ॥१६॥

वर्णाधिक्यं गुरुत्वञ्च स्निग्धता समताच्छता ।

अच्छिप्तता महता च मणीना गुणसग्रह ॥१७॥

ये ककरच्छिद्रमलोपदिग्धा प्रभाविमुक्ता परुषा विवर्णा ।

न त प्रशस्ता मणया भवति समानतो जातिगुणो समस्त ॥१८॥

दापापसष्ट मणिमप्रवाधादिभति य वञ्चन वञ्चिदेन ।

त शोक्वचि तामयमृत्युवित्ततासादयो दोषमणा हरन्ति ॥१९॥

काम चाक्षरा पञ्च जातीना प्रतिरूपका ।

विजातय प्रयत्नेन विद्वान्तानुपपक्षयेन् ॥२०॥

कनकपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थमुक्तपाण्डोपा ।

श्रीपूर्णकाश्च सहसा विजातम पद्मरागाणाम् ॥२१॥

तुपोपसर्गात्कलमाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुस्थम् ।

काष्ण्यंयान्तथा सिंहतद्देशजात मुक्ताभिधान नमस स्वभावात् ॥२२॥

श्रीपूर्णक दीप्तिविनाशकृत्त्वाद्विजातिलिङ्गाश्रय एव भेद ।

यन्तात्रिका पुप्यति पद्मरागो यागातुपाणांमिव पूर्णमव्य ॥२३॥

जहाँ के जैसे वरों का अनुकरण करने वाले दूसरे अत्र देश में उत्पन्न नहीं होते हैं जो कोई मूल्य का लस भी प्राप्त कर नहीं ॥ १२ ॥ उसी प्रकार से तुम्बुरु नाम वाले देश में स्फटिक में समुत्पन्नो के समान धर्म वाले पैदा होते हैं किन्तु वे बहुत छोटी मूल्य वाले कह गये हैं ॥ १६ ॥ मणियों की वरों की अधिकता—गूँघना—स्निग्धता—समता—स्वच्छता—प्रविशो वाली होना—महता में ही गुण है जिनका नमूना होना है ॥ १७ ॥ जो मणियाँ ककर—छिद्र धीरे मल से उपाद्व्य होती हैं तथा प्रभाव (जोति मणि रत्नों का बनाया गया है) से रहित हैं—कठोर धीरे बिना गमुचिन वरों वाली हैं वे जाति एवं गुणों के पूर्ण होने पर भी प्राप्त नहीं होगी ॥ १८ ॥ जो कोई पुरुष अज्ञान वश दापो से वपमृष्ट मणि की पारख किया करता है उसकी शोक—चिन्ता—रोग—मृत्यु—वित्तनाश आदि दोषों के समूह हरण कर लेते हैं ॥ १९ ॥ पाँच जानियों के आरुण्य वषष्ठ प्रति रूपक विजातीय रत्न होते हैं । विद्राव पुण्य की पूर्ण प्रयत्न से उनका देख लेना चाहिए ॥ २० ॥ कनकपुर में उत्पन्न—सिंहल धीरे तुम्बुरु देश में समुत्पन्न—मुक्त पाण्डोय धीरे श्री पूर्णक में विजातीय रत्न पद्मरागो के सहसा ही हुमा करते हैं ॥ २१ ॥ तुपोपसर्ग में कनक नाम वाला धीरे थोड़ा लस भाव होने से तुम्बुरुस्थ तथा दृष्टता होने से सिंहल देश में समुत्पन्न नम के स्वभाव होने से मुक्त नाम वाला है ॥ २२ ॥ दीप्ति के विनाशकृत् होने से श्रीपूर्णक है धीरे विजातीय बिल्ल का आश्रय प्राप्त करना उसका भेद—होना है । जो पद्मराग तात्रिका का पोषण करता है तुपाओं के समान योग से पूर्ण अव्य होता है ॥ २३ ॥

स्नेहप्रदिव्य प्रतिभाति यश्च यो वा प्रधृष्ट प्रजहाति दीप्तिम् ।
 आक्रान्तमूर्द्धा च तथागुलिभ्या य वालिका पार्श्वंगता विभति ॥२४॥
 सप्राप्य चाक्षिप्य यथानुवृत्तिं विभति य सवगुणानतोव ।
 तुल्यप्रयाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वेन भवेत् तुल्य ।
 प्राप्यापि रत्नाकरजा स्वजातिं लक्षेद् गुरुत्वेन गुणेन विद्वान् ॥२५॥
 अग्रणश्यति सन्देहे शरणे तु परितेसयेत् ।
 स्वजातकसमुत्थनं लिखित्वापि परस्परम् ॥२६॥
 वज्रं वाक्कुवि द वा विमुच्यमानं केनचित् ।
 नाशक्यं लेखनं कर्तुं पञ्चरागेन्द्रनीचयो ॥२७॥
 जात्यस्य सर्वेऽपि मण्येस्तु यादृग विजातय सन्नि समानवर्णा ।
 तथापि नामाकरणाथमव भेदप्रकार परम प्रदिष्ट ॥२८॥
 गुणोपपन्नं न सहायवद्धो मणिन धार्यो विगुणो हि जात्य ।
 न कौस्तुभेनापि सहायवद्ध विद्वान् विजातिं विभृयात्क-
 दाचित् ॥२९॥

जो स्नेह स प्रदिग्ध प्रतीत होता है मयका जो प्रधृष्ट होता हुआ इति को
 र्वाण नेता है और जो म गुलियो से आक्रांत मूर्धा वाला होकर पार्श्वंगत
 वालिका का धारण कर लेता है ॥ २४ ॥ जो यथा अनुवृत्ति प्राप्त कर और
 उक्षिप्य होकर समस्त गुणों को ग्रस्य रूप से धारण किया करता है तथा
 प्रमाण की समानता से तथा जानि ने प्रगुमार जा गुरुत्व से तुल्य होता है और
 रत्नो के आकार म समुत्पन्न अपनी जाति को प्राप्त होकर भी गुरुत्व एवं गुरु
 गरिमा रखता है इन सब बातों के हाने से ही विद्वान् पुरुष को देवभाल रत्न
 की करनी चाहिए ॥ २५ ॥ स स्नेह के प्रणष्ट न होने पर शरण पर रहे जाने
 पर उम परितेक्षित करे तथा स्वजातक स समुत्पन्न परस्पर म लिखित करके
 भी दपना चाहिए । वज्र मयका कुवि द हो इगका त्याग कर पञ्चराग तथा
 इन्द्रनीच पर जपन इसमें यदि नहीं किया जा सकता है ता इस जाति के
 रत्न समान वण होने वा न गभी विजातीय ही होता है—एसा ममभ नेता
 चाहिए । तथापि नाम धरण करने के बिना ही यह भेदों का परम प्रकार यही

बला दिया गया है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ गुणों से उपपन्न होता हुआ भी जो सहायक हो ऐसा रत्न मणि जो जातीय विगुणता से युक्त हो कभी धारण नहीं करना चाहिए । कीर्तुम मणि की भग्नता रखने वाला भी भले ही वह मणि क्यों न हो यदि विजातीय है तो विद्वान् पुरुष को कभी ऐसा रत्न धारण नहीं करता चाहिए ॥ २९ ॥

चण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भूरीनपि हन्त्ययत्नान् ।
अथो मणीन्भूग्गुणोपपन्नान्जननोति विप्लावयितुं विजात्य् ॥३०॥
सपत्नमध्येऽपि कृताघिवाम प्रमादवृत्तावपि वर्तमानम् ।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्तारमापत्स्पृशतीह काचित् ॥३१॥
दोषोपमगं प्रभवाश्च ये ते नापद्रवान्त समभिद्रवन्ति ।
गुणैः समुत्तेजितचाहराग य पद्मराग प्रगतो विभर्ति ॥३२॥
वज्रस्य तनण्डुलसद्वयोक्त मूल्यं समुत्पादितगीरवम्य ।
तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्मापकस्याकलितस्य मूल्यम् ॥३३॥
वर्णदीप्त्युपपन्नं हि मणिर्गत्नं प्रशम्यते ।
ताभ्यामीपदपि भ्रष्ट मणिर्मूल्यात्प्रहीयते ॥३४॥

त्रिस प्रकार से एक भी चण्डाल द्विजातियों के साथ मिलकर बहुत से उनको बिना ही किसी यत्न के द्विजातित्व से हनन कर दिया करता है तभी तरह से विजात्य मणि बहुत से गुणों से उपपन्न प्रत्येक मणियों को विप्लावित कर सकता है ॥ ३० ॥ शत्रुओं के मध्य में अविवाह करने वाले और प्रमाद की वृत्ति में भी वर्तमान रहने वाले महान् गुण युक्त पद्मराग को धारण करने वाले स्वामी को कोई भी आपत्ति स्पृश नहीं किया करनी है ॥ ३१ ॥ दोषों के उत्सर्ग से उत्पन्न होने वाले जो भी उपद्रव हुआ करते हैं वे उसको उपद्रुत नहीं किया करते हैं जो गुणों से समुत्तेजित सुन्दर राग वाले पद्मराग मणि को प्रयत्नशील होता हुआ धारण किया करता है ॥ ३२ ॥ जो एक तण्डुल की सन्ध्या से वज्र का मूल्य कहा गया है वह समुत्पादित गीरव वाले तथा महान् गुणों से समग्न एकमापक पद्मराग का मूल्य होता है ॥ ३३ ॥ वर्ण और दीप्ति

मे उपपन्न ही मणि रत्न प्रशस्त कहा जाता है । इन दोनों गुणों से यदि थोड़ा भी हीन हो तो वह रत्न मूल्य में हीन हो जाता है ॥ ३४ ॥

४०--मरकत परीक्षा

दानवाधिपते पित्तमादाय भुजगाधिप ।

द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वर वासुकिर्यंयी ॥१॥

स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽभ्युधौ ।

राजतः स महानेक राण्डमेतुरिवायभी ॥२॥

ततः पक्षनिपातेन सहस्रनिव गेदसौ ।

गरुत्मान्पद्मेन्द्रस्य ग्रहत्तुमुपचक्रमे ॥३॥

सहस्रैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाद्युक्ततुरस्कपादपायाम् ।

नलिकावनगन्धवासिताया वरमाणिवर्गगिरेरुपत्यकायाम् ॥४॥

तस्य प्रपातसमनन्तरञ्चालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे ।

स्थानं क्षितिरुपपयोनिधितारलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरता जगाम ५

तत्रैव विश्रित्यततस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान् ।

मूर्च्छापरितः सहस्रैव घोणारुन्धद्वयेन प्रमुमोच सर्वम् ॥६॥

तत्राकठोरशुकवण्ठशिरीषपुष्पखद्योतपृष्ठचरणाद्वलशैवलानाम् ।

बह्वारशष्पकभुजङ्गभुजाश्च पत्रप्राप्तत्विषो मरकता शुभदा भवन्ति ७

श्री मूतजी बोले—भुजगी का स्वामी वासुकि नाग दानवों के अधिपति के पित्त को लेकर व्योम के दो भाग भ्रमण करता हुआ शीघ्र चला गया था ॥१॥ उस समय में वह अपने शिर के रत्न की प्रभा से प्रदीप्त नभ रूपी अभ्युधि में पूरक मठान् राण्ड सेतु की भाँति मुजोभित हुआ था ॥२॥ इसके अनन्तर गरुड पक्षों के निपात से रोदसी का सहार करते हुए की भाँति पद्मेन्द्र के ऊपर प्रहार करने की उद्यत हुआ था ॥३॥ उस फणीन्द्र ने सहसा ही उसे सुरसादि से उक्त तुरस्क पादों वाली—नलिका वन की गन्ध से गुवागित वरमाणिवर्ग गिरि की उपत्यका में छोड़ दिया था ॥४॥ उसके गिरने के समनन्तर चाल में ही रमा के समीप में उसके अग्र चाल में गतीत कर उसी के समान भूमि

के उपपशोनिधि के तट की लेंछा दासा उसके प्रत्यय से वह स्थान मरकत मणि
की खान बन गया था ॥५॥ वहाँ पर ही मुस्तमात्र ने भाकर उब गिरते हुए
पित्त से कुछ पीडा सा भाग ग्रहण कर लिया था । मूर्च्छा से परीत होकर
उमने तुरन्त ही नासिका के दोनों नधुनी से उस सबको त्याग दिया था ॥६॥
वहाँ पर थकठोर घुस कण्ठ-शिरीष पुरुष-खतोत-पृष्ठ-चर-सादल-शैवल-
कह्लार-शष्पक-घोर भुजङ्ग भुज के पत्तों की कान्ति प्राप्त करने वाले शुभ देने
वाले मरकत मणि रत्न होते हैं ॥७॥

तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभिपुक्त पपात पित्त दितिजाधिपम्य ।

तस्याकरस्यातितरा स देशो दुःखोपलभ्यश्च गुर्गश्च युक्तः ॥८॥

तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते ।

तत्सर्वं विपरोगाणां प्रशमाय प्रकीर्यते ॥९॥

सर्वमन्त्रोपधिगण्येन्द्र शक्य चिकित्सितम् ।

महाहिदघ्राप्रभव विष तत् तेन शाम्यति ॥१०॥

अन्यदप्याकरे तत्र यदोपैरपवर्जितम् ।

जामते तत्सवित्राणामुत्तम परिकीर्तितम् ॥११॥

अत्यन्तहरितवर्ण कोमलमर्चिर्विभेदजटिलश्च ।

काञ्चनचूर्णस्यान्त पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च ॥१२॥

युक्त सस्थानगुणं समराग गौरवेण ।

सवितुः करसस्पर्शच्छिरयति सर्वाश्चम दीप्तया ॥१३॥

हित्वा च हरितभाव यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः ।

अचिरप्रभाप्रभाहृतशादलसमन्विता भाति ॥१४॥

वह जहाँ पर भोगीन्द्र भुजा से अभिपुक्त दिति के पुत्रों के अधिप का
पित्त गिरा था वह देश भाग उसके भाकर का बहुत भविष्य बड़ा स्थान है
किन्तु वह देश गुणों से युक्त घोर बहुत दुःखों से उपलब्ध करने के योग्य होता
है ॥८॥ उस मरकती के भाकर के स्थान में जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह
सभी कुछ विष रोगों के प्रशमन के लिये कहा जाता है ॥९॥ अन्य समस्त
घोषधियाँ और मन्त्रों के समूह भी जिसे शक्य नहीं कर सकते हैं वहाँ की

उत्पन्न वस्तुएं महात् विरहिते सर्व की दाह से उत्पन्न विष का प्रशमित कर दिया करती है ॥१०॥ उग धाकर मे शय जो कुछ भी दोषों से उग वरित उत्पन्न होता है वह तत्पूग पवित्रो य भी परम पवित्र होता है—ऐसा कीर्तित किया गया है ॥११॥ अरण्या हरे वन्य बाना—जोपवन—शमिगो के विभेद से जटिल अर्थात् त्रिमय बहुत यत्तियों पूरो पडना हो । जो मध्य में काञ्चन चूर्ण से पूरा विस्तराई दता है । गहवान के गुणो मे मुक्त और गौरव से समान राग दासा तथा जो मूय की विरण्या क गहवरी होने से दीप्ति के द्वारा तत्पूरी आश्रम को सुरित कर दता है—जो हगित भाव का त्याग कर घ-दश मे तिथी हुई दीप्ति जो प्रकट करता है और घचिर प्रवा से प्रभाहृत शादल (कोमल एवं हरी पासी) से समर्पित मानित होता है वह भरकत रत्न होता है ॥१२ मे१४॥

यच्च मनस प्रसाद विदधाति निरीक्षितमणिमाधम् ।

स-मरकत महागुणमिति रत्नविदा मनोवृत्ति ॥१५

यस्योत्पत्तिवहुलस्यादस्यान्ति स्वच्छनिरगणो धानम् ।

साम्प्रतिगधविशुद्ध वीमलवर्तिप्रभादिममकान्ति ॥१६

मणोर्गुणलया नन्विषा साम्प्रतिगध विभाशया भाति ।

तदपि न गुणवत् मज्जामाप्नोति यादृशी पूर्वम् ॥१७

यवनकठोरमन्त्रि रुधा पापाण्यकगपेनम् ।

दिग्धश्च शिलाजनुना मरकतमवविष विशुणम् ॥१८

मत्समिश्रोपित रत्नमन्य मरगताद्भवेत् ।

य यम्वामने तद्धार्यं केतव्य वा ययश्चन ॥१९

मल्लतवीपुत्रिका च तद्वर्णममयोगत ।

मणोमरकतस्वते लक्षणीया विजातया ॥२०

शोभेण वासमा मृष्टा दीप्त न्यजति पुत्रिका ।

नाद्यवेनेव वानस्य पावया नत्तु विभाधना ॥२१

जो रूपने भर मे ही उत्पन्निक मन्त्र के मन्दर प्रशमना उत्पन्न करता है वह भरकत मणि महात् गुणो वाता होता है—ऐसा रत्न शास्त्र के विद्वानो के मनसा विचार है ॥१५॥ वगैरे क पदविष होने से जिसका अन्तर्भाग स्वच्छ

किरणी का परिधान हो जाता है और जो सान्द्र—स्निग्ध और विमुक्त एवं कोमल बहि तथा प्रभावि से समान कान्ति वाला है—जो उज्ज्वल वर्ण वाली कान्ति से सान्द्र आकार वाला है और विशेष दीप्ति से शोभा देता है वह मरकत भी पुण्य वाला होने की संज्ञा को प्राप्त नहीं किया करता है जैसा कि पहिले बतलाया हुआ मरकत उत्तम होता है ॥१६॥१७॥ शबल(चित्र मिश्रित वर्ण वाला) कठोर—मलिन—हृष्ट और पापाण कर्कर से युक्त तथा शिलाजीत से दिग्ध जो मरकत होता है वह विपुण्य हुआ करता है ॥१८॥ जो सन्धि से क्षेपित मरकत से अन्य रत्न होता है उसे श्रेष्ठ चाहने वाले लोको को धारण नहीं करना चाहिए और ऐसे रत्न को कभी खरीदना भी नहीं चाहिए ॥१९॥ भस्मातकी पुत्रिका और उसके वर्ण के समयोग से मरकत मणि के में विजातीय मक्षण जान लेना चाहिए ॥२०॥ जो पुत्रिका है वह यदि लोम वस्त्र से मृष्ट की जावे तो अपनी दीप्ति को त्याग देता है । कांच के साथव से ही उसकी विभावना की जा सकती है ॥२१॥

कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपि गुणवरीः ।

भस्मातकस्यानिलं वीर्यम्यमुपैति वर्णरस्य ॥२२॥

वज्राणि मुक्ताः सन्त्यग्रे ये च केचिद्विजातयः ।

तेषां नाप्रतिवद्धानां भाववत्यध्वंशमिनी ॥२३॥

ऋजुवाचं च कपाञ्चित् कयाश्चिदुपजायते ।

तिथ्यंगालोच्यमानानां मयदन्तं प्रणश्यति ॥२४॥

स्नानाचमनजप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ ।

ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भिः साधनानि च ॥२५॥

देवपैमातिथेयेषु गुरुसंपूजनेषु च ।

वाध्यमानेषु विविधदोषजार्तविषोद्भवैः ॥२६॥

दोषैर्हीनं गुणैर्मुक्तं काञ्चनप्रतियोजितम् ।

सप्राप्ते विचरद्भिश्च धार्यं मरकतं बुधैः ॥२७॥

तुलया पथरागस्य यन्मूल्यमुपजायते ।

तभतेऽप्यधिकं तस्माद्गुणैर्मरकतं युतम् ॥२८॥

तथा च पदरागाणां दोषैर्मूल्यं प्रहीयते ।

ततोऽप्याप्यधिका हानिर्दोषैरेकते भवेत् ॥२६॥

मरकत मणि का मनुवरण करने वाले किसी के प्रत्येक रूपों वाले भस्मातक के प्रमित गुण वलों से वस्तु की विषमता को प्राप्त होते हैं ॥२२॥ जो वज्र (हीरे) धीरे मुक्ता (मोती) कोई विज्ञानी होते हैं मणित वज्र उनको हीति सर्वगामिनी हुआ करती है ॥ २३ ॥ कुछ ऐसे होने हैं कि उन्हें सोचा रक्खा जावे तो किसी तरह वे उनकी हीति उत्पन्न होती है धीरे यदि निष्ठा करके देखे जावे तो वह तुल्य ही नष्ट हो जाया करती है ॥ २४ ॥ दान—प्राचमन—आप—रक्षा मन्त्र की क्रिया विधि में भी धीरे सुवर्ण का दान करने वाली तथा मायनों को करने वालों के द्वारा देव—पित्र—पानिधेय—गुरुसंपूजन एवं विधीद्वय प्रत्येक दोषों से वाच्यमान होने में संपन्न दोषों से रहित—गुणों से समन्वित तथा सुवर्णालिकुर में प्रणि योजित मरकत मणि को संप्राम में विचारण करने वाले बुद्धी के द्वारा धारण करना चाहिए ॥२१॥२६॥२७॥ पुनः से पद राग मणि का जो मूल होता है उनसे अधिक मूल्य गुणों से युक्त मरकत मणिका होता है ॥२८॥ पदराग मणियों का मूल्य दोषों के होने से कम हो जाता करता है किन्तु यदि मरकत मणि में दोष हो तो केवल मूल्य की ही कमी नहीं होती बल्कि उससे भी कटो अधिक हानि हो जाता करता है ॥२९॥

४१—इन्द्रनील परीक्षा

तत्रैव सिंहलवधूवरपल्लवाप्रव्यातूनवालवल्लोकुसुमप्रवाले ।

देसे पपात दितिजस्य नितान्तकान्त प्रोत्कुल्लनीरजसमद्युति

नेत्रयुग्मम् ॥१॥

तत्प्रत्ययादुभयसीमनवीचिभासा विस्तारिणी जलनिघेरूपकच्छुभूमि ।

प्रोद्भिन्नवेतवलप्रतिवदधलैखा साग्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति ॥२॥

तथासितावजहलभृङ्गममानि भृङ्गनादर्घायुधाङ्गहरकण्ठकपायपुष्पैः ।

शुधैतरंश्च कुसुमेगिरिकर्णिकापास्तस्माद्भवन्ति मणयः सहसा—

वभासाः ॥३॥

ग्रन्थे प्रसन्नपयसः पयसा निघातृम्बुत्विषः शिशिरणप्रतिभास्तयान्ये ।
नीलोत्सप्रभवबुद्बुदभाश्च केचित्केचित्तथा समदकोकिलकण्ठभामः ॥४॥

एकप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिनः ।

जायन्ते मणयस्तस्मिन्निन्द्रनीता महागुणाः ॥५॥

मृत्पापाणानिलारन्ध्रकंकरात्रासमयुताः ।

अन्निकापटलच्छायावर्णशैवश्च दूर्ध्वताः ॥६॥

तत एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूगः ।

शास्त्रसम्बोधितधियस्तान्प्रशंसन्ति मूढाः ॥७॥

घास्यंमाणस्य ये दृष्टा पद्मरागमाणेर्गुणाः ।

घाग्णादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानवः ॥८॥

भूतजी ने कहा—वहाँ पर ही सिंहल देश की बपु के गर-पल्लव द्वारा
प्यासून जी बाल लषली कुसुम का प्रवास जिस देश में है उस देश में दितिज
(महामुर) के पयस्त मुन्दर विवसित कमल के समान भूत वाले दोनों नेत्री
का जोड़ा गिरा था ॥१॥ उसक प्रत्यय से दोनों शोभा युक्त कौपियों की भा
(शक्ति) वाली—वित्ता स युक्त जलनिधि की उपवन्ध भूमि जोकि प्रोद्भिन्न
(विकसित) केतक दल से प्रतिबद्ध लैला वाली थी और सान्द्र इन्द्र नील मणि
रत्नों से समन्वित शोभित होती है ॥ २ ॥ वहाँ पर प्रसन्न कमल और बहल
पृष्ठों के समान लषा भृङ्ग—गाढा मुषाङ्ग—हरकण्ठ (शिव की गरदन)—नयाय
पुरा—मुञ्जोतर बिरि कणिका के कुमुदों के सदृश भासित मणियाँ उस देश
में समुत्पन्न होती हैं ॥ ३ ॥ अन्य पद्म-निधि के प्रसन्न पद्म के समान हैं—कुछ
पद्म के मुन्दर कान्ति वाली हैं तथा दूध-नी मणियाँ मयूँ के समूह के समान
प्रतिभा वाली होती हैं । बुद्ध नीली रस से समुत्पन्न बुद्धियों के तुल्य भा वाली
है और बुद्ध मद से युक्त कोविज के बरुड की दीप्ति के समान दीप्ति वाली
होती है ॥४॥ उन मणियों में एक ऐसे प्रकार वाली मणियाँ होती हैं जो विशेष
रूप से स्पष्ट वर्ण तथा शोभा से प्रबलान्वित हुपा काती हैं । उसमें इन्द्र नील
मणियाँ महान् गुणों से युक्त होती हैं ॥५॥ ये मणियाँ मृत्तिका—पाषाण—
निषा—रत्न—रंकरा आदि से युक्त और पश्चिम पार के द्वाया और वर्ण

दोषों से दूषित होती है ॥६॥ वहाँ पर नभों से बहुत मो मणिमों उत्पन्न होती है । आसनों के द्वारा भली भौंति व धित बुद्धि वाले विद्वान् पुरुष उनको प्रशंसा किया करते हैं ॥७॥ पद्मराग मणि के धारण करने पर जो गुण देखे गये हैं उन्ही गुणों को इन्द्रनील मणि के धारण करने से मानव प्राप्त किया करता है ॥ ८ ॥

यथा च पद्मरागाणां ज्ञातव्यमनिय भवेत् ।

इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषतः ॥९॥

परीक्षा प्रत्ययैर्लेश्व पद्मराग परीक्ष्यते ।

तत्रैव पर्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणोरपि ॥१०॥

यावन्त चक्रमेदग्नि पद्मरागोपयोगतः ।

इन्द्रनीलमणिस्त्वमात्ममेत सुमहत्तरम् ॥११॥

तथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये ।

मणिरग्नी सभाभेय कश्चिदपि कश्चन ॥१२॥

अग्निमात्रापराजाने दाहदोषैश्च दूषितः ।

सौजन्यार्थं भवेद्भूतं वतुं कारयितुस्तथा ॥१३॥

जिस तरह ने पद्मरागों के तीन जातक होने हैं उन्हीं भाँति इन्द्र नीलों में भी दिना तिली विशेषता के रखने योग्य होते हैं ॥ ९ ॥ प्रत्ययों से परीक्षा पद्मराग की होती है और जिनके बाग वह परीक्षित होगा है वहाँ इन्द्र नील मणियों में भी वेही प्रत्यय देखे गये हैं ॥१०॥ पद्मराग के उपयोग से जितना अग्नि ब्रह्ममिष्ठ होता है इन्द्र नील मणि उससे सुमहत्तर अमिष्ठ किया करता है ॥११॥ वो भी जाँच के लिए और गुणों की अविवृद्धि के लिए कोई भी किसी भी प्रकार से मणि को अग्नि में समाहित न करे ॥१२॥ अग्नि मात्रा के परिज्ञान में दाह के दोषों से दूषित वह मणि धारण करने वाले स्वामी को, करने वाले की घोट कराने वाले को अनर्थ के लिए ही होती है अथवा अनर्थ वाली हो जाती है ॥१३॥

वाचोत्तलपरवीरसत्कटिवाद्या इह दुर्घं सर्वदूष्ण्यां ।

वधिता विजातय इमे सहसा मणिनेन्द्रनीलेन ॥१४॥

गुरुभावकठिनभावावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयो ।

काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण ॥१५॥

इन्द्रनीलो यथा कथञ्चिद् विभर्त्ताताम्रवर्णताम् ।

रक्षणीयो तथा ताम्रो करवीरात्पलायुभी ॥१६॥

यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा ।

तमि द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम् ॥१७॥

यस्य वराम्य भूयस्त्वान्धीर शतगुण स्थितः ।

नीलता तन्मयेत्सर्वं महानीलं स उच्यते ॥१८॥

यत्पदारागस्य महागुणस्य मूल्यं भवन्मापममन्वितस्य ।

तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्य सख्याकुलितस्य मूल्यम् ॥१९॥

काचीरन-करवीर-स्फटिक पादि तथा वैदूर्य बुधा क द्वारा लाक म
ये इन्द्र नील मणि के महान विजातीय कहे गये हैं ॥१५॥ इनका गुरुभाव और
कठिनाभाव नित्य ही जान लेने योग्य है काच में यथावत् विज्ञापन म उत्तर
विवर्द्धमान होत है ॥ १५ ॥ जैसे इन्द्रनील घोड़ा मा ताम्र वर्णता का धारण
करता है उसी भाँति करवीरोत्पन्न रानी ताम्रो की रक्षा करनी चाहिए ॥१६॥
चितने मध्य में रहने वाली नील की इन्द्रायुध प्रभा शोभा देनी है उस इन्द्र-
नील को बहुत अधिक मूल्य वाला और लाक म दुर्लभ कहा गया है ॥ १७ ॥
जिसके वर्णों की अधिकता होत स सोगुने और म समाप्ति होकर उस समस्त
धीर को नीलता प्रदान कर देता है वह महानील कहा जाता है ॥ १८ ॥ जो
माण समन्वित पदाराग का जिसमें महान गुण हो, मूल्य होता है वह महान्
गुण स युक्त वर्ण की सख्या से माकुलित इन्द्रनील का मूल्य होता है ॥१९॥

४२-वैदूर्य परीक्षा

वैदूर्यपुण्डरागाणां कर्कटनभीष्मकयोः ।

परीक्षा ब्रह्मणा प्राक्ता व्यासेन वयिता द्विज ॥१॥

वत्पान्तकालवृभिताम्बुरागेनिहृदिकत्पादितिजस्य नादात् ।

वैदूर्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णवीजम् ॥२॥

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधसः ।

कामभूतिकसीमानमनु तस्यावरो भवेत् ॥३॥

तस्य नादसमुत्थत्वादाकर सुमहागुणः ।

अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषणः ॥४॥

तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपा प्रावृट्प्रयोदवरदर्शितचारुरूपाः ।

वेदर्यरत्नमणयो विविधावभासास्तस्मात्स्फुलिङ्गनिब्रहा इव सबभूवुः ५

पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षिप्तौ ।

सर्वास्तावर्णशोभाभिर्वेदूर्यमनुगच्छति ॥६॥

तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनीलं यद्वा भवेद् वेणुदलप्रराशम् ।

चापाग्रपक्षप्रतिमधियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्धि ॥७॥

मूगजी ने कहा—हे द्विज ! वेदूर्य—पुष्कराग—ऊँचोवन और भीष्मक की परोक्षा यद्वा की क द्वारा प्राप्त है और उस फिर व्यास महर्षि ने कहा है ॥१॥ क्षितिज (महानगर) के नाद से कल्प के अन्य तन्त्र के समय में धुमिल जो मन्वुराशि (मनुद) उसके निर्हाद वन्दर से घनक वणों वाला वेदूर्य रत्न जो कि शोभा—मभिरामता—लुति और वर्ण का बीज है समुत्पन्न हुआ था ॥२॥ उत्तुङ्ग रोधस वाल विदूर गिरि के निकट ही मैं काम भूतिक सीमा के पीछे उसका आकर होता है ॥३॥ उसके नाद से समुत्पन्न होने के कारण सुमहान् गुणों वाला लोक में उत्तरित और तीनों लोकों का भूषण आकर हुआ था ॥४॥ उस दानवों के स्वामी के नाद के अनुरूप वर्णों के समय से मेघों के श्रेष्ठ दर्शित सुन्दर रूप वाले अनेक प्रकार की दीप्ति से युक्त वेदूर्य रत्न मणियों उससे स्फुलिङ्गों के समूहों की भाँति उत्पन्न हुए थे ॥५॥ पक्षराज का उपादान करके भूमण्डल में जो मणियों ने वर्ण विद्यमान हैं उन सबसे वणों की शोभाओं से वेदूर्य अनुगमन किया करता है ॥६॥ उन वणों में शिखि (मयूर) के कण्ठ के समान नील वर्ण प्रधान है । अथवा वेणु के दल के समान प्रकाश वाला प्रधान होता है । जो चापाग्र के पक्षी की प्रतिमा की ओर के आश्रय वाले हैं उन्हें मणियों के शास्त्र के ज्ञाताओं ने प्रशस्त नहीं बनाया है ॥७॥

गुणवान्बेदार्थमग्निर्योजयति स्वामिने वरभाग्यं ।
 दारपयुं त्तां दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत ॥८॥
 गिरिकान्तगिगुपाली काचस्फटिकाश्च धूम्रानभिज्ञाः ।
 बेदार्थमग्नौरेते विजातय सन्निभा सन्ति ॥९॥
 लिङ्गमावात्कान् लघुभावाच्चेगुपालक विद्यात् ।
 गिरिकाचमदोषित्वान्स्फटिक वर्योऽज्ज्वलन्वेन ॥१०॥
 यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य मुवर्णमस्याकलितस्य मूढ्यम् ।
 तदेव बेदार्थमग्नौ यदिष्ट पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥११॥
 जात्यस्य सर्वेऽपि मग्नौ तनु पाटुग्विजातय सन्ति समानवर्णाः ।
 तथापि नामाकरणमुपेयभेदप्रकार परमः प्रदिष्ट ॥१२॥

जो गुणो मे मध्यम बेदार्थ मणि होना है वह अपने स्वामी को श्रेष्ठ भाग्यों से योजित किया करता है । जो दोषो से युक्त होना है वह अनेक दागों से स्वामी को दूषित कर देता है । अतएव यत्न पुष्कल परीक्षा अवश्य करनी चाहिए ॥८॥ गिरि काच—शिशुनाभ—काच स्फटिक मोर धूम्र तिमिल ये इतने बेदार्थ मणि के सदृश विजातीय रत्न हुमा करते हैं ॥९॥ लिङ्ग के अभाव रहने से काच का तथा लघुभाव होने से सेगुपालक का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । नीलि रहित होने से गिरि कानको मोर वर्ण की उज्ज्वलता होने से स्फटिक को पहिचान लेना चाहिए ॥१०॥ जो महान् गुणों से युक्त मुवर्ण मन्थाकलित का मूढ्य होता है वही पलद्वय से तन्मापित गौरव वाले बेदार्थ मणि का मूल बताया गया है ॥११॥ जात्य मणि के सभी समान वर्ण वाले जेने विजातीय रत्न होते हैं तो भी नामाकरण से अनुमान करने के योग्य भेदों का प्रकार बहुत अच्छा बताया गया है ॥१२॥

मुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्यो ह्यय प्रभेदो विदुषा नरेण ।
 स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्व विभ्रातलिङ्ग खलु सार्वजन्यम् ॥१३॥
 कुसलाकुशलं प्रपूर्यमाणा प्रतिवद्धाः प्रतिसत्क्रियाप्रयोगे ।
 गुणदोषसमुद्भव लभन्ते मणयोऽर्ज्यान्तरमूल्यमेव भिन्नाः ॥१४॥

क्रमशः समतीतवर्त्तमाना प्रतिबद्धा मणिवन्धकेन यत्नान् ।
 यदि ताम भवन्ति दोषज्ञीना मणयः पद्मगुणम मनुवन्ति मूल्यम् ॥१४॥
 आकराः समतीतानामुदधेम्तीरसन्निधौ ।
 मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतल ॥१५॥
 सुवर्णो मनुना यस्तु प्राक्त पादशमापक ।
 तस्य समनमा भाग सञ्चारूप करिष्यति ॥१७॥
 शाण्ड्यनुमपिमाना मायक पञ्चदशान ॥
 पत्रस्य दशयो भागा धरण परिशीलित ॥१८॥
 इति मणिविधि प्रोक्ता रत्नाना मूल्यनिश्चये ॥१९॥

विद्वान् पुण्य के द्वारा मुख पूर्वक देखने के योग्य यह प्रभेद सदा ही
 विचार करने के योग्य होता है—स्नेह प्रभेद—चुना-मृदुता और सब साधारण
 से होने वाला विजाति विह्व ॥१३॥ कुशल और अकुशलों के द्वारा द्वारा प्रकृष्ट
 रूप से पूर्वमाण तथा प्रति मन्त्रिया के प्रयोगों में प्रतिबद्ध मणियों गुणों और
 दोषों के समुद्भव की प्राप्त किया करती है और अर्थात् न मूल्य ही से भिन्न होती
 है ॥ १४ ॥ क्रम से समतीत वर्त्तमान वाली और यत्न पूर्वक मणि बन्धक के
 द्वारा प्रतिबद्ध मणियाँ यदि दोषों में हैं न हा जाती है तो फिर वे छैवती कीमत
 की प्राप्त होती है ॥१५॥ माग्य के उट के मणीय में भावर (खान) से समतीत
 (निवृत्ती हुई) मणियों का मूल्य भूमण्डल में सर्वत्र निश्चय हो नहीं हुआ
 करता है ॥१६॥ गोडश मायक सुवर्ण मन्त्र के द्वारा कहा गया है उसका सातवाँ
 भाग सजा के स्वरूप की करता ॥१७॥ चार साथ सात शाण्ड्य और पाँच मायक
 पृच्छाल तथा पलका दशम भाग धरण परीक्षित किया गया है ॥१८॥ यही
 रत्न के मूल्य के निश्चय करने में मणियों की विधि बताई गई है ॥१९॥

४३ —अन्य रत्न परीक्षा

पतिताया हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विप ।
 प्रादुर्भवन्ति ताम्पन्तु पुष्परामा महागुणा ॥१॥

आपीतपाण्डुरुचिर पापाण पद्मरागसज्जक ।
 कोरुण्डकनामा स्वात्म एव यदि लोहितस्तु पीत ॥२॥
 आलोहितस्तु पीत स्वच्छ कापायक स एवाक्तः ।
 आनीलशुक्लवर्णं स्निग्ध सोमानक सगुण ॥३॥
 अत्यन्तलोहितो य स एव खलु पद्मरागमज्ञ स्यात् ।
 यपि चेदनीलमज्ञ म एव कश्चित् सुनील सन् ॥४॥
 मूल्य वैदूर्यमसोरिव गदित ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा ।
 धारणफलञ्च तद्वद्विद्वन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवन्ति ॥५॥

यह ग्रन्थ रत्नों की परीक्षा के विषय में बतलाया जाता है । मूलजी
 -वस महामुनि की स्वत्ता जब हिमाद्रि में गिरि तो सबसे महान् गुणों वाले
 रत्न रत्नों का प्रादुर्भाव होता है ॥१॥ आपीत पाण्डु और मुद्गर वर्ण वाला
 रत्न सज्ञा वाला पापाण कोरुण्डक नाम वाला होता है । वह ही यदि लोहित
 पीत होता है । आलोहित पीत और स्वच्छ वह ही कापायक कहा गया है
 नील शुक्ल वर्ण वाला गुणों में युक्त एव स्निग्ध सोमानक कहा जाता है
 ॥३॥ जो बहुत ही अधिक लोहित होता है सो वही पद्मराग की सज्ञा वाला
 होता है । जो रत्न नील की सज्ञा वाला हो तो वह ही सुनील ऐसा कहा गया
 । रत्न शास्त्र के विद्वानों के द्वारा इनका मूल्य वैदूर्य मणि का जैसा ही कहा
 गया है तथा इसके धारण करने का फल भी उसी के समान होता है किन्तु
 स्त्रियों को यह सुत के प्रदान करने वाला होता है ॥५॥

वायुनं सार्द्धं सपतेर्गृहीत्वा निक्षेप सत्यदमवनेषु हृष्ट ।
 ततः प्रसूत पवनोपपन्न कर्कतं तनूज्यतमं पृथिव्याम् ॥६॥
 वर्णं तद्गन्धिरसोममधुप्रकाशमाताप्रपीतदहनोज्ज्वलितं विभाति ।
 नीलं पुनः खलु सितं परुषं विभिन्नं व्याघ्रादिदोषकरं न च
 तद्विभाति ॥७॥

स्निग्धा विशुद्धा समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरुवो विचित्रा ।
 वासुधैव कुटुम्बकम् विवर्जिताश्च कर्कतनास्ते परमपवित्रा ॥८॥

ही वपु को धारण किया करते हैं ॥११॥ यदि कर्कोत्तन परीक्षित वर्ण एवं रूप वाला है तो वह प्रस्थ—भास्वर दिखाकर के समान प्रकाश वाला होता है । उस उत्तम कर्कोत्तन का मणि दास्य के विद्वान् महिमा से तुलित का मूल्य तुल्य रहते हैं ॥१२॥

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्यं पतितं सुरद्विपस्तस्य ।

सप्राप्तमुत्तमानामाकरता भीष्मरत्नानाम् ॥१३॥

शुक्ला शङ्खाब्जनिभा स्योनाकमग्निभाः प्रभावन्तः ।

प्रभवन्ति ततस्तद्वत्तु वज्रनिभा भीष्मपापाणाः ॥१४॥

हेमादिप्रतिबद्धा शुद्धमपि शुद्धया विधत्ते यः ।

भीष्ममणिं ग्रीवादिषु सम्पदं सर्वदा नभते ॥१५॥

निरीक्ष्य पलायन्ते ये नमरप्यनिवाग्निं ममीपेऽपि ।

द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रादयो हिंसा ॥१६॥

तस्योन्मूलनमकृतिनोर्भयं नचास्तीशमुपहसन्ति ।

भीष्ममणिगुणयुक्तो नम्यकप्राप्ताङ्गुलीयकलनत्वम् ॥१७॥

पितृतपसापि पितृणां तृप्तिवंधुवापिकी भवति ।

शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पिण्डजाखुदृष्टिक विपाणिः ।

सलिलाग्निर्वरितस्करभयानि भीमानि नश्यन्ति ॥१८॥

शैलबलाहकान् परुष पीतप्रभं प्रभाहीनम् ।

मलिनद्युतिं च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञः ॥१९॥

मूल्यं प्रकल्प्यमेवा विबुधवरैर्दशकालविशानात् ।

दूरे भूतानां बहु किञ्चिन्निकटप्रभूतानाम् ॥२०॥

मूलजी ने कहा—हिमवान् के उत्तर देश में उस महासुर का वीर्य पतित हुआ था और वह वीर्य उत्तम भीष्म रत्नों की आकरता को प्राप्त हुआ था ॥१३॥ वहाँ पर भीष्म पापाण् मुक्त—शङ्ख और वज्र के तुल्य—स्योनाक के सरस प्रभा वाले—वज्र के समान और तक्षण उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥ सुवर्ण दादि से प्रतिबद्ध शुद्ध विधि से शुद्ध किया हुआ भीष्ममणि को जो ग्री वाकादि रत्नों में धारण करता है वह सर्वदा सम्पदा को प्राप्त किया करता है ॥१५॥

सूतजी कहते हैं—परम पुण्य येष पर्वतों में—स्थानान्तर्गे मे तथा उत्तर
देश में रहने वाली नदियों में और श्वित प्रदेश में दानव-वनि का भलो भाति
पूजन करके भुजगों के द्वारा प्रकाश में नगरों को स्थापित किया था ॥२१॥
दाक्षार्णवा गदवमेकल कालवादि मे गुञ्जा—घञ्जन—शहद और मृणाल के
समान वर्ण वाले तथा गन्धर्व—अग्नि—रुदनी के महान् धवमानित होने वाले ये
प्रशस्त पुलक समुत्पन्न हुए थे ॥ २२ ॥ शङ्ख—मन्त्र—मृत्त और अक के तुल्य
विचित्र भग वाले और सूत्रों से व्यपेन परम पवित्र होते हैं । माङ्गल्य से सम-
न्वित—बहुत भक्तियों में चिन्तित वे पुनक वृद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं
॥२३॥ कौष्मा—कुत्ता—रासभ—शृगाल—वृक—मे सय रूप वाले गिद्धों से जोकि मांस
एवं रधिर से आर्द्रं सुख है इनसे समुपेत रत्न मृत्यु प्रद होने हैं और विद्वान् पुरुष
को उन्हें त्याग हो देना चाहिए । इनके एक पल का मूल्य पाँच सौ रुपये कड़ा
गया है ॥ २४ ॥ सूतजी ने कहा—दानव का यधेष्ठित हूतभुक् का रूप लेकर
कुछ हीनादि भूमियों में नमदा में डाल दिया था ॥२५॥ वहाँ पर इन्द्र गोप के
समान गुन्दर—शुक के मुर के सहस्र वर्ण वाला—प्रकट पीन समान मात्र—
अनेक प्रकार का विहित रधिर सन्नक रत्न का उद्धारण कर समका सब समान
ही मध्यम में इन्द्र के समान पाण्डर भयन्त्र विगुद्ध वर्ण वाला और इन्द्रनील
के तुल्य-तुल में पटल होता है । यह परम ऐश्वर्य एवं भूय के जनन करने वाला
है—ऐसा कहा गया है । वह ही जब पत्र होता है तो निरवय ही मुरवय के
तुल्य वर्ण वाला हो जाता है ॥२६॥२७॥

कावेरिधिष्ययवनचीननेपालभूमिषु ।

लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नत ॥२८॥

आकाशगुद्ध तंलास्यमुत्पन्न स्फटिक ततः ।

मृणालशङ्खधवल किञ्चिद्वरान्तिरान्वितम् ॥२९॥

न तत्तुल्य हि रत्नञ्च सर्वथा पापतामसम् ।

संस्कृत शिल्पिना सद्यो मूल्यं किञ्चित्तमेतत् ॥३०॥

आदाय शेषस्तस्यान्य वलस्य केरलादिषु ।

चिद्येष तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः ॥३१॥

सेवनात्कृतपिण्डाना पापजित्कामद नृणाम् ।
 वाराणसी पर तीर्थं विश्वेशो यत्र केशव ॥३॥
 कुशनेत्र पर तीर्थं दानार्थं भुक्तिमुक्तिदम् ।
 प्रभास परम तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च ॥४॥
 द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ।
 प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वत परम् ॥५॥
 केदार सर्वपापघ्न शम्भलग्राम उत्तमम् ।
 नारायण महान् तीर्थं मुक्त्यै वदरिकाश्रमम् ॥६॥
 श्वेतद्वीप पुरी माया नैमिष पुष्कर परम् ।
 अयोध्या नागार्जुनोपेन्तु चित्रकूटश्च गोमती ॥७॥

सूतजी ने कहा—प्रब्रह्म ममस्त तीर्थों को बतलाने हैं । गंगा उन समस्त तीर्थों में उत्तम से भी उत्तम तीर्थ है । यह गंगा सर्वत्र ही सुलभ होती है केवल यह तीन स्थानों में सुलभ हुआ करती है ॥१॥ वे तीन स्थान हैं—हरिद्वार—प्रयाग और गंगा-सागर मगध । प्रयाग परम तीर्थ है जो मृत पुण्यों को मुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ वाराणसी भी परम तीर्थ है जहां विश्व के नाथ केशव विद्यमान रहते हैं । इसके सेवन करने से तथा यहाँ पिण्डदान करने से प्राणी पापों पर विजय प्राप्त कर लेता है भोग यह मानवों की धर्मोप नामनाओं को देने वाला है ॥३॥ कुरुक्षेत्र भी एक परमोत्तम तीर्थ है । यहाँ दान आदि देने पर इनके द्वारा मनुष्य भुक्ति एवं मुक्ति दोनों की प्राप्ति किया करता है । प्रभास क्षेत्र प्रति श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ पर भगवान् सोमनाथ विराजते हैं ॥ ४ ॥ द्वारकापुरी परम सुन्दर है जो भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली है । प्राची सरस्वती पुण्या है और सप्त सारस्वत परम तीर्थ है ॥५॥ केदार तीर्थ समस्त प्रकार के पापों का हनन करने वाला है तथा शम्भल ग्राम प्रति उत्तम है । नारायण महान् तीर्थ है । मुक्ति के प्राप्त करने के लिए वदरिकाश्रम है ॥ ६ ॥ श्वेतद्वीप—मायापुरी—नैमिष और पुष्कर परम तीर्थ हैं । अयोध्या नागार्जुन का श्रेष्ठ तीर्थ है । चित्रकूट—गोमती तीर्थ हैं ॥७॥

पर सविता देव—शिव—गणेश—साक्षात् शक्ति देवी भोग भगवान् हरि सम्पित रहते हैं ॥ १२ ॥ इन उपसृक्त तीर्थों में तथा जो नहीं बताये गये हैं ऐसे अन्य तीर्थों में किया हुआ स्नान—दान—बाप—तप—पूजा—आदि शीघ्र पिएड-दान आदि सभी मत्कर्म अक्षय हो जाया करते हैं ॥१३॥ शालग्राम का भजन सभी कुछ प्रदान करने वाला है । यशुपति का परम तीर्थ है । गौ का मुख वाराह—भाण्डीर—स्वामी सत्ता यामा है । मोह दण्ड में महा विष्णु है तथा मन्दार में मधुसूदन है । कामाक्ष्या काम रूप एक महान् तीर्थ है जहाँ पर नग्नगी कामाक्ष्या विरजमान रहती है । गुण्डू बर्द्धनक तीर्थ है जहाँ पर स्वामि कार्तिकेय विद्यमान है ॥१४॥१५॥

विरजस्तु महातीर्थ तीर्थ श्रीपुरुषोत्तमम् ।

महेन्द्रपर्वतस्तीर्थ कावेरी च नदी परा ॥१६

गोदावरी महातीर्थ पयोष्णी वरदा नदी ।

विन्ध्य पापहरं तीर्थ नर्मदाभेद उत्तमम् ॥१७

गोकर्ण परम तीर्थ तीर्थ माहिष्मती पुरी ।

कालञ्जरं महातीर्थशुक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥१८

कृते शीवे मुक्तिदश्च गाङ्गाधारी तदन्तिके ।

विरज सर्वद तीर्थ स्वर्णाक्ष तीर्थमुत्तमम् ॥१९

नदितीर्थ मुक्तिदश्च कोटितीर्थफलप्रदम् ।

नासिकपञ्च महातीर्थ गोवर्द्धनमत, परम् ॥२०

कृष्णा वेणी भीमरथा गरुडकी या त्विरावती ।

तीर्थं विन्दुमर, पुण्य विष्णुपादोदक परम् ॥२१

विरज महान् तीर्थ है और श्री पुरुषोत्तम तीर्थ है । महेन्द्र पर्वत भी तीर्थ है तथा कावेरी परम नदी है । गोदावरी नदी भी महान् तीर्थ स्वरूपा है और पयोष्णी वर देने वाली नदी है । विन्ध्य पापों के हरण करने वाला तीर्थ है तथा नर्मदा भेद उत्तम है ॥१६॥१७॥ गोकर्ण परमोत्तम तीर्थ है और माहिष्मती पुरी तीर्थ है । कालञ्जर महान् तीर्थ है तथा सर्वोत्तम शुक्रतीर्थ है ॥१८॥ ये सम्पूर्ण प्रकार के पापों से शुद्ध नरके मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।

उनके पास मे ही साङ्ग पाये तीर्थ है । विरज नामधारी तीर्थ सभी कुछ देने वाला है । स्वर्णक्षि प्रति उत्तम तीर्थ है ॥ १६ ॥ नन्दि तीर्थ मुक्तिदायक है और करोड़ों तीर्थों के फल का देने वाला है । नासिक्क भूमीतीर्थ है । इससे भी परतीर्थ गोवर्द्धन है । कृष्णा, वेणी, भीमरथा, गण्डकी और इरावती ये सभी तीर्थ हैं । विन्दुसर परम पवित्र तीर्थ है तथा विष्णुपादोदक परम तीर्थ है ॥२०॥२१॥

ब्रह्मध्यान पर तीर्थ तीर्थमिन्द्रियनिग्रह ।

दमस्तीर्थ तु परम भावगुप्ति सरस्तिया ॥२२

ज्ञानहृदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।

य स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमा गतिम् ॥२३

इद तीर्थं मिद नेति ये नरा भेददर्शित ।

तेषा विधीयते तीर्थगमन सत्कलञ्च यत् ॥

सर्वं ब्रह्मेति योज्येति नान्योयं तस्य किञ्चन ॥२४

एतेषु स्नानदानानि श्राद्ध पिण्डमद्याक्षयम् ।

सर्वा नद्य सर्वशंला तीर्थं देवादितेवितम् ॥२५

श्रीरङ्गश्च हरस्तीर्थं तपोयं त्र्यम्बकं महानदी ।

सप्तमीदावर तीर्थं तीर्थं कौण्डगिरि परम् ॥२६

महालक्ष्मीपन देवी प्रणीता परमा नदी ।

सह्याद्री देवदेवेश एकवीर भुवनेश्वरी ॥२७

गङ्गाद्वारे कुशावर्तं विन्ध्यके नीलपर्वते ।

स्नान वनजले तीर्थं स भवेत् पुनर्भवे ॥२८

एतान्यग्यानि तीर्थानि स्नानार्थं सर्वदानि हि ।

युत्वाञ्जवीद हरेर्ब्रह्मा व्यास दत्तादिमृतम् ॥२९

एतान्मुक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम् ।

गयास्य प्राह सर्वेषामक्षयं ब्रह्म गोवदम् ॥३०

ब्रह्मध्यान धर्मान् नित न्त एकान्त स्थल मे एकाग्र मन मे ब्रह्म का ध्यान करना सबसे उत्तम एवं श्रेष्ठ तीर्थ है । धननी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण निय

भरण कर सेना भी तीर्थ के समान है । इन्द्रियो का दमन करना परमतीर्थ है तथा सपनी भावनाओं की बुद्धि कर लेना मर के समान है ॥ २२ ॥ ज्ञानरूपी हृद में और राग तथा द्वेष क मल का अपहरण करने वाले ध्यान रूपी जन में जो नित्य प्रति इस मानस तीर्थ में स्नान करता है वह मनुष्य परमगति को प्राप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ यह तो तीर्थ है और यह तीर्थ स्थान नहीं है जो मनुष्य इस प्रकार में भेद के दमन वास है उनको ही तीर्थों के गमन करने का विधान है और उन ही तीर्थों का पान भी प्राप्त होता है जोकि ऊपर में स्त-साया गया है । जो सभी का ब्रह्ममय ही मानना है उस की दृष्टि तथा बुद्धि में सभी कुछ भी नहीं है ॥ २४ ॥ इन तीर्थों में किछ हुए स्नान—दान—प्राद और पिण्ड सब अक्षय हो जान हैं । समस्त नदियाँ और सम्पूर्ण दोल देवादि से स्थित हैं और तीर्थ स्वरूप हैं ॥ २५ ॥ श्री रंग हरि का तीर्थ है । सापी महानदी श्रेष्ठ है । सप्त गोदावर तीर्थ है और कोलागिरि परम तीर्थ है ॥ २६ ॥ जहाँ पर महाप्रहरी देवी है वहाँ पर परमा प्रणता नहीं है । महात्रि म देवदेवता एक धार हैं और पुरस्त्री है ॥ २७ ॥ गङ्गादा म—कुसावत में—विन्ध्यक में और नील पर्वत म तथा कनकल तीर्थ म जो स्नान किया जाता है वह स्नान करने वाला इस समस्त म पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥ २८ ॥ सूतजी ने कहा—ये उपर्युक्त तीर्थ तथा अन्य तीर्थ जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, इनमें स्नानादि क द्वारा सभी कुछ प्राप्त हो जाता है । यह वृत्तान्त श्री हरि भगवान् से श्रवण करके सहाजी दशादि म संयुक्त व्यासजी से बोले—इन समस्त तीर्थों को कहकर फिर तीर्थों म परम श्रेष्ठ गया नामक तीर्थ के विषय में कहा या जोकि सर्वत्र अक्षय है और ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराने वाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥

४५ — गया माहात्म्य

सारान्सारतर व्यास गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
 प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं गृणु ॥१॥
 गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्यवान् परम स च ।
 तपस्तप्यन्महाधोर सर्वभूतोपतापनम् ॥२॥

यज्ञं श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादिं कुरुते नरः ।
 स स्वर्गं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरकं नरः ॥८॥
 गयातीर्थं परं ज्ञात्वा यागं चक्रे पितृमहः ।
 ब्राह्मणान्पूजयामास श्राद्धवत्पुत्रागतान् ॥९॥
 महानदीं रसवता मूढा वाप्यादिकं तथा ।
 भक्ष्यभोज्यरुनादीश्च कामधनुं तथासृजत् ॥
 पञ्चशोऽपि गयाक्षेत्रं ब्राह्मणभ्यां दत्तौ प्रभुः ॥१०॥
 यमयायेषु लोभात् प्रतिमृत्युं धनादिकम् ।
 स्थिता विप्रास्तदा यमा गयाया ब्राह्मणास्त्वन ॥११॥
 मामूर्त्तं पुरुषो विद्यां मामर्त्तं पुरुषं धनम् ।
 युष्माकं स्याद्धारिद्र्यं नदा पाशाणां च न ॥१२॥
 यमस्तु प्रापितो ब्रह्मास्तु बहू कृतवान् प्रभुः ।
 लोका पुण्या गयाया हि श्राद्धिना ब्रह्मलोकगा ॥
 युष्मान् वै पूजयिष्यन्ति ते रह पूजितः सदा ॥१३॥
 ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गातृहं मरणं तथा ।

वाप्तं पुमां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४॥

जो मनुष्य महा पर यज्ञ—श्राद्ध—पिण्डदान और स्नान आदि किया

करता है वह मनुष्य स्वयं और ब्रह्मलोक जाता है और फिर नरक में
 नहीं जाती जाया करता है ॥ ८ ॥ पितृमह ने इस गया तीर्थ में स्नान करके
 याग किया था । जो ब्राह्मण श्राद्ध के काम में लिये आये थे उन सब का
 पूजन किया था ॥ ९ ॥ उस का बहुत कष्ट मालो महानदी की पचना करके
 चापी आदि का सृजन किया था तथा भक्ष्य—भोज्य—फल आदि को एष कामधेनु
 को सृजता था । प्रभु ने पाँच कोश का विस्तार आला गया तीर्थ ब्रह्मलोक को दे
 दिया था ॥ १० ॥ यम के योगीय ज्ञान से धनादि का प्रतिग्रह लेकर वहीं
 स्थित रहा करने से । तब से गया में विप्र जात हो गए हैं ॥ ११ ॥ उन विप्रों
 को ऐसा याग था कि छीन पड़िगी तक विद्या नहीं होगी—और छीन पुरुषों
 तक लगातार धन—द्रव्य भी नहीं रहगा । तुम्हारी यह जल वा बहन करती
 रहने चापी नहीं है और पापाणु पर्यंत है । इस प्रकार से जब याग दिया गया

पञ्चकोश गयाक्षेत्र कोशमेक गयागिरः ।
 तत्र पिएडप्रदानेन पितृणां परमा गतिः ॥
 गयागमनमात्रेण पितृणामनुणो भवेत् ॥३॥
 गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनाह्वितः ।
 तद्दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष मुच्यते ये शृणुष्यात् ॥४॥
 रथमार्गं गयातीर्थे दृष्ट्वा रुद्र पदाविके ।
 कातेश्वरश्च केशर पितृणामनुणो भवेत् ॥५॥
 दृष्ट्वा पितामह देव मवापे प्रमुच्यते ।
 ताक त्वत्तामस याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ॥६॥
 तथा गदाधर देव मायस पुण्यान्ममम् ।
 तं प्रणम्य प्रयत्नेन न भूया जायत नर ॥७॥

ब्रह्मा जी ने कहा—कीकटो में गया पुण्य स्थल है । राजगृह वन परम पुण्य स्वरूप है । नरियो में पुत्र पुत्र धारण विषय पुण्यमम है ॥ १ ॥ पूर्व पश्चिम में मृत्यु पृष्ठ है और दक्षिणोत्तर में टाई कोश पर्यन्त गया का मान बताया गया है ॥ २ ॥ प्रव कोश तक गया क्षेत्र है और एक बोध गया का गिर है । वहीं पर पिएड प्रदान करने से पितरों की परम गति होती है । केवल गया में गमन करने हो से पितरों के शृणु में मनुष्य उन्नत हो जाता करता है ॥ ३ ॥ गया में पितृ रूप से देवों के भी देव भगवान् जनादन स्थित है । पुण्डरीकाक्ष उनको देखकर ही कि गया में जायस है उने तीनों शृणु से मुक्त कर दिया करते है मयाव पुण्डरीकाक्ष का वहीं दर्शन प्राप्त करते ही वह तीनों शृणु से छुटकारा पा जाता है ॥ ४ ॥ गया तीर्थ में रथ के मार्ग की ओर पदाविक पर रुद्र की—कातेश्वर और केशर को देख कर मयात् इन सब का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पितरों के शृणु में उन्नत हो जाता है ॥ ५ ॥ पितामह देव का दर्शन करके मन्त्र समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है । प्रपितामह का दर्शन कर निरामय लोक की प्राप्ति करता है ॥ ६ ॥ तथा गदाधर देव—पुत्रों में उत्तम मायस की प्रयत्न पूर्वक प्रणाम करके मनुष्य फिर इस महार में जन्म नहीं ग्रहण करता है ॥ ७ ॥

नाश कर दिया करता है ॥ १३ ॥ स्वर्ग द्वार के ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य भव-वन्द्य से मुक्त हो जाता है । रामेश्वर और गदा लोक का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥ १४ ॥

ब्रह्मेश्वर तथा हृष्टा मुच्यते ब्रह्महृत्त्वया ।
 मुत्तङ्गपृष्ठे महाचण्डी हृष्टा कामानवानुमात् ॥ १५ ॥
 फल्गुचण्डी च गौरी हृष्टा च मङ्गलाम् ।
 गोमेक गोपति देव पितृणामनृणो भवेत् ॥ १६ ॥
 ब्रह्मरेशश्च सिद्धेश गमादित्य गज तथा ।
 मार्कण्डेयेश्वर हृष्टा पितृणामनृणो भवेत् ॥ १७ ॥
 फल्गुतीर्थं नर स्नात्वा हृष्टा देव गदाधरम् ।
 एतेन किं न पश्यति नृणां मुक्तिकारिणाम् ॥
 ब्रह्मलोकं प्रयान्तीह पुण्यानेकविजनिम् ॥ १८ ॥
 पृथिव्या यानि तीर्थानि ये समुद्राः सगति च ।
 फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वाग्मेक दिनं दिन ॥ १९ ॥
 पृथिव्याश्च नद्या पुण्या गमायाश्च गवांश्वर ।
 श्रेष्ठ तथा फल्गुतीर्थं मनुष्यश्च मुख्य हि ॥ २० ॥
 उदीचि कनकानद्या नाभितीर्थान्मु मय्यत ।
 पुण्यं ब्रह्मसदस्तीर्थं स्नानात्म्याद्ब्रह्मलोकद ॥ २१ ॥

(तथा ब्रह्मेश्वर का दर्शन कर ब्रह्म हृष्टा से मुक्ति पा जाता है । पृष्ठ पृष्ठ पर महा चण्डी का दर्शन कर मनुष्य चण्डी समस्त कामनाओं की प्राप्ति करता है ॥ १५ ॥ फल्गु के स्नानी और फल्गु की चण्डी तथा मङ्गला गौरी-गोपति—गोपति देव का दर्शन करके पितरों के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हो जाता है ॥ १६ ॥ मङ्गलेश—सिद्धेश—गमादित्य—गज—मार्कण्डेयेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य पितृण के श्रेष्ठ से मुक्त हो जाता करता है ॥ १७ ॥ फल्गु नदी से सार-स्नान करके तथा गदाधर देव का दर्शन करके इतने ही से क्या पर्याप्त नहीं होता ? जो मनुष्य मुक्त करने वाले हैं उनको इन छद्मों से ही सब

देता है ॥२३॥ ब्रह्मनीर्थ मे—गमनीर्थ मे—अग्नेय मे और सोमतीर्थ मे तथा रामहृद मे आद्व करने वाला व्यक्ति अपने पितृ कुल को ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता है ॥२४॥ उत्तर मानस मे आद्व करने वाला मानव फिर इस लोक में जननी के जठर निवास की पीड़ा प्राप्त नहीं करता है । दक्षिण मानस मे आद्व विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक में ले जाया करता है ॥२५॥ कूट में भीष्म तर्पण करने वाला अपने पितरों का उद्धार कर देता है । गृपेश्वर मे आद्व करने वाला पितरों के श्चरण से उश्रवण हो जाता है ॥२६॥ धेनुकारण में आद्वकर्त्ता पितृगण को ब्रह्मलोक में पहुँचा देता है । तिन और धेनु का दान करने वाला धेनु का दर्शन करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२७॥ ऐन्द्र-नरतीर्थ बाणव तथा वैष्णव मे एव महा-नदी मे आद्व करने वाला पितरों का ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता है ॥ २८ ॥

गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा ।
स्नानसन्ध्यातर्पणकृत् आदधी चंकोत्तर शतम् ॥
पितृणां तु कुल ब्रह्मलोक नयति मानवः ॥२९॥
ब्रह्मयोनिं विनिर्गच्छेत्प्रयत्नं पितृमानसं ।
तर्पयित्वा पितृन् देवान् विशेषो निसङ्कटे ॥३०॥
तर्पणे काकजङ्घाया पितृणां तृप्तिरक्षया ।
धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्या आदधी दिव ब्रजेत् ॥३१॥
धर्मयूपे च कूपे च पितृणामनृणो भवेत् ।
प्रमाणं देवतां सन्तु लोकपालाश्च साक्षिण ॥
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणां निष्कृति कृता ॥३२॥
रामतीर्थे नरः स्नात्वा आदध कृत्वा प्रभासके ।
निलायां प्रेतभावां स्युर्मुक्ता पितृगणाः किल ॥३३॥
आदधकृत् स्वपृष्ठायां त्रि सप्तकुलमुदधरेत् ।
आदधकृन्मुष्पृष्ठादौ ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन् ॥३४॥

धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेतुकारण्यमेव च ।
 दृष्ट्वानानि पितृश्राद्धं यत्नान्विशन्निमुद्धरेत् ॥३९॥
 ब्रह्मारण्यं मयनद्या पश्चिमे भाग उच्यते ।
 पूर्वं ब्रह्मसदो भागो नागाद्रिभरताधमः ॥४०॥
 भरतस्याश्रमे श्राद्धो मतङ्गस्य पदे भवेत् ।
 गयाशीर्षदक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिम ॥४१॥
 तत्स्मृतश्चाम्पकवनं तत्र पाण्डुशिलास्ति हि ।
 श्राद्धो तत्र तृतीयाया निश्चिरायाश्च मण्डले ॥
 महाह्रदे च कौशिक्यामक्षय फलमाप्नुयात् ॥४२॥

जलार्दन के हाथ में मनुष्य अपना पिण्ड देवे और प्रार्थना करे कि हे जलार्दन देव । यह पिण्ड मैंने आपके हाथ में दिया है । अब परलोक जाने पर बौद्ध जाने पर मुझे आप प्रक्षय मोक्ष प्रदान करे । ऐसा करने वाला मानव अपने पितरों के सहित निश्चिन्न रूप से ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥३९॥ गया में ब्रह्माण् धर्म पृष्ठ पर मरने—गया के शीर्ष में—प्रक्षय बट में पितरों को पिण्ड देने वाला अक्षय पुण्य—कन को प्राप्त करता है ॥३९॥ धर्मारण्य—धर्म पृष्ठ और धेतुकारण्य इनका दशन करके पितरों को अर्घ्य देने वाला पुण्य अपने शीर्ष वशी का उद्धार करता है ॥३९॥ ब्रह्मारण्य मय नदी का पश्चिम भाग कहा जाता है और पूर्व में ब्रह्मसद भाग है तथा नागाद्रि और भरताधम है ॥ ४० ॥ भरत के आश्रय में श्राद्ध करने वाला मतङ्ग के पद में होता है । गया शीर्ष में दक्षिण में और महानदी के पश्चिम में वहाँ पर चम्पक वन बताया गया है । वहाँ पर पाण्डु शिला है । वहाँ श्राद्ध करने वाला तृतीया में और निश्चिरा के मण्डल में तथा महाह्रद में एवं कौशिकी में श्राद्ध—कर्त्ता प्रक्षय फल का भागी होता है ॥४१॥४२॥

येतरण्याश्चोत्तरतस्तृतीयास्त्यो जलाशयः ।
 पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धो स्वर्गं नयेत्पितृन् ॥४३॥
 क्रौञ्चपादादुत्तरतो निश्चिरास्त्यो जलाशयः ।

करना तीनों लोको में महान् दुर्लभ है ॥ ४८ ॥ महाह्रद में—बोशिकी में भीर विशेषतया मूल क्षेत्र में—गृध्र कूट की गुहा में दिया हुआ आद्य सात महा फल वाला होता है ॥ ४९ ॥

यत्र माहेश्वरी धारा आदधी तत्रानृणो भवेत् ।
 पुण्या विशालामामाद्य नदी जैलोक्यविश्रुताम् ॥
 अग्निष्टोममवाप्नोति आदधी प्रायश्चित्त नर ॥ ४० ॥
 आदधी मोमपदे स्नात्वा वाजपेयफल लभेत् ।
 रविपादे पिण्डदानात्पतिनाद् धाम्गु भवेत् ॥ ४१ ॥
 यो गयास्थो वदात्यन्न पितरस्तेन पुत्रिणः ।
 काक्षते पितर पुत्रान् नरकाद् भयभीरव ॥ ४२ ॥
 गया यास्यति य कश्चित्स्यान्ममान् मन्तारयिष्यति ।
 गयाप्राप्त मृत दृष्ट्वा पतृणामुन्सवा भवेत् ॥ ४३ ॥
 पद्मधामपि जल स्पृष्ट्वा अस्मभ्य किल दान्यति ।
 आत्मजो वा तथान्वा वा गनकूपे यदा तदा ॥ ४४ ॥
 यन्नाम्ना पातयेत् पिण्ड त नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ।
 पुण्डरीक विष्णुलोकं प्राप्नुयात्कोटिनीर्यग ॥ ४५ ॥
 या सा वंतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
 साज्वतीर्णा गयाजेत्रे पितृणा तारणाय हि ॥ ४६ ॥

जहाँ पर माहेश्वरी धारा है वहाँ आद्य करने वाला उरिण हो जाया करता है । परम पुण्यमयी भीर जैलोक में परम प्रसिद्ध विशाला नदी को प्राप्त करके आद्य करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है भीर फिर वह दिवलोक को चला जाता है ॥ ४० ॥ मोमपद से स्नान करके आद्य के विधान को साक्ष सम्पन्न करने वाला पुण्य वाजपेय यज्ञ का फल पा जाता है । रविपाद में पिण्डों के प्रदान करने से पतिलो का उद्धार होता है ॥ ४१ ॥ जो गया में स्थित होकर अन्न का दान करता है उसी पुत्र से पितृगण पुत्र होते हैं । पितर लोग नरक से भयभीत होते हुए ऐसे पुत्रों की इच्छा किया करते हैं ॥ ४२ ॥ पितृगण सोचा करते हैं कि हमारे पुत्रदि में से जो कोई भी

चाहिए जो ब्रह्म के द्वारा प्रकल्पित किये हुए हैं ॥५८॥ जो विप्र ब्रह्म प्रकल्पित हैं उनका ब्रह्म सङ्स्थान है । ब्रह्म प्रकल्पित स्थान है और विप्र भी ब्रह्म प्रकल्पित हैं । पूजित पितृगणों के साथ समस्त देवगण पूजित किये गये हैं ॥५९॥ गया वाली विप्रों की विधि-विधान से हज्य-कर्मों के द्वारा तृप्त करना चाहिए गया मे देश परित्याग करने में स्थान किया जाता है ॥६०॥ परमोत्तम गया क्षेत्र में जो रूप का उत्पन्न करता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है—इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ॥६१॥ महान् बुद्धिमान् पुरुष को अपना भी तिलो के बिना गया में पिंडों का निर्वपण करे और मनुष्य औरों का भी करे ॥६२॥ जितने भी ज्ञानि बाने—बन्धन और मृद्दगण रितर हैं हे व्यास देव । उन सबके लिये विधान के साथ गया की भूमि में पिंड देना चाहिए ॥६३॥

रामतीर्थं नर स्नात्वा गोमतस्याप्नुयात्फलम् ।
 मतङ्गवाण्या स्नात्वा च गोमहस्रफल लभेत् ॥६४॥
 निश्चिरासङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ।
 वसिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयश्च विन्दति ॥
 महाकोश्या समावासादश्वमेधफल लभेत् ॥६५॥
 पितामहस्य सरस प्रवृत्ता लोकपावनी ।
 समीपे त्वग्निवारेति विश्रुता कपिला हि सा ॥
 अग्निष्टोमफल थाद्री स्नात्वाऽन कुतकृत्यता ॥६६॥
 थाद्री कुमारघारायामश्वमेधफल लभेत् ।
 कुमारमभिगम्याय महामुक्तिमवाप्नुयात् ॥६७॥
 सोमकुण्डे नरः स्नात्वा सोमलोकश्च गच्छति ।
 नवर्त्तम्य नरो वाण्या शुभग म्यात्त पिण्डदः ॥६८॥
 धोतपापो नरो याति भ्रेतकुण्डे च पिण्डदः ।
 देवनद्या लेहिहाने मयने जानुमर्त्तिके ॥६९॥
 एवमादिषु तीर्थेषु पिण्डदस्नारयेत् पितृन् ।
 नत्वा देव वसिष्ठेन प्रभूतमृणसदयम् ॥७०॥

वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशाला विरजा गयाम् ।
 दिवा च सर्वदा रात्रौ गयाया आद्वयकुङ्कुमेत् ॥४॥
 वाराणस्या कृत आद्वय तीर्थं शोणनदे तथा ।
 पुन पुनर्महानद्या आद्वयो स्वर्गं पितृव्रजेत् ॥५॥
 उत्तर मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।
 तन्मिनिवर्त्तयेद् आद्वय स्नानञ्चैव निवर्त्तयेत् ॥
 कामान्तं लभते दिव्यान्माक्षापायश्च सर्वशः ॥६॥
 दक्षिण मानसं गत्वा मीनीं पिण्डादि कारयेत् ।
 शृङ्गव्रयापाकरणं लभेद्दक्षिणमानसे ॥७॥

(ग्रहाजी ने कहा—गया का जाने ६ नियम उद्योग पुरुष पहिले विधान से आठ बरे और फिर बापट वन करके प्राग की भी प्रदक्षिणा करे ॥१॥ इसके धनमत्तर अन्य ग्राम में जाकर आठ में शेष का भजन कर और फिर प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रह में रहित होता हुआ ध्यान जाना चाहिए ॥२॥ गृह से चलने वाले के जो कि गया के प्रति ध्यान करना है फिर सोए एक-एक पद (कदम) पर स्वयं क समागोष्ठण करने के सोपान (गांठा) पर ऊपर चढ़ा करत है । गया क्षेत्र को जान ले वे धुण्डन और उपशम लभस्त माग में ध्यान वाले तीर्थों में होना चाहिए क्योंकि यही शास्त्रीय विधान है ॥३॥ कुरुक्षेत्र और विशाला विरजा गया की छोटे हर सबदा दिन में और गया में रात्रि में आठ करने वास्ता होवे ॥ ४ ॥ वाराणसी में तथा शोणनद में निया हुआ आठ तथा महानदी में पुन पुन आठ करने वाला भजन पितृपण को स्वर्ग में प्राप्त करा देता है ॥५॥ उत्तर मानस में जाकर परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है । उसमें ही आठ का निवर्त्तन करे और उन्मा में स्नान—क्रिया को पूर्ण करना चाहिए । ऐसा पुरुष अपनी परम दिव्य कामनाओं को प्राप्त करता है और सभी माक्ष के उपाय का भी लाभ करता है ॥ ६ ॥ दक्षिण मानस में पहुंच कर मीन धारण कर पिण्डदान आदि करते—श्राव । दक्षिण मानस में जाकर यह करने में तीनो प्रकार के श्रुतों का व्यवहार करता है ॥७॥

फल में छुटकारा पा जाता है ॥१३॥ फल्गुतीर्थ में मनुष्य स्नान करके गदा-
पर देव का दर्शन करे तो तुरन्त ही अपने भाषका घोर दण पहिले तथा वश
भागे भान वाले कुत्ते का उद्धार कर देता है ॥१४॥

प्रथमे हि विधि प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत् ।

धर्मारण्य मतङ्गस्य वाष्पा पिण्डादिकृतद्भवेत् ॥१५॥

धर्मारण्य समासाद्य वाजपेयफल तभेत् ।

राजसूयाश्वमेधान्या फल स्याद् ब्रह्मतीर्थके ॥१६॥

आद्य पिण्डोदक कार्यं मध्ये वे यूपयूपयो ।

कूपोदकेन तत्कार्यं पितृणा दत्तमक्षयम् ॥१७॥

तृतीयेऽह्नि ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाऽथ तर्पणम् ।

कृत्वा आद्यादिक पिण्ड मध्ये वे यूपकूपयो ॥१८॥

गोप्रचारसमीपस्था भासता ब्रह्मकल्पिता ।

तेषा सेवनमात्रेण पितरौ मोक्षयामिन ॥

यूप प्रदक्षिणोक्त्य वाजपेयफल तभेत् ॥१९॥

फल्गुतीर्थ चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा द्वादिनपणम् ।

कृत्वा आद्य गयातीर्थे देवरूपदादिषु ॥२०॥

पिण्डान्देहि मुखे व्यास पञ्चाग्नौ च पदत्रये ।

सूर्योदकातिकेपेऽपि कृत आद्य तथाऽऽपम् ॥

आद्य तु नवदैवतं कुम्भादि द्वादशदैवतम् ॥२१॥

प्रथम दिवस की विधि बतानादी गई है अब दूसरे दिन में गमन करे ।

धर्मारण्य और मतङ्ग की वाष्पी में पिण्डों का प्रदान करने वाला होवे ॥१५॥

धर्मारण्य की प्राप्ति कर वाजपेय मंत्र का फल प्राप्त करना है । ब्रह्मतीर्थ में

विद्वान् एवं स्नानादि करने से राजयूप और अश्वमेध दोनों यज्ञों के फलों की

प्राप्ति विधा करता है ॥१६॥ यूप यूप के मध्य में आद्य एवं पिण्डोदक कार्य

करना चाहिए । कूपोदक में यह सब करना चाहिए । इससे पितरों को दिया

हुआ भक्षण होता है ॥१७॥ अब तीसरे दिन में ब्रह्मसद में जाकर स्नान करे

तथा तर्पण करे । यूप और कूप के मध्य में पिण्ड और आद्यादि करके गो प्रचार

थाढ़ करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥ गया शिर में शमी के पत्र के प्रमाण वाचा पिंड देना चाहिए । इसमें वितरण देवत्व की प्राप्ति हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार नहीं करता चाहिए ॥ २५ ॥ मुण्ड पृष्ठ में धीमाद् महादेव न पद व्यम्न किया है । वहाँ पर अल्प तप से ही महान् पुण्य की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ गया शीर्ष में जो गिड नाम के द्वारा जिनको निर्वपण करता है उसका पितर जो नरक में स्थित था व दितलोक को चले जाते हैं और जो स्वयंवास करने वाला है व मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं ॥ २७ ॥ प्रथम पाँचवाँ दिन का वृत्त्य वननाया जाता है । साँवव दिन में गदातोष में नान कर और फिर बट से नीचे पितरों का पिंडदान करना चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य अपने समस्त पुन को नार दिया करता है ॥ २८ ॥

वटमूल समासाद्य शारुणात्प्रादकेन च ।
एवस्मिन्भाजित विप्रे काटिभवति भाजिना ॥ २९ ॥
कृते थाद्धशयवट दृष्टा च प्रापितामहम् ।
यक्षयान्तभते लाकान्कुगानामुदधरच्छतम् ॥ ३० ॥
एष्टव्या यहव पुना यद्य वांरपि गया व्रजेन् ।
यजेद्वा अभ्रमधेन नील वा वृषमुत्तृजेन् ॥ ३१ ॥
प्रेत वश्रितसमुद्दिश्य वणिज वञ्चिदब्रवीत् ।
मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिवपन कुर्व ॥ ३२ ॥
प्रेतभावार्द्रमुक्त स्यात्स्वयदा दानुरव च ॥ ३३ ॥
श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतगजाय पिण्डकम् ।
प्रददावनुर्जः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्तदा ददौ ॥ ३४ ॥
सर्वे मुक्ता विशालोऽप सपुत्राऽभूच्च पिण्डदः ।
विशालाया विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद् द्विजान् ॥ ३५ ॥
कथं पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चाबुविशासवम् ।
गयाया पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥ ३६ ॥
विशालोऽय गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ॥ ३७ ॥

येषा दाहो न क्रियते येऽग्निदग्वास्तथापरे ।

भूमौ दत्तोऽन तृप्सन्तु दृप्ता यान्तु परा गतिम् ॥४१॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥४२॥

तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च ।

वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही तत परम् ॥४३॥

प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति चै ।

अन्येषाञ्चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपनिष्ठताम् ॥४४॥

आकाश मे विसालरूप मे मित—रक्त गौर कृष्ण वर्ण बाले पुरुष को दिया था । उसने पूछा था—माप कौन है तब उन में से एक मित जो था वह बोला ॥३६॥ मे मित नेरा पिता है और इस शुभ कर्म से इन्द्रनील को प्राप्त हो गया हूँ । हे पुत्र ! मेरे पिता रक्त वर्ण बाल है । यह प्रह्लाद हृदयारे गौर अधिक पाप करने वाले है ॥ ३७ ॥ यह कृष्ण वर्ण बाले पितामह हैं । इनसे श्राद्धभी को पातित किया था । ये दोनों धर्मीय तरफ से प्राप्त थे । अब हे शिशु देते बाले ! मैं मुक्त होकर नारकीय याचना से छूट गये हूँ ॥ ३८ ॥ इसके पनतर हम सभी मुक्त होकर अब उत्तम स्वर्गलोक में जा रहे हैं । वन विन ल भी परम कृतकृत्य होकर रात्रि में सुख भोग कर दिवनीय को खला गया था ॥३९॥ वहाँ शिष्टान नरन के समय में प्रार्थना करे कि जो हमारे कृत्य में ऐसे शिष्टगण हों जिसकी शिष्टोदय क्रिया सुप्त होगई हो क्योंकि कोई भी शिष्ट तथा उदक देने वाला न रहा हो तथा जो बृद्ध मन्वार रहित हो—और जो गर्म से हो निनि मृत होगय हो—जो ऐसे हो कि दाह हो न किया जाता हो—जो जग्मि से रक्ष्य होकर मृत हुए हो तथा अन्य भी जो कोई हो ये सभी भूमि में दिये हुए उदरसे तृप्त हों और तृप्त होकर परम गति को प्राप्त होंगे ॥४०॥ पिता पितामह तथा प्रपितामह, माता पितामही तथा प्रपितामही एवं मातामह—प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह एवं मातामही—प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही तथा अन्य जो भी कोई हों उन सबके लिये यह शिष्ट सत्त्व होवे—यह कहकर शिष्टदान करना चाहिए ॥४१॥४२॥४३॥४४॥

इन्द्रो विपश्चिद्देवानां तद्रिपुः पुष्टकुत्सरः ।
 जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदन ॥८॥
 शीतमस्य मनोः पुनः जानश्च परमुत्तमा ।
 विनीतश्च सुकेतुश्च मुमिव सुवलः शुचिः ।
 देवो देवावृषो रुद्र महात्साहाजिनस्तथा ॥९॥
 रथोजा ऊर्ध्वबाहुश्च शरगुश्चानघो मुनिः ।
 सुतपा शङ्कुरित्येते ऋषयः सप्त कीर्त्तिता ॥१०॥
 वसवति स्वधामान शिवा मत्या प्रतर्दना ।
 पञ्च देवगणा प्रोक्ता सर्वे द्वादशकास्तु ते ॥११॥
 इन्द्र स्वशान्तिस्तच्छुक् प्रशम्भो नाम दानवः ।
 मत्स्यरूपो हरिविष्णुस्त जघान च दानवम् ॥१२॥
 तामसस्य मनो पुनः जानुजङ्घोऽय निर्भयः ।
 नवस्थातिर्नमश्चैव प्रियभृत्या विनिक्षिप ॥१३॥
 हृष्टपर्वाय प्रस्तलाक्षः कृतबन्धुः कृतस्तथा ।
 ज्योतिर्धामा घृष्टकाव्यश्चैनश्च तामिहेमको ॥१४॥
 मुनयः कीर्त्तिता सप्त मुग्धा स्वधियन्तया ।
 हरयो देवतानाञ्च चत्वारः पञ्चविंशका ॥१५॥

देवों का इन्द्र विपश्चिद् या और उसका शत्रु पुष्टकुत्सर था । भगवान्
 मधु सूदन ने हस्ती के रूप में उसका हनन किया था ॥८॥ शीतम यन्त्र के पुत्र
 भात्र-शत्रु-विनीत-मुष्टपु-मुमिव-सुवल-शुचि-देव-देवावृष तथा महोद-
 हाजित रुद्र थे ॥९॥ उस मन्वन्तर में रथोजा, ऊर्ध्व बाहु, शरगु, भनघ, मुनि,
 सुतपा, और शत्रु ये सप्तविंशताये गण हैं ॥१०॥ वसवति-स्वधामान-शिवा-मय
 और प्रतर्दन ये पाँच देवगण कीर्त्तिता किये गए हैं वे भव द्वादशक थे ॥११॥
 स्वशान्ति नामक इन्द्र या और तस्यै शत्रु प्रशम्भ नामधारी दानव था । उस
 दानव को मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले यात्रे हरि विष्णु ने हनन किया था
 ॥१२॥ तामस नामक शत्रु के पुत्र जानुजङ्घ-निर्भय-नवस्थाति-नम-प्रियभृत्य
 विनिक्षिप-हृष्टपर्वा-प्रस्तलाक्ष-कृतबन्धु-कृत थे और ज्योतिर्धामा-घृष्ट

काव्य-चैत्र-श्वेताग्नि-हमव ये सात मुनि बताये गये हैं । सुरागा भीर स्वधिय
हरि थे तथा देवताओं के चार पञ्च विषय गुण हुए थे ॥१३॥१४॥१५॥

गण इन्द्र शिविस्तस्य शत्रुर्भीमरथा स्मृता ।

हरिणा वृमंरूपेण हतो भीमरथोऽसुर ॥१६॥

रैवतस्य मनो पुत्रा महाप्राणश्च साधव ।

वनबन्धुनिरमित्र प्रत्यङ्ग परहा युधि ॥१७॥

दृढघ्नत केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वश्यंते ।

देवश्रीवेदबाहुश्च ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च ॥

हिरण्यरोमा पञ्चय सत्यनामा स्वधाम च ॥१८॥

अभूतरजश्च वैक स्तथा देवाश्चमेघस ।

वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणा ॥१९॥

गणो चतुर्दश सुरा विभुरिन्द्र प्रतापवान् ।

शान्तशत्रुहतो दैत्या हमरूपेण विष्णुना ॥२०॥

चाक्षुषस्य मनो पुत्रा ऊरु पूरुमंहायल ।

शतघ्नमस्तपस्थी च सत्यबाहु वृतिस्तथा ॥२१॥

अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुवृमश्च तथा नर ।

हविष्मान्सुतनु श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा ॥

अभिमान सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषय स्मृता ॥२२॥

उनका इन्द्र शिवि था भीर उसका शत्रु भीमरथ कहे गये हैं । भगवान्
हरि ने वृमंरूपेण धारण कर भीम रथ असुर का वध किया था ॥१६॥ रैवत
मनु के पुत्र-महाप्राण साधव-वनबन्धु-निरमित्र-प्रत्यङ्ग-गराहा-युधि-दृढ
घ्नत और केतुशृङ्ग हुए थे । सब इन मन्वन्तर के ऋषि बलित किये जाते हैं-
देव श्री-वेदबाहु-ऊर्ध्व बाहु-हिरण्य रोमा-पञ्चय-सत्य नामा भीर स्वधाम
थे ॥१७॥१८॥ अभूत रज-देवाश्चमेघ-वैकुण्ठ और अमृत ये चार देवों के गण
थे । इन गण में चोदह सुर थे । उनका प्रतापवद् विभु इन्द्र हुआ था । उसका
शत्रु शान्तशत्रुहता हुआ था जिस दैत्य का हनन करने वाली विष्णु ने इनका
विधाय था ॥१९॥२०॥ सब चाक्षुष मन्वन्तर को बतलाते हैं । चाक्षुष मनु के

पुत्र ऊर्ध्व—पूरु—महाबल—सतद्युम्न—नपत्नी—सत्य वाहु—कृति—प्रणिपणु—
 पतिरात्र—मुद्युम्न तथा नर ये द्वे वे । इविष्य नृ—सुतनु—भीमाद्—स्वधामा—
 विरज—मभिमान—सहिष्णु भीर मधु भी ऋषिगण बतार मये है ॥२१॥२२॥

आध्या प्रसूता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकान्तथा ।
 मष्टरस्य गणा पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम् ॥२३॥
 इन्द्रो मनोजव क्षात्रुमहाकालो महाभुज ।
 अश्वरूपेण स हृतो हृदिगता लोकधारिणा ॥२४॥
 मनोवैवस्वतस्येने पृथा विष्णुपरायणा ।
 इदवाकुप्य नाभाख्यो विष्टि सर्जातिरेव च ॥२५॥
 हविष्यस्तस्तथा पाशुनेभो नेदिष्ठ एव च ।
 वन्पश्च पृषधश्च मुद्युम्नश्च मनो मुता ॥२६॥
 अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्जामदग्निश्च कश्यपः ।
 गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽप्य सप्तमः ॥२७॥
 तथा ह्येकौतपश्चाश्वत्थमरुत परिकीर्त्तिता ।
 आदित्या वसव साध्या गणा द्वादशकास्त्रय ॥२८॥

८ आदित्या वसव साध्या गणा द्वादशकास्त्रय ॥२८॥

अर्था—प्रसूता—भाव्य—लेखा भी० पृथुक य देवों के लक्षक वे पाँच
 गण कहे गये हैं । उनका इन्द्र मनोजव या भीर इन्द्र का शत्रु महा भुज महा
 बल हुआ था । उसका वध लोकों के धारण करने वाले भगवान् हरि ने अश्व
 का स्वरूप धारण करके किया था ॥२३, २४॥ अत्र वैवस्वत मन्वन्तर को वन-
 तया जाता है—वैवस्वत मनु के पुत्र सब विष्णु परायण हुए थे । उनके नाम
 ये हैं—इक्ष्वाकु—नाभाग्र—विष्टि—सर्जाति—हविष्यस्त—पाशु—नम—नेदिष्ठ—कश्यप
 पृषध—मुद्युम्न हैं ॥२५॥२६॥ अत्रि—वसिष्ठ—भगवान् जामदग्नि—कश्यप—गौतम
 भरद्वाज भीर विश्वामित्र ये उक्त मन्वन्तर के साथ ऋषि हैं ॥२७॥ उनमें वन-
 चास मरुदगण कहे गये हैं । आदित्य—वसु और भाध्य ये तीन द्वादशक गण
 थे । तथा एकादश रुद्र द्वा० ये भीर मष्ट वसु थे । दो ऋषिनीकुमार विनिविष्ट
 किये गये हैं तथा दश दिवदेवता हैं ॥२८॥

एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
 द्वावश्विनो विनिदिष्टौ विश्वेदेवास्तथा दश ॥
 दशैवाङ्गिरसो देवा नव देवगणास्तथा ॥२६॥
 तेजस्वी नाम वं शक्रो हिरण्याक्षो रिपु स्मृतः ।
 हतो वाराहरूपेण हिरण्यार्योऽयं विष्णुना ॥२७॥
 वभूये मनोर्भविष्यस्य भावर्माण्यस्य वं सुतान् ।
 विजयन्नावंवीरश्च निर्देह सत्यवाक्कृतिः ॥
 वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाच सगतिरेव न ॥२८॥
 अश्वत्थामा कृपा ध्यामो मातवो दीप्तिमानथ ।
 ऋष्यशृङ्गरतया राम ऋषयः सम कीर्तिता ॥२९॥
 सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुख्य ।
 तेषां गणस्तु देवानां एकैको विशक स्मृतः ॥३०॥
 विरोचनमुनस्तेषां बलिरिन्द्रो भदिष्यति ।
 दत्स्वेमा याचमानाय विष्णवे य पदत्रयम् ॥
 ऋद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥३१॥
 वाहरोर्दक्षसावर्णेनेवमस्य सुतान् शृणु ।
 पृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतु पञ्चहस्तो निराकृतिः ॥
 पृथुश्रवा बृहदयूष्म श्चक्षीकी बृहवो गुण ॥३२॥
 मेधातिगिष्ठुर्निर्ध्वजः सवली बगुरेव च ।
 ज्योतिष्मान्हुष्यवन्मोच ऋषयो विभुरीश्वर ॥३३॥
 परो भरीविर्गर्भश्च स्वघर्माणश्च ते त्रय ।
 देवशत्रुः कालबाधस्तद्वन्ता पद्मनाभक ॥३४॥

दश अङ्गिरस देव हैं तथा नौ देवगण हैं ॥२६॥ तेजस्वी नाम याता दृष्ट
 हुमा या ओर सगता सत्र हिरण्य दा नामधारी दंत्य था । उस दंत्य का भ्रमवान्
 विष्णु ने बगहू खवनाह लेकर धम किया था ॥२७॥ अब साधारण सहा धारी
 भविष्य मनु के विषय से बनन योगे । सावर्ण्य मनु के पुत्र विजय—अवंवीर—
 निर्देह—मत्य यक्ष—रुनि—परिष्ठ—गरिष्ठ—वाच ओर सगति थे ॥२८॥ अश्व-

रथामा-कृप-व्यास-पालव-दीक्षितान्-शुष्य शृङ्ग-राग ये तत्र मन्वन्तर के सात श्रुत हैं ॥३२॥ सुतपा-मृतपाभा और मुख्या ये तन देवों के गण हैं जो एक-विंशति कहा गया है । उनका इन्द्र विरोचन का पुत्र बनि होगा जिसने भूमि के तीन पैड़ की याचना करते वाले वामन रूपधारी विष्णु को देकर और जो इस श्रद्धा इन्द्र पद का त्याग करके मिट्टि की प्राप्ति करेगा ॥३३॥३४॥ अब इसके मन्वन्तर बारह दक्ष सार्वभौम नवम क पृथा को मुनी-शृङ्गि-तु-दीक्षि-केतु-मन्व-हृन्त-निरादृति-पृथुपथा-वृहस्प-धूम-सुची-वृहन्तो गुण-मेधातिथि-श्रुति-सबल और वसु थे । उज्जितमान-हव्य-कश्यप-विभ्र और ईश्वर ये ऋषिगण हुए थे । पर-अरीचि-गभ और स्वधर्मा ये तीन थे । देवों का शत्रु बालक सजा बाना है । उनका जनन करने वाले पय नाम हुए हैं ॥३५॥३६॥३७॥

धर्मपुत्रस्य पुत्रास्तु दशमस्य मनो शृणु ।
 सुभ्रेशश्चोत्तमोजाश्च भूरिथरेयश्च वीर्यवान् ॥३८॥
 क्षतानीको निर्गमित्रो वृषसेना जयद्रथ ।
 भूरिद्युम्न सुवर्चाश्च शान्तिरिन्द्र प्रतामवान् ॥३९॥
 श्रयोभूर्तिहंविष्माश्च सुकृतश्चाव्ययस्तथा ।
 साभगोऽप्रतिमदर्च्य सौरभा श्रेयस्तथा ॥४०॥
 प्राणायथा क्षतसस्यास्तु देवताना गणास्तदा ।
 बलिगन्धुस्त हरिश्च गदया घातयिष्यति ॥४१॥
 रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वदाम्येकादशस्य तु ।
 सर्वत्रय सुजर्मा च देवानोक्त पूरुर्गुरु ॥४२॥
 क्षेद्रवर्णो हृष्टेयश्च आर्द्रक पृथक्स्तथा ।
 हविष्माश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तुरी ॥४३॥
 विष्णुश्चैवान्नितेजाश्च श्रेय सप्त कीर्तिता ।
 विहङ्गमा वामगमा निर्माणश्चयम्यथा ॥४४॥
 एवंवरुच्यस्तथा गणश्चेन्द्रश्च वै वृष ।
 दशग्रीवो रिपुस्तस्य धीरुपी घातयिष्यति ॥४५॥

सुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम् ।

एको देवश्चतुर्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना ॥५६

कृतस्तव पुराणानि विद्याश्चाष्टादर्शव तु ।

अङ्गानि चतुरो वेदा मीमासा न्यायविस्तर ॥६०

पुराण धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्यशास्त्रकम् ।

धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादर्शव ताः ॥६१

भोत्य चतुर्देश मनु के पुत्रो के नाम ये हैं—ऊरु—गभीर—धृष्ट—तपस्वी—
प्राह—प्रभिमानी—प्रवीर—विष्णु—सक्रन्दन—तेजस्वी—दुर्लभ ॥५६॥ अग्निध—
अग्नि बाहु—मागध—भुनि—अजित—मुक्त भोर युक्त ये चोदहवे मनु के सात
श्रुति हैं । चाक्षुष—कर्मनिष्ठ—पवित्र—भ्रातितन भोर वाचा वृषा ये पाँच देवों
के गण हैं जो कि सप्तक बताये गये हैं ॥५७॥५८॥ उन देवताओं के इन्द्र का
नाम सुचि है । उसका दात्र, महा दैत्य है जिसके हनन करने वाले स्वयं भगवान्
हरि हैं । एक हो देव है । वही चार रूप से विद्यमान है । व्यास के रूप वाले
विष्णु ने फिर समस्त पुराणों की रचना की है । अठारह विद्या—चार वेद—
उन वेदों के छै घञ्ज शास्त्र—मीमासा—न्याय शास्त्र वा विस्तार—पुराण—धर्म-
शास्त्र—आयुर्वेद—धर्मशास्त्र—धनुर्वेद—गान्धर्व वेद ये ही सब अष्टादश विद्याएँ
बनी जाती हैं । इन सबकी रचना विष्णु ने व्यासदेव के स्वरूप में होकर की
है ॥५६॥६०॥६१॥

४६—पित्राख्यान-पितृस्तोत्र

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च ।

मार्वण्डेय पितृस्तोत्र प्रोञ्चुकि प्राह तच्छ्रणु ॥१

रुचि प्रजापति पूर्वं निर्मणो निरहकृतिः ।

यत्रास्तमितप्रायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥२

अनग्निमनिवेत तमेकाहारमनाश्रमम् ।

विमुक्तमङ्ग त दृष्ट्वा प्रोचु स्वपितरो मुनिम् ॥३

वत्स वस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसग्रहः ।

स्वर्गाश्वगंसेतुत्याह-वस्तेनामिष विना ॥४

गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथाहंणम् ।
 ऋषीणामपिनाञ्चैव कुर्वन्लोकानवाप्नुयात् ॥५॥
 स्वाहोच्चारमातो देवान्स्वधोच्चरणतः पितृन् ।
 विभजत्यन्नदानेन भृत्याद्यानतिथीनपि ॥६॥
 सत्त्वं देवाहृणाद्वन्धमिमस्मद्गुणादपि ।
 प्रवासोऽपि मनुष्यर्षे भूतेभ्यश्च दिने दिने ॥७॥
 अनुत्पाद्य मुतान्देवान्गन्तं प्य च पितृस्तथा ।
 प्रकृत्वा च कथं मोक्षं स्वर्गं गन्तुमिच्छसि ॥८॥
 बलेशबोधकं पुत्रं धन्यायेन भवेत्तव ।
 मृतस्य नृकं त्यक्त्वा बलेश एवाग्न्यजन्मनि ॥९॥

सूक्तों ने कहा—मनवान् श्री हरि ने ब्रह्मा आदि के लिए और हर के लिए चौदह मन्त्रों का मन्त्रिस्तार वाचन किया था । मार्कण्डेय महर्षि ने क्रोधवर्षी से पितृस्तोत्र कहा था उत तुम अब ध्यान करो । मार्कण्डेय मुनि ने कहा था—पहिले बलि नामधारी प्रजापति का जो बिल्कुल निर्मम और बिना महङ्कार वाला था । जो पर प्रसन्नचित्त भावा वाता होकर वह इस भूमण्डल में विचरण किया करता था ॥१॥२॥ अनग्नि-बिना निकेत वाला—एक ही बार माहार करने के लिये और प्राथम्य रहित एवं विमुक्त मन्त्र सबको शेरकर स्व-पितरों ने मुनि से पूछा था । पितृपण ने कहा—हे उत ! तुम ने पुरण्य कथो नहीं किया और दारा का सग्रह भी जिस कारण से नहीं किया है ? मर्षात् विवाह करने नहीं किया है ? दागपरिग्रह तो रजस और प्रवर्णों का सेतु होता है । प्रायश्चित्त के बिना हमने बन्ध होता है ॥३॥४॥ गृहस्थ प्राथम्य से रहते वाला व्यक्ति प्रसन्न देवा का पितरों का—ऋषियों का और प्रवियों का प्रवचन—सत्कार करता हुआ उत्तम लोकों की प्राप्ति किया करता है ॥५॥ “स्वाहा”—इस शब्द के उच्चारण करने से पितृ-क उच्चारण से देवों को—“स्वधा”—इस शब्द के उच्चारण करने से पितृ-पण को और प्रम के दान दन से भृत्यादि को तथा प्रतिक्रिया को गृही सत्त्व का विभाजित किया करता है । वह नू देव ऋण से और हमारे भी ऋण से इन बन्धनों को प्राप्त हूँ, भी मनुष्य—ऋषि और ब्रूतों के नियम माये दिन मुनी

को उत्पन्न न करके देवो घोर पितरो का तर्पण न करके तू कैसे मोहड़ब स्वर्गति को प्राप्त करला जाइला है ? कनेज बोध से एख हो पुन तेरे अन्धारे होवे तो मृत के नरक भी स्वाग कर अ य जन्म म बनय ही होगा ॥६॥१०॥६॥

परिश्रमोऽतिदुःखाय पापायाधामतेस्तथा ।

भवत्यतो मया पूर्वं न कृता दारतपह ॥१०॥

आत्मनः सशयोभाय प्रियते दशमन्मरणात् ।

स्वमुक्तिहेतुन भवत्यसावपि परिग्रहान् ॥११॥

प्रधात्यतेऽनुदिनस्य य आत्मा निष्परिग्रहः ।

ममत्वपद्धदिधोऽपि निशाम्भाभिवर हि तव ॥१२॥

अनेकभयमभूतामपद्माद्धितो गुर्धः ।

आत्मा नावज्ञानताय प्रधात्य गियतन्द्रियं ॥१३॥

मुक्तिं प्रशालनं कर्तुं मात्वनोऽपि यतन्द्रियः ।

किन्तु नापायमागोप्य यतस्त्व पुन वतरे ॥१४॥

एधि न बह्ना—इद संगार म जो भी कुछ परिग्रह होता है वह वायत दुःख के लिए ही इष्टा करता है । परिग्रह राव घोर सयोगति के करने के लिए होता है । इसीलिए मैंने दारामो का शग्रह नहीं किया है ॥ १० ॥ आत्मा के तपय का उपाय मैं शत्रु मन्त्रण से किया करता हूँ । यह परिग्रह से स्वमुक्ति का हेतु नहीं होता है ॥११॥ जो निष्परिग्रह होकर अनुदिन आत्मा का प्रशालन करता है । विद्यामम स ममत्व के पक्ष से दिव्य भी वह अधुनर होता है ॥१२॥ अनेक जन्मों न होत बाने हमों व पक्ष से मद्धित आत्मा को निषम इन्द्रियो बाते सुपन्न साधनान के जल मे प्रशालित किया करत है ॥१३॥ तब यह मुन कर पितरगण बीत—२ पुन । यन इन्द्रियो वालों व दामा अपनी मनेव जन्मो म पद्धाद्धित आत्मा का प्रशालन करलेना बहुत मुक्त है कि तू यह तुम्हारे निषे कोई उपाय का माग नहीं है जिस नि तुम कर रहे हो ॥१४॥

पश्यान्मन्पादानैरगुम मुदतस्तव ।

पनाभियधिरहितं पूवमम सुभागुम ॥१५॥

एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम् ।

न च बन्धाय तत्कर्म भयत्यनतिमतिभम् ॥१६

पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयते ह्यनिश तथा ।

सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम् ॥१७

एव प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते ।

रक्ष्यश्च स्वविवेकैर्न पापपङ्क्तौ न दह्यते ॥१८

अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गा पितामहा ।

न तस्य कर्मणो मार्गो भवन्तो भोजयन्ति माम् ॥१९

अविद्या सर्वमेवंतत्कर्मणैस्तन्मृषा वच ।

किन्तु विद्यापरिव्याप्तौ हेतुः कर्म न नश्य ॥२०

विहिताकरणानर्थो न सद्भिः त्रियते नु यः ।

सयमो मुक्तये योऽस्य प्रत्युत्पाद्यमभिप्रद ॥२१

पाँच यज्ञी मे—तप और दानो मे प्रधुभ कर्म का मोदन करने वाले सुम्हारा पूर्व कम सुभाधुभ कर्मो को समिसन्धि मे रहित है । इस प्रकार से करणात्मक कर्म कृत हुए को बाधा नहीं होती है और वह कर्म बन्ध के लिये भी नहीं होता है क्योंकि वह घनति सन्निभ होता है जो पूर्व कर्म है वह निरन्तर भोगो के द्वारा क्षीण होता है । हे बन्ध ! मनुष्यो के पुण्यापुण्या मक कम सुख एक दुःख स्वरूप भोगो से क्षीयमाण हो जाते है । इसी प्रकार से प्राप्त पुण्या के धारण-प्रक्षालित किया जाता है और बन्ध मे रक्षित किया जाया करता है । और अपने विवेक मे ही रक्षा करने के योग्य है जो कि पाप के पङ्क्तु से दह्यमान नहीं होता है ॥१५ मे १८॥ कवि न कह्य—हे पिता महो ! आप तो कर्म मार्ग जाने है । वेद मे इस अविद्या का पालन किया जाना है । यह सभी जानते हुए आप मुझे पुनः कर्म मार्ग मे क्यों योजित कर रहे हैं ? पितृगण बोले—यह सम्पूर्ण अविद्या ही है । यह कर्म से है—यह कहना मिथ्या बचन है किन्तु विद्या परिव्याप्ति मे कर्म हेतु है इसमे कोई भी मशय नहीं है ॥ १९।२० ॥ मनुष्यो के द्वारा विहित मे न करने का अनर्थ जो नहीं किया जाता है वह

सयम मुक्ति के लिए होता है बल्कि मन्य जो है वह अघोगति के प्रदान करने वाला है ॥२१॥

प्रक्षालयामीति भावान्यदेतन्मन्यते वरम् ।
 विहिताकरणोद्भूतं पापैस्त्वमसि दह्यसे ॥२२॥
 अविद्याऽप्युपकाराय विपवज्जायते नृणाम् ।
 अनुष्ठानाभ्युपायेन बन्धयोग्यापि नो हि सा ॥२३॥
 तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसग्रहम् ।
 आजन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिकम् ॥२४॥
 वृद्धाऽहं साम्प्रतं को मे पितरं सम्प्रदास्यति ।
 भार्यान्तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसग्रह ॥२५॥
 अस्माकं पतेन यत्स भवतश्चाप्यधोगतिः ।
 नूनं भावि भविषी च नाभिनन्दसि नो वच ॥२६॥
 इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम ।
 बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वातहता इव ॥२७॥
 मुनि औचुक्ये प्राह मार्कण्डेयो महातपा ।
 रुचिवृत्तान्तमखिलं पितृसवादलक्षणम् ॥२८॥

मैं भावों का प्रक्षालन कर रहा हूँ—यहाँ जो तुम थोड़ा मानते हो वह तुम विहित कर्म के न करने से समुत्पन्न पापों से दग्ध हो रहे हो ॥२२॥ अविद्या भी मनुष्यों को विप की भाँति उपकार के लिये होती है । वह अविद्या अनुष्ठान के अभ्युपाय से बन्ध के योग्य भी नहीं है ॥२३॥ इससे हे वरस ! तुम विधिपूर्वक दारा का सग्रह करो । आजन्म अन्य लौकिक को सम्प्राप्त न करके तेरा जन्म विफल होवे ॥२४॥ इसके पश्चात् रुचि न बड़ा—हे पितृवृन्द ! मैं तो इस समय वृद्ध हो गया हूँ भव मुझे कौन भार्या प्रदान करेगा । भुक्त जैसे दरिद्री को इस समय दार सग्रह करना अत्यन्त कठिन कार्य है ॥२५॥ तब पितरा ने कहा—हे यत्स ! तुम हमारे वचन को नहीं स्वीकार कर रहे हो तथा माने भावि एव भविषा जीव व भी न नन्द । नहीं करते हैं ।

दममे ह्यम मोहो वा तो पतन होवा और दुःखारी भी घबोराति हो भावयो ।
॥२६॥ हे मुनि सतम ! ललके निरूपण इतना बड़ा कर उसक देखते देखते
हो दाव से इन दोषो की भाँति गहका मन्दय हा मये दे ॥२७॥ महान् तप-
श्चो मायेंद्रेय मुनि ने क्रौञ्चकुं स कहा था वह सम्पूर्ण हवि का वृत्तांत
घोर उमक साथ हीन माना भेतरो क साथ सम्वाद है ॥२८॥

५.- पित्राख्यान-पितृस्तोत्र (२)

पृष्ट भीरु किनोवाच माकण्डेय पुनश्च नम्र ।
स तेन पितृवाक्येन श्रुतमुद्धिग्नमानसः ॥१॥
कन्याभिलाषा वि-दि पण्डितधाम मदिनीम् ।
कन्यामनुमानागो पितृवाक्येन दीपित ॥
चिन्तामदाय महतोमनीवोद्धिग्नमानसः ॥२॥
किं करोमि वद गच्छामि कथ मे दास्यसि ॥
श्रिय भवेन्मत्पितृणां समाम्पदयकारकम् ॥३॥
इति चिन्तयन्स्मर्य मनिर्जाता महारथनः ।
तपनाऽप्रापयाम्यन गृह्याण कर्मलोद्धवम् ॥४॥
ततो वपनत दिव्य तपस्वये महापना ।
तत्र स्थितश्चिरं काले वनेषु निवसस्थितः ॥
धातुगन्धस्य स तदा पर नियममास्थितः ॥५॥
ततः प्रदर्शयामास ब्रह्मा नारायणतामह ।
उवाचाय प्रसन्नोऽस्मीत्युत्थनाममिवास्त्रियम् ॥६॥
तताऽभी प्रणिपत्त्याह ब्रह्माण जयनो यतिम् ।
पितृणां वचनात्तेन यत्कर्तुं ममिवाञ्छितम् ॥७॥

सूत्रो ने कहा—श्रीशुक्रि ब द्वारा पूछे मये मायेंद्रेय मुनि ने पूछ
उमक कहा कि यह हवि उन पितरों क वाच से बहुत ही अधिक उद्धिग्न भन
माना हो गया था ॥१॥ तब तो वह हवि दियो कन्या प्राप्त करने की इच्छा
माना होकर सम्पूर्ण वृक्षो वनधन में अमल करने लगा था । उसे जब वही

नमस्येह पितृन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।

श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदग्निनः ॥१७॥

नमस्येह पितृन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।

वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदाग्निनः ॥१८॥

नमस्येह पितृभ्ये वे तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।

पत्न्ये श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिदधूतकल्मषैः ॥१९॥

नमस्येह पितृन्विप्रैर्गोष्ठिकैर्मन्वारिभिः ।

ये सयतात्मभिनिर्य सन्तप्यन्ते समाधिभिः २०

नमस्येह पितृन्श्राद्धै राजन्यास्तपैर्यन्ति मातृ ।

वर्ष्यैर्यैर्विधिवत्तत्तद्व्यपलप्रदान् ॥२१॥

मैं अपने रिश्तेदारों को नमस्कार करता हूँ जिनको स्वर्ग में सिद्ध लोग श्राद्धों में समस्त दिव्य और परमोत्तम उपहारों के द्वारा सन्तुष्ट किया करते हैं ॥१५॥ मैं अपने पितृगण की सेवा में प्रणाम करता हूँ जोकि दिव्यलोक में सन्मयता के साथ परात्पत्निकी श्रुद्धि की इच्छा करने वाले गुह्यकों के द्वारा भक्ति भाव से समर्पित किये जाते हैं ॥१६॥ मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सदा इस भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा बड़ी श्रद्धा से अभीष्ट लोक और पुष्टि के प्रदान करने वाले श्राद्धों में पूजित किये जाते हैं ॥१७॥ मैं अपने पितृगण को प्रणाम करता हूँ जो पितरगण सर्वदा इस महो मण्डल में आचार्यत्व के प्रदान करने वाले हैं और वाञ्छित अभीष्ट लाभ के देने वाले हैं विप्रों के द्वारा समर्पित हुमा करते हैं ॥१८॥ मैं अपने पितृदेवों को सेवा में प्रणाम करता हूँ जो वे वन में निवास करते वाले-तपस्या से निर्धूत कल्मष वाले और आहार वाले मनुष्य श्राद्धों के द्वारा सदा तृप्त किया करते हैं ॥१९॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो धर्मदायी-सयत पास्या वाले वैदिक विप्रों के द्वारा निर्य ही मम धियों के द्वारा सन्तुष्ट किये जाया करते हैं ॥२०॥ मैं उन पितृ देवों को नमस्कार करता हूँ जिनको शत्रिय लोग स्त्री स्त्री के पत्नी को देने वाले होने के कारण विधि पूरा मनुष्यों श्राद्धों में वर्षों के द्वारा तृप्त करते हैं ॥२१॥

नमस्येऽहं पितृन्वंश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
 स्वकर्माभिरर्तनित्यं पुष्पधूपधनारिभिः ॥२२॥
 नमस्येऽहं पितृन्वाद्ये शूद्रेऽपि च भक्तिनः ।
 तन्त्यर्च्यन्ते जगत्कुल्मसं नाम्ना स्थाता मुकानिनः ॥२३॥
 नमस्येऽहं पितृन्वाद्ये पाताने ये महामुरं ।
 सन्त्यर्च्यन्ते सुपाहारास्त्यक्तदम्भमदे सदा ॥२४॥
 नमस्येऽहं पितृन्वाद्यैरर्च्यन्ते ये रसातले ।
 भोगैर्योषविधिवन्मार्गं कामाननीप्सुभिः ॥२५॥
 नमस्येऽहं पितृन्वाद्यं मयि मन्तपितान्तदा ।
 तनेव विधिवन्मन्त्रमोगसम्पत्तामन्वितैः ॥२६॥
 पितृभ्रमस्ये निवमन्ति साक्षात् देवलाकेऽयं महीतले वा ।
 तयाऽन्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मनोपनीतम् ॥२७॥
 पितृभ्रमस्ये परमार्थभूता ये श्री विमाने निवसन्त्यमूर्ताः ।
 यजन्ति यानस्तमर्चमनोभिर्योमीश्वरा क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८॥
 मैं भ्रम पूज्य पितरो की सेवा में अभिवादा करता हूँ जिनकी इस मही
 ॥२८॥ में सदा भ्रमने कभी मैं निरत पुष्प धूप—धन और जल के द्वारा वंद्यो
 व समर्पना की जाती है ॥२२॥ मैं पितरो की नमस्कार करता हूँ जो नाम से
 धूप जगत् में मुकानो स्थान है शूद्रों के द्वारा भी थड़ा में भक्ति—भाव से
 सत्पुत्र किये जाते हैं ॥२३॥ मैं पितरो की प्रणाम करता हूँ जो सुपाहार खाद
 में पाताल लोक में मद और दम्भ का त्याग करने वाले महामुरों के द्वारा भनी
 मैं सन्त किये जाया करते हैं ॥२४॥ मैं भ्रम पितृगण की नमस्कार करता
 हूँ जिनकी पूजा एवं सत्पुत्र कामनाओं के चाहने वाले समस्त भोग और नागों
 व द्वारा विधि पूर्वक रसातल में थादों के माध्यम से की जाया करती है ॥२५॥
 मैं पितरो की प्रणाम करता हूँ जो सत्य थादा के माध्यम से सर्पों के द्वारा
 सन्तर्कित हैं । वे सर्वें वहाँ पर विधिवत् मन्त्र—भोग और सम्पदा से समन्वित
 हैं ॥२६॥ मैं उन पितृगणों की नमस्कार करता हूँ जो मासात् देवलोक में—
 महीतल तथा अन्तरिक्ष में निवास किया करते हैं । वे सुरारि के पूज्य हैं और

वे मेरे मनोपवीत को प्रदान करें ॥२७॥ मैं विदूषणों को प्रणाम करता हूँ जो परमार्थ स्वरूप एवं समुत्तम रूप वाले विमान में निवास किया करते हैं और जिनको ज्ञेयों की मुक्ति के कारण भूतों को योगीश्वर तथा निरस्त मत वाले मनो से यजन किया करने है । २८॥

पितृधर्मस्ये दिवि ये च मूर्त्ता स्वधाभुज काम्यफलाभिस्तनू ।
प्रदानशक्ता सकलेप्सिताना विमुक्तिदा येऽनभिसहितेषु ॥२६॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितर समस्ता इच्छावता ये प्रदिशन्ति कामान् ।
मुरस्त्वमिन्द्रत्वमितोऽधिक वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥३०॥
सौमस्य ये रश्मिषु येऽर्कविम्बे ध्रुवले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोष्यगंधादिना पुष्टिमितो यजन्तु ॥३१॥
येषां हुतेऽन्नो हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जन्ते विप्रशरीरसस्था ।
ये पिण्डदानेन मुद प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोष्ये ॥३२॥
ये राज्ञामाग्नेन सुरैरभीष्टं वृष्णंस्तिर्लक्ष्मिपमनोहरैश्च ।
वातेन शक्तिन महर्षिब्रह्मै सप्रोणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३॥
कथान्यशेषाणि च यान्यगोष्ठान्यतोष्य तेषां नम पूजितानाम् ।
तेषाञ्च मानिष्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्णन्तेऽर्वा मासान्तपूजया भुवि येऽष्टनासु ।
ये वत्सरान्तेऽम्पुदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितुरोऽन्न तुष्टिम् २५

मैं पितरों की गणतकार करता हूँ जो दिवलोक में मूर्त्त रूप वाले हैं और काम्य फल की अभिसन्धि में स्वर्षा का योग करने वाले हैं तथा समस्त प्रवीणों के प्रदान करने में समर्थ हैं एवं जो किसी फल की प्राप्ति इच्छा नहीं है उनको विमुक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥२६॥ इच्छा रखने वालों की कामनाओं को जो पूर्ण किया करते हैं वे सम्पूर्ण विदूषण इससे तृप्ति लाभ करें । गुरुत्व प्राप्त करने की—इन्द्र के पद पान की या हमसे भी अधिक की हुई पद पाने की अभिलाषा हो और गज—अश्व—रत्न एवं गजाश्च गृहा पाने की कामना हो विदूषण सभी को पूर्ण किया करते हैं ॥२७॥ जो चन्द्रमा को रश्मियों से—

सूर्य के विम्ब में—ध्रुवस विमान में सदा निवास किया करते हैं वे पितरगण
इसमें वृत्त होवे और धन-जन तथा गन्ध आदि के द्वारा पुष्टि को प्राप्त होवे
॥३१॥ अग्नि में हवि में हवन करने पर जिसकी वृत्ति होती है और जो विप्रो
के शरीर में सन्निहत होने हुए योजन करने हैं । जो पिण्डदान से प्रसन्नता प्राप्त
करते हैं वे पितरगण यहाँ प्रश्न और इन स वृत्ति प्राप्त करे ॥३२॥ जो सन्त
मोक्ष से दशों के द्वारा य-भोग दिव्य एवं मनाहर सुष्ण तिगा से तथा महर्षि
वर्षों के द्वारा त-कालीन शाक स प्रीतिव होते हैं वे यहाँ पर साद को प्राप्त
करे ॥ ३३ ॥ कथान्य म क्षेप जा मर पूजित वर्षों का अतीव यभोग हा उन
॥३४॥ आ प्रतिदिन प्रार्थना का प्रहस करत हैं और जो जटकाया म भूमण्डल में
मायात में पूज्य शाक हैं और जो यन्त्र क मन्त्र में और मन्त्रुरम के प्रवयर
पर पूजा करने के साथ हान है व मर पितृगण यहाँ पर अब तुष्टि का प्राप्ति
कर ॥३५॥

पूज्या विजाना बुमुदेन्दुभामो ये क्षान्तिवाणा ज्वलनार्कवर्णा ।
तथा विधा ये कनकावदाता नीलीप्रभा द्यूज्जनस्य ये च ॥३६॥
तेऽस्मिन्तमस्ता मम पुण्यगन्धयूपाम्बुभोज्यादितिबेदेन ।

ये देवपुत्राणिनिवृत्तिहेतोर्नश्रन्ति कल्पानि शुभाहुतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिवृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मि प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥३७॥

रक्षासि भूतान्दमुरास्तयोश्चातिनिशयन्तु त्वचिव प्रजानाम् ।
माया मुराणाममरेक्षपूज्यान्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥३८॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपा सोमपास्तथा ।
अजन्तु वृत्ति आद्वैऽस्मिन्पितरन्विता मया ॥३९॥

अग्निष्वात्ता पितृगणा प्राचीं रक्षन्तु मे दिसम् ।
तथा बर्हिषद पान्तु याम्वा मे पितर सदा ॥

प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपा ॥४०॥

रक्षोभूतपिशाचैर्म्यस्तथैवानुरदोपत ।

सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः ॥४२॥

द्विजों के जो कुमुद और जल की आभा ने समान आभा वाले मूख हैं जो क्षत्रियों के अग्नि और सूर्य के तुल्य वर्ण वाले हैं तथा वैश्यों के सुवर्ण के समान भवदात हैं और शूद्रों के जो नीची की आभा के तुल्य शभा वाले हैं वे समस्त पितृगण इसमें मेरे द्वारा निर्देशित किये हुए—गन्ध—धूप—जल और भोजनीय पदार्थों से वृत्ति को प्राप्त होवे तथा जो अग्निहोम से वृत्ति को प्राप्त किया करन है उन पितरों की मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ३६।३७ ॥ जो देव पूज्य अग्नि वृत्ति प्राप्त करने के लिए शुभ एवं चाहत कष्टों का भक्षण किया करते हैं जो भूत के गृहजत करने वाले वृत्त हैं वे यहाँ पर भी वृत्त हो जावे । मैं उनके समय में प्रणत होता हूँ ॥३८॥ जो पितृगण है वे राक्षस—भूत तथा अन्य उग्र भूतों का एक प्रजापति के अग्रज हैं उसका नाश कर देवे । जो सुरों में सर्व प्रथम हैं और देवों के द्वारा पूजा के योग्य हैं वे विश्व—इसमें वृत्ति का लाभ करें । मैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निस्वात्—वह्निपद—आज्यप तथा सोमपात करने वाले हैं वे समस्त पितरों मेरे द्वारा एक धातु में संविष्ट होते हुए परम वृत्ति को प्राप्त होवें ॥४०॥ अग्निस्वात् पितृगण मेरी प्राची दिशा की रक्षा करें । वह्निपद पितृगण सदा मेरी साम्य दिशा की रक्षा करें । आज्य (पूत) का पान करने वाले पितृगण प्रतीची दिशा और सोमपात करने वाले सदीची दिशा में रक्षा करें ॥४१॥ विवरणशु चन्द्रा नित्य ही राक्षस—भूत—पिशाचों से तथा भूतों के विवेक हुए दोषों से मेरी रक्षा करें ॥४२॥

विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्य शुभाननः ।

भूतिदो भूतिवृद्धभूति पितृगण ये गणा नव ॥४३॥

नत्प्राण नत्पद नत्ता नत्प नत्पतराश्रयः ।

नत्पताहतुन्नय नत्तिमे ते गणा स्मृता ॥४४॥

धरो धरेणो वरदन्तुष्टि पुष्टिदन्तया ।

विश्वपाता तथा घाता सर्वत्र च गणा स्मृता ॥४५॥

महान्महात्मा महिषो महिमावान्महावतः ।
गया पञ्च तथैवंते पितृणा पापनाशना ॥४६॥

मुलदो घनदञ्जान्यो धर्मदोज्यश्च भूतिद ।
पितृणा कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ॥४७॥

एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तिमन्त्रित जगत् ।
त एवाय पितृगणास्तुभ्यन्तु च मदाहितम् ॥४८॥

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुचिद्रुत ।
प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्यामिकात्क ॥४९॥

तद् दृष्ट्वा मूमहत्तेज समाच्छाद्य स्थित जगत् ।
पातुम्यामिवनी गत्वा रुचि स्तोत्रमिव जगौ ॥५०॥

विश्व-विश्व भुक्-भाराण्य-धर्म-अन्य-धुमानन-भूतिद-भूति कृद्
घोर भूति ये पितरो के वो दण्ड हैं ॥ ४३ ॥ कन्याण-रत्नद-कर्ता-कल्प-

कल्पलगाभय-कल्पका हेतु घोर प्रलप ये छे गण कहे गये हैं ॥४४॥ वर-

वरेण्य-वरद-तुष्टिद-तुष्टि-विश्व पाता घोर पाता ये सात गण कहे गये हैं

॥ ४५ ॥ महाद्-महात्मा-महित-महिमावान्-महावत ये पापों के नाश करने

वाले पितरों के सभी प्रकार से पाँच दण्ड हैं ॥ ४६ ॥ मुग्ध-मन्द-अन्य धर्मद

घोर अग्न्य भूतिव मे सभी मन्त्रि पितरों के चार गण कहे जाते हैं ॥४७॥ इष

प्रकार से दृष्टीय पितृगण हैं जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । वे

सभी यही मरे त्रिदिन भ्रातृ म पितृगण तुम्हें जो प्राप्त होवें ॥४८॥ मार्कण्डेय

जो बोले-इन प्रकार से स्तवन करते हुए आपको देव की राशि उत्पित हुई

घोर तुरन्त ही गगन में व्याप्ति करने वाली यह प्रादुर्भूत हुई थी ॥४९॥ उस

मुपहार देव की देवकर जो कि सम्पूर्ण जगत् को समाच्छादित कर स्थित था,

घुटनों के दल से भूमि पर स्थित होकर रुचि ने इस स्तोत्र का पावन किया

पा ॥ ५० ॥

प्रचितानाममूर्त्तानां पितॄणा दीप्ततेजसाम् ।

नमस्त्यामि तदा संपा ध्यानिना दिव्यचनुषाम् ॥५१॥

इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ।
 सप्तर्षिणा तथान्येषा तान्नमस्यामि वामदान् ॥५२॥
 मन्वादीनाञ्च नेतार सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
 तान्नमस्याम्यह सर्वाप्तिवृत्तान्पुद्गधार सः ॥५३॥
 नक्षत्राणा ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्यो नभस्तथा ।
 छावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥५४॥
 प्रजापते वस्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
 योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥५५॥
 नमा गणेशाय सप्तम्यस्तथा लावेपु सप्तसु ।
 स्वायम्भुवे नमस्यामि ग्रहण योगचक्षुषे ॥५६॥
 सोमाधारान्वितृणान्योगमूर्तिधरास्तथा ।
 नमस्यामि तथा सोम पितर जगतामहम् ॥५७॥

शिव ने कहा—मनित एव समूह तथा हीन तेज वाले—ध्यानी और
 दिव्य चक्षुषी वाले उन विवृणो की मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ इन्द्र
 आदि देवी के नेता—दक्ष और मारीच के नेता—सप्तर्षियों के तथा मन्वी के
 नेता उन वामनामी के देन वाले की मैं नमस्कार करता हूँ ॥५२॥ मनु आदि
 के नेता तथा सूर्य और चन्द्र के नाथ मैं उन सब विवृणो को नमस्कार करता
 हूँ । उगने समस्त पितरों का उद्धार किया था ॥५३॥ नक्षत्रों—ग्रहों का नेता—
 वायु और अग्नि का नेता—नभस एव छावा पृथिवी के नेता उनको मैं कृताञ्जलि
 होकर प्रणाम करता हूँ ॥५४॥ प्रजापति वसव—गोम—वरुण और योगेश्वरी
 के लिए मैं सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥५५॥ सात सोरो म सात
 गणों के लिए नमस्कार है । स्वायम्भू के लिए नमस्कार है और योगचक्षुषी या
 ग्रहा के लिए नमस्कार है ॥५६॥ सोमाधार तथा योग मूर्तिधर विवृणो को
 एव जगतों के पिता गोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

अग्निष्वास्त्येवान्यान्नमस्यामि विवृतम् ।

अग्निगोममम विद्वन्मा एतदोपत ॥५८॥

ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निभूतपः ।

जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिण ॥५६॥

तम्पोऽस्त्रिभ्यो योगिभ्य पितृभ्यो यतमानस ।

नमो नमो नमस्तंनु प्रमोदन्तु स्वधाभुज ॥५७॥

एवस्तुतास्ततस्तोन तेजसो मुनिमत्तमा ।

निश्चक्रमुस्ते पितरो भासन्तो दिशो दश ॥५८॥

निवेदनञ्च यत्नोऽपुष्पगन्धानुलेपनम् ।

तद्भूषितानय स तान्दृष्ट्वै पुरत स्मृतान् ॥५९॥

प्रक्षिपत्य रुचिर्भरत्या पुत्रैव कृताञ्जलि ।

नमस्तुभ्य नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृत ॥६०॥

ततः प्रसन्ना पितरस्तमूढपुं नितत्तमम् ।

वरं धृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धर ॥६१॥

अग्नि रूप अन्य पितरो को मैं नमस्कार करता है जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि सोममय है ॥५५॥ और जो ये तेज में हैं तथा जो ये सोम-सूर्य और अग्नि की मूर्ति वाले हैं । इन सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं तथा ब्रह्म के स्वरूप वाले हैं उन समस्त योगी पितरों की दक्षिण होकर मेरा बारम्बार नमस्कार है मेरा आपके निम्न प्रणाम है । अब स्वधा भोजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवे ॥५६॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर इस प्रकार से उसके द्वारा स्तवन दिये गये तेज स्वरूप मुनि मनस के पितृगण दशो दिशाओं की भांति करते हुए निरुले थे ॥ ५७ ॥ उनके द्वारा जो भी पुष्प-गन्ध और अनुलेपन निवेदित किया गया था उस सबसे विह्वलित छात्रों मान ने श्रित समने देना था ॥५८॥ रुचि ने फिर हाथ जोड़कर उनकी प्रणाम किया और बह्व ही भक्ति के भाव में प्रक्षिपत्य किया था । रुचि ने "आपको नमस्कार है—सावना नमस्कार है"—ऐसा पृथक् रूप से आदर के साथ कहा था ॥५९॥ इसके अनन्तर पितृगण उस पर बह्व प्रसन्न हुए और मुनि श्रेष्ठ से बोले—तुम अपना अभीष्ट वरदान माँग लो । इसे सुनकर अपनी गरदा नीचे झुकाकर उनसे कहा—॥६०॥

प्रजानां सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ।
 सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्या दिव्या प्रजावतीम् ॥६५॥
 अथैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
 तस्याश्च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम ॥६६॥
 मन्वन्तराधिपो धीमास्तन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
 रुचे रोच्य इति ख्यातिं प्रयास्यति जगत्त्रये ॥६७॥
 तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
 भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥६८॥
 त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजां सृष्टुं चतुर्विधा ।
 क्षीणाधिकारो धर्मज्ञस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥६९॥
 स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मात्तोष्यति भक्तितः ।
 तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मजं ध्यानमुत्तमम् ॥७०॥

रुचि ने कहा—प्रजापति के सर्ग को करने के लिए ब्रह्माजी ने मुझे आदेश
 प्रदान किया है । इसलिये मैं प्रजा का मृजन करने के लिए परमदिव्य धन्य और
 प्रजापति वाली पत्नी चाहता हूँ ॥६५॥ पितृगण ने कहा—यहाँ पर ही तुम्हें ही
 मत्पन्त मनोरमा प्राप्त होगी पत्नी हो जावेगी । हे मुनिपति मे परम ध्येष्ट । उस
 पत्नी में तुम्हारे एक पुत्र होगा ॥६६॥ वह मन्वन्तर का स्वामी—परम बुद्धि-
 मान् और उसी नाम से उपलक्षित रुचि का रोच्य इस ख्याति को तीनों जगत्
 में प्राप्त करेगा ॥६७॥ इसके भी बहुत-से पुत्र होंगे जो महान् बल और पराक्रम
 वाले होंगे और महान् आत्मा वाले तथा पृथ्वी के परिपालन करने वाले होंगे
 ॥६८॥ और तुम प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा का मृजन करके क्षीण
 अधिकार वाले होते हुए धर्म के शाता हो जाओगे और इसके अनन्तर परम सिद्धि
 की प्राप्ति करोगे ॥६९॥ इन स्तोत्र से जो मनुष्य हमारी भक्ति के सहित स्तुति
 करेगा उस पर हम परम मनुष्य होते हैं और उसे समस्त भोग-पुत्र तथा उत्तम
 ध्यान प्रदान किया करते हैं ॥७०॥

आयुरोग्यमर्थञ्च पुत्र पौत्रादिक तथा ।

वाञ्छद्भिः सतत स्तव्या स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥७१॥

थाद्वेषु य इमं भवत्या अस्मत्प्रोतिकरं स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाश्रया भुज्जता पुरतः स्थितः ॥७२॥

स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधाने परे कृते ।
अस्माभिरक्षयं थाद्व तद्भविष्यत्यसगय ॥७३॥

यद्यप्यश्रोत्रिय थाद्व यद्यप्युपठत भवेत् ।
अन्यापोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥७४॥

अथाद्धाहंरूपहतरूपहारैरतया कृते ।
अकालेऽप्ययवा देधे विधिहीनमथापि या ॥७५॥

अथद्वधया वा पुरुषेदंभमाश्रित्य यत्कृतम् ।
अस्माक तृप्तये थाद्व नयाप्येतदुदीरणात् ॥७६॥

यत्रैतत्पठ्यते थाद्व स्तोत्रमस्मत्पुनः ॥७७॥
अस्माक जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवापिकी ॥७८॥

जो मायु-प्रारोप-मयं और पुन-त्रोत्रादिक के प्राप्त करने की अभि-
लाषा रखते हैं उन्हें इस सूत्र में निरन्तर हमारी स्तुति करनी चाहिए ॥७१॥
यह जो इत हमारी प्रीति के समुत्पन्न करने वाले स्तव का भक्ति भाव के
साथ पाठ करेगा जबकि थाद्व के समय में प्राह्मण खोग भोजन कर रहे होंगे ।
उनके समझ में स्थित होकर हमको पड़ेगा तो इस सूत्र के श्रवण की प्रीति से
हमारे द्वारा सन्निधान की किये जान पर वह थाद्व प्रलय हो जायगा-इसमें कुछ
भी सद्य नहीं है ॥७२॥७३॥ यद्यपि श्रोत्रिय विशेष से रहित थाद्व हो-यद्यपि
उपहृत और अगम से राक्ष किये हुए यन में किया गया हो जिसका कि
विधान नहीं है-थाद्व के अगोचर एक उपहृत उपहारों से किया गया हो और
प्राप्त एवं अदेस में विधान से रहित किया गया हो-किन्तु थाद्व के दम्भ का
माध्यम लेकर पुरुषों के द्वारा किया गया हो किन्तु यदि इस स्तव वा पाठ किया
जावे तो वह भी हमारी परम प्रीति के लिए हो जाता है ॥७४॥७५॥७६॥ जिस
थाद्व में हमारे मुख के देने वाले इस स्तव का पाठ किया जाता है तो हमको
बारह वर्ष के लिए इससे परम प्रीति एवं वृत्ति हो जाया करती है ॥७७॥

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ।
 शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ॥७८॥
 वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये ध्यादधकर्मणि ।
 ग्रीष्मे च षोडशंवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ७९
 विकलेऽपि कृते ध्यादधे स्तोत्रेणानेन साधिते ।
 वषासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते ह्येव ॥८०॥
 शरत्कालेऽपि पठितं ध्यादधकालं प्रयच्छति ।
 अस्माकमेतत्पुरुषेस्तृप्तिं पञ्चदशान्दिकीम् ॥८१॥
 यस्मिन्नेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।
 सन्निधानं कृतं ध्यादध तत्रास्माकं भविष्यति । ८२
 तस्मादतस्त्वया ध्यादधे विप्राणां भुञ्जतां पुर ।
 ध्यावणोमं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम् ॥८३॥

यदि इस प्रकार से हम स्तोत्र के पाठ के साथ हेमन्त ऋतु में ध्यादध करें तो बारह वर्ष तक के लिए तृप्ति होगी है । शिशिर ऋतु में किये गये ऐसे ध्यादध से दससे भी दुगुनी तृप्ति वर्षा ऋतु तक के लिए होती है । ऐसा यह परम शुभ स्तोत्र है ॥७८॥ वसन्त ऋतु में सोलह वर्ष के लिए इस ध्यादध कम से तृप्ति होगी है । ग्रीष्म ऋतु में भी सोलह वर्ष की तृप्ति इस स्तोत्र के पठन करने से समुत्पन्न होगी है ॥७९॥ ऋतु चाहे विकल भी किया गया हो किन्तु इस स्तोत्र से यदि वह साधित किया जावे तो हे ह्ये । वर्षा ऋतु में किये गये ध्यादध ने हम लोगों की तृप्ति भणाय होगी है ॥८०॥ शरत् ऋतु में किये गये ध्यादध के समय में इस स्तोत्र के द्वारा हमारी षोडश वर्ष के लिए तृप्ति होगी है ॥८१॥ जिस घर में यह विद्या हुआ स्तोत्र नित्य ही विद्यमान रहा करता है तो ध्यादध के सन्निधान करने पर वह हमारे लिये ही हो जायगा ॥८२॥ इसलिये हे महाभाग ! तुमही ध्यादध के समय में विप्रों के भोजन करने के अवसर पर उनके समक्ष में इस स्तोत्र की ध्यान करता आणिये । इससे हमारी परम पुष्टि होगी है ॥८३॥

ततस्तस्मात्तदीमध्यात्तमुत्तमो मनोरमा ।
 प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्पमीषे वरात्तरा ॥८४॥
 सा चोवाच महाभाग उचि सुमधुराक्षरम् ।
 प्रमादवामास भूय प्रम्लोचा च वरात्तरा ॥८५॥
 अनीवत्पिण्डी बन्धा मत्प्रमादाद्वराङ्गना ।
 जाता वरुणपुत्रेण पुच्छरेण महात्मना ॥८६॥
 ना गृहाण मया दत्ता भार्यायै वरवर्णिनीम् ।
 मनुमन्त्रामतिस्तस्या ममुत्पत्पति ते पुन ॥८७॥
 तथेति तेन साप्युक्ता तन्मातोपाह्वयपुष्पतीम् ।
 उद्धार तन कन्या मानिनी नाम नामत ॥८८॥
 तथात्र पुमिषे तस्मिन्त मुनिर्मुनिमत्तमा ।
 जग्राह पाणि विधिर्वत्समानीय महामुनि ॥८९॥
 यस्या तस्य सुता जग्ये महाधीर्यो महाश्रुतिः ।
 रुचि रीच्य इति त्वातो यो मया पूर्वमीरित ॥९०॥

श्री मार्कण्डेय मह मुनि ने कहा — इनका मनोरमा नाम नदी के मध्य भाग में परम सुन्दरी प्रम्लोचा नाम वाली एक तन्वङ्गी उत्पन्न हुई जोकि एक बहुत ही श्रेष्ठ सपत्नी थी । वह उनके समाज में आई और उस महात्मा माता वाले इति में सत्यम् मधुर सपत्नी के बन्धी तथा जन्म प्रम्लोचा सपत्नी ने उसको प्रमत्त कर दिया था ॥८४॥८५॥ उसने कहा कि यस्य के पुत्र पुच्छर के द्वारा मेरी हत्या हो गयी है करानी है तथा वरय श्रेष्ठ पत्नी वाली कन्या उत्पन्न हुई है उसे मैं सपत्नी तथा में समर्पित करनी हूँ आज उनके सपत्नी माता के रूप में वर बलिनी को दण्ड करिए । उसमें महान् प्रति वाले मनु उसके पुत्र सुपुत्र होये ॥८६॥८७॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—देखा हो होगा—इस तरह तो रुचि ने उनके वचन को स्वीकार कर लिया तो फिर उस जल में एक परम सुन्दरी मानिनी नाम वाली बन्धा को उसने निकाला था ॥८८॥ हे मुनि तत्पमी ! उसी नदी के पुलिन में उस मुनि ने उसे साकर विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया था ॥८९॥ फिर उसने उ-वा एक बहुत शीर्य वाला तथा मातृपुत्र इति

से सम्पन्न पुत्र हुआ था जोकि रुचि का पुत्र रोच्य—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था जैसा कि हमने पहिले ही बताया है ॥६०॥

५१—हरिध्यान माहात्म्य

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मणा ।

॥१॥

आकाशेन विहीनं च तजसा परिवर्जितम् ॥२॥

उदकेन विहीनं च तद्धर्मपरिवर्जितम् ।

पृथिवीरहितश्चैव सर्वभूतविवर्जितम् ॥३॥

भूताध्यक्ष तथा युद्ध नियन्त्रार प्रभु विभुम् ।

चैतन्यरूपतारूप सर्वाध्यक्ष निरञ्जनम् ॥४॥

मुक्तमङ्ग महेशान सर्वदेवप्रपूजितम् ।

तेजोहृषमसत्त्वश्च तपसा परिवर्जितम् ॥५॥

रहित रजसा नित्य व्यतिरिक्त गुणैस्त्रिभिः ।

सर्वरूपविहीनं च नक्तृत्वादिविवर्जितम् ॥६॥

वासनारहितं शुद्ध सर्वदोषविवर्जितम् ।

विपासावर्जितं तत्तच्छोकमोहविवर्जितम् ॥७॥

मूनजी ने कह —प्रभु—माचार—मर्चना—ध्यान—स्तुति और जाप से तत्पर स्वायम्भुव आदि मुनिगण कर्म के द्वारा भगवन् श्री हरि का ध्यान करते हैं । वह हरि दृढ़—इन्द्रिय—मन—बुद्धि—प्राण और महद्कार से वर्जित है । पृथ्वी से रहित है, आकाश से हीन और तेज से विहीन है । जब से रहित और उसके धर्म से परिवर्जित है एवं समस्त भूतो से रहित है ॥१॥२॥३॥ श्री हरि समस्त भूता के अध्यक्ष—युद्ध—नियन्त्रा—प्रभु—विभु—चैतन्य रूपता के रूप वाले—सर्वके अधिराज और निरञ्जन है ॥४॥ मुक्त मङ्ग वाले—महेशान और समस्त देवा के द्वारा प्रपूजित है । श्री हरि तेजो रूपा वाले—समस्त और तप से परिवर्जित है ॥५॥ रजागुण से रहित और तीनों गुणों से व्यतिरिक्त है । सब

प्रकार के रूपों से विहीन और हरि भगवान् कर्तृत्व प्रादि से विवर्जित हैं ॥६॥ वे वाचना से रहित हैं, शुद्ध हैं, सम्पूर्ण दोषों से विवर्जित—प्राप्त से रहित और तत्त्व शोक से वर्जित हैं ॥७॥

जराभरणहीन वे मूढस्थ मोहवर्जितम् ।
उत्पत्तिरहितश्चैव प्रलयेन विवर्जितम् ॥८॥
सर्वाकारहीन सत्य निष्कल परमेश्वरम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिवर्जित मामवर्जितम् ॥९॥
अव्यक्त जाग्रदादीना शान्तरूप सुरेश्वरम् ।
जाग्रदादिस्थित नित्य कार्यकारणवर्जितम् ॥१०॥
सर्वदृष्ट तथा मूक्तं सूक्ष्म सूक्ष्मतर परम् ।
ज्ञानद्वयभोगविज्ञान परमानन्दरूपकम् ॥११॥
विदयेन रहित तद्वर्तमानेन विवर्जितम् ।
प्राज्ञेन रहितश्चैव तुरीय परमाक्षरम् ॥१२॥
सर्वगोचर सर्वदृष्ट सर्वभूतात्मरूपि च ।
बुद्धिचमविहीन व निराधार शिव हरिम् ॥१३॥

भगवान् हरि जरा (वृद्धावस्था) और भरण से रहित—मूढत्व—मोह से वर्जित—उत्पत्ति से रहित और प्रलय से वर्जित हैं ॥८॥ सम्पूर्ण आचारों से हीन तत्त्वस्वरूप—निष्कल परम ईश्वर नाम से हीन और जाग्रति, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं से वर्जित हैं अर्थात् जाग्रति प्रादि कोई भी अवस्था उनमें नहीं होती है ॥९॥ जाग्रद् प्रादि के अध्येत है—शान्त स्वरूप हैं और सुरों के ईश्वर हैं—ज प्रत् प्रादि में स्थित—नित्य—राम्य और कारण से वर्जित हैं ॥१०॥ भगवान् सर्व दृष्ट—मूक्तं सूक्ष्म तथा परम सूक्ष्मतर हैं । ज्ञान—दृक् और श्रोत्र के विज्ञान वाले—परम आनन्द के स्वरूप से समन्वित हैं ॥११॥ वे हरि विश्व से रहित और तंत्रम से विवर्जित—प्राज्ञ से रहित एवं तुरीय तथा परमाक्षर हैं ॥१२॥ सबके गोला—सभी के हुन्ता और समस्त भूतों के मातृरूपी—बुद्धि, धर्म से विहीन—निराधार—शिव और हरि हैं ॥१३॥

विक्रियारहितश्चैव वेदान्तैर्वैद्यमेव च ।

वेदरूप पर भूतमिन्द्रियेभ्य पर शुभम् ॥१४

शब्देन वर्जितश्चैव रसेन च विवर्जितम् ।

स्पर्शेन रहित देव रूपमाप्रविवर्जितम् ॥१५

रूपेण रहितश्चैव गन्धेन परिवर्जितम् ।

अनादि ब्रह्मरन्धान्तमह ब्रह्मास्मि केवताम् ॥१६

एव शात्वा महादेव ध्यानं कुर्याज्जितेन्द्रियः ।

ध्यानं यः कुरुते ह्येव स भवेद् ब्रह्म मानवः ॥१७

इति ध्यानं समाख्यानमोश्चरस्य मया तव ।

अधुना कथयाम्यन्यत्किं तद् यूहि वृषध्वज ॥१८

भगवान् समस्त प्रकार की विक्रियाग्रो से रहित है तथा वेदान्तो के द्वारा जानने के योग्य हैं—हरि वेदों के स्वरूप वाले—पर भूत—इन्द्रियो की पटुत्व से पर गव शुभ स्वरूप वाले हैं । वे शब्द से—रस से—स्पर्श से रहित देव हैं । केवल रूप से रहित हैं ॥१४॥१५॥ रूप—गन्ध से परिवर्जित हैं—अनादि हैं—ब्रह्म रन्ध्र के प्रसक्त और ब्रह्म केवल ब्रह्म हूँ—ऐसे स्वरूप वाले हैं ॥१६॥ हे महादेव ! जितेन्द्रिय पुरुष को इस रीति से भगवान् श्री हरि का ज्ञान एवं ध्यान करना चाहिए । जो इस विधि से ध्यान किया जाता है वह मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है । मैंने यह ईश्वर का ध्यान करने का प्रचार सम्पूर्ण लुम्बको बतला दिया है । अब मैं यह बतलाया हूँ वृषध्वज । मैं आपका क्या बताऊँ ? ॥१७॥१८॥

५२ — दिप्पुध्यान माहात्म्य

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ग्रूहि शङ्खचक्रगदाधर ।

येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्या भवेन्नरः ॥१

प्रवक्ष्यामि हरेर्ध्यानं मायातन्त्रविमर्दनम् ।

मूर्तामूर्तादिभेदेन तद्विधानं द्विविधं हरः ॥२

अमूर्तं रजःकणितं हन्तं मूर्तं शरीरमहम् ।

सूक्ष्मकादिप्रतीकास्तो जिप्पुध्याजिप्पुधुरेवतः ॥३

कुन्दगोभीरधवलौ हरिर्ध्वयो मुमुक्षुभि ।
विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वित ॥४॥

सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोप्ररूपिणा ।
चक्रेण चान्वित शान्तो गदाहस्त शुभानन ॥५॥

किरीटेन महाहोण रत्नप्रज्जलितेन च ।
यामुघ सर्वयो देव मरोरुहधरस्तथा ॥६॥

वनमालावर शुभ्र समासा हेमभूषण ।
सुवस्त्र सुददेहश्च मुकण पद्ममन्थित ॥७॥

श्री रत्न ने कहा—हे शङ्ख चक्र घोर गदा के धारण करने वाले । माघ
मगधान् विष्णु क ध्यान करत ही विष्णु पुन वनलाइये त्रिसके विज्ञान माघ से
ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाया करता है ॥१॥ श्री हरि न कहा—मग मैं हरि के
ध्यान की तुम्ह बतलाता हूँ जो ध्यान इस माघा तन्त्र का विमर्दन करने वाला
है । हे हर ! यह हरि का ध्यान मूल ध्यान एव श्रमूर्त ध्यान इन भेदो स दो
प्रकार का होता है ॥२॥ हर रत्न ! जो श्रमूर्त ध्यान होता है वह लो मैने अभी
तुमको बतला ही दिया है । अब मैं भगवान् हरि के मूर्त ध्यान का बतलाता
हूँ । उसका यवण करो । कगोटा मूर्त के समान प्रकाश वाल-जिष्णु घोर
हरि भाजिष्णु होता है ॥३॥ कुन्द के पुष्प घोर माघ के दुग्ध के समान धवन
वर्ण वाले हरि का ध्यान मुक्ति की दृष्टा रत्न वालो को करता पादिए । हरि
का स्वरूप विशाल एव परम सौम्य शङ्ख स समन्वित है ॥ ४ ॥ मगधान् हरि
सहस्रो मूर्तों के तुल्य ज्वालामो की मानामो से जग रत्न वाले चक्र स समन्वित
है । हरि का स्वरूप परम शान्त है । उनका मानन परम शुभ है घोर गदा
हाथो में धारण किये हुए है ॥ ५ ॥ रत्नों की म मा से सतीव जाज्वल्यमान
महाद् कीमती किरीट से सुशोभित है । भगवान् हरि का स्वरूप प्रायुषो से युक्त
सर्वत्र गमनशील घोर कमल के धारण करने वाला है ॥६॥ वनमाला घारी-
शुभ्र-समान मालों से युक्त घोर मुख के भूषणो स शोभित श्री हरि हैं ।
पद्ममन पर विराजमान परम सुन्दर वस्त्रो का धारण किये हुए-सुद देह वाले
घोर सुन्दर कानो वाला था हरि का स्वरूप है ॥७॥

हिरण्यशरीरश्च चारुहारी शुभाङ्गदः ।
 केयूरसमायुक्तो वनमालासमन्वितः ॥८॥
 श्रीवत्सकोस्तुभप्रतो लक्ष्मीवन्द्येक्षणान्वितः ।
 अणिमादिगुणैर्धुक्तः सृष्टिमहारकारकः ॥९॥
 मुनिध्येयोऽमुरध्येयो दवध्येयोऽतिमुन्दरः ।
 ब्रह्मादिस्तम्बपथ्यन्तभूतजातहृदि स्थितः ॥१०॥
 सनातनोऽय्यो मेध्यः सर्वानुग्रहकृत्प्रभुः ।
 नारायणो महादेवः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥११॥
 सन्तापनाशनोऽय्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशनः ।
 सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशनः ॥१२॥
 चावङ्गुरीयसयुक्तः सुदीप्तनख एव च ।
 शरण्यः सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वरः ॥१३॥
 सर्वालङ्कारसयुक्तश्चास्वन्दनचर्चितः ।
 सर्वदेवसमायुक्तः सर्वदेवप्रियङ्करः ॥१४॥

श्री हरि का सम्पूर्ण शरीर हिरण्य मय है—मुन्दर हार के धारण करने वाले एवं शुभ अङ्गदी के पहिनेन वाले हैं । भाग केयूर ने समायुक्त श्रीर वन-माला से सुभूषित हैं ॥ ८ ॥ श्री वत्स एवं कोस्तुभ मणि से युक्त है तथा महा-लक्ष्मी के चन्दना करने के माग्य नथो से समन्वित है अर्थात् लक्ष्मी के द्वारा दर्शनीय है । अणिमा—महिमा आदि गुणो म युक्त तथा सृष्टि के सहार करने वाले हैं ॥ ९ ॥ भगवान् श्री हरि का मूर्त स्वरूप मह मुनियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य है—अमुरा के द्वारा भी ध्यान के योग्य है श्रीर देवो के द्वारा भी ध्य है । भगवान् का स्वरूप अनीव मुन्दर है श्रीर ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पथ्यन्त भूमात्र के हृदय म विराजमान रहने वाले हैं ॥१०॥ ये सब पर अनुग्रह करने वाले प्रभु हैं—परम पवित्र एवं सनातन अर्थात् सदा सर्वदा से घने आये सनातन अक्षय है । नारायण मङ्गल्य देव श्रीर दीप्तिमन् मकर के तुल्य कुण्डलो वाले हैं ॥११॥ श्री हरि का मूर्त स्वरूप सन्तापो का नाश करने वाला है अर्थात् उन्मत् स्वरूप व ध्यान मान स ही सब प्रकार के ताप नष्ट हो आया

करते हैं । अभ्यर्चना करने के योग्य हैं । परम मङ्गल प्रदान करने वाला तथा दुष्टों का नाश करने वाला उनका स्वरूप होता है । सबकी आत्मा अर्थात् सबमें अन्तर्गामी रूप से विराजमान—सबमें गमनशील—सर्व स्वरूप भोर उनका मूर्त रूप ग्रहों को नष्ट करने वाला है ॥ १२ ॥ भगवान् श्री हरि अपने हाथों की अँगुलियों में भतीव सुन्दर अँगूठियाँ धारण की हुई हैं—उनके नख सुदीप्ति से से समन्वित हैं—शरणागति में प्राप्त होने वाले की रक्षा करने वाले—सुख करने वाले—सौम्य स्वरूप से युक्त भोर महान् ईश्वर हैं ॥ १३ ॥ समस्त प्रकार के सुन्दर भक्तद्वारों से भूषित—चाह चन्दन से चर्चित—सम्पूर्ण देवों से समायुक्त भोर सब देवों के प्रिय करने वाले हैं ॥ १४ ॥

सर्वलोकहितेपी च सर्वेश सर्वभावन ।

आदित्यमण्डले सस्थो ह्यग्निस्थो वारिसस्थित ॥१५॥

वासुदेवो जगद्धाता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षुमि ।

वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरि ॥१६॥

ध्यागन्त्येवञ्च ये विष्णु ते यान्ति परमा गतिम् ।

याज्ञवल्क्यः पुरा ह्येव व्यात्वा विष्णुं सुरेश्वरम् ॥

धर्मोपदेशकर्तृत्वं संप्राप्यागात्पर पदम् ॥१७॥

तस्मात्त्वमपि देवेश विष्णुं चिन्तय शङ्कर ।

विष्णुध्यान पठेद्यस्तु प्राप्नोति परमा गतिम् ॥१८॥

सब लोकों के हित सम्पादन करने वाले—सभी के स्वामी—सबके भावन (प्रिय)—सूर्य मण्डल में सस्थित—अग्नि में स्थित भोर जल में विराज-
हैं ॥१५॥ वासुदेव प्रभु सम्पूर्ण जगत् का ध्यान रखने वाले—सबके ध्यान करने के योग्य—मुक्ति की चाहना करने वालों के विष्णु हैं । मैं ही वासुदेव हरि हूँ—
इस प्रकार से हरि भगवान् का आत्मरूप से ध्यान करना चाहिए ॥१६॥ जो लोग इस उक्त स्वरूप वाले विष्णु भगवान् का इस रीति से ध्यान किया करते हैं वे परमोत्तम गति को प्राप्त होते हैं । याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले इस प्रकार से सुरेश्वर विष्णु का ध्यान किया था, अतएव धर्मों का उपदेश करके परम पद को

है—ऐसा समझना चाहिए । पुराण—न्याय—मीमांसा धर्म से मिश्रित धर्म-शास्त्र—वेद समस्त चौदह विद्याओं और धर्म का स्थान होत हैं । इन धर्म शास्त्रों के तत्ता मनु—विष्णु—यम—अश्वि—राम—रमिष्ठ—रक्ष—शातातप—पराशर—प्रापस्तम्ब—उसना—अथास—कात्यायन—वृहस्पति—श्रीतम—शङ्ख—तिलित—हारीत—अत्रि—ये अष्टि हैं अर्थात् इन सबकी निमित्त स्मृतियाँ हैं । ये सब विष्णु के समान ही प्राराधना करने के योग्य धर्मों के उपदेश करने वाले हुए हैं ॥३॥४॥५॥६॥ वेद-दान—उपाय से एव श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो पान में प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का सङ्कलन होता है ॥७॥

इष्टाचारो दमोर्जिहा दान स्वाध्यायकर्म च ।

अथच परमो धर्मो यद्यग्नेनात्मदर्शनम् ॥८॥

चत्वारो वेदधर्मज्ञा पराम्त्रैविद्यमेव वा ।

सब्रते यत्त्वधर्मं स्याद्देवाराध्यात्मविस्तम ॥९॥

ग्रहक्षत्रियविद्विद्गूढा वर्णान्त्वाद्यास्त्रयो द्विजा ।

निषेकाद्या दमशान्तस्तेषां च मन्त्रतः क्रिया ॥१०॥

गर्भाधानमृती पुंस सवन स्पन्दनान्पुरा ।

पक्षेऽष्टमे वा सीमन्त प्रसवो जातवर्म च ॥११॥

ग्रहन्त्येकादशे ताम चतुर्थे मासि निष्क्रम ।

पक्षेऽष्टप्राशन मासि चुडा कुटुम्बिकाकुलम् ॥१२॥

एवमेव गम याति बीजगमसमुद्भवम् ।

तूष्णीमेता क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रक ॥१३॥

धर्मोष्ठ धाचार का होता—दम—ग्रहिणा—दान—स्वाध्याय कर्म और योग द्वारा के धार्मिक दर्शन करना यह ही परम धर्म है ॥८॥ वेदों के धर्मों को जानने वाले चार होत हैं । दूसरे त्रैविध्य के ज्ञाता हैं । देवों का आराधन करके धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला सत्र में अपना धर्म होता है ॥९॥ ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और गूढ में चार वर्ण होने हैं किन्तु इनमें द्विज बड़े जाने वाले तीन ही दूपा करते हैं । इनको निषेध से धादि लेकर दमशान के अन्त तक समस्त त्रिपाण मन्त्री में ही दूपा करती हैं ॥१०॥ ऋतुबान में गर्भाधान मन्त्रार—

का मत है तथा पुच्छ का मत है हि वैश्वो में कुल रीति की जो भी पद्धति हो उनी समय करावे ॥१॥ गुरु शिष्य का उपनयन करके फिर महा व्याहृतियों के सहित इस शिष्य को वेदों का पठ्यापन करे और शौच तथा आचारों की शिक्षा भी देवे ॥ २ ॥ दिन में और दोनो सन्ध्याओं के मधो में ज्ञानपर ब्रह्म सूत्र (जनेऊ) पढ़ाकर उत्तर की ओर मुख करके मूत्र तथा पुरीष का त्याग करना चाहिए । और यदि रात्रि में मलमूत्र का उत्सर्ग करना हो तो दक्षिण की दिशा की ओर मुख करके करे ॥३॥ मलमूत्र त्याग करके अपने शिदन को पकड़े हुए उठे और महान् व्रत वाले गुरु को मिट्टी से उद्भूत जल के द्वारा दुर्गन्ध लेप के नाश करने वाली शुद्धि करनी चाहिए ॥४॥ अन्तर्जानु होकर पवित्र स्थल में बैठकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके घषवा पूर्व की ओर मुख करके द्विज को ब्राह्म तीर्थ में तिरय उपस्यर्शन करना चाहिए ॥५॥ कनिष्ठिका—देशिनी—अंगुष्ठ मूत्र घोर कर (हाथ) का अग्र भाग से क्रम से प्रजापति-पितृ-ब्रह्म और देव शीष होते हैं ॥६॥ केन और बुलबुलों से रहित प्रकृति में स्थित रहने वाले जलों से उपस्यर्शन करना चाहिए । तीन बार जल का प्राचमन करके और जनों से मुखों की दो बार उन्माजित करे ॥७॥

हृत्कण्ठतालुनाभिस्तु यथासंस्थ द्विजातयः ।

शुद्ध्येरन्स्त्री च सूक्ष्मं सकृत्स्पृष्टाभिरन्तत ॥८॥

स्नानं तद्द्वर्तमन्दमर्जितं प्राणसयमः ।

सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥९॥

गायत्री शिरसा साद्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् ।

प्रतिप्राणवसयुक्ता त्रिवार प्राणसयमः ॥१०॥

प्राणायामस्य सशुद्धिस्थिचा नर्द्वेवतेन तु ।

जपश्लासीत सावित्री प्रत्यगातारकोदयात् ॥११॥

सन्ध्या प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठन्नासूर्यदर्शनात् ।

अग्निफायं ततः पुन्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥१२॥

ततोऽभिवादेद्द्वन्द्वानसावहमिति श्रुत्वा ।

गुरुर्वाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥१३॥

उपनीय ददात्येनमाचार्यः स प्रकीर्तितः ।

एकदेश उपाध्याय श्रुतिव्यक्तकृदुच्यते ॥२०॥

एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ।

प्रतिवेद ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ॥२१॥

ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशः ।

आषोडशाद् द्विविधाच्च चतुर्विधाच्च वत्सरात् ॥२२॥

ब्रह्मक्षत्रविशा काल उपनयान्तकः परः ।

अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मविर्वाजिताः ॥

सावित्रीपतिता वात्या आत्यस्तोमाहते क्रतो ॥२३॥

ब्रह्मचर्यं दत्ता में स्थित होकर अध्ययन के समय में दण्ड-अग्नि (मृग धर्म-छात्रा) — उपवीत और मेखला धारण करे । आरम्भ वृत्ति के लिये अर्घात् गरीर पोषण के वास्ते द्विजों के भिक्षा करे जोकि अनिन्दित अर्घात् प्रशस्त हो ॥२१॥ इत्युपलक्षित ब्राह्मण-श्रमिष धीर वेदप यथाक्रम आदि—अध्य धीर अदमान में भिक्षाचर्या करें ॥२१॥ अग्नि-कार्य पूर्ण करके गुरु की आज्ञा प्राप्त कर विनीत भाव से भोजन करे । भोजन के पूर्व आपोषण क्रिया करे अर्घात् आचमन करे धीर फिर भस्त्र का सङ्ग्रह करके उमकी ओर तं कोई भी कुस्ता का भाव न रखते हुए भोजन करना चाहिए ॥२७॥ ब्रह्मचर्यं व्रत में समास्थित होकर अनापत्ति काल में अनेक भस्त्र का भोजन करे । व्याड में ब्राह्मण व्रत की पोषित न करते हुए इन्द्रापूर्वक भोजन करे ॥ २८ ॥ मधु-मांस तथा स्विन्न इत्यादि का परिवर्जन करना चाहिए । वह गुरु हैं जो समस्त क्रिया करके इसकी वेद का ज्ञान प्रदान करता है ॥२६॥ जो उपनयन करके उपदेश दिया करता है वह इसका आचार्य कहा गया है । जो एक वेद का ही उपदेश करता है वह उपाध्याय कहा जाता है धीर यज्ञ करने वाला श्रुतिवक् कहा जाया करता है ॥२०॥ ये सब ही मान्य होते हैं किन्तु पूर्व क्रम से इनकी मान्यता अधिक धीर फिर ग्यून हुमा करती है किन्तु माता इन सबसे विशेष मान्य होनी है । प्रत्येक वेद के अध्ययन के लिए बारह मधवा पाँच वर्ष हुमा करते हैं ॥२१॥ कुछ लोग ग्रहणान्तर समय कहते हैं धीर केशान्त षोडश कहते हैं । सोलह से लेकर

करने वाला है ॥२४॥२५॥ द्विज हो मधु-पय से देवों का तर्पण करना चाहिए । घृत और मधु से उसे प्रतिदिन पितरों का सन्तर्पण करना चाहिए । वह अनुदिन ऋषिनामों का अध्ययन करता है ॥२६॥ द्विज का मनुर्वेद और सामवेद पठना चाहिए और इनी भाति पयर्वान्तरम का भी अध्ययन करे । वह वह अनुदिन घृतामृत से पितरों और देवों का तर्पण करे ॥ २७ ॥ वेदों के बान्धव—पूजाएँ और नावादासी गाय ऐं—इतिहास तथा वेदों का अनुदिन भरमरु जो अध्ययन करता है यह पितरों और देवों को क्षीर-मोदन आदि से सन्तुष्ट किया करता है ये जब पूर्ण तथा सन्तुष्ट होते हैं तो फिर इसको भी शुभ कामनाओं के फलों से सन्तुष्ट किया करते हैं ॥२८॥२९॥ जिस-जिस ऋतु का यह अध्ययन करता है उसी-उसी ऋतु के करने का फल इसे प्राप्त हुआ करता है । स्वाध्याय के फल का सेवन करने वाला द्विज भूमिदान और तप के फल को प्राप्त किया करता है ॥३०॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपने प्राचार्य की सन्निधि में ही वास करना चाहिए । प्रसाव में निष्य का प्राचार्य-भाव प्राचार्य के वृद्ध-पत्नी और वंशान्तर में भी होना चाहिए । इन विधि से विविध इन्द्रियों मानों को देह का मायन करना चाहिए वह फिर ब्रह्मभोक्त की प्राप्ति किया करता है और इस भूमण्डल में दूसरा जन्म ग्रहण नहीं करता है । अर्थात् उसका प्राणायमन के बन्धन से छुटकारा ही हो जाया करता है ॥३१॥३२॥

५५-गृहस्थ धर्म निर्णय

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यत्प्रताः ।
 गुरवे च घन दत्त्वा स्नात्वा च तदनुजया ॥१॥
 समापितब्रह्मचर्यो लक्षण्या स्त्रियमुद्धेत् ।
 अनन्त्रपूर्विका कान्तामसपिण्डा यवीयसीम् ॥२॥
 अरोगिणी भ्रातृमतीमसमानार्पणोत्रजाम् ।
 पञ्चमाससमादूर्ध्वं मातृवः पितृवस्तथा ॥३॥
 द्विपञ्चनवविम्यातात् श्रोत्रियाणा महाकुलात् ।
 सप्तर्षं श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च ॥४॥

दत्तुं कृत्वा चरन्ता धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
 सकाम पावयेत्तज्ज पडवद्वयानात्मना सह ॥९॥
 भ्रातुरो द्रविणदानाद् गान्धर्व समयान्मिथ ।
 राक्षसो युद्धहरणात् पेशाच्च कन्यकाच्छतान् ॥१०॥
 चत्वारो ग्राह्याणस्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसी ।
 राजस्तयासुरो वैश्ये शूद्रे चान्नयस्तु गृहीत ॥११॥
 पाणिग्रह्यं सवर्णान् गृहीत क्षत्रिया शरम् ।
 वैश्या प्रतोदमादद्याद्देने चाग्रजन्मन ॥१२॥
 पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
 कन्याप्रद पूर्वनाशे प्रकृतिस्थ पर पम् ॥१३॥
 अग्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृती ।
 एषामभावे दातृणा कन्या कुट्यान्वयवरम् ॥१४॥

धर्म विवाह यह है जिसमें गो शुभ को लेकर कन्या दी जाती है । राज
 में स्थित श्रुतिव्रज के लिए जहाँ कन्या का दान होता है वह वैश्व विवाह कह-
 साता है । वैश्व विवाह से समुत्पन्न दानक चौदह पुरुषों की घोर धर्म विवाह
 में उत्तम सुन हैं पुरुषों की पुनीत करता है ॥१०॥ धर्म का आचरण करो—
 यह कहकर जो किसी धर्म की कन्या दी जाती है उस विवाहित स्त्री से उत्तम
 होन वाला अपने साथ हैं वश में हुए पुरुषों को पवित्र किया करता है ॥११॥
 धन देकर जो विवाह किया जाता है वह या सुख विवाह होता है । धर्म में दो
 पवन बद्ध होकर जो स्त्री पुरुष विवाह कर सेते हैं वह गान्धर्व विवाह होता है
 युद्ध में जीत कर जो कन्या का हरण किया जाना है और उस पत्नी बना सेते
 हैं यह राक्षस विवाह होता है । छन से कन्या को लाने विवाह कर लेना
 पेशाच विवाह कहा जाता है ॥१०॥११॥ धर्म के चार विवाह ग्रहण के लिए
 धनपे गये हैं । गान्धर्व और राजस में दो विवाह क्षत्रिय के होते हैं । भ्रातुर
 विवाह वैश्य का और पेशाच विवाह शूद्र का है जोकि बहुत निन्दित होता
 है ॥१२॥ सवर्ण विधियों का पाणि (हाथ) का ग्रहण कन्या चाहिए । क्षत्रिया
 धर्म का ग्रहण करे तथा वैश्य प्रतोद का ग्रहण करे और धर्म कन्या के वैश्व

जिसके कोई भी पुत्र न होता हो या हुआ ही न हो उसका गृह गं की आज्ञा पाकर देवर सगेन या कोई भी सविष्ट व्यक्ति घृत से प्रमथ्यक्त होकर केवल पुत्र की कामना से श्रुत समय में गमन करे ॥१६॥ जब तक उसको गर्भ धारण न हो तब तक ही उसका गमन करे । अन्यथा गमन करने में तो पत्नि ही जायगा । इन प्रकार से समुत्पन्न पुत्र दोष का होता है ॥१७॥ अधिकार करने वाली—मलिन—विष्टमात्र के उपसेवन करने वाली—परिभूत और व्यभिचारिणी स्त्री को घृष्ट दाय्या कर देनी चाहिए ॥१८॥ उन स्त्रियों को सोप ने शुद्धि दी है और गन्धर्व ने शुभ वाणी प्रदान की है । पावक सबंदा मेघ्य होता है इसलिए योगित का भी मेघ्य होता है ॥१९॥ व्यभिचार के बिना जो स्त्री अशुद्धि से गर्भ का त्याग कर देती है । उनके गर्भ भर्ता के दण्ड में तथा महान् पातक में—सुराशी—व्याधित—दृष्टी—प्रियम्बदा विहरण करने के योग्य है । अन्यथा इसका भरण करना चाहिए । वही तो यह श्रुतिगण कहते हैं कि महाद पाप होता है ॥२०॥२१॥

गन्नाविरोधी दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र पद्धन्ते ।

मृते जीवति या पत्यो या नान्यमुपगच्छति ॥२२॥

सह कीर्त्तिमवाप्नोति गोदते चोमया सह ।

शुद्धा त्यजस्तृतीयाश्च दद्यादाभरणं स्त्रियाः ॥२३॥

स्त्रीभिर्भक्तं वचं कार्यमेव धर्मं परं स्त्रियाः ।

पोडशत्तुं निशाः स्त्रीणां तामु युष्मामु सविदोत् ॥२४॥

ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याः श्रतस्तु वर्जयेत् ।

एव गच्छन्स्त्रियं कामान्मया मूलञ्च वर्जयेत् ॥२५॥

सदास्य जनयेदेव पुत्रं रोगविबजितम् ।

यथाकामो भवेद्वापि स्त्रीणां स्मरमनुस्मरन् ॥२६॥

स्वदारनिरतश्च स्त्रियो रम्या यतस्ततः ।

भक्तं भ्रातृपितृजातिश्चैव श्वशुरदेवरैः ॥२७॥

बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाद्यादनाशनं ।

सप्तोपस्करो दद्याद्दृष्टा व्ययपराइमुक्ता ॥२८॥

ग्राहारेद्विधिवद्ग्राहानग्निश्चैवाविलम्बितः ।

हिता भर्तुं दिव गच्छेदिह कीर्त्तारिवाप्य च ॥३३॥

स्त्रियों को अपने सास-भ्रातृ की चरखों की बन्दना सदा करनी चाहिए । जो प्रोषित भर्तृ का स्त्री हो अर्थात् जिसका पति परदेश निवासी हो उसे कोई भी फीहा—भारीरक सस्कार अर्थात् परोर की वेश-भूषा से सुसज्जित करना—समाज में सम्मिलित होना—उत्सवों का देखना—हास्य करना—दूसरों के घर पर जाना आदि का स्थाय कर देना चाहिए । बन्धा की रक्षा बचपन में पिता और यौवन में उसकी सुरक्षा पति को करनी चाहिए ॥२६॥३०॥ बाद-वय की अवस्था में उसकी रक्षा पुत्र को करनी चाहिए । पुत्र न हो तो भाति के सौग उनकी रक्षा करे । पति के बिना स्त्री को कहीं भी दिन या रात्रि में नहीं रहना चाहिए ॥३१॥ सर्वदा जो ज्येष्ठा स्त्री हो उसी को धार्मिक विधि से माय में निपुक्त करे और कनिष्ठा को कभी न करे । पानिग्रह वाली अर्थात् सखरिणा स्त्री का दाह अग्निहोत्र के द्वारा करे ॥३२॥ विधिवत् विलम्ब न करके दारामों और अग्निका आहरण करे भर्ता की हिता स्त्री महीं यश पाकर दिव्यलोक में जाती है ॥३३॥

५६—द्रव्य शुद्धि

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमाः ।

सौवर्णराजताम्बुजातां सङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम् ॥

पात्राणाञ्चासनानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥१॥

उष्णाद्भि स्रक्स्त्रयोर्धान्यानां प्रोदण्डेन च ।

तक्षणाद् दाहशृङ्गादियं तपायस्य मार्जनात् ॥२॥

सोप्राहृदकगोमूत्रैः शुद्धयत्याविककीपिकम् ।

भक्ष्यं योपिन्मुखं पदयन्पुनः पाकान्महीमयम् ॥३॥

गोघ्रातेऽग्ने तपा केनामधिकाकीटदूषिते ।

भस्मक्षेपादिशुद्धिं स्याद् भूशुद्धिर्मार्जनादिना ॥४॥

अमेध्य (धाविव) और अक्त अर्थात् तैलादि से युक्त पात्र एवं पदार्थ की सुद्धि मिट्टी एवं जल से करे जब तक कि उस पर जो गन्ध तथा लेपन है वह न छूट जावे । जो एक गौ की तृष्णा शान्त करदे उतना जन सुद्ध होता है ॥६॥ और जो जल स्वाभाविक रूप से भूमिगत होना है वह भी सुद्ध होता है ॥६॥ भुत्ता-चण्डाल और कृष्याद आदि व द्वारा निपातित मांस, रश्मि, अग्नि-रज की छाया-गो-वसुधा-घोडा और बकरी के भुग की बूँदे एवं मल की बूँदे सदा मेध्य होती हैं । स्नान करके-पान करके-छीक लेकर-सोकर-खाकर और मली में चल-फिर कर आशान्त हाकर भी पुन आचमन करना चाहिए अन्य वस्त्र का परिधान करके-शुत और निशीवन करने पर-स्वाप में-परिधान में तथा अशुपातन में इन पाँच क्रमों में आचमन न करे केवल दक्षिण सर्वदा निशस्त किया करत है । अतएव उक्त स्पर्श मात्र से ही सुद्ध का विधान बनाया गया है ॥७॥ ॥७॥ ॥१०॥

५७-श्राद्धविधि

प्रथम श्राद्धविधि वक्ष्ये भवंपापप्रणशानम् ।
अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णप्रक्षायनद्वयम् ॥१॥
द्रव्य ब्राह्मणसम्पत्तिविपुलसूय्यतकम् ।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहण चन्द्रसूय्यं यो ।
श्राद्ध प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकाल प्रकीर्तितः ॥२॥
अग्नौ य सर्वदेवेषु श्रोत्रियो वेदविद्युवा ।
तिथिज्ञाने च कुशलः त्रिमधुस्त्रिसर्वाणिकः ॥३॥
स्वस्तीयष्टतिरग्नमाताचार्यश्चमुरमातुला ।
त्रिणाचिकेनदौहित्रमिष्यसम्बन्धिवान्धवा ॥४॥
कर्मनिष्ठा द्विजा केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः ।
वितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणा श्राद्धदेवताः ॥५॥
रोगी होनातिरिक्तास्त काणः पानभवंस्तथा ।
अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिताः ॥६॥

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत् ।
 गन्धं तथोदकञ्चैव धूपादीश्च पवित्रकम् ॥१२॥
 अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।
 द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा उदान्तस्त्वेत्यृचा पितुन् ॥१३॥
 आवाह्यं तदनुजातेर्जपेदायान्तु नस्ततः ।
 यवार्थस्तु तिलैः कार्प्यैः कुम्भादिर्घ्यादि पूर्ववत् ॥१४॥

श्राद्ध के दिन पूर्वाह्न में प्राचागत होते हुए उन्हें घामनों पर उपविष्ट करावा चाहिए । उनसे प्रार्थना करे कि आपको देव-विध्य कर्म के लिये धाम-
 न्वित किया है । अपने प्रदेशों में प्राप्त कराने की शक्ति नहीं है ॥१॥ दी की
 पूर्व में देव कर्म के लिये—उत्तर दिशा में विध्य कर्म के लिये तीस की—इस
 तरह दोनों को पृथक् रखे । इसी रीति से माता महादिक के लिये भी करे ।
 मयवा चैश्वदेविक मन्त्र का प्रयोग करे ॥१॥ फिर इसके अनन्तर हुम्त-प्रदान
 देकर विष्टर के लिये कुशाओं को देवे । फिर उनके द्वारा धनुजा प्राप्त कर महाम्
 श्रुचा से विश्वेदेवाओं का आवाहन करे ॥१०॥ यवों के द्वारा पवित्री के सहित
 पात्र में मन्त्र का विकरण करे । “मग्नो देवी”—इस मन्त्र से पय का क्षेपण कर
 “यवोऽमीति”—मन्त्र से यवों का विकरण करे । “या दिव्या”—इस मन्त्र के
 द्वारा उनके हाथों में ही गन्ध—उदक—धूप घोर पवित्रक आदि को विनिक्षिप्त
 करना चाहिए ॥११॥१२॥ इसके अनन्तर अपसव्य होकर पितरों के अप्रदक्षिण
 में द्विगुण कुशाओं के देकर “उदान्तस्त्वा”—इस मन्त्र से पितृगण का आवाहन
 करे । फिर उनसे धनुजात होकर “आयान्तु नस्ततः”—इस मन्त्र का जाप करे
 यवार्थ तिलों के द्वारा करना चाहिए । फिर पूर्व की भाँति मर्घ्य आदि
 करे ॥१३॥१४॥

दत्त्वाघ्नं सथ्रव ह्येषां पात्रे कृत्वा विधानतः ।
 पितृभ्यः स्मानमसीति न्युञ्ज पात्रं करोत्यघः ॥१५॥
 भग्नो करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं धृतप्लुतम् ।
 सव्याहृतिश्च गायत्री मधुवातेत्यृचस्तथा ॥१६॥

वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम् ।
 विप्रैरस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्च्येत्ततो जलम् ॥२२
 प्रीयन्तामिति चोहैव विश्वेदेवा जल ददत् ।
 दातारो नोऽभिवर्द्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च ॥२३
 अद्वा च नो माव्यगमद्वह देयञ्च नाऽस्त्विति ।
 इत्युक्तोऽपि प्रिय वाच प्रणिपत्य विसर्जयन् ॥२४
 वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्वं विसर्जनम् ।
 यस्मिंस्ते सश्रवा पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिता ॥
 पितृपात्र तदुत्तान कृत्वा विप्रान्विसर्जयन् ॥२५
 प्रदक्षिणमनुस्तुत्य भुञ्जीत पितृशेषितम् ।
 ब्रह्मचारी भयेत्तत्र रजनी भाष्यया सह ॥२६
 एव सवक्षिणं पुष्पाद्भिदो नान्दीमुखानपि ।
 यजेत्तदधिकर्कन्तुमिध्रा पिण्डा यो भिता ॥२७
 एकोद्दिष्टं देवहीन एकान्नकपविनरम् ।
 घ्रावाहनानीकरणरहितं जपसंभवनम् ॥२८
 उपनिष्ठतामित्युक्त्याने विप्रान्विसर्जयेत् ।
 धमिरम्यता प्रदूयात्प्रोचुस्तेभिरता स्वह ॥२९
 गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्यात्पितृपात्रचतुष्टयम् ।
 मर्घ्यार्घ्यं पितृपात्रेषु प्रेतपात्र प्रसेचयेत् ॥३०
 ये समाना इति द्वाभ्यां शेष पूर्ववदाचरेत् ।
 एतस्मिन्पिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥३१
 स्वधा वा वाचन करो—इस प्रकार से उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर पितृ-
 ॥३१ के विषे स्वधा वा वाचन करना चाहिए । विप्रों के द्वारा 'स्वधा होवे'—
 ऐसा कहने पर उस जल को भूमि पर सिञ्चित कर देवे ॥२२॥ जल देता हुआ
 विश्वेदेवा प्रसन्न होवे—यह बोले । हमारे दाता-वेद-स्वादि बड़े । हमारी भद्रा
 का सोप न होगे और हमको देव होवे—इस प्रकार से प्रिय वचन कहकर उनकी
 प्रतिपाद करके फिर विसर्जन करे । "वाजे-वाजे"—इस का उच्चारण करते

अश्वानायुश्च विधिवद्यः धाद सप्रतीच्छति ॥३७
कृत्तिवादिभरत्यन्त स कामी प्राप्नुयादिमान् ।
वस्नाद्व्या। प्रीणयन्त्येव नव धादकृत द्विजा ॥३८
प्रायु प्रजा धन विद्या स्वर्गमोक्षमुखानि च ।
प्रयच्छति तथा राज्य प्रीत्या नित्य पितामह ॥३९

सपिण्डी करण के पीछे जिसका सवत्सर से हावे उसका भी सोद पुष्प
मद द्विज को सवत्सर म दे देना चाहिए और पिण्डों को गो—सजा तथा विप्रों
को दे देवे प्रपत्ता अग्नि वा जल म दे देना चाहिए ॥३९॥ हविष्याम से मा
मे—पापस से बरबर मे पितामह सन्तुष्ट होते हैं । मास्यादि के धामिप के यथा-
क्रम मान कृद्धि मे देन पर भी उन्हें परम सन्तोष हुआ करता है ॥३९॥
त्रयोदशी मे और मघा मे अर्घ्य देवे । इस प्रकार से प्रतिपदा प्रभृति में धाद
दाता कन्यादि की प्राप्ति करता है—इसम समय नहीं है ॥४०॥ जिनका निहवन
सत्य से हुआ हो उनकी धाद चतुदशी तिथि मे दिया जाता है । जो विधि-
विधान के साथ धाद देता है उसे स्वर्ग—ममत्य योग—शौर्य—क्षेत्र—बल—सरोहिता
यस—वीर्यशोकता—परमगति—धन—विद्या—शक्ति—पुण्य—गौ—भयविक—मन्त्र
धायु आदि की प्राप्ति होती है ॥४१॥ कृत्तिवा से आदि लेकर भरणी के
पक्ष तक कामना वाला इन उक्त पदार्थों को प्राप्त किया करता है । नव धाद
करने वाले पर वस्त्रों से आका द्विज परम प्रसन्न होते हैं । पितामह प्रीति से
निर्य धायु—प्रजा—धन—विद्या—स्वर्ग—मोक्ष—मुख तथा राज्य को प्रदान किया
करते हैं ॥४२॥

५८ विनायकोपसृष्ट लक्षण

विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेज्जवाहतेऽयं जल मुण्डाश्च पश्यति ॥१
विमना विफलारम्भ, ससौदत्यनिमित्ततः ।
राजा राज्य कुमारी च पति पुत्रश्च शुविणी ॥२
नाप्नुयात्स्वपन्न तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।

यत्ते वेशेषु दीर्घाग्य सीमन्ते यत्न मूर्द्धनि ।
 ललाटे कर्णयोरदशोर्नाश तद्यातु ते सदा ॥८८॥
 स्नातस्य सार्पप तैल श्रवणे मस्तके तथा ।
 जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्माज्यान्सपरिगृह्य च ॥८९॥
 मित समयमितश्चैव तथा शालकटङ्कट ।
 कूपमाण्ड राजपुत्राश्च प्रन्त स्वाहाममन्विते ॥९०॥
 सथाञ्जतुण्ये भूमौ कुशानास्तोय्य सर्वश ।
 कृताकृत तथा च तदुत्तमोदनमेव च ॥९१॥
 पुण्य चिन सुगन्धश्च मुराच निविधामपि ।
 दधिपायसमन्त्रश्च धूलश्च गुडमादकम् ॥९२॥
 एतान्तर्धानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा तत निव ।
 अम्बिकामुपतिष्ठेन्न दद्यादन्न कृताञ्जलि ॥९३॥
 दूर्वापपपुष्पैश्च पुनजन्मभिरन्तत ।
 कृतस्वस्त्ययनश्चैव प्रार्थयदम्बिका सतीम् ॥९४॥
 रूप देहि यशो देहि भाग्य भवति देहि मे ।
 पुत्रान्देहि श्रिय देहि सर्वान्कामाश्च देहि मे ॥९५॥
 ब्राह्मणास्तोपयेत्पञ्चाक्षुक्लवस्तनानुलेपन ।
 वस्त्रयुग्म गुरोर्दशात्मपूज्याश्च ग्रहस्तथा ॥९६॥
 जो तेरे वेशा म—सीमन्त मे घोर मूर्द्धा म दीर्घाग्य है तथा ललाटे
 मे—राशो मे घोर नयो म दीर्घाग्य है वह सदा नाश को प्राप्त होवे ॥८८॥
 जब स्नान कर लेवे तो उस नहाम हुए के श्रवण मे तथा मस्तक में घोर मूर्द्धा
 मे शृत सहित कुशाघो को ग्रहण कर सरसो के तैल को प्राहूतिर्वा देवे ॥८९॥
 मित घोर समयित हो शाल कटङ्कटों से युक्त कूपमाण्ड तथा घाघ मे स्वाहा से
 समन्वित राज पुत्रों को सद्य से चतुर्पद पर भूमि म सब घोर कुशाघो को
 प्राप्तु करे । कृत कृत तण्डुल घोर घोदन—पुण्य—चिन—सुगन्ध घोर सीमो
 प्रहार की मुरा—दधि—पायस—मम—पूत—गुह मोदक इन समस्त वस्तुओं को
 उपाकृत करते भूमि में रखी घोर इसके अनन्तर सिव एवं अम्बिका का जा-

सित-रूप-रूप ये क्रम से बरसे हैं । हे मुनिगण । इनको समझलो ॥५॥ इन ग्रहों के द्रव्यों से विषान के साथ स्नपन करावे तथा होन करावे । सुवर्ग का दान करे । वस्त्र और कुपुवों को दवे ॥५॥ गन्ध धादि वस्त्र देवे । मूल की पूज देनी चाहिए । वहाँ पर ग्रह याग म यदि प्रत्यदि दैवत मनो के द्वारा यह सब कृत्य पूर्ण करने चाहिए ॥६॥ 'आकुण्डल-इम-देवा-अग्निपूर्वादेव-ककुपु-सन्तुष्ट्य स्व'-इन श्रुताओं से क्रम नुसार हवन करना चाहिए ॥७॥

वृहस्पते परिदीयेति अत्रात्परिश्रुतारत्नम् ।
 शत्रोदेवी कथानश्च केतु कृष्वन्निति क्रमात् ॥८॥
 अर्कं पलाश खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिपल ।
 भोदुम्बर शमी दूर्वा कुशाश्च समिध क्रमात् ॥
 होतव्या मधुसविर्म्या दध्ना चैव समन्वित ॥९॥
 गुडोदनो पायसश्च हविष्य क्षीरपष्टिकम् ।
 दध्पोदन हवि पूषाम्नास चित्रान्नमव च ॥१०॥
 दद्याद् द्विज क्रमादेताग्रहम्यो भोजन तन ।
 भेतु सङ्गस्तयानडवान्हेमवाता हयस्तया ॥११॥
 क्रष्ट्या गीरायस द्याग एता वं दक्षिणा क्रमात् ।
 ग्रहा पूजया सदा यस्माद्वाज्ञापि प्राप्यते फलम् ॥१२॥

'वृहस्पते परिदीय'-इससे अत्रात्परि श्रुतारत्नम् —शत्रोदेवी-अथ नक्षत्र केतु दृश्यत्—इससे क्रम पूजक आहुतियाँ देवे ॥ ८ ॥ अर्क (शक)-पलाश (शक)-मदिर-अपामर्ग-शीपन-मूलन-शमी (छोकर) —दूर्वा (दूध) और कुशा ये इनके हवन करने के लिय क्रम से समिधाएँ होनी हैं । मधु (महत) और सवि (पूत) से जोकि दधि (दही) से समन्वित हो हवन कर ॥९॥ गुड-पोदन-पायस ये हविष्य हैं । क्षीर पष्टिक-दधि-प्रोदन ये हवि हैं । पूष (पूषा) पानिप-चित्राग्र यह भोजन द्विज को ग्रहों के लिय देना चाहिए । फिर त्रिप्रो को ग्रहों को सन्तुष्टि के लिय दक्षिणा देवे । दक्षिणा क्रम से धनु-सङ्ग-मन-द्वान्-हेम-वस्त्र-मन्त्र-ध्याना गौ-प्रायस द्याग यह होनी हैं । दस प्रकार से

स्नान-मन्त्र्या करे और कभी कभी का प्रतियह ग्रहण न करे ॥ ३ ॥ निरन्तर वेदादि नियमों का स्वाध्याय करे । ध्यान के स्वभाव वाला बने । समस्त प्राणी-मात्र के हित-सम्पादन के कार्य में रति रखे । दिन के अथवा मास के भय में स्वार्थ का परिषद् करना चाहिए ॥४॥ बिना किसी वस्तु का आश्रय लेकर भूमि में शयन करे और फन की आकाङ्क्षा में रहित होकर कर्म करना चाहिए । श्रोत्र श्रुति में पक्ष प्रति तब और वर्षा ऋतु में स्थण्डिल जायी रहे ॥५॥ हेमन्त में पीले वस्त्र धारण कर प्रतिदिन योग का अभ्यास करे । सर्वदा क्रोध रहित-वर्तितोष से सम्पन्न रहे । समस्तों को भी ऐसा ही रखे और अपने भाषणों भी ऐसा रखे ॥६॥

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि तं निबोधत सत्तमा ।
 वनान्निवृत्त्य कृत्वेष्टि सर्ववेदप्रदक्षिणाम् ॥७॥
 प्राजापत्य तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि ।
 सर्वभूतहितं शान्तस्तिदण्डो सकमण्डलु ॥
 सर्वाशंस परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥८॥
 अप्रमत्तश्चरेद् भेष सायाह्ने नाभिनजितः ।
 बाहिर्तन्निशुर्कप्रमि यानामात्रमलोन्नुष ॥९॥
 भवेत्परमहंसो वा एकदण्डो यमादितः ।
 सिद्धयांगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात् ॥१०॥
 योगमन्यस्य मितभुक्परा मिद्धिमवाप्नुयात् ।
 दाताऽतिथिप्रिया ज्ञानी गृह्ण आदधेऽपि मुच्यते ॥११॥

यज्ञप्रत्यक्ष मुनि कहने है—पद भिक्षु के धर्म को बताता हूँ—हे सत्तमो ! उसे समझे । वानप्रस्थाश्रम में रहकर वन से निवृत्त होवे । इष्टि करके समस्त वेशों की प्रदक्षिणा करे । इनके अन्त में प्राजपत्य करे और अपनी आत्मा में अग्नि का धारोपण करे । सब भूतों के हित में रति होते हुए शान्ति धारण कर तीन दण्ड धारण करे और वनण्डनु का ग्रहण करे ॥७॥ समस्त प्रकार के मायास का परित्याग कर भिक्षा का धर्म्य होकर ग्राम का आश्रय ग्रहण करता चाहिये । अप्रमत्त होकर भिक्षाचरण करे और मायास में अभिनजित न होवे ।

है ॥३॥ तेल का हरण करने वाला तैल शीने वाला—दुर्गन्ध युक्त मुख वाला—
सूचक होता है । ऐसे पुरुष समस्त शुभ नक्षत्री स भ्रष्ट—दण्डि और पुरुषो म
मघम होते हैं और जन्म ग्रहण किया करते हैं । मुन तल्लो स उपन धन न न्य
से समन्वित हुआ करते हैं ॥४॥

६२—प्रेत शीघ्र वर्णन

प्रेतशीघ्र प्रवक्ष्यामि मच्छ्यगृध्व यतव्रता ।
ऊनद्विवर्ष निस्त्रिनेन कुर्यादुदक तत ॥१॥
आशमशानादनुवाह्य इतरंज्ञातिभिर्युत ।
यममूक्त तथा जप्य ऊपद्वितीकिकाग्निना ॥
स दसव्य उपेतदवेदाहिवाग्न्यावृतार्थवत् ॥२॥
सप्तमादशमाद्यापि ज्ञातयाऽभ्युपयान्त्यप ।
प्रपन्न सीमुचदधमनेन पितृदिडमुत्था ॥३॥
एव मातामहाचार्यपत्नीनाञ्चोदकक्रिया ।
कामोदका सखिपुत्रस्वस्रीयश्वशुरद्विजा ॥४॥
नामगोत्रेण ह्युदक मरुत्पिचिन्नि वाग्मना ॥५॥
पापण्डपतिना न तु न कुर्यादुदकक्रिया ।
न ब्रह्मचारिणो प्रात्या यार्पण कामवाग्न्या ॥६॥
मुरापा स्वात्मघातिन्या न शौचोदकभाजना ।
ततो न रोदितव्य हि त्वनित्या जीवसत्स्थिति ॥७॥
क्रिया कार्या यथाशक्ति ततो गच्छेद् गृहान् प्रति ।
विदार्य निम्बपत्राणि निमतो द्वारि वेश्मन ॥८॥

याज्ञवल्क्य मुनि न कहा—हे मत पद बातों । पर हम प्रेत के कारण
होने वाले आशीच के विषय में आपसों बातचाते हैं । हमका आप लोग प्रवण
करे—दो दो वर्ष से कम ही उसका नियन्त्रण करे आपसों मूमि में गाह देवे और
किर सदा क्रिया न करे । हमजान उस अनुवाहित करके द्वार आतिथो के
सहित मन मूक्त का जप करता चाहें । इस प्रकार से आप करने वाली के

ऊनद्विवर्षं सभयो. सूतक मातुरेव हि ॥
अन्तरा जन्ममरणं संपाहोभिर्विशुध्यति ॥१३॥
दशद्वादशवर्णानि तथा पञ्चदशैव च ।
विशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतमृतकम् ॥१४॥

भाचमन करके इसके अनन्तर अग्नि-उदक-गोमय (गोबर) और गौर सर्प (सरसो) का प्रवेश करे । समानमन पत्थर पर करके धीरे पद रखे । २। इस प्रकार से प्रवेशन यदि कर्म करे । प्रेत के सस्पर्श से धीरे देखने वालों की उसी समय मुक्ति होती है और दूसरों की रत्नान-मयम से मुक्ति हो जाती है ॥१५॥ सरोद कर लाये हुए तथा कही न प्राप्त हुए भोजन को बरते वाले वे पृथक्-पृथक् भूमि पर ही क्षपण करें । यज्ञ करने वाले पुण्य को प्रेत के लिये तीन दिन तक भक्षण विट देना चाहिए ॥ १० ॥ एक दिन माकास में जल तथा मृन्मय पाय में शीघ्र स्थापित करे । धूमि प्रतिपादित वैतानीपायना की क्रिया करनी चाहिए ॥११॥ जिनके दोन पैदा न हुए हो उनकी जन्म से दत्त लगने तक तब मुक्ति हो जाती है । ब्रह्म कर्म होने तक एक तमा की अशुद्धि रहनी है । उत्तरेषा होने के पूर्व तक तीन रात्रिका मासोच मृतक का होता है । इसके ऊपर दस रात्रि तक प्रसीध रहा करता है ॥१२॥ तीन रात्रि धयना दस रात्रि शयन से सम्बन्धित मासोच हुआ करता है । दो वर्ष स कर्म का दोनो में (जन्म-मरण) केवल माना जो ही मृतक होता है । जन्म-मरण के अनन्तर में तोष दिनों में विमुक्ति होती है ॥१३॥ पक्षों का मासोच क्रम से दश-बारह-पन्द्रह और तीस दिन का प्रेत मृतक होता है । भर्षा काहाण को दस दिन का—शमिय को पारह दिन का—वैश्य को पन्द्रह दिन का और ब्रह्म को तीस दिन का मृतक। ॥१४॥

अहम्त्वदत्तवन्त्यामु वातेषु च विगोचनम् ।
गुर्वन्तेवास्यमूत्रवानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥१५॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यान्विन्यगतामु च ।
नौरसे राजनि तथा तदह. मुक्तिकारकम् ॥१६॥

लवणादि न विप्रोयात् तथा चापद् गतो द्विजः ।
 कुप्यति कृप्यादिकं तद्वद्विक्रया ह्यास्तथा ॥२४॥
 बुभुक्षितस्यह स्यत्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम् ।
 राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्ति विप्रादिकस्य च ॥२५॥

द्विज को यदि निर्वाह न होता है तथा प्रापति का ल उपस्थित हो जावे तो उसे क्षत्रिय के शयवा वेश्य के कर्म से जीवन-निर्वाह कर लेना चाहिए ।
 वैश्य को वृत्ति का ध्यात्र्य भी ऐसे तो फल-सौम-सौम-वीर्य-दधि-क्षीर-
 घृत-जल-तिल-मोदन-रस-क्षार-मधु-साक्षामुत-हवि-वस्त्र-उपलामक
 पुरा-शाक-मृद-चर्म-पादुका-एणव-बीष-सवण-मांस-विषया-
 मूल और गन्धों का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए । इनका विक्रय धर्मान्न है
 जोकि तिल घास्य से समुत् है । आपद्गत होने पर भी द्विज को सबल मादि
 का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए । कृषि आदि का कार्य हो करना चाहिए ।
 मन्त्रों का भी विक्रय नहीं करे । तीन दिन तक बुभुक्षित रहकर स्थित हो तो
 उसे देखकर जोकि वृत्ति से वञ्चित है राजा को धर्म करना चाहिए और
 विप्रादि को वृत्ति की व्यवस्था करे ॥२१ से २५॥

६३-पराशरोक्त धर्म कीर्तन

पराशरोश्रवीद् व्यास धर्म वरुणप्रमादिकम् ।
 कल्पे कल्पे क्षयोत्वति क्षीयन्ते न ह्यजादयः ॥१॥
 श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो य कश्चिद् वेदकृत्क ।
 वेदाः स्मृता, ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभि सदा ॥२॥
 दान कलियुगे धर्मः कर्त्तारश्च कसौ त्यजेत् ।
 पापकृत्यं तु तत्रैव शाप फलति वर्षत ॥३॥
 प्राचारात्प्राप्नुयात्सर्वं पट् कर्माणि दिने दिने ।
 सन्ध्या स्नान जागो होमो देवातिथ्यादिपूजनम् ॥४॥
 यपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा ।

कर्पकाः क्षत्रविदुःशूद्रा खल्वदत्त्वा तु चौरका ।
 दिननयेण शुष्येत ब्राह्मणः प्रेतसूतके ॥१६
 क्षत्री दशाहाद्वंश्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रकः ।
 याति विप्रो दशाहात्तु शूद्रो मासेन शुष्यति ॥१७
 पञ्चदशाहाद्वंश्यस्तु शूद्रो मासेन शुष्यति ।
 एकपिण्डास्तु दायादा पृथग्भावनिवृत्तना ॥१८
 जन्मना च विपत्तौ च भवेत्तोपाच्च सूतकम् ।
 चतुर्थे दशरात्रस्य पण्डिता पुंति पञ्चमे ॥१९
 षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिं सप्तमे च दिननयम् ।
 देशान्तरे मृते वाले सद्य शुद्धिर्यत्तो मृते ॥२०
 अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भद्विनि मृता ।
 न तेषामग्निस्कारो न पिण्ड नोदकक्रिया ॥२१
 शूता यत्र ते प्रणान्वित होता हुमा तित और घृष्ट का विकल्प कभी न
 । राजा को छत्रवां भाग और देवनाभो को बीसवां भाग देवे । तैत्तिरीय
 भाग विप्रो को देवे तो शूद्र के कम को करने वाला व्यक्ति कभी भी पाप से
 तित नहीं होता है ॥२२॥ जो क्षत्रिय-वंश्य और शूद्र कर्पक हैं और वे दान नहीं
 करते हैं तो और होते हैं । ब्राह्मण प्रेत शूद्रक में तीन दिन में शुद्ध हो जाता है
 ॥२३॥ क्षत्रिय दस दिन में—वंश्य बारह दिन में और शूद्र एक मास में प्रेत
 शूद्रक में शुद्ध हुआ करता है । विप्र दस दिन में—क्षत्रिय बारह दिन में—क्षत्रिय
 पञ्चदश दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है । एक पिण्ड वाले दायाद
 बिनके नाक और निकेतन पृथक् हो उनकी जन्म और मरण में सूतक सबको
 होता है । चौथी पीढ़ी तक दत्त रात्रिका—पाँचवी पीढ़ी में छह रात्रिका—छठवी
 पीढ़ी में चार दिन का और सातवीं पीढ़ी में तीन दिन में शुद्ध होती है ।
 ॥२१॥२२॥२३॥ प्रजापद दन्त जो बालक है और जो गर्भ से निकले हुए बालक
 है उनका अग्नि सम्पन्न नहीं होता है—न उनका पिण्डदान होता है और न उनके
 लिए अन्न दिया ही होता है ॥२४॥

सङ्कल्पित कृत्य है उसका अन्य वर्जन किया जाता है ॥ २० ॥ यह सूतकी मृत
ओर जातक से शुद्ध होता है । गो ग्रहादि से विषयो का केवल एक रात्रि का
सूतक होता है ॥ २१ ॥

अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुष्यति ।
प्रेतमूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमनुचिर्भवेत् ॥ २२ ॥
आत्मघातिविषादवन्धकृमिदष्टे न सङ्कृति ।
गोहतकृमिदष्टश्च स्पृष्टा कृच्छ्रेण शुष्यति ॥ २३ ॥
अदुष्टा पतिता भार्या योक्तेन य परित्यजेत् ।
सतजन्म भवेत् स्त्रीत्व वैधव्यश्च पुन पुन ॥ २४ ॥
वातहत्या त्वगमनाहतौ च स्त्री तु नूकरो ।
अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रिया ॥ २५ ॥
ओरस क्षेपजः पुन पितृजो पिण्डो पितु ।
परिचिते स्तु कृच्छ्र स्यात्कन्याया कृच्छ्रमेव च ॥ २६ ॥
अतिकृच्छ्र चरेद् दाता हाता चाग्नायणश्चरेत् ।
कुव्रवामनपण्डेषु गदगदेषु जटेषु च ॥
जात्यन्वबधिरे मूके न दाप परिवेदने ॥ २७ ॥
नष्टे मृते प्रव्रजिते कपीदे वा पतिते पतो ।
पञ्चम्वापत्सु नारीणा पतिरन्यो विधीयते ॥ २८ ॥

कोई अनाथ प्रेत हो और उनका वहन समयान तक किया जावे तो
केवल प्राणायाम करने से ही शुद्धि हो जाया करती है । प्रेत मूद्र के वहन
करने से तीन रात्रि में अनुचिता दूर होती है ॥ २२ ॥ आत्मघात करने वाले—
विष से—वन्ध से—कृमि के द्वारा दष्ट हो जाने से जो मृत्यु होती है उसका
महत्कार नहीं होता है । गो से हन ओर कृमि से दष्ट का स्वर्ग करके कृच्छ्र व्रत
से शुद्धि होती है ॥ २३ ॥ जो दोषों से रहित अपनी भार्या को यौवनावस्था में
ही परित्यक्त कर देता है उनको सात जन्म तक स्त्री को यौनि प्राप्त हुआ करती
है और बारम्बार वह विषका भी होता है ॥ २४ ॥ बानह या ओर मृतुगान से

पूर्व स्वामि से दाह करे ॥२६॥ ३०॥ यदि किसी की प्रवास में मृत्यु हो जावे तो उसका पुत्रल कुशो से बना कर फिर उसका दाह करे। कृष्णानिमे धै सो पलाशवो का समास्तरण करे। शिष्ण म जमी को और वृषण मे भरणि का विनिक्षिप्त करे। दक्षिण हस्त में कुण्ड तथा वाम हस्त में सरभृत्—पार्श्व में वनूस्वस और पृष्ठ म मुण्य का दाह करे। ऊरवो मे हृषद (पत्थर) और मुख में वण्डुल—पूत और तिलां का निक्षेप करे ॥३१॥ ३२॥ ३३॥ श्वोत्र मे प्रोक्षणी देवे और चधुवो मे प्राग्य स्पात्ती देवे। कान—नेत्र—मुख और प्राण मे सुवर्ण के टुकड़े निक्षिप्त करने चाहिए ॥३४॥ अग्नि होम के उपकरण मे ब्रह्मचोर की गति वाला होता है। “धसो स्वर्गाय लोकाय स्वाहा” — हमने एक बार आहूति देवे ॥३५॥ हय—सारस—कौश—वक्र वाक—पुष्पुट—मयूर और मेघ के पात करने वाला पुण्य एक रात्रि में शुद्ध होता है ॥३६॥ ममस्त प्रसार क पक्षियों का हनन करने पर एक जहोरात्र में बुद्धि हुमा करती है। सय तरङ्ग के वतुज्वलो का हनन करने पर एक महोरात्र तक वसोपित रहे और जप करे तो बुद्धि होती है ॥३७॥

६४—नीतिसार कथन

नीतिसार प्रवक्ष्यामि धर्पशास्त्रादिसन्निभम् ।
 राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम् ॥१॥
 सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिवक्त्रम् सदा नर ।
 नासद्भिर्हृत्लाकाय परलोकाय वा हितम् ॥२॥
 वर्जयेत्पुद्गलवादं दुष्टस्य चैव दशानम् ।
 विराध सह मित्रं सप्रीतिं शत्रुसेविना ॥३॥
 मूलं शिष्योपदेशेन दुष्टस्योभरणेन च ।
 दुष्टानां सप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसादति ॥४॥
 ब्राह्मणं बालिशं शत्रुभयोद्धारं विषं जडम् ।
 शूद्रमक्षरसंयुक्तं क्रूरं परिवर्जयेत् ॥५॥
 कालेन रिपुणा सन्धिं काले मित्रेण विग्रहः ।
 काम्यकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः ॥६॥

उत्तमं सह साङ्गत्वं पण्डितं सह सत्कथाम् ।
अनुवृत्तं सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ॥१२॥

परदार परार्यं च परिहास परस्त्रिया ।
परवेमनि वागन्ध न कुर्वीत कदाचन ॥१३॥

परोऽपि हितवान् वन्धुबन्धुरप्यस्ति हि पर ।
रहितो देहजा व्याधिहितमारण्यमोषघम् ॥१४॥

काल म ही बीच बरगु करता है और काल में ही गर्म को वृद्धि होती है । काल मृष्टि का जनन किया करता है और फिर मृष्टि का सहार भी काल ही कर देता है ॥१२॥ यह काल बहुत ही सूक्ष्म यति वाला है और निश्च ही दो प्रकार से प्रतीत हुआ करता है—एक शमन स्पून सप्रह बार होता है और दूसरा सूझा चारान्तर होना है ॥१६॥ देव मुक्त बृहस्पति ने सुरेन्द्र को इस नीति के द्वार को बतलाया था जिसमें दण्ड सर्वज्ञ होमया था और समस्त देवों का हनन करके सनने दिक्बोर्ड की प्राप्ति की थी ॥१०॥ राजपि और ब्राह्मणों के द्वारा देवों तथा विशाकि का पूजन करना चाहिए । अश्वमेध का यजन करना चाहिए । इससे महात् पावनको क पावों का क्षय हो जाता है ॥ ११ ॥ उत्तम पुरुषों के साथ सङ्गति और पण्डित पुरुषों के साथ मरुया तथा जो सोभी क्षत्रिय न हो उनसे साथ मित्रता करते हुए पुरुष को दुःख नहीं होता है ॥१२॥ पराई स्त्री—पराया धन—पराई स्त्री से परिहास तथा पराय धन से विकास कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥ पर पुरुष भी हित सम्पादन करने वाला होता है और बन्धु भी परम पक्षित करने वाला पगया बन जाया करता है श्रित तरह देह में ही जन्म लन वाली व्याधि प्रहित होती है और पद्मल में कटाक्ष बूँटी भीषण का नाम किया करती है ॥१४॥

स वन्धुर्वो हिने मुक्तः स पिता यस्तु पोषकः ।
सन्मित्र यत्र विश्वासः स देवो यत्र जीवते ॥१५॥

स भृत्यो यो निषेयन्तु तद्भोज यत् प्ररोहति ।
स भर्त्या या प्रिय ब्रूते स पृथो यस्तु जीवति ॥१६॥

घोर समस्त प्रकार के शीघ्राग्यो का बर्द्धन करने वाली जिता मानव को ऐसी भार्या हो वह साक्षात् देवेन्द्र ही है मनुष्य उसे कभी भी नहीं समझना चाहिए ॥१२०॥१२१॥

यस्य भार्या विरूपाक्षी कन्दमला कलहप्रिया ।
उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा ॥२२
यस्य भार्याधितान्यत्र परवेशमामिकाक्षिणी ।
कुक्रियात्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा ॥२३
यस्य भार्या गुणज्ञा च भर्तारमनुयामिनी ।
अल्पेज्ज्वेन तु सनुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया ॥२४
दुष्टा भार्या शठ मित्र भृत्यश्चोत्तरदामकः ।
ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न तथय ॥२५
त्यज दुर्जनससर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्डमहोरात स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२६
व्याली कण्ठप्रदेशादपि च कण्ठभृतो भीषणा या च रौद्री ।
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसव्याकुला व्याघ्रकल्पा ।
क्रोधे चंद्रोपवस्त्रा स्फुरदनलमग्निं काकजिह्वा कराळा
सेवया न स्त्री विदग्धा परपुरुषमना भ्रान्तचित्ता विरक्ता ॥२७
भुजङ्गमे वेशमनि दृष्टिदृष्टे व्याधौ चिकित्साविनिर्वातिते च ।
देहे च वात्स्यादिवयोऽग्निते च कालानृगोऽग्नौ नभते धृति क. २८
जिह्वी भार्या विरूप मैत्री वाली बरपना घोर कलह से प्यार करने वाली घोर प्रिये मुख में उत्तरोत्तर वाद-विवाद बना रहता हो वह भार्या भूतिमयी जरा (वृद्धता) है घोर जरा जरा नहीं है ॥ २२ ॥ जिह्वी भार्या किसी अन्य पुरुष से प्रापित रहने वाली घोर मदा दूधरे के घर की ही प्राकाशा रखती है—जिह्वी मुगी क्रियाएँ हो और जो लग्ना को त्याग देने वाली हो वह भार्या ही वस्तुतः जरा है यद्यपि वृद्धत्व देने वाली होती है और जो दर-ममल जरा है उसे जरा नहीं कहना चाहिए ॥ २३ ॥ जिह्वी भार्या गुणों की प्राप्ता हो घोर घपने रखती की सर्वदा मनुयामिनी रहा करती हो तथा मत्प में

अर्थेन किं कृपणहस्तगतैः पुंसां ज्ञानेन किं बहुशठाकुलसङ्कुलेन ।

रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन ॥६॥

अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्थस्थ भवन्ति मित्राः ।

अर्थविहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः ॥७॥

सूतजी ने कहा—इस सभा में मनुष्य को आपत्ति काल यदि बनी जावे तो उनके लिये घर की रक्षा करनी चाहिए । तात्पर्य यह है कि मुसीबत के समय में काम देने को घन प्रवृत्त हो बचा कर सुरक्षित रखें । घन के द्वारा स्त्रियों की रक्षा करे अर्थात् दारा की रक्षा करना अधिक महत्त्व वाता है । घन और दारा—इन दोनों में सदा आने प्राप्त की रक्षा करे । इन दोनों में प्रमुख स्वात्म-नरक्षण होना है ॥ १ ॥ यदि किसी एक का विनाश होकर पूरे कुल का संरक्षण होना हो तो उस सम्पूर्ण कुल की सुरक्षा के लिये एक का त्याग कर देना चाहिए और पूरे घर में की रक्षा के लिये कुल को त्याग देवे । जनपद की रक्षा हो तो एक ग्राम का कुछ भी ध्यान नहीं करना चाहिये । इस प्रकार से बड़े की सुरक्षा में छोटे का त्याग बनाया गया है किन्तु आत्मीयता का महत्त्व सबसे अधिक है । भारत-रक्षा के लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी को भी त्याग देना चाहिए ॥ २ ॥ दुष्ट चरितों वाले घर में तो नरक का निवास ही अधिक प्रच्छा है क्योंकि नरक के निवास से तो कमजोर पापों का क्षय होता है और पुण्य के निवास में तो उल्टा पाप बढ़ता ही है वहाँ शीघ्र होने का कोई अवसर ही नहीं है ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् पुरुष एक पैर में खड़ा है तो एक में स्थिर रहा करता है । जब तब अगले दूसरे स्थान को भली भाँति परीक्षण कर देख लेवे तब तक पहिले स्थान को नहीं छोड़ना चाहिए ॥ ४ ॥ असत् वृत्त (चरित्र) वाले देश का त्याग कर देवे और दिन जगह के निवास करने में उपद्रव हो उसे भी त्याग देना चाहिए । जो कजूर मरमात्र बाबा राजा हो उसे छोड़ देवे तथा मर्यादा में परिपूर्ण रहने वाले मित्र का त्याग कर देवे ॥ ५ ॥ उस घन से घना लाभ है जो किसी कुराण (वज्र) के हाथों में पड़ गया हो । वह ज्ञान भी व्यर्थ ही होता है जो बहुत-से शठों से आक्रान्त एवं मकुन रहता हो । ऐसा रूप लाक्षण भी दिन प्रयोजन का है जिसे सौन्दर्य के माय गुण और पराक्रम

समय में प्रतिधि-प्रियता जानी जाती है ॥८॥ जिस वृक्ष के समस्त फल खीण हो जाते हैं तो फिर उसे पक्षीगण छोड़ दिया करते हैं । सरोवर के जल सूख जाने पर उसे सारस पक्षी छोड़कर अन्यत्र चले जाता करते हैं । जिस व्यक्ति के पास धन नहीं रहता है तो उससे गणिका फिर प्रेम न कर उसे त्याग देती है, जो राजा नीति-नियमादि से सब तरह भ्रष्ट हो जाता है तो मन्त्रिगण उसका त्याग कर दिया करते हैं । जो पुण्य कामों और मत्तिन हो जाता है भ्रमर (भौरा) उसका त्याग कर देता है । जिस जङ्गल के भाग में दावानल से दाह हो गया है उसे भृग त्याग देते हैं । सभी प्राणी कार्यवश होकर ही रमण करते हैं नहीं तो यहाँ कोई भी किसी का प्यारा नहीं होता है ॥ ९ ॥ जो सालची हो उसे कुछ धन देकर सन्तुष्ट करे अर्थ से अपने वश से करना चाहिए । जो श्लाघनीय गुणों से समन्वित हो उसे हाथ जोड़कर सन्तुष्ट कर लेवे । जो मूल्य ही उसकी उमके से ही प्राचार और अभिलाषा के अनुवर्त्तन से सन्तुष्ट करे । जो पण्डित पुरुष हो उसके समक्ष में यथासथ (वित्तुल सत्त) कथन कर सन्तुष्ट करे ॥१०॥ सद्भावना से देवता-सत्पुरुष और द्विज सन्तुष्ट हुआ करते हैं । इतर लोग खाना-पीना देने से सन्तुष्ट होते हैं किन्तु पण्डित लोग मान देने से ही सन्तुष्ट एवं वशीभूत हो जाया करते हैं ॥११॥ जो उत्तम है उसको प्रणिपात के द्वारा और शठपुरुष को भेद के द्वारा योजित करना चाहिए । जो नीच हो उसे कुछ थोड़ा-बहुत देकर तथा समान को तुल्य पराक्रम के द्वारा योजित करे ॥१२॥ जिन-जिन का जो भाव हो उसी-उस भाव को धोले हुए उमके भस्म स्तल में मनो मति प्रवेश करने में यागी पुरुष शीघ्र ही उसे अपने वशीभूत कर लिया करता है ॥१३॥ नदियों का—नख रखने वाले जन्तुओं का—जिनके सींग हो उनका—हाथों में हथियार रखने वालों का—स्त्रियों का और राज कुल के लोगों का सभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१४॥

अर्थनाश मनस्ताप गृहे दुश्चरितानि च ।

वश्वनश्चापमानश्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१५॥

हीनदुर्जनससर्गमत्यन्तविरहादरः ।

स्नेहोऽन्यगेहवानश्च नारीसच्छीतनाशनम् ॥१६॥

कोई भी नहीं है ॥१८॥ सुहृत्—स्वजन और जिसका बन्धु नहीं है और जिसके आत्मा में युद्ध नहीं है—जिस कर्म के निम्न होने पर भी कोई फलोदय नहीं है तथा विपत्ति में महात् दुःख है उसे कुछ पुण्य कैसे करेगा ॥१९॥ जिस देश में कोई भी सम्मान नहीं होता है—न किसी प्रकार की प्रीति है और न कोई बान्धव ही है । जहाँ न किमी विद्या का ही आगम है उस देश का परित्याग ही कर देना चाहिए ॥ २० ॥ जिस घन का राजाओं के द्वारा लिये जाने का कोई भय नहीं है और न चोरो से डर है तथा मृतक को भी जो नहीं छोड़ता है उस घन का प्रज्जन करो ॥२१॥

यदजित प्राणहरं परिश्रमे भृतस्य त यं विभजन्ति रिक्षियन् ॥
कृतञ्च यद् दुष्कृतमर्थलिप्सया तदेव दोषापहतस्य यौतुकम् ॥२२॥
सञ्चित निहित द्रव्य परामृष्य मुहुर्मुहुः ।
आग्नोरिव कदम्यंस्य घनं दुःखाय केवलम् ॥२३॥
नाना व्यसनिनो रूक्षा कपालाङ्घ्रितपाणयः ।
दर्शयन्तीह लोकस्य अदातु फलमोदशम् ॥२४॥
शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जनाः ।
अवस्थेयमदानस्य माभूदेव भगवन्नि ॥२५॥
सञ्चित ऋतुशतैर्न युज्यते याचितं गुणवते न दीयते ।
तत् कदम्यपरिरक्षितं घनं चोरपायिवृहे प्रयुज्यते ॥२६॥
न देवेभ्यो न विप्रेभ्यो बन्धुभ्यो नैव चात्मनि ।
कदम्यंस्य घनं याति अग्नितस्करराजसु ॥२७॥
अतिवलेन येऽयं घनं स्यात्तिक्रमेण च ।
अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवस्ते कदाचन ॥२८॥

जो प्राणी का हरण करने वाला घोर तथा महा घोर परिश्रमों के द्वारा अजित किया गया है और मृत्यु के पञ्चाङ्ग दायाद लाग जा भी बारिश हों उस का परस्पर में विभाग कर लिया करते हैं । ऐसे व्यर्थ के प्राप्त करने की चाह से जो दुष्ट किया है वह ही दोषों से घट्टन प्राणी का मौन (विवाह का घन)

स्त्रीणां द्विगुण आहार प्रजा चैव चतुर्गुणा ।

पञ्चगुणो व्ययसामश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥३३॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रा न कामेन स्त्रिय जयेत् ।

न चैन्धनैर्जयेद्वह्निः न मद्येन तृपा जयेत् ॥३४॥

समामर्भोजनं स्निग्धमर्भ्यर्गन्धविलेपनं ।

वस्त्रैर्मनोरमेमाल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते ॥३५॥

पटी हुई बिछा या घात मम्यम न करने में होता है । बुरे वस्त्रों के

धारण करने में श्री का घात होता है । क्रिय हुए भोजन व जीर्ण हो जाने से व्यथियों का घात होता है । रात्र का घात प्रपञ्चता होती है ॥ २६ ॥ तस्कर का वध दण्ड है—कुमित्र का वध अल्प भाषण है—नागियों का दण्ड यही है कि इनकी शरणा पृथक् कर देवे । आह्वण का दण्ड उमरी निमग्नता का न देना ही होता है ॥ ३० ॥ दुर्जन—शिल्पी—२ स—दुष्ट—पट्ट और स्त्री में ताडित होकर मादेव (मुत्तादमी) की प्राप्त हुआ करते हैं ये मारण के पाश नहीं होते हैं ॥३१॥ कहीं कार्य करने के लिए भोजन पर श्रुति के कौशल एवं उनकी कार्य क्षमता का ज्ञान होता है । जब कोई व्ययन (दुःख) प्राप्त हो तो वाग्धवों की वग्धु भावना का सही ज्ञान हो जाता है । आपत्ति का समय में मित्र की मित्रता का ठीक ज्ञान होता है और संभव के कम हो जाने पर भी बराबर माय दती है या नहीं—इस तरह भार्या की जान होती है ॥३२॥ पुत्रों से स्त्रियों का दुगुना आहार होता है और प्रजा चौगुनी होती है—व्यवसाय छै गुना होता है तृपा का अष्ट गुना हुआ करता है ॥ ३३ ॥ स्वप्न के द्वारा निद्रा पर जय प्राप्त न करे और काम के द्वारा स्त्री पर विजय न करे । वह्नि के ऊपर विजय ईषत दास्यकर नहीं करे और मद्य पान करके तृपा को सभी विजित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ॥३४॥ घामिष से युक्त भोजन—स्निग्ध पदार्थ—मद्य—गन्ध युक्त विरेचन—मुन्दर वस्त्र—मन को रमण कराने वाले मालर—इनसे स्त्रियों में कामवासना विजृम्भित (वर्धित) होती है ॥३५॥

ब्रह्मचर्यैऽपि दत्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम् ।

दृष्टं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिं प्रविलम्बने स्त्रिया ॥३६॥

रामनोबन। नारियाँ पुरुषों के अभिगमन करने से कभी तृप्त नहीं हुआ करती हैं
चाहे जितना भी धर्मिक उनके साथ रमण पुरुष करते रहा करें वे फिर भी
मत्त हो रहती हैं ॥ ४० ॥ छिष्ट-दष्ट-प्रियवादी और सुप तथा सुन-जीवित
एक वर इतने कभी किसी की तृप्ति नहीं होती है ॥ ४१ ॥ राजा कभी भी धन
के सन्धय से तृप्त एक सन्तुष्ट नहीं होता है चाहे कितना ही धार्मिक धन का
वैभव क्यों न हो जावे । सागर कभी जल से तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ है ।
यद्यपि जलमे प्रभोषित जन रहा करता है । पण्डित भाषण से बभो तृप्त नहीं
हुआ करते हैं और नेत्र चर के दर्शन करन से कभी तृप्ति का लाभ नहीं किया
करते हैं—यही दन्ता रहती है कि कभी और अधिक देखन रहे ॥ ४२ ॥

स्वकर्मधर्माजिनजीविताना शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणा गृहेर्नपि मोक्ष पुरुषोत्तमानाम् ॥ ४३ ॥
मनोऽनुकूला प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्घ्यता ।
वास प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गं स्याच्छुभकर्मणा ॥ ४४ ॥
न दानेन न मानेन नाजवेन न सबया ।
न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विपया स्थाप्य ॥ ४५ ॥

शर्नविद्या शर्नरर्या शर्न पर्वतमारुहेत् ।
शर्न कामश्च धर्मश्च पथतानि शर्न शर्न ॥ ४६ ॥
शाश्वत देवपूजादि विप्रदानश्च शाश्वतम् ॥ ४७ ॥

शाश्वत सगुणा विद्या गृहन्मित्रश्च शाश्वतम् ॥ ४८ ॥
ये वालभावात् पठन्ति विद्या ये मौक्त्या ह्ययनात्मदारा ।
ते शोचनीया इह जीवितोक्ते मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ ४९ ॥
पठने भोजने चिन्ता न कुर्याच्चिदास्त्रसेवक ।
गुह्यमपि विद्यार्थी प्रजेद् गरुडवेगवान् ॥ ५० ॥

ये ऐसे उत्तम पुरुष हैं जिनका कि जीवन निर्वाह करने धर्म और धर्म
के द्वारा उपासित धन से होता है और जो शास्त्रों से तथा अपनी पत्नी से ही
मदा रति रखने वाले हैं—जिनका समस्त इन्द्रियों पर पूर्णतया नियन्त्रण है और
जो सर्वदा धर्माध्यायी से श्रुति रखकर उनका सत्कार किया करते हैं उनका मोक्ष

जो बान भाव में विद्या का पठन नहीं करते हैं और कामातुर होन हुए
 शीघ्र में वित्त का नष्ट किया जाते हैं वे वृद्धावस्था में परिभूषमाण होते हुए
 शिथिल श्रुतु में एक बगलिन की कमरों की भाँति सदस्यमान होते हैं ॥१५०॥
 तर्क प्रविष्टा से रहित होना है और तर्क की कुछ भी श्रुति नहीं है। धृतिपूर्ण
 भी विशेष रूप वाली विद्या भिन्न है। ऐसा कोई भी श्रुति नहीं है जिसका मत
 भिन्न न हो धर्मात् सभी श्रुतियों के मी में विभिन्नता है। एक मन्ता नहीं है।
 ऐसी दशा में धर्म का तत्त्व गुण में विद्या दृष्टा है धर्मात् बगल धर्म का स्वल्प
 है और जोन मा धर्म है—बल जान नवा बहुत ही कठिन है। धर्म एक महान्
 गुणों में जो माग अन्याय है और धर्म जिस गतिविधि में जात गय हैं बड़ी
 मार्ग हमको भी धर्माना चाहिए। सभी धर्मों में ही ॥१५१॥ प्राकृति-इन्द्रिय
 गति-वेग-धापण—नव और गुण व विभागों में सन्तान मन लक्षित होना है
 ॥१५२॥ पण्डित धर्म विद्या कुछ करने पर भी तात्पर्य वा समझ लिया करता है
 क्योंकि दूसरे के इन्द्रिय में ही ज्ञान प्रसन्न कर नवा बुद्धि का फल हुआ करता है
 जो बात बड़ी गिन धर्मात् गुण में बड़ी गर्व है। बस ता तन् पणु भी प्रत्यक्ष कर
 विद्या करता है जिसमें कुछ भी बुद्धि नहीं होती है। धर्म और हाथी भी देखित
 धारण का बहुत किया करते हैं ॥१५३॥ जो धर्म से भट्ट हो जाता है वह तीर्थ-
 यात्रा को नवा जावे—मध्य में जो भट्ट हो उस गोरव मरन ग जाना होता
 है—याग से भट्ट स य-गुति को प्रत्यक्ष करे और राजा से भट्ट मृगया करन
 जाता है ॥१५४॥

६६—नीतिमार कथन (३)

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि नियेवते ।
 ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुव नष्टमेव च ॥१॥
 वाग्यत्रहीनस्य नश्यन् विद्या सस्य तथा नापुल्यन्य हस्ते ।
 न तुष्टिमुपादयते नरीरे ग्रन्थस्य दाग इव दर्शनोया ॥२॥
 स ज्ञ भाजनसक्तिश्च रतिगतिर्वग मिथ्य ।
 विभवो दानभक्तिश्च नाहन्य सपम फलम् ॥३॥

कभी भी 'विवाह नहीं करता चाहिए ॥ १ ॥ उन धर्म से भी क्या लाभ है
ब्रिजकी सद्गति धनर्थ में होती है । जिसकी शक्ति है कि सर्व की शिवा में
समुत्पन्न मणि को ग्रहण करे ॥५॥ दुष्ट कुल में भी हृदि का ग्रहण कर लेना
यदि और नावक के मुख से निकला हुआ भी सुभ 'पत का प्राप्त कर लेने
अपवित्र स्थान में भी गिरे हुए सुवर्ण को ल लेव तथा स्त्री स्त्री स्तन को दुष्कुल
से भी ग्रहण कर लेना चाहिए ॥७॥

विपादध्यमृत ग्राहा ग्रमेध्यादपि वाञ्छनम् ।
नोचादप्युत्तमा विद्या स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ॥८॥
न राजा सह मित्रत्व न सपत्नी निविष क्वचित् ।
न कुल निर्मल तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते ॥९॥
कुले नियोजयेद्भक्तिं पुत्र विद्यामुपाजयेत् ।
व्यसने याजयेच्चतुर्मिष्ट धर्मं नियाजयेत् ॥१०॥
स्यान्वव प्रयोक्तव्य भृत्याश्चाभरणानि च ।
न हि वृद्धामणि पाद शोभन वं वदाचन ॥११॥
वृद्धामणि समुद्रोऽग्निर्यंष्टा चाखण्डमम्बरम् ।
अथवा पृथिवीपालो भूध्निरपादे प्रमादत ॥१२॥
दुष्कुलमस्तवकाम्येव द्वे गती तु मनस्विन ।
भूध्निर वा सर्वलोकाणां शोभत पतितो वने ॥१३॥
वर्णभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्तु पदे प्रतिवध्यते ।
किं मणिर्न हि शोभने ततो भवति योजयितुर्वचनीयता ॥१४॥

विष से भी समुद्र के स्तन को प्राप्त कर लेना चाहिए और अमेर
स्थान से भी सुवर्ण को ग्रहण कर लेने पर नीच दुष्कर्म से भी उत्तम विद्या और
दुष्ट कुल से भी स्त्री स्तन को ले लेवे ॥५॥ राजा के साथ मित्रता का भाव नहीं
होता है—मर्त्य नहीं भी विष रहित नहीं दूषा करता है जिस कुल में स्त्री स्तन
समुत्पन्न हुआ करता है वह कुल कभी भी निर्मल नहीं होता है ॥६॥ कुल को
भक्ति में निोजित करे—पुत्र को विद्या में निोजित करे—शत्रु को अस्त्र में

अश्व-वारण-बौद्ध-काष्ठ-पावण्य उल्लू-वाही-गुरु और तोन-इनका
 म-नर बहुत बड़ा अन्तर होता है ॥११॥ कदाचित् भी धैर्य वृत्ति वाल का समस्त
 पुण्य का प्रमाण नहीं किया जा सकता है । खल क द्वारा नीचे की ओर नी
 हुई प्रणि की भी लिया कभी मो नीचे की नहीं जाया करनी है ॥१६॥ मच्छी
 जाति का घोडा कभी कथा (पावुर) का प्राणात सहन नहीं किया करता है
 और सिंह अपन समक्ष म हाथी की शजना को नहीं सहता है । धयरा वीर
 गुरु शत्रु के द्वारा निष्ठ भेम क्वनि को कभी नहीं सहता है ॥ १७ ॥ यदि
 भाग्य कष वैभव स रति शकर क्षीप्र ही प्रच्युत हो जावे तो भा स्व भिमानी
 पुण्य कभी मन्त्रन की मना करना योग नीच के पास जाने की इच्छा नहीं
 किया करता है । परन्तु भुव म पादित भ निरु कभा त्वन क काम म वृण
 को प्रहृष्ट नहीं करता है और वह प्राण हाथि । क उष्ण सभन का ही पान
 करन दिया का न न करता है ॥१८॥ जा सक बार दुष्ट विव क माथ मय न
 करने की इच्छा करता है वह प्रच्युती (वि-चरो) क तथा भी भ ति मृत्तु का
 ही शत्रुता किया करता है ॥ १९ ॥ बुद्ध मनुष्यो क द्वारा गध की म-गति को
 प्रिय नोकने वाली है कभी उग्रमित नहीं करने वाली दी-विष दाग्य पास हो जाया करती
 है ॥२०॥ उरकार करने क द्वारा शत्रु का अन्न कावू म करन फिर उसी न
 द्वारा अन्य शत्रु का उदार करना चाहिए जिस तरह पेर म तगे हुए एक कटि
 की निशान कर दूँ ककन क लिष्ट एर अन्य कटि का हाथ म लिया जाया
 करता है ॥२१॥

अपकागपरे नित्य चिन्तयेत्त उदाचन ।
 स्वयमेव पतिष्यति कुम्भजाता इव द्रुमा ॥२२॥
 अनर्था ह्यर्थस्याश्च अर्थाश्चानर्थेऽपि ॥
 भवन्ति ते विनाशाय देवायत्तस्य वै सदा ॥२३॥
 वार्यं कालाचिताशापा मति मृष्टायते हि वै ।
 मानुसैर्द्वेष्य पुन मयन जायते ॥२४॥

धनप्रयोगकार्येषु तथा विद्यागमेषु च ।

आहार व्यवहारे च त्यक्तवज्र सर्वं हि ॥२४॥

घनिन आश्रितो राजा नदी वंशम् पञ्चम ।

पञ्च यत्र न विद्यन्ते न पुण्यात्तत्र मस्थितिम् ॥२५॥

लोकयात्रा भय लज्जा दाक्षिण्य दानशीलता ।

पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवस वसेत् ॥२६॥

बालविच्छ्रान्तिरो राजा नदी साधुश्च पञ्चम ।

एत यत्र न विद्यन्ते तत्र वास न वाग्येत् ॥२७॥

नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य वित्त शीतक ।

सर्वं सर्वं न जानाति सर्वज्ञा नास्ति कुत्रचित् ॥२८॥

न सर्वं वाक्छ्रित्तिहास्ति लावे नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि बभूव ।

ज्ञानन नीचान्तममध्यमन यो य विजानाति न तेन विद्वान् ॥२९॥

पराय अपहार कर्म में कभी विनियम नहीं करना चाहिए जो वृष

नदी के तट पर गड़े हुए हैं वे तो स्वयम्ब ही एक दिन गिर जायेंगे ॥ २२ ॥

भाष्य से उस में उसके अर्थ धनार्थ स्वरूप और धनार्थ धन स्वरूप विनाश के लिये सदा ही जाया करते हैं । जिस समय मैं देव सानुकूल होता है तो उस

वक्तु कर्म काय में समुचित पापी से रहित मति समुत्तर हो जातो है इसी

प्रकार मैं देव के अनुकूल होने पर सभी जगह पूज्य को हुआ करता है ॥२३॥

॥२४॥ घन व प्रयोग करने के कार्यों में और विद्या के आगम कर्मों में—आहार

और व्यवहार में मनुष्य को सदा ही नज्वा के ध्यान कर देने वाला रहना

चाहिए ॥२५॥ जिस स्थान पर घन—पद्म—पुष्प—श्रीविद्य—राजा—नदी और

पाँववाँ वंश नहीं है वहाँ सतिपति कभी भी नहीं करने चाहिए ॥२६॥ मोक्ष-

यात्रा—भय—लज्जा—दाक्षिण्य और दान शीलता ये पाँच जहाँ पर विद्यमान

नहीं हो वहाँ पर तो एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥ समय

का ज्ञाना योग्य—श्रीविद्य—राजा—नदी और साधु व पाँव जिस स्थान में

विद्यमान नहीं हो वहाँ वास नहीं करना चाहिए ॥२८॥ हे शीतक । एक ही में

ज्ञान की परिनिष्ठा नहीं होती है । सभी वस्तुएँ सब ही पुण्य नहीं जाना करते हैं

बयोकि सर्वश (सब कुछ वा जाता) कहीं पर भी नहीं है ॥२६॥ इस भूलोक में कोई भी सबका जाना नहीं है । और इस भूमण्डल में अत्यन्त सूत्र भी कोई नहीं होता है । जो जिनको नीच-मध्यम और उत्तम ज्ञान के द्वारा जानता है उसी में वह विद्वान् होता है ॥३०॥

६७—राजा और भृत्य लक्षण (१)

पापघ्नस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम् ।
सर्वाणि हि महीपाल. सम्यग् नित्य परीक्षयेत् ॥१॥
राज्यं पालयते नित्य मत्पथमंपरामणुः ।
निजित्थं परसंन्याति क्षितिं धर्मेषु पातयेत् ॥२॥
पुष्पात्पुष्पं विचिन्वीयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकारं द्वारगणे न यथा द्वारकारकः ॥३॥
दोग्धारः क्षीरभुञ्जाना विवृणु तप्त भुञ्जते ।
परराष्ट्रं महीपालं भोक्तव्यं न च दूषयेत् ॥४॥
नोपदिक्षन्वाप्तुं यो धेत्वा. क्षीराद्यो न भवेत् पयः ।
एव राष्ट्रं प्रयोगेण पीडयमानं न वर्जयेत् ॥५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत् ।
पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्तिरायुर्दण्डो बलम् ॥६॥
अस्मत्स्यं विष्णुं धर्मात्मा गोब्रह्मणहिते रतः ।
भ्रजाः पालयितुं शक्तः पार्थिवो विजितेन्द्रियः ॥७॥

श्री मृतजी ने कहा—यह मैं तुम्हारे सामने राजा के भृत्यों के लक्षणों के विषय में बतलाता हूँ । एक महो पाल को नित्य ही इन सबको अपनी भाँति परीक्षा करनी चाहिए ॥१॥ सत्य और धर्म में तत्पर रहता हुआ राजा नित्य राज्य वा पालन करता है शत्रुओं की सेनाओं के ऊपर विजय प्राप्त करके इस भूमि का धर्म पूर्वक पालन करे ॥ २ ॥ कुसुम बाटिका में मानाकार एक-एक पुष्प को चुनता है और मूल का किसी कारण से छेद करके भी भाँति उच्छेद नहीं करता है ॥ ३ ॥ दोग्धार जो क्षीर वा उभोग करते हैं वे विवृत को

यभी नी भाग्य है । मीठाका कट्टरा भी पगल राट्ट का उभोग करना
 पाणि रि नु उमका कभी दूगल नरी करना चाहिये ॥ ४ ॥ जो धेनु क ऊँ
 (एन) को नी होना है वही छोड़ के चान्न जाना दूध का प्राप्त किया करता
 है । इसी प्रकार म पीडयमाण राट्ट को प्रयोग म ध्वजित न कर ॥ ५ ॥ इस
 कारण म सगल समस्त प्रपत्ति का द्वारा पृथिवी का अनुपातन राजा को करना
 उचित है । पानन करी वाला का भूमि हानी है घोर माय ही कीर्ति-प्राप्त
 दण और यम भी दुषा करने हैं ॥६॥ भर्मात्मा की भगवान् पिण्ड की मध्य
 बना करण को घोर प्रत्यासा के नि-मध्य दन म मयना निगमन वाला होता
 है । यही इन्द्रियों को जोत मने वाला राजा हा प्रजा का पालन करने म
 समर्थ दुषा करता है ॥७॥

अश्वत्थमध्रुप प्राप्य राजा धर्मं गतिश्चरत् ।
 क्षणत विभया नश्येत्प्रात्म यत्न धनादिभ्यम् ॥८॥
 मत्स्ये ननारमा तामा न ग म्भ्या विभूतम् ।
 वि नु व वनिताया द्भभ क्षोभान नि जायतम् ॥९॥
 व्याधौव तित्ति जग अति तजय ती
 गमाश्च गगर इव प्रभवति माय ।
 आयु परित्यजति भिन्नघटादिवाम्भो
 नाव न चात्महितमागतीह वशित् ॥१०॥
 नि गव कि मनुष्या बुद्ध परहित युक्तमप्र हित
 य मादध्व कामिनीभिर्मदनगरहता म दम दातिदृष्ट्या ।
 मा पाप सङ्मुख्य द्विजहरिपरमा सम्जध्व गदध
 आयुनि गवमति स्वमनि जतपटोभूतमृ युद्धतन ॥११॥
 मातृवत्पत्न्यारेषु परद्वेषेण तामिव ।
 अस्मिन्मत्तवभूतसु य पश्यति स पण्डित ॥१२॥
 एतदथ हि विप्रे दा राज्यमिच्छति भूभूत ।
 मत्पा मन्त्रार्थेषु चो ग प्रतिह यते ॥१३॥

एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो वनसन्धयम् ।
रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धनं तद् द्विजातये ॥१४॥

यह मानागिक ऐश्वर्यं समुद्र (मनिष्विन्) दूषा करता है । इनको प्राप्त करके राजा को धर्म में अपनी प्रति लगानी चाहिए । जो अपने अधीनता में रहने वाला था ॥१४॥ वन है वह जड़ समग्र भाग जाना है तो एक ही क्षण में नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ य मन को रमण कराने वाले काम मत्प हैं और ये मुख्य विभूतियाँ भी मत्प हैं किन्तु यह माननीय जीवन वनिता व संपादक (बटाश) की भङ्गों (विषय) की नीति मत्पन्त चक्षुष है ॥ ९ ॥ यह जरा है और प्रत्येक प्रकार के रोम इस मानव शरीर में धनुषों की तरह समुद्रम हो जाता करते हैं । यह पशुपुत्र की प्राप्ति प्रतिक्षण फूट हुए घड़े से जल की सीति परिभाष करती चली जाता करती है किन्तु बड़ा ही आश्चर्य का विषय है कि

सौम्यो मे कार्यं भी अपने प्राप्त का हिन का नृत्य भी नम्रादन नहीं किया करता है ॥१०॥ हे मानवो ! माय वाग नृप नि शङ्क की नीति हो रहे हो ? दूसरे की भलाई का कार्य प्रवर्त करो और सबसे पहिले अपना धर्म-हित करना चाहिए । तुम लोग जो कामिनीयों के द्वारा कामध्व के बाणों से हत होते हुए मरने से भी मन्द दृष्टि से मोद प्राप्त करते हो—यह पाप मत करो । सर्वदा प्रह्लाद और हरि भगवान् में परमपण होने हुए उनका भजन करो । यह प्राप्ति दूसरे के मन को एक मिट्टी के टुकड़े के समान ही समझना चाहिए । समस्त प्राणिमान को अपनी भावा के समान जो देखता है वही वास्तव में सच्चा पण्डित है ॥११॥ हे विप्रो ! राजा लोग इनीतिये राज्य की कामना किया करते हैं कि समस्त बाणों में इनके वचन का प्रतिपादन न होवे ॥१२॥ इनीतिये राजा लोग इस विधान धन की राशि का मन्त्र किया करते हैं कि अपनी भावना को रक्षा करके वह सम्पूर्ण धन द्विजातियों के हिन में वने ॥१४॥

घोकारशब्दो विप्राणा येन राष्ट्रं प्रवर्द्धते ।

स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिर्धनं न वर्द्धते ॥१५॥

अममर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम् ।

किं पुनस्तु महोपाल पुत्रवत्पानयन्प्रजाः ॥१६॥

यन्मार्थान्तिस्व मित्राणि यस्वार्थान्तिस्व बान्धवा ।

यन्मार्था स पुमान्लोके यस्वार्था स च पण्डित ॥१७॥

त्यजन्ति मित्राणि धनं विहीन पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।

ते चार्यवन्त पुनराश्रयन्ति भ्रष्टो हि लोके पुष्पस्य बन्धुः ॥१८॥

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जित ।

अन्ध पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ॥१९॥

यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिता ।

इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि ॥२०॥

येनाजितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवा ।

जिता तेन सम भूषंश्चतुरन्ध्रवैसुन्धरा ॥२१॥

विशेष का घोकार शब्द है जिसके द्वारा राष्ट्र की प्रवृद्धि हुआ करती है ।

वह राजा योग से वृद्धिशील होता है और व्याधियों से भी कभी बढ नहीं होता है ॥१५॥ असमर्थ मुनिगण हो द्रव्य का सञ्चय किया करते हैं । राजा फिर किस लिये होता है जोकि अपनी प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करता है ॥१६॥ इस संसार में धन का बड़ा ही महत्त्व लोग माना करते हैं जिसके पास धन होता है उसी के लोग मित्र हुआ करते हैं और जिसके अधीन धन है उसी के बान्धव गण मापी रहा करते हैं । जिसके पास धन है वह ही इस लोक में एक सम्मानित पुरुष माना जाता है और धनी पुरुष की महा पण्डित अर्थात् जाता समझा करते हैं ॥१७॥ जो धन से विहीन हो जाते हैं उन्हें सासारिक मित्र छोड़ दिया करते हैं मित्र ही नहीं धनहीन व्यक्ति को उसके पुत्र—दारा और सुहृज्जन भी त्याग दिया करते हैं और वे सब फिर अर्थ सम्पन्न का आश्रय ले लिया करते हैं । इस लोक में एक मात्र धर्म ही पुरुष का बन्धु और सभी कुछ है ॥१८॥ जो शास्त्रीय ज्ञान से रहित है वह राजा वास्तव

में प्राप्ता ही होता है। भगवा तो चार के द्वारा ही देखा करता है क्योंकि जो शास्त्र से हीन होता है वह कभी देखा नहीं करता है ॥१६॥ त्रिम राजा के पुत्र-भृत्य-मन्त्रिगण—पु त्रेहित और इन्द्रिया प्रसुप्त हैं उनका राज्य प्रविक्रमय तक नहीं टिकता है ॥२०॥ जिसने पुत्र-भृत्य और बान्धव इन तीनों को प्रविक्रम कर लिया है उसने समस्त राजाओं सहित चारों समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण वसुन्धरा को ही जीत लिया है भवति वह समस्त भूमण्डल का प्रयो-अर होता है ॥२१॥

तद्गुणैश्चास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च ।
स हि नश्यति वं राजा इह लोके परत्र च ॥२२॥
मनस्ताप न कुर्वति प्रापद प्राप्य पार्थिव ।

समबुद्धि प्रसन्नात्मा मुखदुःखे समो भवेत् ॥२३॥
घोरा कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विपादिन ।
प्रविश्य वदन राहो किं नोदेति पुन शशी ॥२४॥

धिविवशरीरसुखलालितमानवेपु
ना खेदयेद्धनकृश हि शरीरमव ।

सद्धारका ह्यधनपाण्डुगुता श्रुता हि
दुःख विहाय पुनरेव सुख प्रपन्ना ॥२५॥
गन्धर्वविद्यामालोक्य वाच च गणिकमण्डला ।

धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रञ्जित भूयति ॥२६॥
कारणैर्न विना भृत्ये यस्तु कृष्यति पार्थिव ।
स गृह्णाति विपान्माद वृप्स्यसंप्रविशजितम् ॥२७॥

चापलादारयेद् दृष्टि मिथ्यावाक्यश्च वारयेत् ।
मानवे श्रीत्रिये चैव भृत्यवर्गो सदैव हि ॥२८॥
यो हेतुर्लोके युक्त और साधनों के समस्त विषयों का सङ्ग्रह किया

करता है वह राजा इस लोक और परलोक दोनों के नष्ट हो जाया करता है ॥२९॥ राजा को प्राप्त हो जाने पर मन में ठाण नहीं करना चाहिए । राजा को ही मुख-शुभ्र में समान—यम बुद्धि वाला और प्रवृत्त आत्मा वाला

रहना चाहिये ॥२३॥ धीरे पुण्य बट प्रसन्न करने भी कभी दियाद में मुक्त नहीं हुआ करता है । क्या चन्द्रमा राहु के मुख में प्रवेश करने भी पुन समुद्र में नहीं हुआ करता है ? ॥२४॥ क्षीरसागर मुख से लापित मनुष्यों के निचे पुन पुन धिक्कार है । पन में इस गोरे पर कभी भी गेद मत बरो । धावन भलो भानि अवगन किया है कि पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि स्त्री के सहित बिना पन पान होकर क्या मरत थे और फिर उम मन्त्रुणं दुष्ट का त्याग पर मुख में मन्त्रप्र हो गया था ॥२५॥ कनिष्ठाओं का गण मन्त्र के बिना और बाय दास्य देखना है और उठते रहता करता है । राजा को नीचे में धनु बंद और अथ दास्य की रक्षा करनी चाहिये ॥२६॥ जो राजा बिना ही किसी कारण के अपना हृत् पर कुपित होता है वह दृष्टान्त मूर्ख के द्वारा विसर्जित विषोन्माद की दृष्टान्त करता है ॥२७॥ अपना हृत् की पणवता से धारित करना चाहिये अपना पणव हृत् कभी न रहे । मिथ्या से मुक्त पाप को भी धारित कर । मानव मान म—योगिन् म और मदा ही भूतम मग में बपव-हृत् और मिथ्या वचन का प्रयोग नहीं करे ॥२८॥

लीला करोति यो राजा श्रुत्यमजनमवित्त ।
 शामने सर्वदा क्षिप्र रिपुभिः परिभूयते ॥२९॥
 हुंकार भूवृद्धी मेव सदा कुर्वीत गायित्व ।
 विना दोषेण यो भूतान् राजाऽधर्मेण शास्ति च ॥
 लीलामुत्थानि भोग्यानि त्यजेद्विद्वन्महीपति ॥३०॥
 सुखप्रवृत्तं माध्यन्ते क्षत्रयो मित्रहे स्थिते ॥३१॥
 उद्योग साहस धैर्यं बुद्धि शक्ति पराक्रम ।
 पट विधेयस्य उत्साहरतस्य देवोऽपि शङ्कते ॥३२॥
 उद्योगेन कृतं वार्थं सिद्धिर्यस्य न विद्यते ।
 देव तस्य प्रमाणं हि कर्त्तव्यं पौरुष भवा ॥३३॥

जो राजा अपने जन और मृत्यु के समुदाय पर दयित्व भवित होकर लीला किया करता है क्योंकि अपनी भी कीर्ति में कंठा रहता है वह राजा

मोक्ष ही मन्त्रे शासन में सर्वदा चतुर्भो के द्वारा परिभूत हो जाया करता है ॥२६॥ जो पक्षि सदा हृङ्कार और शृङ्गुटि टेटी नहीं करता है । दोष के बिना भृत्यों पर धर्म से शासन किया करता है । लोभा व सुख और भोग यहाँ त्यग देने चाहिए ॥२७॥ कृप-प्रवृत्त विग्रह म स्थितो के द्वारा चतुर्गुण साध्य हुआ करते हैं ॥२८॥ उद्योग-साहस-धैर्य-बुद्धि-शक्ति-पराक्रम-इन छै का विधेय जो होता है उसको जताह होता है और उससे देव भी सज्जित रहा करते हैं ॥२९॥ उद्योग के द्वारा धार्म्य के करने पर जितको सिद्धि नहीं होवे । इसका प्रमाण देव होता है । मतएव निश्चय रूप से सदा पोष्य करना चाहिए ॥३०॥

६८-राजा और भृत्य लक्षण (२)

भृत्या बहुविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमा ।
नियोक्तव्या यथाहंपु निविधेत्त्वेव धर्ममु ॥१॥
भृत्ये परीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः ।
तमिम सप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ॥२॥
यथा चतुर्भिः कनक परीक्ष्यते निषर्पणव्येदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिर्मृत्क परीक्ष्येद् द्रवेण क्षीलेन कुलेन कर्मणा ॥३॥
बुलशोलगुणोपेत सत्यधर्मपरायण ।
रूपवान्मुप्रसन्नश्च कोपाध्यदो विधीयते ॥४॥
मूल्यरूपपरीक्षाकुद्भवैर्बलपरीक्षकः ।
बलावलपरिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते ॥५॥
इक्षिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्निप्रयदर्शनः ।
अप्रमादी प्रमाथी च प्रतीहार स जन्यते ॥६॥
मेगावो वाक्पटु प्राज्ञ सत्यवादी जितेन्द्रिय ।
सर्वसाधनसमालोवी ह्येव साधुः स लेखक ॥७॥
भूतजी ने कहा—भृत्य भी बहुत प्रकार के होते हैं उन्हें जान लेना चाहिए । भृत्य उत्तम-मध्यम और अधम होते हैं । इनलिखे इनकी तीन तरह के

धर्मों में जो जिस कर्म के योग्य हो उसे वही पर नियुक्त करना च हिय ॥१॥
 धर्म में भृत्य के विषय में उसका परीक्षण बतनाऊँगा । जिस-जिस भृत्य के जो
 गुण होते हैं । उसको मैं धर्म बताता हूँ जो जब-तब बहे गये हैं ॥२॥ जिस तरह
 से सुवर्ण की चार प्रकार से परीक्षा की जाती है । सुवर्ण का निरूपण देवन—
 तापन घोर तापन ये चार परीक्षण के प्रकार हुआ करते हैं । इसी प्रकार भृत्य
 की भी यन्—शील—कुल घोर कर्म इन चार रीतियों से परीक्षा करनी चाहिए
 ॥३॥ जो भृत्य बुध घोर शीन के गुणों से युक्त हो तथा सत्य एवं धर्म में परा-
 यण हो—रूप वाला घोर सुप्रसन्न हो ऐसे भृत्य को कोष का अध्यक्ष बनाना
 चाहिए ॥ ४ ॥ मूल्य घोर रूप की परीक्षा करने वाला तथा रत्नों की परीक्षा
 करने वाला घोर बल तथा धन के परिज्ञाता को सेनाध्यक्ष दिया जाता है
 ॥५॥ इन्द्रित घोर सादृति के तत्त्व का ज्ञान रखने वाला—बल वाला—देखने
 में प्रिय लगने वाला—प्रमाद न करने वाला घोर प्रमथनशील व्यक्ति को प्रती-
 हार के पद पर नियुक्त करना कहा जाता है ॥ ६ ॥ मेघाशी—बोलने में पटु—
 प्राज्ञ—सत्य बोलने वाला—जितेन्द्रिय घोर समस्त शास्त्रों को देख लेने वाला
 एवं साधु वृत्ति वाले पुरुष को लेखक के पद पर नियुक्त करे ॥७॥

बुद्धिमान्मतिमाश्चेव परचित्तोपलक्षक ।

क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥८॥

समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञः पण्डितोऽयं जितेन्द्रियः ।

शीर्य्यंवीर्य्यंगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते ॥९॥

पितृप्रेतामहा दक्षः शास्त्रज्ञः सत्यवाचकः ।

शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकारः स उच्यते ॥१०॥

आयुर्वेदकृताभ्यास सर्वेषां प्रियदर्शनः ।

आयुःशीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते ॥११॥

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहीमपरायणः ।

आशीर्वादयरो नित्यमेव राजपुरोहितः ॥१२॥

लेखकः पाठकश्चैव गणकः प्रतिबोधकः ।

आलस्ययुक्तश्चैव राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा ॥१३॥

द्विजित्तमुद्धेगकरं कूरमेकाग्रदाख्यम् ।
सलम्पादेष्ट वदनमपकाराय केवलम् ॥१४

बाला—कूर तथा जो भी बहा जावे उसे ठीक बैसा ही रह देने वाला जो भृत्य हो उसे दूत के कर्म में नियुक्त करना चाहिए ॥१४॥ समस्त शास्त्र घोर स्मृतियों का ज्ञाता—पण्डित इन्द्रिों पर नियन्त्रण रखने वाला—भूरता तथा बहादुरी के गुणों से युक्त धर्माध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए ॥१५॥ वापदावासी से बने माने वाला—परम दक्ष—शास्त्र का ज्ञाता—तत्त्व बोझने वाला—परम पवित्र—कठिन जो भृत्य हो उसे सूपकार अर्थात् रसोदया के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥१६॥ प्रायुर्वेद शास्त्र में सम्पात करने वाला—सबको देखने से परम प्रिय ॥१७॥ देवों तथा देवों के सम्पूर्ण भक्त शास्त्रों के तत्त्वों का ज्ञाता—अप एवं होम में परापूर्ण रहने वाला घोर धार्मीर्वाद देने में नित्य तत्पर हो उसे राजा का पुरोहित नियुक्त करे । तालवर्ष यह है कि इन प्रकार के गुण राक्ष-पुरोहित में होने चाहिए ॥१८॥ सेतु-गठक-गणक घोर प्रतिबोधक यदि भालम्प से युक्त हो तो राजा को चाहिए उसे कर्म से सदा बर्जित कर देने ॥ १९ ॥ दो बिल्ला खाना—हृदय में उद्धेग उत्पन्न कर देने वाला—कूर—पूछें दाख्य खल तथा सर्प का मुख जैसा होता है जोकि सर्वदा केवल अपकार के ही लिये हुआ करता है ॥२०॥

दुर्जन, परिहर्तव्यो विद्ययाऽतद्धूतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥२१॥
प्रकारणाविष्णुतकांपचारिणः खलाद्भयं कस्य न नाय जायते ।
विष महाहेविषमस्य दुर्वचः सुदु सहं सन्निपतेत्सदा मृषे ॥२२॥
तुल्यायं तुल्यानामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
भद्रं राज्यहरं भृत्यं यो हन्यात् न हन्यते ॥२३॥
भूरत्नयुक्ता मृदुमन्दवाक्वा जितेन्द्रिया सत्यपराक्रमाश्च ।
प्रागेव पञ्चाद्विपरीतरूपा ये ते तु नृत्वा न हिता भवन्ति ॥२४॥

निरालम्बा सुसन्तुष्टा सुख्यजा प्रतिबोधका ।

सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोनेषु दुर्लभा ॥१६

क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दवः ।

दाम्भिकः पेटुवश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः ॥

अशक्तो भयभीतश्च राजा त्यक्तव्य एव स ॥२०

सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च ।

दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत् ॥२१

जो दुजन है वह चाहे जितना ही विद्वान् हो उसका तो परिहार ही कर देना चाहिए । मणि से विभूषित रहने वाला सर्प क्या भयदुर नहीं होता है ? दुजन तो विघालकृत होकर भी परम भयानक ही हुपा करता है ॥१५॥ बिना ही किसी उचित कारण के कोर को प्रणट करके उसे धारण करने वाले सत् पुरुष से जिस को भय उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् ऐसे सत् से भी सभी भय-भीत होते हैं । महा सर्प बड़ा विषम होता है जिसका विष भी परम उग्र होता है और छल के मुख से सदा ऐसे गुरे वचन निजला करते जो सुदुःसाह होते हैं अर्थात् मर्म भेदी और हृदय विदारक होते हैं ॥ १६ ॥ तुल्य भय' वाले-समान सामर्थ्य वाले-मर्म (रहस्य) के ज्ञाता-अवसराधी तथा आधे राज्य का हरण करने वाले भृत्य को जो हनन कर देता है वह फिर नहीं मारा जाता है ॥१७॥ धूरस्य से युक्त-मृदु और मन्द वचन बोलने वाले-जितेन्द्रिय-सत्य पराक्रम वाले प्रथम ही और पीछे से विपरीत स्वरूप वाले जो भृत्य होते हैं वे हित करने व से नहीं हुपा करते हैं ॥१८॥ बिना आलस्य वाले-परम सन्तोषी-सुन्दर निद्रा लेने वाले-प्रतिबोधक-सुख और दुःख के समक्ष में समान रूप से रहने वाले तथा धैर्यशाली भृत्य ससार में बहुत दुर्लभ हुपा करते हैं ॥१९॥ क्षान्त और सत्य से रहित-धूर बुद्धि वाला-निन्दा करने वाला-दम्भ रखने वाला-पेटुक अर्थात् केवल अपने सदर के भरते रहने की चिन्ता करने वाला-शठ-स्पृहा से समन्वित-क्षान्ति हीन और भय में सर्वदा डरा हुपा जो भृत्य हो उसे राजा को स्वाग देना चाहिए ॥२०॥ अपनी भावि सन्धान किये हुए अस्त्र और

मनेक प्रकार के शस्त्र अपने दुर्ग में प्रविष्ट करके रखने चाहिए । इसके अनन्तर
राज्य का निपातन करे ॥२१॥

परमासमय वर्ष वा सन्निव कुर्यान्निराधिप ।
पश्यन्सन्वितमात्मानं पुन शत्रु निपातयेत् ॥२२॥

मूर्खान्नियोजयेद्यस्तु त्रयाऽप्येते महीपते ।
प्रयशश्चायनाशश्च नरके चैव पातनम् ॥२३॥

यत्किञ्चित्कुस्ते कर्म शुभ वा यदि वाऽशुभम् ।
तेन सवद ते राजा मूढमतो मृत्यकाय्यते ॥२४॥

तस्माद् भूमीश्वर प्राज्ञ धर्मकामार्थसाधने ।
नियोजयेद्धि सतत गोब्राह्मणहिताय वा ॥२५॥

ऐसा काम भयवा एक वर्ष तक राजा की सन्निव कर्त्तनी चाहिए । जब वह
देख लेवे कि वह अपने दाएँ ओर दूर्योधन गुप्तचित्त कर लिया है तथा राज्य का
निपातन करना चाहिए ॥२१॥ जो राजा मूर्खों को अनुचित नीति से विभिन्न
पक्षों पर निपुक्तियों कर देता है उस राजा को भयश-प्रयनाश और नरक-पातन
से हीतो परिणाम प्रदत्त ही हुआ करते हैं ॥२३॥ राजा जो भी युद्ध शुभ या
अशुभ समझता है उसने शत्रुओं के ही कार्य से मूलतया राजा बढ़ा करता है
इन कारण से भूमीश्वर की धर्म-काम और धर्म के साधन में प्राज्ञ-पुरुषों की
ही निपुक्तियों करनी चाहिए और निरन्तर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गो
तथा ब्राह्मणों का हित होना रहे ॥२४-२५॥

६८—नीति शास्त्र कथन (१)

गुणवन्तं निपुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत् ।
परिहृतस्य गुणाः सर्वं मूलं दोषाश्च केवलाः ॥१॥
सद्भिर्वासीत सतत सद्भिर्गुर्वीत सद्भित्तम् ।
सद्भिर्विवाद मन्वीच नासद्भिर्किञ्चिदाचरेत् ॥२॥
परिहृतं विनीतं च धर्मज्ञो सत्यवादिभिः ।
वन्दनस्योऽपि तिष्ठेत् न तु राज्ये तर्कं सह ॥३॥

सावसेपाणि वार्याणि कुवं नयेँश्च युज्यते ।

सन्मात्मर्पाणि वार्याणि सावसेपाणि वारयेत् ॥४॥

मधुहेय दहेदाष्ट्र कुमुमश्च न पातयेत् ।

वसनापेक्षी दुहेत्सीर भूमि गाञ्छेव पायिव ॥५॥

यथा वसेण पुष्पभ्यश्चिनुते मधु पटपट ।

तथा वित्तमृपादाय राजा बुवीत सञ्चयम् ॥६॥

वत्मीन मधुजालञ्च युवतपदे तु चन्द्रमा ।

राजद्रव्यञ्च भंक्ष्यञ्च स्तोदन्मोकेन वद्धंते ॥७॥

मूनजी बोले—राजा को सरदा गुणवान् वा ही नियोजन करना उचित है । जो गुण म (जोकि अभी ऊपर बताया गया है) रहित पुरुष है उसका धन न कर देना चाहिए । सद्-प्रसक्त क विवेक की बुद्धि रखने वाल पण्डित ने सभी गुण हूमा बताते हैं और मूर्ख म देखन दाप ही रहस्य है ॥१॥ निम्नतर सत्पुरुषों के साथ सद्गुणों के और साधुगुणों के साथ हो प्रपत्नी वदत-वदत भी रखे । सत्पुरुषों के साथ विवाद और मैत्री भी करनी चाहिए । जो प्रसक्तपुरुष है उनके साथ तो उपर्युक्त कुछ भी कार्य न करे ॥२॥ पण्डित मून-विनीतजन धन के ज्ञाता और सत्पुरुषों के साथ सन्ध्या के स्थित होकर भी धन-रहित रहे और सत्तों के साथ राज्य म भी कभी नहीं रहना चाहिए क्योंकि सत् सत्तों का परिणाम सर्वदा बुरा ही होता है ॥३॥ समस्त कार्यों को साथ साथ करके ही मनुष्य समों से मुक्त हुआ करता है । इस कारण से मनुष्य कार्यों को सावसेप ही करना चाहिए ॥४॥ मधुजा (भीरा) की तरह राष्ट्र का दोहन करे और कुमुम का दाहन कभी न करे । प्रपत्ति राष्ट्र से करो के स्वरूप में इन प्रकार से धन का सञ्चय करे जो उसके स्वरूप को कोई दाग न लगे और वह उसे का रंग सुन्दर कुमुम की भाँति सुखी सुनोमिव बना रहे । जो वस्त्र भी धोखा रखने वाला है गौ में और का जिन तरह दोहन किया करता है वैसे ही भूमि का दोहन राजा को करना चाहिए ॥ ५ ॥ जित प्रम से अमर पुष्पा में मधु को चूना करता है उन्नी भाँति राजा को प्रजा से वित्त प्रदत्त कर सञ्चय

करे ॥ ६ ॥ बल्मीक—मधु का जाल और शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा तथा राजा का द्रव्य और मोटा छोड़ा—छोड़ा करके ही बड़ा करते हैं ॥७॥

यज्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा बल्मीकस्य तु सञ्चयम् ।
 अयन्धम दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥८॥
 घनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणा गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
 अकुरिसते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृह तपोवनम् ॥९॥
 सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
 मृजया रक्ष्यते पात्रं कूलं शीलेन रक्ष्यते ॥१०॥
 धरं विन्ध्याटव्या निवसनममुक्तस्य मरणं
 धरं सर्पाकीर्णं शयनमथ कूपे निपतनम् ।
 धरं भ्रान्तावर्त्तं नभयजनमध्ये प्रविशनं
 न तु स्वोये पक्षे तु धनमग्नौ देहीति कथनम् ॥११॥
 भाग्यक्षयेषु क्षीयन्ते नोपभागेन सम्पदः ।
 पूर्वाजिते हि मुकुते न नश्यन्ति कदाचन ॥१२॥
 विप्राणां भूपणं विद्या पृथिव्या भूपणं नृपः ।
 नभसो भूपणं चन्द्रः शीतं सर्वस्य भूपणम् ॥१३॥
 एते ते चन्द्रतुल्याः शितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः ।
 शूराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केतवेनोपगूढाः ।
 ते वे दुष्टग्रहहृत्पाः कृपणवसगता भैरवचर्म्या प्रयाताः
 यो वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद् भ्रामयेत्कर्मरेखा ॥१४॥

यज्जन का क्षय और बल्मीक का सञ्चय देखकर—दान और अध्ययन धर्मों में दिवस को व्यय्य करे ॥ ८ ॥ जो राग से युक्त बिल वाले पुरुष हैं वे पहे धन में भी जाकर निवास क्यों न करें वहाँ पर भी उनको दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं और राग से निवृत्ति करके पाँचों इन्द्रियों का निग्रह स्वी तप करते हुए पर में रहने है—यह भी एक महाने उनकी तपश्चर्या ही है । जो सर्वका अकुर्वित धर्मात् परम प्रज्ञात धर्म में प्रवृत्ति रखता है ऐसे निवृत्त राग

जाते पुरस् के लिए गृह हो तपोवन के मुख्य होता है । राग से निवृत्ति और सत्त्वम ही मृगयता मध्य है ॥६॥ सत्य म धर्म की रक्षा की जाती है और योग से विद्या की सुरक्षा होती है । मार्जन करने से पाप की रक्षा तथा धीन वृत्ति से पुन की सुरक्षा हुमा करती है ॥ १० ॥ विन्ध्य के जंगल में निवास करना—भोजन न प्राप्त होने पर भूय से मृग्य का शान बन जाना—पशु से बिदे हुए स्वत मे पचन करना तथा कूप म निवास करना—अन्य प्रावर्त्तो से युक्त मय साक्षि जल के मध्य में अवेश का जाना अधिक श्रेष्ठ है हिन्दु धर्मे पक्ष पाले गोशे के समक्ष में जाकर भोजन—ता धन मुझे दो—इस तरह यचना करके अपना अपमानित आत्माओं के मध्य म जीवन रक्षता अवस्था नहीं है ॥११॥ भाम्य के नाश होने से ही मन्दराक्षों का क्षय हुमा करता है उपभोग करने से कभी भी क्षमति का नाश नहीं होता है । यदि पूर्व जन्म का अजित सुख विद्वान है ता क्षमति का कभी भी नाश नहीं होता है ॥ १२ ॥ विप्रों का भूषण केवल एक विद्या हो जाती है—पृथिवी का भूषण मृग है—प्राकाश का आभरण चाद्रमा है और नील सबल भूषण हुमा करता है अतएव नील वृत्ति का मन्त्र अधिक महत्त्व होता है ॥ १३ ॥ ये सब चाद्रमा के समान परमोच्च एव सुन्दर राजा के पुत्र भीमसेन और अर्जुन आदि मत्स्यिक दूरबीर—सत्य प्रीति वाले—दिनकर के यशु वाले घोर मास वृ नैराय भगवान के द्वारा उप गृह भी से हिन्दु दुष्ट प्रहों के क्षय में अवस्थित होकर ऐसे कापण्य के वश में स्थित होयों से निष्ठा वृत्ति भी उन्हें करनी पड़ी थी । इसलिये यही जान होता है कि किस दशा म कौन समर्थ हो सकता है । यह जनों की रेखा विधि के मय से मन्त्रे मन्त्रों को भी अजित करा दिया करती है भाम्य सर्वोपरि घोर सबसे प्रबल हुमा करता है । इससे जाने किमी का भी कुछ बल नहीं चलता है—यह परम विद्वान् है ॥१४॥

ब्रह्मा येन कुलाक्षयस्त्रियमितो ब्रह्माण्डमाण्डोदरे

विष्णुर्गुणेन दशावतारगहने तिस्रो महामङ्कटे ।

रुद्रो येन कणालपाखिरमरो भिन्नाटन कारित

सूर्यो भाम्यसि नित्यमेव यमने तस्मै नमः कर्मणे ॥१५॥

दाता बलिर्यावनको मुरारिर्दान मही विप्रमुखस्य मध्ये ।

वत्सा फल बन्धनमेव लब्ध नमोज्जु ते दैव यथेष्टकारिणे ॥१६॥

माता यदि भवेत्लक्ष्मीः पिता साक्षाज्जनादेन ।

कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दृष्ट विधृत सदा ॥१७॥

येन येन यथा यद्वत्पुरा कर्म सुतिश्चिन्तम् ।

तत्तदेवान्तरा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मन ॥१८॥

आत्मना विहित दुःखमात्मना विहित सुखम् ।

गर्भशय्यामुपादाय भुङ्क्ते वै पौर्वदेहिकम् ॥१९॥

न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विविधप्रदेशे ।

न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तु क्षमं कर्मकृत नरो हि ॥

न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तु क्षमः कर्मकृत नरो हि ॥२०॥

द्वर्गनिग्रह परित्याग समुद्रो रक्षावि योषा परमा च वृत्तिः ।

आत्मनश्च व तूतनसा प्रविष्ट स रावण कालवशाद्दिनष्ट ॥२१॥

जिस महामहिम कर्म ने ब्रह्मा की भी इत बड़ा लट करी माएड के उदर में एक कुम्हार की नीति नियमित कर दिया है—जिस कर्म ने मायात् विष्णु भगवान् की भी दश प्रवृत्त धारण करने जङ्गल में महान् सङ्कट में डाल दिया है—जिस कर्म ने महान् देव रात्र की कपाल हाथ में लेकर पिछाटन करने दाता बना दिया है और जिस कर्म की गति के बल में ही सूर्यदेव नित्य-प्रति गगन में भ्रमण निमा करते हैं उस परम प्रबल कर्म के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है । कर्म ही सबसे प्रधान एवं प्रमुख होता है जो बड़े-बड़े की भी अपने अधीन करके घुमाता रहता है ॥१५॥ राजा बाल के गमान् महान् यश दान देने जाता—मायात् विष्णु वायन रूप धारण करने वाले वायव—भूमि जोता परमोत्तम दान और विप्र के मुख में फल देकर भी राजा बलि ने इसके परिणाम में बन्धन ही प्राप्त किया था । हे देव ! यथेष्ट फल देने वाले मायके लिये हमारा नमस्कार है । देव की प्रवृत्तता सबसे अधिक होती है ॥१६॥ यदि माया मायात् स्वयं महालक्ष्मी हो और पिता साक्षात् भगवान् जन दान ही हो तो भी यदि बुद्धि की प्रतिपत्ति हो तो उसका सदा दण्ड धारण करना

ही पड़ता है । बुद्धि की शुद्धता का परम महत्त्व जीवन में होता है ॥ १७ ॥
 जित-जित न जीया जो पहिल कर्म किया है यह अनिश्चिन्त है कि वह क्या ही
 स्वयं अपने भाग्य द्वारा कृप कर्म का फल प्रवश्य ही भोगा करता है । इस
 कर्मों के फल का कोई भी व्यक्ति मिटाने माफी नहीं है ॥ १८ ॥ अपने ही द्वारा
 दुःख प्राप्त करने के कर्म किये जाते हैं और अपनी ही भाग्मा से सुख भी कृपा
 जाता है अपना सुख और दुःखों का प्रदान करने वाला यह प्राणी स्वयं ही होता
 है यद्यपि कोई नहीं होता । गन्ध की राखा को प्राप्त कर यह पूर्व जन्म के किये
 दुःखों को भोगा करता है ॥ १९ ॥ किये हुए कर्मों को मनुष्य भावाग से—मनुष्य
 के मध्यम-पवनो के विभिन्न प्रदेश म—माता के गर्भ में तथा पशु में रहकर भी
 रथात करने में समर्थ नहीं होता है । माता के सहज पर या उत्तम पशु में
 रह कर भी पूर्व कर्म का त्याग नहीं कर सकता है यद्यपि किये हुए कर्मों का
 फल प्रवश्य ही भोगना पड़ता है । इससे यथावत् नहीं भी नहीं हो सकता है
 ॥ २० ॥ जिसका दुःख विवृट या और उग दुःख की परिणा (गार्ह) मनुष्य जमी
 अथाह एव सुविस्तीर्ण थी — । क्षम महाबली जिसका मुक्त करने वाले पोषा थे
 और परमा जिसकी वृत्ति था । पशुर गुरु उग्रता के द्वारा जिसने सम्पूर्ण व स्त्री
 का प्रकाशन किया था वह राक्षस राज रावण भी काल के वश में धावर नष्ट
 हो गया था ॥ २१ ॥

यस्मिन्वयसि यत्काले पहिया यत्तया निशि ।
 यन्मुहूर्ते क्षणे यापि सतया न तदग्यथा ॥ २२ ॥
 गच्छति चान्तरिक्षे वा प्रविशति महीतले ।
 धारयन्ति दिश सर्वा नादत्तमुपलभ्यते ॥ २३ ॥
 पुराणीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यदनम् ।
 पुरा कृतानि कर्माणि श्रेष्ठे धावन्ति धावत ॥ २४ ॥
 कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे ।
 वसिष्ठवृत्तननेऽपि जानकी दुःखभाजनम् ॥ २५ ॥
 स्थूलजङ्घो यदा राम शन्दमाभी च लक्ष्मण ।
 पनकसो यथा सीता त्रयस्तु दुःखभाजनम् ॥ २६ ॥

न पिण्डकर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा ।

कर्मजन्यशरीरेषु रोगाः शारीरमानसा ॥२७॥

शरा इव पतन्तीह विमुक्ता दृढघन्विनः ।

अतो वं शास्त्रमभिप्रेत्या धिया धीरोऽर्थमीहते ॥२८॥

जिम भवस्या मे—जिस समय मे—जिस दिन मे—जिस रात्रि मे—जिस
मुहूर्त मे और जिस क्षण मे जो भी बीमा होने व सा होता है वही होकर रहा
करता है । इससे अन्यथा कभी नहीं होता है ॥ २२ ॥ चाहे अन्तरिक्ष मे घने
जार्ने या मही के तल मे प्रवेश करें घबरा सभी दिशाओं मे कहीं भी चले जावे
जो नहीं दिया है वह वही भी न ० मिल सकता है ॥२३॥ पहिले जन्म मे जो
विद्या का अध्ययन किया है और पहिले जो धन का दान किया है तथा पहिले
जन्म मे जो भी कर्म किये हैं वे सभी प्राये ठोड कर चला करते हैं ॥२४॥
सम्पत् पक्षे नक्षत्र और शुभ व्रत होने पर भी इन सगार मे कर्मों की ही प्रधा-
नता होती है । मर्त्य बन्धु मनोयी के द्वारा जन्म का शोधन कर निश्चय
करने पर भी जानकी की दुखों का भोग करना ही पडा था ॥ २५ ॥ म्भूत
जह्वा वाले राम—दाद गान्नी तक्षण और घनकेशी सीता ये तीनों ही दुखों
के भाजन हुए थे ॥२६॥ पिंड कर्म मे पुत्र और पुत्र कर्म से पिता नहीं होते
हैं । शारीरिक और मानसिक रोग कर्म जन्य शरीरों मे हुआ करते हैं ॥२७॥
दृढ धनुष धारी पुत्र के द्वारा छोडे हुए जरो की भांति यहाँ आकर ये निपटिन
होते हैं । इतलिय शास्त्रों के गर्म वाली बुद्धि से धीर पुरुष कर्म की चाह किया
करता है ॥२८॥

बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् ।

तस्या तस्यामवस्थाया भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥२९॥

अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्योऽपि मानवः ।

स्वकर्मपातवातेन नीयते यत्र तत् फलम् ॥३०॥

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः ।

अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाटलेखा न पुनः प्रयाति

(यदस्मदीयं न तु तत् परेषाम्) ॥३१॥

सपं कूपे गज स्वन्धे आगुदिले च धावति ।
 नर दीघतरादेव वर्मण व पलायति ॥३२॥
 नात्पायति हि गद्विद्य। दीयमानापि वद्धंते ।
 कृपस्थमिव पानीय भवत्येव बहूदाम् ॥३३॥
 येऽर्था धर्मण सं मर्या ये धर्मण गता श्रियः ।
 धर्मार्थी च मष्टान्तावे तस्मृत्वा ह्यर्थवारणात् ॥३४॥
 अघ्नार्थी यानि दु त्तानि करोति कृपणो जन ।
 तान्येव यदि धर्मार्थी न भूय वलेशभाजनम् ॥३५॥

वामन—युवा घोः गृध्र जो भी शुभ समा अनुभुव कर्म करता है उस-
 उस अवसमा में उनका कर्म जन्म-जन्मान्तर में भोगता है ॥ ३२ ॥ इच्छा न
 करता हुआ भी पीर विदल में स्थित होन वाला भी मानव अपने कर्म कपी
 पोत के बात द्वारा उमका फल वही पहुँचा दिया जाया करता है ॥३०॥ जो प्राप्त
 हान के योग्य धर्म होता है उस मनुष्य अवश्य ही प्राप्त कर लेता है । देव भी
 उसकी शोचन में समर्थ नहीं होता है । इतलिय में हमें त्रिष कोई भी चित्ता
 या शोच नहीं करता है । मुझे विस्मय भी नहीं होता है करोड़ ललाट में मिली
 हुई लेखा का कोई भी बदल नहीं सकता है अर्थात् वह अच्युता नहीं होती है ।
 जो हमारे माग्य में बड़ा है धर्मात् हमारे कर्मों के अनुगार जो भी हमारा प्राप्त
 होने वाला है वह हमकी अवश्य ही मिलेगा किसी धर्म को नहीं मिल सकता
 है ॥३१॥ मय कूप म-गज स्वन्ध में घीर पूड़ा बिल में दौड़ खगाना है । कौन
 से मनुष्य दीघतर कर्म में पलायन करता है ? ॥३२॥ दूसरों की प्रदान की
 हुई विद्या कभी भी कम नहीं होती है प्रस्तुत वह दूसरों के देने पर अधिक
 बढ़ती है । कूप में रहते बाक पानी की तरह वह बहूदक होती है ॥३३॥ जो
 धर्म धर्म के द्वारा हाते है वे ही सत्य हमा करते हैं और धर्म पूर्वक प्राप्त की
 गई है वह ही वास्तविक श्री है । दण जीव में धर्म का ही धर्मो पुष्ट महान्
 होता है । अतएव धर्म के कारण से उमका ही स्मरण रखना चाहिए ॥३४॥
 धर्म के चाहने वाला कृपण भवन्त कृपण होता हुआ जिन दु त्तों की भीता है

उन्ही दुःखों यदि धर्म का अर्थी बरे तो फिर किसी भी क्लेश का वह पात्र ही नहीं हो सकता है ॥३५॥

सर्वेषामेव शोचानामन्नशोचं विशिष्यते ।
 योऽन्ताथैरशुचि शोचाद्ग मृदा वारिणा शुचि ॥३६॥
 सत्यशोच मन शोच शोचमिन्द्रियनिग्रहः ।
 सर्वभूते दया शोच चलशोचश्च पञ्चमम् ॥३७॥
 यस्य सत्यश्च शोचश्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः ।
 सत्य हि वचन यस्य सोऽश्रमेधादिशिष्यते ॥३८॥
 मृत्तिकाणा सहस्रेण उदकाणा जलेन च ।
 न शुद्धयति दुराचारो भावोपहतचेतनः ॥३९॥
 यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुमयतम् ।
 विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥४०॥
 न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति ।
 न क्रुद्ध परस्परं श्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम् ॥४१॥
 दरिद्रस्य मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च ।
 गाले श्रुत्वा हितं वाक्यं न कश्चित्परितुष्यते ॥४२॥

समस्त प्रकार के शोचों में अन्न की शुचिता का एक पर्यन्त विशेष स्थान होता है । जो अन्न का अर्थी मनुष्य हो जावे अर्थात् अनुचित अन्न के सेवन से जो मनुष्यता होती है वह जब भीरु मिट्टी से कभी दूर नहीं हो सकती है ॥३६॥ सत्यता के पालन करने से शुचिता होती है—शुद्ध—मन के होने से भी शुचिता हुमा भरती है और अपनी समस्त इन्द्रियों पर नियंत्रण एवं नियंत्रण रखने से भी शोच होता है । समस्त प्राणियों पर हृदय में दया का भाव रखने से शुचिता होती है । पाँचवाँ शोच जो होता है वह अस्थिर हुमा करता है ॥३७॥ जिस मानव को सत्य और शोच होना है उसको स्वर्ग का प्राप्त करना कुछ भी दुर्लभ नहीं होना है । जिसके वचन में सदा सत्य विराजमान रहता है उसका दुष्प-फल अश्रमेय यज्ञ से भी अधिक होता है ॥ ३८ ॥

भावनाओं से उपहत चेतना गान्वा। दुराचार ऐसा प्रबल होता है कि उसकी प्रशुचिता महसूस कर मृत्तिका से तथा खंडी बार जल से पोने पर भी सप नहीं होती है ॥३६॥ जिसने हाथ-पैर और मन मुग्धमान होते हैं उसकी विष-तप और कीर्ति की प्राप्ति होती है और वह सीधे बंधन को प्राप्त किया करता है ॥४०॥ जो पुण्य सम्मान के पान पर प्रसन्न नहीं होता है और अपमान हो जाने पर कभी कोप नहीं किया करता है। जो कोप में भरकर कभी अपने मुँह से कठोर वचन नहीं बोलता है—यह एक महान् साधु पुरुष के लक्षण होते हैं ॥४१॥ दरिद्र मनुष्य के और मधुर प्राज्ञ के समय पर हित वाच्य श्रवण करके कोई परितुष्ट नहीं हुआ करता है ॥४२॥

न मन्त्रवलबोध्यैण प्रज्ञया पौरुषेण च ।

अलभ्य लभ्यते मत्तोस्तत्र का परिवेदना ॥४३॥

अप्राप्तो मया लब्धो मत्प्रेषित पुनर्गतः ।

यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना ॥४४॥

एकवृक्षे सदा रात्री नानापक्षिसमागमः ।

प्रभातेऽन्यदिश यान्ति का तत्र परिवेदना ॥४५॥

एकस्वार्थप्रपाताना सर्वेषाम् तत्र गामिनाम् ।

यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना ॥४६॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि क्षीनक ।

अव्यक्तनिघनान्येव का तत्र परिवेदना ॥४७॥

नाप्राप्तकालो भ्रियते विद्व. शरशतैरपि ।

कुशाग्रेण तु संस्पृष्ट प्राप्तकालो न जीवति ॥४८॥

लब्धव्यान्येव लभते गतव्यान्येव गच्छति ।

प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च ॥४९॥

मन्त्र-बल-वीर्य—प्रज्ञा और पौरुष से मनुष्य प्राप्ति पदार्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये इस अप्राप्ति के विषय में कुछ भी दुःख नहीं मानना चाहिए ॥४३॥ जिस की मैंने कभी याचना नहीं की थी उसे मैंने प्राप्त कर लिया था और मेरा भेजा हुआ वह फिर मुझसे चला गया है। जहाँ से वह

घाया या चही पर वह चला गया है अर्थात् जिस प्रदाता ने मुझे दिया या उगी ने उसे पुनः ले लिया है तो इसके लिए दुःख मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए ॥४४॥ एक ही वृक्ष पर रात्रि के समय में इधर-उधर से अनेक पक्षियों का समागम हो जाता करता है । प्रातःकाल के होने पर वे सभी जो एक साथ रहे वे विभिन्न दिशाओं में उड़कर चले जाया करते हैं तो इसके लिये कुछ भी परिचेष्टना नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह समागम तो अस्थायी ही था और उनका वियोग भी होता ही है । तात्पर्य यह है कि यह सांसारिक संयोग पिता—पुत्र और भाई—भतीजे आदि का भी ऐसा ही है मत. इस विच्छेद से कभी भी कोई दुःख नहीं मानना चाहिए ॥ ४५ ॥ किसी एक ही स्वार्थ के सम्पादन करने के लिये प्रमाण करने वाले सब में जोकि समन कर रहे हैं उनमें कोई एक शीघ्रता से चलकर घागे निकल जाया करता है तो इसमें क्या दुःख की बात है ? सार में भी यही भावे—पीछे संसार त्याग करने का क्रम रहा करता है ॥४६॥ हे शीनक ! ये नमस्त भूतों का भादि कारण अव्यक्त है—मध्यम में ये मय व्यक्त स्वरूप वाले होते हैं । इन सबका निघन भी अव्यक्त ही है—इसलिए इन विषय में दुःख के मानने की क्या बात है ॥ ४७ ॥ जिसका समय नहीं आया है संकटों शरों से विद्ध होकर भी कभी नहीं मरा करता है और जिसकी मृत्यु का समय ही उपस्थित हो गया है वह एक क्षणा के अग्र भाग के स्पर्श से भी मर जाता है और किसी भी सपाय से वह जीवित नहीं रहा करता है । मृत्यु का एक नियत समय होता है दोष सब तो बेबल निमित्त मान ही होते हैं ॥ ४८ ॥ जो प्राप्त होने वाले होते हैं उन्हें ही मानव प्राप्त किया करता है और जहाँ पर जाना सुनिश्चित होता है वही पर वह जाया करता है इसके प्राप्त होने का योग भाग्य में बसा है उन्हीं पदार्थों को मानव प्राप्त किया करता है । दुःख और सुख भी इसी प्रकार से हुआ करते हैं ॥४९॥

ततः प्राप्नोति पुरुषः किं प्रलापं करिष्यति ।

आचोद्यमानाति तथा पुष्पाणि च फलानि च ॥

स्वकाल नातिवर्तन्ते तथा कर्म पूराकृतम् ॥५०॥

क्षील कुल नैव न चैत्र विद्या ज्ञान गुणा नैव न बीजशुद्धि ।
 भाग्यानि पूर्वं तपसाजितानि काले फलन्ति पुरुषस्य ययैव वृक्षा ॥
 तत्र मृत्युयत्र हन्ता तत्र श्रौर्यत्र सम्पदः ।
 तत्र तत्र स्वय याति प्रेक्ष्यमाण स्वकर्मभिः ॥५२॥
 भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्त्तारमनुनिष्ठति ।
 यथा घेनुशस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥५३॥
 एव पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
 सुकृतं भुङ्क्ष्व चात्मोय मूढ किं परितप्यसे ॥५४॥
 यथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
 एव पूर्वकृतं कर्म शुभं वा यदि चाऽनुभम् ॥५५॥
 नीचं संपंपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
 आरमणी विल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥५६॥

इसी भाग्य के अनुसार पुरुष प्राप्त किया करता है मतएव प्रसाप करना
 व्यर्थ ही होता है जैसे पूर्व में ही प्रेरित हुए फल और पुष्प स्वतः ही समय पर
 प्राप्त हुआ करते हैं । इसी भाँति पूर्वकृत कर्म वही अपने समय का प्रतिवर्तन
 नहीं किया करते हैं । समय पर पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्य ही प्राप्त होता है
 ॥५०॥ पूर्व जन्म में तपस्वर्या के द्वारा जो भाग्य का निर्माण किया है वह
 समय आ जाने पर फल दिया ही करता है जैसे अपना फल उपस्थित हो जाने
 पर वृक्ष फलों की उपज निपा करते हैं । आश्वमेध में क्षील—कुल—विद्या—
 ज्ञान—गुण और बीज की शुद्धि कारण नहीं बनते हैं । इन सबमें रहित पुरुष
 भी पूर्व कृत के कारण महान् भाग्यशाली होता है ॥५१॥ जहाँ पर हनन करने
 वाला है वहाँ पर मृत्यु भी है और जहाँ सम्पदाएँ हैं वहाँ श्री विद्यमान रहा
 करती है । वहाँ—वहाँ पर वह स्वय ही अपने कर्मों के द्वारा प्रेक्षमाण होकर
 पहुँच जाता है ॥५२॥ पहिले किया हुआ कर्म उसके करने वाले के साथ ही
 रहता है जिस तरह सहस्रो धनुषों में बद्धा अपनी माता के ही पास पहुँचा
 करता है ॥५३॥ इसी प्रकार म पूर्व में किया हुआ कर्म उसके करने वाले के
 समीप में पहुँचता है और वह कहता है कि है मूढ़ ! अपने मुकृत फल भोगले,

व्यर्थ में ही क्यों परित्याग कर रहा है ॥५४॥ पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म चहे वह शुभ हो या अशुभ हो सर्वदा उसके करने वाले के साथ ही रहा करता है ॥५५॥ नीच पुरुष दूसरों के सरसों के बराबर छिद्रों को भी देखा करता है और अपने बेल के फल के बराबर भी भ्रष्टाई बड़े बड़े लोगों को भी देखते हुए भी नहीं देखता है ॥५६॥

रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद् द्विज ।

विचार्यं सलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निवृत्ति ॥५७॥

यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।

स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ॥५८॥

शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च ।

जीवितञ्च शरीरञ्च जात्येव सह जायते ॥५९॥

सर्वे परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।

एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयो ॥६०॥

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।

सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तते ॥६१॥

यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात्तच्च दूरतः ।

वर्तमानेन वर्तते न स शोकेन बाध्यते ॥६२॥

हे द्विज ! जो पुरुष राग और द्वेष में युक्त होते हैं उनको कहीं भी सुख प्राप्त नहीं हुआ करता है । विचार कर मैं भती भाँति देख रहा हूँ कि सुख वस्तुतः वही पर होता है जहाँ निवृत्ति होती है ॥५७॥ जहाँ पर स्नेह होता है वहाँ पर भय भी रहता है क्योंकि स्नेह दुःख का आधार हुआ करता है । दुःखों का मूल स्नेह ही होता है अतएव तब स्नेह के त्याग पर देने पर महान् सुख हो जाता है ॥ ५८ ॥ यह शरीर ही दुःख और सुख का आयतन होता है । जीवित और शरीर जाति से ही साथ उत्पन्न होता है ॥५९॥ पराये अधीन सभी सुख का रहना दुःख होता है और सबका अपने अधीनता में रहना सुख होता है । मक्षर स्वरूप से सुख और दुःख का यही लक्षण होता है । इस समार में मनुष्यों को सुख और दुःख एवं चक्र की भाँति परिवर्तित हुआ करने हैं भर्षात् सुख के वाः दुःख और दुःख के पदवात् सुख प्राप्ता ही करना है ॥६०॥

सुख के अनन्तर दुःख और दुःख के अनन्तर सुख आता है। चक्र का परिवर्तन भी इसी तरह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे हुआ करता है ॥६१॥ जो हो गया वह प्रति काल है। जो होने वाला है वह दूर है जो वर्तमान से दूर-तता है वह शोक से बाधित नहीं होता है ॥६२॥

७०--नीतिशास्त्र कथन (२)

न कश्चित्स्वस्यचिन्मय न कश्चित्स्वस्यचिद्विषु ॥
 वारणादद जायन्ते मित्राणि रिषवस्तथा ॥१॥
 शाकशाण भयत्राण प्रीतिविश्वात्मभाजनम् ।
 नैन रत्नमिदं सृष्ट मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥२॥
 सवृद्धुद्धरित येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
 बद्ध परिकरस्तेन मोक्षाय गमन प्रति ॥३॥
 न मातरि न वारपु न सोदर्यो न स्वात्मजे ।
 विश्वासस्तादृशः पुत्रा यादृश मित्रे स्वभाजने ॥४॥
 यदीच्छेत्तानाश्वती प्रीति श्रीणि दोषाणि वर्जयेत् ।
 यत्तमर्थप्रयोगश्च परोक्षे दारदर्शनम् ॥५॥
 माया स्वप्ना दुहिता वा न विवक्तासने वसेत् ।
 वलवानिन्द्रियग्रामो विद्यासमपि वर्पति । ६॥
 विपरीतरति काम स्वायत्तपु न विद्यते ।
 यत्रापामो बधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—इस संसार में कोई भी किसी का मित्र नहीं है और न कोई किसी का शत्रु ही है। यही पर तो कारण के बत होकर हो मित्र तथा शत्रु बना करते हैं ॥१॥ शोक से बचाव करने वाला—भय से सुरक्षा का सम्पादन तथा प्रीति एवं विश्वास का पात्र 'मित्र'—यह दो प्रक्षरों वाला उत्तम रत्न किसने सृजित किया है ? ॥२॥ जिसने केवल एक ही बार परम प्रीति एवं भक्ति के भाव से "हरि"—यह भगवान् के दो प्रक्षर का पुनीत नाम का उच्चारण किया है उसने मोक्ष की प्राप्ति को गमन करके के तिये

अपने परिकर को बच कर लिया है ॥३॥ स्वभाव से समुत्पन्न मित्र में मनुष्य का जैसा परम सुदृढ विश्वास होता है वैसा विश्वास अपनी माता—पत्नी—सहोदर भाई—भोर पुत्र में भी नहीं हुआ करता है ॥४॥ यदि सर्वदा बनी रहने वाली प्रीति को स्थिर रखने की इच्छा है तो वहाँ पर तीन दोषों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए—छूत क्रीडा करना, घन के लेने-देने का प्रयोग और परोक्ष में स्त्रियों को देखना या उनसे सम्भाषण करने का काम ॥५॥ अपनी माता—भगिनी—पुत्री इनके साथ विविक्त भासन पर कभी निवास नहीं करना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय अत्यन्त बलवान् होता है और यह महान् विद्वान् को भी नष्ट कर लेता है अर्थात् महान् पाप कर्म करने की ओर शीघ्र लिया करता है ॥६॥ अपने अधीन रहने वाले में विपरीत रति बाना काम नहीं होता है । जहाँ अपना यद्यपि दण्ड है वैसा ही अनुवर्तन होता है ॥७॥

अपि कल्पानिलस्येव तुरगस्य महोदधेः ।

वाक्यते प्रसरो बोद्धुं न ह्यरक्तस्य चेतसः ॥८

क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति प्रार्थयिष्या जन ।

तेन शौनक नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥९

एका वै सेवते नित्यमन्य चेतसि रोचते ।

पुरुषाणामस्त्राभेन नारी चैव पतिव्रता ॥१०

जननी यानि कुश्लं रहस्य मदनातुरा ।

सुर्नस्तानि न चिन्त्यानि शोलेविप्रतिपत्तिभिः ॥११

पराधीना निद्रा परहृदयकृत्यानुमरणं

सदा हेलाहास्य नियतमपि शोकेन रहितम् ।

पणो न्यस्तः काय विटजनपुरंदारितगलो

बहूत्कण्ठावृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमतः ॥१२

अग्निनापः स्त्रियो मूर्खः सर्पा राजकुलानि च ।

नित्यं परोपसेव्यानि सद्यः प्राणहाराणि पद ॥१३

किं चित्रं यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डितः

किं चित्र यदि दण्टनीतिबुधलो विप्रो भवेद्दामिक ।

किं चित्र यदि स्त्रयोवन्वती योपिन्न साध्वी भवेत्

किं चित्र यदि निर्धनोऽपि पुरुषः पापं न क्षुम्यात्ववचित् ॥१४

बलानिल ब—तुरग वा भोर महोदधि वा प्रसर जाना जा सक्ता है किन्तु अरक्त चित्त वा नहीं जान सकते हैं ॥ ८ ॥ हे धीमन् ! धारण मात्र का समय प्राप्त नहीं होता है—एकान्त स्थान भी कभी नहीं मिलता है भोर कभी प्रार्थना करने वाला पुरुष भी प्राप्त नहीं हुमा करता है ऐसे ही तीन बारण रहा करते हैं जिसके बारण से नारियों के सतीत्व रक्षा हो जाया करती है अन्यथा उक्त कारण यदि हो तो फिर नारियों के सतीत्व का वचन महान् कठिन हो जाता है ॥६॥ एक पुरुष को तो यह नित्य प्रति सेवन किया करता है तो भी उसके चित्त में अन्य पुरुष के सेवन करने की रचि बनी रहा करती है । पुरुषों की प्राप्ति न होने से ही नारी पतिव्रता रहा करती है ॥१०॥ माता सदन से आतुर होकर जिन कर्म बलाओं की रहस्य में किया करती है पुत्रों को उन पर चिन्तन नहीं करना चाहिए क्योंकि वे शील की विप्रति पत्ति करने वाले होते हैं ॥१६॥ निद्रा पराधीन होनी है—पराये हृदय के वृत्तों का अनुसरण—सदा हेला हास्य नियत शोक से भी रहित होता है । सगर मे गणिका का जीवन ऐसा होता है कि उसका शरीर पैसे के प्राप्त करने के लिये सदा निरत रहना है भोर विद्वानों के द्वारा उसका गला सदा विदारित रहा करता है—यह बहुते को उत्कण्ठा को संतुष्ट की वृत्ति वाली भोर बहुतों से लोगों की इच्छा पूर्ण करने वाली सानी गई है ॥१२॥ अग्नि—जल—स्त्रीगण—सर्व भोर राजकुम ये नित्य परोपसेव्य अर्थात् दूसरों के सेवन करने के योग्य होते हैं भोर ये धर्म सद्य प्राणों के हरण करने वाले भी हैं ॥१३॥ इससे कौन-सी आश्चर्य की बात है कि यदि शब्द शास्त्र से कुशल प्रिय परिदृत होता है । यह भी कोई विचित्र बात नहीं है कि दण्ड नीति मे कुशल विप्र धामिक है । इसमें भी कुछ विचित्रता नहीं है कि रूप—लायण्य से सम्पन्न स्त्री सती—साध्वी न रहे भोर यह भी कुछ अद्भुत बात नहीं है कि कोई निधन पुरुष कभी भी कोई पाप कर्म नहीं करता है ॥१४॥

नात्मछिद्र परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च ।
 गृहे कूर्मं इवाङ्गानि परभावश्च लक्षयेत् ॥१५॥
 पातालतलवासिन्य उच्चप्राकारध्वनिताः ।
 यदि नो चिकुरोद्भेदः स्त्रियाः केनोपलभ्यते ॥१६॥
 समधर्मा हि ममंजस्तीक्ष्ण स्वजनकण्ठक ।
 न तथा बाधते शत्रु कृतवैरो बहि स्थित ॥१७॥
 स पण्डितो यो ह्यनुश्रव्येह मिष्टेन बाल विनयेन शिष्टम् ।
 अर्थेन नारी तपसा हि देवान्सर्वाश्च लोकाश्च सुसंग्रहेण ॥१८॥
 छलेन मित्रं ह्यनुपेण धर्मं परोपतापेन ममृद्धिभावम् ।
 मुनेन विद्या परुषेण नारी वाञ्छति वै ये न च पण्डितारते ॥१९॥
 फलार्थो फलिनं वृक्षं यश्छिन्त्याद् दुर्मतिर्नर ।
 निष्कल सस्य त्वं कार्यं तन्मूलं दोषमाप्नुयान् ॥२०॥
 साधनो हि तपस्वी च दूरतो वै कृतधर्मः ।
 मद्यपा स्त्री सतीत्येव विप्रं न श्रद्धान्महम् ॥२१॥

कभी भी अपने छिद्र अपने अपने आपके दोष या गुटि को दूसरी की नहीं देना यह हिण और दूसरे के छिद्र को भी न देवे । पर में कछुए के झंझो की भाँति परभाव को देखना चाहिए ॥ १५ ॥ पाताल तल की निवास करने वाली और उच्च प्रकार में छाँडित स्त्रियों का यदि चिकुरोद्भेद न हो तो वे किसने द्वारा प्राप्त की जाया करती है ? ॥१६॥ बैर करने वाला और बाहिर रहने वाला शत्रु उस प्रकार की बाधा नहीं किया करता है जैसी बाधा करने वाला समान धर्म वाला—मम का ज्ञाता—तीक्ष्ण धरना जन कहक होता है ॥१७॥ यही पुण्य वास्तव में पण्डित है जो अपने मोठे भाषण से बालकों का मनुरञ्जन किया करता है और विनय के भाव में शिष्ट पुरुषों को प्रसन्न किया करता है—पन में नारी को—तपधर्मा से देवी को—ममस्त लोगों को सुसंग्रह से मनुरञ्जन करते हैं उनको ही पण्डित कहते हैं । जो छन में मित्र को—अनुप में धर्म को—परोपताप से समृद्धि के भाव को—मुन ने विद्या को और कड़ीरना

से नारी को जो चाहने हैं वे पण्डित पुरुष नहीं कहे जा सकते हैं ॥१८॥
 ॥१९॥ कनो की इच्छा रखने वाला पुरुष यदि कनो से मुक्त कृशो का छेदन
 करता है तो वह मनुष्य दुर्भति ही होता है । ऐसे पुरुष का वाय निष्कन ही
 होता है और उसका मूल दोष को प्राप्त होता है । हे विप ! साधन सम्पन्न
 तपस्वी हो—दूर स भ्रम करने वाला—प्रणयन करने वाली स्त्री तती है—यह
 मैं कभी भी धृष्टा के साथ विश्वास नहीं करता हूँ ॥२०॥१॥

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।

कदाचित्कुपित मित्र सर्वं गुह्य प्रवासयेत् ॥२२

सर्वभूतेषु विश्वास सर्वभूतेषु सात्त्विक ।

स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोहि लक्षणम् ॥२३

यस्मिन्स्मिन्वृत्ते बाध्यं कर्तारमनुवर्त्तते ।

सर्वथा वृत्तमानोऽपि धैर्यं बुद्धिन्तु पारयेत् ॥२४

वृद्धा स्त्रियो नव मश शुक्र मास भिमूलवम् ।

रात्रौ दधि दिवा स्वप्न विद्वान्पटु परिवर्जयेत् ॥२५

विप गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणो विपम् ।

विप कुशिक्षिता विद्या अजोर्लं भोजन विपम् ॥२६

प्रिय दानमकुश्लस्य नीचस्योच्छ्वासन प्रियम् ।

प्रिय दान दरिद्रस्य यूनाश्च तरुणो प्रिया ॥२७

अत्यम्बुपान कठिनाशनश्च घातुक्षयो वेगविधारणश्च ।

दिवाशयो जागरणश्च रात्रौ पङ्क्तिर्नराणां निवसन्तिरागा ॥२८

जो विश्वास का पात्र नहीं है उसमें कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए
 और जो मित्र है उसको विश्वास का पात्र रहते हुए भी उसका भी पूर्णतया
 विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि यदि किसी समय में वह विश्वस्त मित्र क्रुशित
 हो जाता है तो फिर सभी कुछ गोपनीय बातों को प्रकाशित कर दिया करता
 है ॥२९॥ समस्त प्राणियों में विश्वास रखना और सब प्राणियों में सात्त्विक
 भाव का रखने वाला होना और अपने भाव को अपने ही प्राणों द्वारा गोपनीय
 रखना—ये एक साधु पुरुष का लक्षण होता है ॥ २३ ॥ जिस किसी कार्य के

करने पर कर्त्ता का समुत्पन्न कर्त्ता है सर्वथा वर्त्तमान भी धर्म बुद्धि को करे ॥२४॥ वृद्धा स्त्री-नवीन मद्य-शुष्क श्राविष-त्रिमूलक-रात्रि में दधि और दिन में मोना ये छे कार्य विद्वान् पुण्य को वर्द्धित कर देने चाहिए ॥२५॥ दग्ध पुण्य की गोष्ठी करना विष के तुल्य है और वृद्ध पुण्य को तरली विष के समान होती है । कुत्सित मोक्षी हुई वित्त विषवत् है और पहिला किया हुआ भोजन जब तक जीर्ण न हो जबे ऐसी दया में और भोजन का कर लेना भी विष के समान होता है ॥ २६ ॥ कुष्ठ रहित को दान प्रिय होता है और नीच को शस्त्र-वाम लेना प्रिय होता है । दग्ध को दान प्रिय लगता है और युवा पुण्य को तरली परम प्रिय प्रणीत हुआ करती है ॥२७॥ मद्यन्त अविक्रम का पन करना-कठिन वस्तुओं का खाना-पान का लय होना और बर्गों का रोक लेना अर्थात् धन मूत्रादि के त्याग करने के योग को गोकना-दिन में दशन करना-रात्रि में जागरण करना-इन छे कार्यों में मनुष्यों के शरीर में रोग निवाम किया करते हैं ॥२८॥

वाजातपश्चाप्यतिमंथुनश्च दमशानधूम करतापनश्च ।

रजस्वलाववत्रतिरोक्षणाश्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्पयेच्च ॥२९॥

शुष्क माम स्त्रियो वृद्धा वालाकंस्तदण दधि ।

प्रभाते मंथुन निद्रा सद्य प्राणहराणि पट् ॥३०॥

मद्यः पचस्पृत द्राक्षा वाला स्त्री क्षीरभोजनम् ।

उष्णोदक तरुच्याया मद्य-प्राणहराणि पट् ॥३१॥

कूपोदक वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः ।

शीतकासे भवेदुष्णमुष्णकासे च शीतलम् ॥३२॥

सद्योवलकरास्त्रीणि वालाम्यङ्गमुभोजनम् ।

सद्योवलहरास्त्रीणि अघ्या च मंथुनं प्वरः ॥३३॥

शुष्क मांस पयो नित्य भाग्यामित्रैः सहैव तु ।

न भोक्तव्यं नृपैः साढ्वं वियोग कुरुने क्षणात् ॥३४॥

कुचेतिन दन्तमलापचारिण बह्वाग्निन निष्ठुरवाक्पभाषिताम् ।

सूत्र्येन्द्रे ह्यस्तमयेऽपि साविनं विमुञ्चति श्रोत्रे च दवाणिनम् ॥३५॥

प्रातः कालीन सूर्य का प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष मैथुन—समयान भूमि की पूर्वा
 हाद्यो का तपाना—रजस्वला स्त्री के मुख को देखना—य कार्य मुदीर्घ आयु का
 भी वर्धण किया करते हैं ॥ २६ ॥ पुष्प मौख—पृष्ठा स्त्री—वाले सूर्य—तक्षण
 (हाथ का ही जमा हुआ) दधि—प्रभात काल में मैथुन और निद्रा में काय शय
 प्राणों के हरण करने वाले हुमा करते हैं ॥ २७ ॥ ताजा पकाया हुआ घृत—दास
 बाला स्त्री—दीर का भोजन—उष्ण जल—वृद्ध की छाया—ये ही पदार्थ सुरंग
 ही प्राणा का प्रदान करने वाले होते हैं ॥ २८ ॥ कुए का जल—वट वृक्ष की छाया
 नारियों का पयोधर—य वस्तुएँ क्षीनकाल में तो उष्ण होने हैं और उष्ण जल
 में क्षीनता रहा करते हैं ॥ २९ ॥ तुरन्त हो बन की प्रदान करने वाली तीन
 वस्तुएँ हुमा करती हैं—वाला स्त्री—अभ्यङ्ग (तेल का मालिश और स्रवण)
 क्षीन सुन्दर मुखवाहु भोजन तुरन्त ही बन व हरण करने वाली क्षीन वस्तुएँ
 होती हैं—माग का चलना—मैथुन और ज्वर का शरीर में प्रवेश करना ॥ ३० ॥
 पुष्प मौख—पय और निद्रा भावी मित्रों के साथ भोजन वभी नही करे और
 राजाघो के साथ भोजन करना क्षणमात्र में विरोग किया करता है ॥ ३१ ॥ बुरे
 पथवि फटे—पुराने एवं नीले वस्त्र धारण करने वाले पुण्य को—क्षीनो में मैत्र के
 धारण करने वाले मानव को—बहुल अधिक भोजन करने वाल मनुष्य को—
 निष्ठुर मानव बोलने वाले तर को छोटे सूर्य के छदय और अस्त के समय में
 गमन करने वाल व्यक्ति को चाहे साक्षात् चक्रपाणि ही नवो न हों—श्री छोड़
 कर चली जाया करती है ॥ ३२ ॥

नित्यं ध्रुवस्तृणाना धरणिविलिखन पादयोश्चापमाष्टि

दन्तानामप्यशौच मन्निनवसनता रुक्षता मूर्धं जानाम् ।

इं सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयन ग्रासहासातिरेक

स्वाङ्गे पीठे च वादय निधनमुपनयेत्तेशवस्यापि लक्ष्मीम् ॥ ३६

शिर सुधीत चरणौ सुमाजितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् ।

अनग्नशायित्वमपर्वमंथुन चिरप्रनष्टं धियमानयन्ति पट् ॥ ३७

यस्य तस्य तु पुण्यस्य पाण्डरस्य विशेषतः ।

शिरसा धार्यमाणस्य अलक्ष्मी प्रतिह्न्यते ॥ ३८

दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च ।

रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ॥३६

वालातपः प्रेतधूमः स्त्री वृद्धा तरुण दधि ।

श्रायुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरज ॥४०

गजाश्वरथधान्याना गवाश्चैव रज शुभम् ।

अशुभञ्च विजानीयात्परोष्टाजाविकेपु च ॥४१

गवा रजा धान्यरज पुष्पमाङ्गमव रज ।

एतद्वज्रो महागन्त महापातकनाशनम् ॥४२

नित्य प्रति तिलको का तोड़ना—भूमि पर निखतना—वादी की सम्पत्ति—
दीनों की समुदिता—मनित वस्त्रो का घ रण करना—वैद्यो को रक्षा रखना—
दीनों सन्धि कालो के समय में निद्रा करना—दिना घर के नाम होकर दायत
करना—बड़े बड़े दास लेना तथा घरधन हास्य वा करना—मपने मङ्ग पर
भीर पीठ पर बाण का रखना—ये कार्य भगवान् वेदाव को भी लक्ष्मी का निधन
कर दिया करते हैं ॥३६॥ अनी भानि घोषा हुमा शिर भीर मली विधि से धीरे
हुए मयति स्वच्छ किये हुए पैर—वराङ्गना का सेवन—मन्न भोजन—मन्न न
होकर दान करना—पर्व दिवसों को छोड़कर मेषुन करना—ये छै कार्य ऐसे
हैं जो कि विरवान में लष्ट हुई भी लक्ष्मी को पुन प्राप्त करा दिये करने हैं ॥३७॥
जिम निमी के पुण्य को विदीव कर पाण्डर के पुण्य को शिर पर धारण करने
वाले की मयक्ष्मी का प्रतिहनन हो जाता है ॥३८॥ दीपक की पदिनम छाया—
दम्पा भासन वी छाया भीर रजक का तीर्थ वहाँ पर सर्वदा मनक्ष्मी निवान
किया करती है ॥३९॥ वालातप—प्रेत धूम—वृद्धा स्त्री—तरुण दधि और सम्मा-
र्जनी की धूल इन वस्तुओं का सेवन श्रायु की कामता रखने वाले पुष्प को कभी
भी नहीं करता चाहिए ॥ ४० ॥ हाथी—मश—रथ और धान्यों की रज तथा
गोशो के यदों से उठी हुई रज शुभ होती है । गवा—ऊँट—बकरी और भेड़ों के
द्वारा उल्लिखित रज मयुम जाननी चाहिए ॥४१॥ गोशो की रज और पुत्र के
मङ्ग से उठी हुई रज महान् प्रशस्त होती है तथा महान् पापको का नाश करने
वाली हुमा करती है ॥४२॥

मजारज सररजो यत्तु मम्मार्जनोरज ।
 एतद्रजा महापाप महाकिल्बिषकारवम् ॥४३॥
 शूषवाता नसाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजादकम् ।
 मार्जनोरिणु केशाम्बु हन्ति पुण्य पुराकृतम् ॥४४॥
 विप्रयारविप्रबह्मपाश्च दम्पत्या स्वामिनोस्तथा ।
 श्रन्तरण न गन्तव्य ह्यस्य वृषभस्य च ॥४५॥
 स्थोपु राजाग्निमर्षेषु स्वाध्याये शनुसेवने ।
 भाषास्वादपु विश्वास य प्राप्त कर्तुंमर्हेति ॥४६॥
 न विश्वसेदविश्वस्त विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
 विश्वासाद्भूयमुत्पन्न भूतादपि निकृन्नति ॥४७॥
 वेरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति ।
 स वृक्षाग्रे प्रमुक्तो हि पतित प्रतिवृष्यते ॥४८॥
 नात्यन्त मृदुता भाव्य नात्यन्त क्रूरकर्मणा ।
 मृदुनैव मृदु हन्ति दारुणानेव दारुणम् ॥४९॥

बकरी के पैरो से उठी हुई रज — गये के द्वारा उत्पित रज और पुद्गरी
 से उठी हुई रज — य क्षीनी रज महा पाप मय होती है और महाव किल्बिषो के
 करने वाली दूषा करती है ॥४३॥ सूत की हवा-मलो के घघ भाग का जल —
 स्नान वस्त्र की मृत्ता का जल-भाजनी की रणु और केशो का जल-ये पूरे जन्म
 में बिये हुए पुण्य का भी हवन कर देते हैं ॥४४॥ दो विप्रों के मध्य से-विप्र
 और बह्म के बीच से-दम्पति के मध्य से-स्वामियों के मध्य से और हय
 तथा वृषभ के मध्य से सभी नहीं जाना चाहिए ॥४५॥ स्थियो मे-राजा-प्रति-
 सर्ष म-स्वध्याय म-शान् के सेवन म-भोग्यो के आस्वाद्यो में कौन प्राप्त
 पुष्ट विश्वास करने के योग्य होता है परन्तु कोई भी समझदार व्यक्ति इन सब
 पुष्टों में विश्वास नहीं करता है ॥ ४६ ॥ जो विश्वास का पात्र व्यक्ति नहीं है
 उनका तो विश्वास कभी करना ही नहीं चाहिए किन्तु जिसे अपना विश्वस्त
 समझा जाना है उसमें भी अत्यन्त विश्वास नहीं करना चाहिए । विश्वास से जो
 भय उत्पन्न होता है वह मूल से ही निकल कर दिया करता है ॥४७॥ पैरी

के साथ सन्धि करके यदि विश्वस्त होकर अवस्थित रहा करता है तो निश्चय ही वह वृक्ष के अग्र भाग पर सोया हुआ होता है जो पतित होकर ही प्रति बुद्ध हुआ करता है ॥४८॥ मानव को इन ससार में प्रत्यन्त मृदु नहीं होना चाहिए और इस लोक में प्रत्यधिक क्रूररुप करने वाला भी कभी नहीं होना चाहिए । जो मृदु है उसका मृदु होकर ही हनन करे और जो दारुण प्रकृति का हो उसका हनन दारुण होकर ही करे ॥४९॥

नात्यन्त सरलैर्भाव्य नात्यन्त मृदुना तथा ।

सरलास्तन द्विदपन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥५०॥

नमन्ति कलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः ।

शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ॥५१॥

अप्रायितानि दुःखानि मय्यवायान्ति यान्ति च ।

मार्जार इव लम्फेन तथा प्रार्थयते नरः ॥५२॥

पूर्वं पञ्चाङ्गन्त्याद्यैः सर्वैव बहुसम्पदः ।

विपरीतमनार्थं मयेच्छमि तथा चर ॥५३॥

पट्कणो भिद्यन्ते मन्त्रश्च नुक्तराश्च धाव्यन्ते ।

द्विकरांस्तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते ॥५४॥

तथा गवा किं क्रियते मा न दोग्ध्री न गभिणी ।

कोर्जाः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धामिक ॥५५॥

एकेनापि भुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता ।

बुल पुत्रसिंहेन चन्द्रेण गगन मया ॥५६॥

इस जगतो तल में अत्यन्त सरल प्रयात्त मीठा भी न रहे और न बहुत अधिक बोधन स्वभाव वाला ही होकर व्यवहार करे क्योंकि भनि नीचे और मृदु सर्वदा हानि ही उठाया करते हैं । वन में जाकर देखो जो सीधे वृक्ष होते हैं उनको लोग काम में लाने के लिये काट लिया करते हैं और टेढ़े-मेढ़े वृक्ष वहाँ पर ही खड़े रहते हैं क्योंकि वे किसी के उपयोग में नहीं होते हैं ॥५०॥ जो फनो से लड़े-फड़े वृक्ष होते हैं उनको साम्राज्ञे' नीचे को मुक्त जाया करती है क्योंकि नमन सौल होती है । इनो प्रकार से गुणों से सम्पन्न पुरुष भी परम

शिरः कृत्वा करतः । आसूते दृष्टे वृत्तं होतुं है वे धीर महा मूर्ख न तो भेद
हो विय जाता है धीर व न करी न्वा हो बन है ॥११॥ दुष्टा व प्राप्त करत
का कभी बौद्ध प्रायना नी किया करना किन्तु व बिना बुनाय हो बिन नरह
प्राप्ता करत है धीर चल जान है उनी तरह प्रायना करते बाना मनुष्य मन्त्रार
की भाँति लग्न किया करना है ॥१२॥ जो ध्याय धर्मात् धैर्य पुरुष होत है
उत्तम मर्दव ध्याय धीर व धर्म नन्वये ध्यायिनि मात्रा में विचरत किया करती
है । जो ध्याय है उत्तम इमक विग्रहो हन्ता है । धव तुषरो जो नी मात्र
अच्छा नग वही ध्यायना वासि ॥१३॥ धर्म बाना म पुरुष वामी पुत्र बान
भिद्यमान हो जाया करती है ध्याय फँस जाया करती है धीर उन्को गौर-
नीयता नहीं रहती है । जो व त दयन दो ही प्रादविर्षो न चार बानो तक
रानी है उत्तम गौरनीयता रहा करना है । जो बल दो ही बानो तर्क धर्मात्
एक ही धर्मा तक रहती व दह तो एनी हो परम शुभ एव गौरनीय रहा
करती है कि उन मनुष्य तो बग बह्म भी नहीं जान सकता है ॥१४॥ वम नी
संख्या स्तान है जो न तो दूष हो देवी है धीर न कभी गमिणी हो होनी है ।
इनी भाँति ऐम पुत्र स नी बग फन होता है जो न तो विद्वा हो धीर न
धार्मिक हो हो । ऐम पुत्र का ना उत्तम हाना विस्तृत व्यय हो हाना है ॥१५॥
वाह बदन एक ही पुत्र लभ हो किन्तु बह एक हो यदि मुमुक्षु है धीर धीमन्
तथा विद्या म पुत्र है तो उव विद के समान पुरुष स समन्त कुव धर्मा क
द्वारा आकाश की भाँति सुशोभित हो जाता है ॥१६॥

एकेनापि भुवनेण पुष्पिनव नुगन्धिना ।

वन मुबानित सर्वं भुवनेण कुत यथा ॥१७॥

एका हि पुष्पवाम्पुत्रो निर्गुणेन शतत किम् ।

चन्द्रा हन्ति तमास्यवो न च ज्याति सहस्रश ॥१८॥

शरीमेवायनव दुर्वस्य च भुसन्ध च ।

प्राण तु पाडश वर्षे पुत्र मित्रवशाचरेत् ॥१९॥

जायमाना हरदारा बद्धमानो हरद्वनम् ।

अत्रिमाणा हरप्राणास्ति पुत्रसमा रिपु ॥२०॥

केचिन्मृगमुखा व्याघ्रा केचिद् व्याघ्रमुखा मृगा ।

तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वास पदे पदे ॥६१॥

एक क्षमावता दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।

यदेन क्षमया युक्तमशक्त मन्यते जनः ॥६२॥

एतदेवानुमन्येत भोगा हि क्षणभङ्गिनः ।

स्निग्धेषु च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुलाः ॥६३॥

वन में कोई एक ही वृक्ष हो जो मुगन्व युक्त पुष्पो से परिपूर्ण हो तो उस एक सुवृक्ष में ही सम्पूर्ण वन भुषापित हो जाया करता है जैसे एक सुपुत्र में सम्पूर्ण पुत्र प्रख्यात हो जाया करता है ॥५७॥ गुणों से सम्पन्न एक ही पुत्र सबसे थोड़ा है गुण हीन सैकड़ों पुत्रों से भी क्या लाभ है । एक ही चन्द्रमा पूरे व्यापक अन्धकार का नाश कर दिया करता है जिसे सहस्राधिक तारागण रहते हुए भी नष्ट करने की क्षमता नहीं रखते हैं ॥५८॥ पुत्र का बालन पाँच वर्ष की अवस्था तक करना चाहिए पर्याप्त पाँच वर्ष तक वह कुछ अनुचित मार्ग भी अपनाने लो लाड से ही उसे बर्बाद कर देवे । इसके पक्षत् जब उसे कुछ घुरे-भले का थोड़ा-सा ज्ञान हो जाता है तो छे वर्ष से दस वर्ष तक अवस्था पन्द्रह की आयु तक बालक की लाटना देनी चाहिए डाट-फटकार से उसे गुम में पर लावे । जब सोलहवें वर्ष में वह पदार्थों पर तो फिर उसके साथ एक मित्र की भाँति व्यवहार करे ॥५९॥ पुत्र उत्पन्न होता हुआ हो पत्नी का हरण किया करता है पर्याप्त स्त्री के यौवन की प्राप्ति का नाश कर पति-मित्र के उपयोग बना देता है । जब वह बड़ा हो जाता है तो घन का हरण किया करता है पर्याप्त पिता की समस्त सम्पदा का पूरा अधिकारी बनकर उसको अपने हाथ में ले लिया करता है । यदि पुत्र पिता के साथ ही मृत्यु का ग्राम हो जाता है तो पिता की महान् वेदना होती है मानों उनके प्राण ही निकल जाया करते हैं । ऐसा पुत्र के समान अन्य कोई भी प्राण नहीं है जिसके लिये लोग अत्यन्त लातामिश्र रहते हैं ॥६०॥ कुछ मृग अर्थात् पशु व्याघ्र के समान मुग्न वाले हुमा करते हैं और कुछ व्याघ्र मृग के तुल्य मुग्न वाले होते हैं । उनके पर्याप्त स्वरूप के परिज्ञान प्राप्त करने में पद-पद पर विश्वास हुमा करता है ॥६१॥ क्षमा

धारण करण वाले पुरुष सब प्रकार से अच्छे माने जाने हैं किन्तु उनमें एक ही बड़ा भारी दोष होना है कि जो धर्मा से युक्त पुरुष होता है उसे लोग शक्ति से हीन समझने लग जाया करते हैं ॥ ६२ ॥ यही माना जाना है कि सासारिक समस्त भाग धारण भगुर होत है तो भी स्निग्धो मे विदग्ध पुरुष की बुद्धि भनाकुस होती है ॥६३॥

ज्येष्ठ पितृसमो भ्राता भूते पितरि शौनक ।
 सर्वेषां स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालक ॥६४॥
 कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्तते ।
 समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च ॥६५॥
 बहूनामल्पमाराणां समुदायो हि दाहणः ।
 तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तपा नागोऽपि वध्यते ॥६६॥
 अपहृत्य परस्व हि यस्तु दानं प्रयच्छति ।
 स दाना नरकं याति यस्मार्थस्तस्य तत्फलम् ॥६७॥
 देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
 कुलान्यकुलता यान्ति ब्राह्मणातिव्रमेण च ॥६८॥
 ब्रह्मघ्ने च सुराये च चोरे भग्नव्रते तथा ।
 निष्कृतिविहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥६९॥
 नाश्रन्ति पितरो देवा क्षुद्रस्य वृषलीपते ।
 नाभ्यर्जितस्य नाश्रन्ति यस्यऽश्रोपपतिर्गृहे ॥७०॥

हे शौनक । पिता के मृत हो जाने पर ज्येष्ठ भाई पिता के ही तुल्य होता है । वह सबका अनुपालन करने वाला हुमा करता है और सबका इसीलिये पिता होता है ॥६४॥ जो भी उससे छोटे होने हैं उन सबके साथ उसका व्यवहार समान होता है जिस प्रकार से तुल्य उपभोग करने वाले और जीवन बिताने वाले पुत्रों में हुआ करता है ॥६५॥ अत्यल्प शक्ति वाले भी यदि बहुत से एकत्र होकर एक समुदाय में सघटित हो जाते हैं तो महान् दाहण शक्तिवाली हो जाया करते हैं जैसे एक-एक तिनके से बनी हुई मोटी रस्सी इतनी मजबूत

हो जाया करती है कि उसमें फिर हाथी जैसे महान् बलवान् पशु को भी बाँध लेने की शक्ति हो जाया करती है ॥६६॥ दूसरे का धन अपहरण कर जो फिर उसका दान दिया करता है उससे दान करने वाला पुरुष नरक का चामी होता है और वास्तव में उस दान का यही फल भी होता है ॥६७॥ देवोत्तर सम्प्रति का अपहरण या वित्तश करने से—वात्सल्य का धन हरण करने से और ब्राह्मणों का अतिक्रमण करने से कुलों की अकुलता हो जाती है अर्थात् समस्त कुलों का नाश हो जाया करता है ॥६८॥ ब्राह्मण के हनन करने वाले—सुरा का पान करने वाले—चोरी करने वाले और श्रुत को भग्न करने वाले पुरुष को सत्पुरुषों ने निष्कृति अर्थात् प्रापञ्चित बताया है किन्तु जो कृतघ्न होता है । उसका कोई भी प्रापञ्चित नहीं होना है । किन्तु उसे नरकाट को न मानने वाला पुरुष कृतघ्न कहा जाता है ॥६९॥ शुद्र और वृषणी (भूदा) के स्वामी के यहाँ देवगण और वितर गण भोजन नहीं किया करते हैं । जो भार्या के द्वारा जीना हुआ हो अर्थात् भार्या का ही जिन पर पूर्ण प्रभाव हो और जिसकी भार्या का कोई उप-पति घर में रहता हो उसके यहाँ भी देव-पितर असन्तुष्ट होते हुए भोजन नहीं किया करते हैं । ७०॥

अवृत्तजन्मार्थं च दीर्घरोपमनार्जवम् ।

चतुरो विद्धि चाण्डालान्जात्या जायेत पञ्चमः ॥७१॥

नोपेक्षितव्यो दुर्वृद्धिः क्षत्रुरत्पोऽप्यवज्ञया ।

वह्निरत्पोऽप्यमग्राह्यः कुरुते भस्मसाज्जगत् ॥७२॥

नवे ययमि यः शान्तं स गान्त इति मे मतिः ।

धानुषु क्षीयमाणेषु नमः यस्य न जायते ॥७३॥

पण्यान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणः शिष्यः ।

मदीया इति मत्वा वे न हि हर्षयुतो भव ॥७४॥

जित्वा मृतं घातुं वरुणः शरीरं चित्ते नान्ते घातुं च घातुं चान्तिं नास्त्यतम् ॥७५॥

तन्माञ्चितं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते घातवः सम्भवन्ति ॥७६॥

ये चार पुरुष स्वभाव और बर्ण के कारण ही चाण्डाल हुआ करते हैं

एक वह जो विषे हुए उपकार को नहीं माना करता है । दूसरा यह जो अनार्य होता है अर्थात् विमम आर्य होने की भ्रष्टता का पूर्णतया अभाव होता है । तीसरा वह जिसमें बहुत ही लम्बे समय तक रोष विद्यमान रहता है अर्थात् क्रिमका श्लोष हृदय में घर बना कर किसी भी प्रकार से निवृत्तता ही नहीं है और चौथा वह है जो सरागता से रहित अर्थात् सदा बुद्धिमत् वृत्ति वाला होता है । पाँचवाँ चाण्डाल तो बड़ी है जो उस चाण्डाल जाति से सम्बन्धित होता है ॥७१॥ दुष्ट बुद्धि वाला या पारण भी सगु भी अथवा से अर्थात् इस भावना से कि यह मामूली दण्ड हमारा क्या बिगाड़ सकती है कभी भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं होता है जगति का छोटा-ना बण भी सयह नहीं करने के योग्य ही होता है क्योंकि वह सम्पूर्ण जगत् को ही भ्रमसाज कर दिया करता है अर्थात् हम साधारण भी अग्नि में भी सब कुछ जला कर राख बना देने की क्षमता विद्यमान रहता करती है ॥ ७२ ॥ बड़ उठनी हुई अथवा में जिसमें एकात्मिक रूप से सभी शान्ति हुआ ही नहीं करते हैं जो पुरख शान्ति से युक्त रहा करता है परी मास्तर में शान्त प्रवृत्ति वाला पुरुष होता है—ऐसा मेरा विचार है जब उम्र कम जाती है तो सम्पूर्ण शरीर को धातुओं की तरह हो जाया करती है उस समय में तो सभी की शान्ति का जवाब करती है क्योंकि किसी भी तरह की शक्ति रहा ही नहीं करती है ॥७३॥ हे विप्रेन्द्र ! माँ की भानि श्रियो का उपभोग सबक लिये साधारण होता है अर्थात् जिस तरह पापों में सभी के चलने-फिरने का अधिकार होता है वैसे ही माँ के भोगों का भी सबको एक हुपा करना है । यह भी मेरी ही है ऐसा मानकर कभी भी प्रसन्नता से युक्त मत होमाँ । ऐसा मान लेना उचित नहीं है क्योंकि भी मे सभी का अधिकार रहता करता है ॥७४॥ यह शरीर धातुओं के वन में रहने वाला भी जिसके मरीन ही हुआ करता है । जब चित्त ही नष्ट हो जाता है तो सम्पूर्ण धातुओं भी तान की पास हो जाते हैं । इसलिये वित्त को सर्वदा रक्षा करनी चाहिए । जब चित्त स्वस्थ रहता है तो धातुओं भी शरीर में उत्पन्न होकर सबन एवं समर्थ होती है । शरीर में चित्त की ही प्रधानता होती है ॥७५॥

७१—नीति शास्त्र त्रयम (३)

कुमार्याश्च कुमित्रश्च कुराजान कुपुनकम् ।
 कुकन्याश्च कुदेशश्च दूरत परिवर्जयत् ॥१
 घर्मं प्रव्रजितस्तप प्रचलित सत्यश्च दूरङ्गत
 पृथ्वी वन्ध्यफला जना कपटिनो लोल्ये स्थिता ब्राह्मणा ।
 मर्त्या स्त्रीवशाया स्थियश्च चपला नीचा जना उन्नता
 हा कष्ट रालु जीवित कलियुगे घन्या जना ये मृता ॥२
 घन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्ग कुलक्षयम् ।
 परचित्तगतान्दाराण्युन कुण्यसने स्थितम् ॥३
 कुपुत्रे निवृत्तिर्नास्ति कुमार्याया कुनो रति ।
 कुमित्रे नास्ति विश्वास कुराज्ये नास्ति जीवितम् ॥४
 परातश्च परस्वश्च परशय्या परस्त्रिय ।
 परवदमति वासश्च शक्रादपि श्रिय हरेत् ॥५
 आलापाद् गानसस्पर्शात्मसर्गात्सह भोजनात् ।
 घासनाच्छयनाद्यानात्पाप सक्रमत नृणाम् ॥६
 स्त्रिया नश्यन्ति रूपेण तप क्रोधेन नश्यति ।
 मार्गो दूरप्रचारेण सूदान्नन द्विजात्तम ॥७

भूतजी ने कहा—दुष्ट स्वभाव वाली भार्या घोर कुत्सित मित्र तथा कुरा
 राजा एवं कुपुत्र—पुरी वन्या घोर कुरे दश को दूर से हो त्य ग देना चाहिए ॥१॥
 घम दस्तमान बलियुग का प्रभाव बनात है—यह युग ऐसा है कि इनमें घर्म तो
 ऐसा बला गया है कि की भी नाम की भी स्थित ई नहीं पैता है—तप भी
 इन समय में गया है अर्थात् तपस्या स्थित नहीं है—यह भी कोई नहीं
 जानता है । मर्त्य तो नाम मर्त्य का भी कलियुग में नहीं है ही नहीं—सत्यता
 कोई वस्तु है इसरी मत्ता एवं मर्दिमा का कोई भी जानना ही नहीं है । ममस्त
 भूमि का भाग ऐसा है कि इसमें जैसी उन्नत जानी चाहिए वह नहीं भी नहीं
 जानी है । मनुष्य प्राय सभी कपट का व्यवहार करने जान हैं और जो ब्राह्मण

सोम है वं बहुत अधिक बतवने होगये हैं अर्थात् चचलता में पूर्ण है । वनियुग में मनुष्य स्त्रियों के वश में रहता करते हैं । स्त्रियों अधिक चचल हैं । नीच जाति के मनुष्य वसतिनील हो गये हैं । इन कलिराम में जीवन बहुत ही बध-मय है । वे मनुष्य परम घण्ट एवं भाव्यशाली हैं जो अपनी जीवन सीता ममास कार चुके घोर मर गये हैं ॥ २ ॥ इस घोर वनियुग के समय में उनके मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्यों को इसीविधे परम घण्ट कहते हैं कि वे न ही इस समय में हीरे वाले देश के टुकड़ों में बट जावे वाली भगता को देख रहे हैं और न पुत्रों के शय को ही देखते हैं । दूसरों में अपने विस्र की रमाने वाली दारामों को घोर गुरे दयनरे में पड़े हुए पुत्रों को भी वे मर जाने के कारण नहीं देख रहे हैं ॥३॥ मृत्यु में निश्चित नहीं होती है घोर जो मुभार्या है उसमें रति भी कैसे हो सफली है । कुमित्र में विश्वास नहीं होता है घोर गुरे राज्य में जीवन कैसे रह सकता है ॥४॥ पराया धन—पराया धन—दूसरे को लपटा—पराई खा पराये घर में निवास वे इन्द्र की भी धी का हरण करने वाले कार्य होते हैं ॥५॥ बात-चीन करने से—भाष (शरीर) के स्पर्श से—सङ्गति से—साथ में बैठ कर भोजन करने से—भावन पर स्थित होने से—पाप में शरत से और साथ में गान करने से मनुष्यों के पाप का सकलमल हटा करता है अर्थात् दूसरे का पाप लग जाया करता है ॥६॥ स्त्री अधिक रूप-सावध के होने से नष्ट हो जा सकती है—जीव से तपस्या का नाश होता है—दूर प्रचार से मार्ग घोर धूम के मल से थोड़ा दिन का नाश हो जाता है ॥७॥

धासनादेकशय्यामा भोजनात्पङ्क्तिमद्भुत्वा ।

ततः सक्रमते पाप घटादट इवोदकम् ॥८॥

सालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणः ।

तस्माच्छिष्यश्च पुनश्च ताडयेन्न तु नालयेत् ॥९॥

मध्वा जरा देहवता पर्वताना जल जरा ।

असभ्रांश्च नारीणा जस्त्राणामातपो जरा ॥१०॥

अधमा कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमा ।

उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महता धनम् ॥११॥

मानो हि भूलमर्थस्य माने सति घनेन किम् ।

प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं घनेन किमायुषा ॥१२

अधमा घनमिच्छन्ति घनमानो हि मध्यमा ।

उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महता घनम् ॥१३

वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभुक्षिता नाशनिरोक्षणाश्च ।

घनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्मणि समारभन्ति ॥१४

एक ही मान पर स्थिति करने से—एक ही शय्या पर शयन करने से—
एक साथ ही बैठ कर भोजन करने से घोर पतित के साक्ष्य होने से अर्थात्
मिल जाने से घट से दूर पर घट में जन मान की शक्ति एवं से दूसरे में पाप का
सफल हुआ करता है ॥ ८ ॥ लाड-प्यार करने में बहुत से दोष समुत्पन्न हो
जाया करते हैं और लाडना करने में अनेक गुण होते हैं । इसलिये अपने शिष्य
और पुत्र को सर्वदा लाडना ही देनी चाहिए बबल लातन नहीं करे ॥६॥ देह-
धारियों के लिये मार्ग का गमन करना जरा अर्थात् वायंवर्य है—पर्वतों के लिये
जग ही जरा है अर्थात् उनकी दीनता पहचान जाता होता है—गारियों के
साथ सम्भोग न करना ही उनकी वृद्धता के करने वाली जरा है और बदनो
को घातक में रखना जरा है । १०॥ जो मध्य श्रेणी के मानव होते हैं वे सदा
कतह ही बहा करते हैं—मध्य श्रेणी के पुरुष सन्नि की इच्छा रखते हैं तथा
उत्तम कीटि व मनुष्य मान के इच्छुक होते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का एकमात्र
घन मान ही हुआ करता है ॥११॥ मान ही अर्थ का मूल है क्योंकि मान की
प्राप्ति के लिये ही अर्थ की इच्छा की जाया करती है । यदि मान है तो फिर
उसके होने पर अर्थ से क्या प्रयोजन है । जिसके मान का दर्प ही भ्रष्ट होगया
है उसको घन और धातु से भी क्या लाभ है अर्थात् फिर तो उसका घन और
जीवन दोनों ही इस समार में व्यर्थ हैं ॥१२॥ अधम पुरुष ही घन की इच्छा
किया करते हैं—जो मध्य श्रेणी के लोग हैं वे घन और मान दोनों ही की
अभिज्ञापा रखा करते हैं । उत्तम श्रेणी पुरुष बबल मान ही चाहते हैं क्योंकि
महान् पुरुषों का घन तो मान ही हुआ करता है ॥१३॥ वन में भूखे भी सिंह
बर्ग का नमन नहीं किया करते हैं और न कभी अश्व का ही निरोक्षण करते

है। इसी प्रकार से धन से हीन पुरुष भी जो अर्घ्ये बुझो म उत्पन्न हुए हैं कभी भी नीच कर्मों का धारम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् धन की प्राप्ति के लिये बुरे काम कभी नहीं करते हैं ॥१४॥

नाभिपेको न सम्कार सिंहस्य कियते वने ।

नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमव मृगेन्द्रता ॥१५॥

वशिष्ठप्रमादो भूतकश्च मानो मिथुर्विलासो ह्यधनश्च नामो ।

वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न त च कर्माणि समारभन्ति ॥१६॥

दाता दरिद्र कृपणार्ज्यपुक्त पुत्रोऽविधेय कुजनस्य सेवा ।

परापवारेषु नरस्य मृत्यु प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च ॥१७॥

कातावियोग स्वजनापमान गणस्य शेष कुजनस्य सेवा ।

दारिद्र्यभावाद्विमुक्ताश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्रा ॥१८॥

चिन्तासहस्र पु च तेषु भक्ष्ये चिन्ताश्रतस्त्राऽप्यसिधारतुल्या ।

नीचापमान धुधित कलत्र भार्या विरक्ता सहजोपरोध ॥१९॥

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या प्ररोगिना सजनसङ्गतिश्च ।

इष्टा च भार्या वदवस्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ॥२०॥

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गा पीना हता पञ्चभिरेव पञ्च ।

एष प्रमादो स कथं न घात्या य सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥२१॥

वन में मिथु का कभी किसी न अभिपेक्ष नहीं किया है अर्थात् उसे

बिखी न वन का राज्य का राजा नहीं बनाया है और न कोई संस्कार ही ऐसा किया गया है किन्तु वह नित्य अपन ही मत्स्वार्थ सत्त्व वाला होने के कारण से ही वहाँ समस्त वन के जीवों का राजा बन गया है ॥ १५ ॥ प्रमाद (मापरवाही) शील वंश्य अर्थात् व्यापार व्यवसाय करने वाला—मान रखने वाला भूतक अर्थात् सेवा वृत्ति करने वाला पातक—विलासपीन मिथु और बिना धन वाला नामी तथा अप्रिय बोलने वाली वराङ्गना कभी अपने कर्मों का धारम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् ये लोग अपने कर्मों में कभी सफल नहीं हो सकते हैं ॥ १६ ॥ दान शील पुरुष का दरिद्र होना—अर्थ सम्पन्न पुरुष का दुष्ट होना—पुत्र भानाशायी न होना—दुष्ट पुरुष की सेवा करना

घोर पक्षे प्रकर कर्मे मे मृत्यु का हो जाना मे पांच दुश्चरित हुमा करते हैं ॥ १७ ॥ अपने कान्ता मे बिछोह का हो जाना—अपने जनों के द्वारा या अपने ही जनों के मध्य मे अपमान का होना—अपुत्र का शेष बना रहना—बुरे पुरुष की सेवा का करना और दारिद्र्य के होने के कारण मित्रों का विमुख हो जाना ये पांच कार्य ऐसे हैं जो बिना ही अग्नि के बहुत तीव्र दाह किया करते हैं अर्थात् रत-दिन हृदय को बुरी तरह मे जलाते रहते हैं ॥ १८ ॥ यों तो मनुष्यों की सहस्रा प्रकार की विन्ताएँ इन सांसारिक जीवन में रूढ़ करती हैं किन्तु उन मध्य मे चार विन्ताएँ खडि बी धार के समान अति दुःखायिनी होती हैं, ये ये हैं—पितृ पुरुष के द्वारा अपमान का होना—भार्या का भ्रष्टा रहना—पत्नी का अपने विषय में विरक्त रहना और सहज उपरोध का होना ॥ १९ ॥ पुत्र का वश गत होना—अर्थोर्जाजन करने वालों विद्या का अपने पास रहना—रोगों का न होना—गजन पुरुषों की सङ्गति का रहना—भार्या का प्यार और अपने वश मे रहना ये पांच कारण ऐसे हैं जो दुःख के भूत का उद्घाटन करने वाले होते हैं ॥ २० ॥ कुरङ्ग (हरिण)—मानङ्ग (हाथी)—पतङ्ग—मृङ्ग (भौंरा) और भीन (मछली) ये पांच पक्षों से हो इन होते हैं । हरिण श्रवणेन्द्रिय के अधीन होकर बाघ सुनने में ऐसा सो-सा जाता है कि भिक्षारी उसे मार देता है—मातङ्ग मदोन्मत्ता से—पतङ्ग शीत को ली पर प्रेम करने से—मृङ्ग पुरुषों के आम्बादन से और भीन मन्त्राकर्षण मे मृत्यु का ग्राम होता है । इन सब मे एक-एक इन्द्रिय का ही प्राकर्षण भीन के मुँह में डाल दिया करता है तो जो मानव मनुष्य सभी इन्द्रियों मे अर्थात् पाँचों के अधीन होता है वह क्यों नहीं घान के योग्य होवे अर्थात् प्रवद ही होता चाहिए ॥ २१ ॥

अधीरः कर्कशः स्वप्नः कुर्वन् स्वयमागतः ।

पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतितमा यदि ॥२२॥

आयु र्गमं चरित्रञ्च विद्या निघनमेव च ।

पञ्चैतानि विदित्यन्ते जायमानस्य देहिनः ॥२३॥

पर्वतारोहणे तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे ।

पतितस्य समुत्थाने शस्ता ह्येते गुणाः स्मृताः ॥२४॥

अभ्रच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु सङ्गतिः ।

पञ्चते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च ॥२५॥

अस्थिर जीवित लाके ह्यस्थिर धनयौवनम् ।

अस्थिर पुत्रदाराद्य धर्म कीर्तियशः स्थिरम् ॥२६॥

शत जीवितमत्यल्प रात्रिस्तद्वह्निरिणी ।

व्याधिशोकजरायासेन्द्रे तदपि निष्फलम् ॥२७॥

आयुर्वपशत नृणा पग्मित रात्रौ तद्वह्नं हृतं

तस्यादं स्थितकिञ्चिद्वह्नं मधिक बालस्य काले हृतम् ।

किञ्चिद्वधुवियोगदुःखमरणभूपासवागत

दोष वारितरङ्गभञ्जपल मानेन किं मानिनाम् ॥२८॥

जो विप्र चैपं हीन—कंकश (कठोर)—स्तब्ध—दुरे तथा मलिन वस्त्रों वाला और धपने भाव ही दिना प्राज्ञान के भाषा हुआ ही—ये पाँच प्रकार के शास्त्रण चाहे वृद्धस्पर्ति के समान ही विद्वान् क्यों न हो वही पूजा के योग्य नहीं हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ आयु—कर्म—चरित्र—विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें देहधारी के जन्म के साथ ही निश्चित हो जाया करते हैं ॥ २३ ॥ पर्वत के आरोहण में—जल में—गाथों के कुल में और दुष्ट पुरुषों के विषय में पड़े हुए मानव या प्राणी के समुत्थान करने में जो प्रयत्न किया करते हैं उनके गुण बहुत ही प्रशंसा माने गये हैं ॥ २४ ॥ मेघी की छाया—खल पुरुष में प्रीति करना—पराई नारी के साथ सङ्गति—यौवन और धन का होना—ये पाँच भाव स्थिर नहीं होते हैं ॥ २५ ॥ दश लोक में जीवन का रहना अस्थिर है और धन तथा यौवन भी स्थिर नहीं रहने वाला होता है । पुत्र एवं दारा आदि का सुख भी अस्थिर होता है । केवल इस लोका में किया हुआ धर्म—कीर्ति और यश ही स्थिर होता है ॥ २६ ॥ सौ वर्ष की मानव की परमायु बताई जाती है किन्तु वह भी विचार किया जावे तो बहुत ही घलन होती है क्योंकि उन आयु का प्रायः भाग तो रात्रियों में केवल शयन करने में ही नष्ट

हो जाया करता है । कभी हुई प्राणी जगु में व्याधि-शोक-गार्धन्य के आयास हुआ करते हैं । इन सब के होने के कारण वह भी फल रहित हो जाया करती हैं ॥२७॥ मानवों की परिमित मी वर्ष की उम्र में प्राणी रानियों में समाप्त हो जाती है । उस शेष प्राणी का प्राधा भग बाल्यकाल में भ्रष्टाचारस्या में ही नष्ट हो जाया करता है । बचा हुआ चौपाई भाग रहा उसमें बन्धुवियोग का दुःख—गजा की सेवा आदि में समय नष्ट हो जाता है अब बहुत ही थोड़ा सा भाग रह जाता है जो कि जल की तरङ्ग के गम के समान चञ्चल होता है । इन में भी मानी लोग मान जो किया करते हैं वह निष्फल ही होता है । अर्थात् इस बहुत ही स्वल्प जीवन में मान करने से क्या लाभ है ॥२८॥

अहोरात्रोभयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत् ।

मृत्युम्रंसति भूतानि पवन पद्मगो यथा ॥२९॥

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतो न चेत् ।

सर्वसत्त्वहितायपि पशोरिव विवेष्टितम् ॥३०॥

अहितहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिभ्रमये बहुभिधितकितस्य ।

उदरभरणमाश्रयबुद्धेः पुरुषपशोः पशोश्च को विशेषः ॥३१॥

शौर्म्ये तपसि दाने च यस्य न प्रयित यशः ।

विद्यायामर्यलाभे वा मातुर्गृह्वार एव सः ॥३२॥

सजीवित क्षणमपि प्रयित मनुष्यं विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमाने ।

तन्नामजीविनमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः काकोऽपि

जीवति चिरञ्च यत्तिञ्च भुङ्क्ते ॥३३॥

किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन

मित्रेण किं भवतीति सशङ्किनेन च ।

सिंहव्रतश्चरत गच्छत मा विपाद काकोऽपि

जीवति चिरञ्च यत्तिञ्च भुङ्क्ते ॥३४॥

यो वात्मनीह न गुरो न च भृत्यवर्गे

दाने दया न कुरुते न च मित्रकार्ये ।

किं तस्य जीवितकलेन मनुष्यलोके

वाकोऽपि जीवति चिरञ्च बनिञ्च भुङ्क्ते ॥३५॥

इस लोक में दिन और रात्रि के स्वप्न में समय निकल कर जरा के रूप में मानव को लाकर डाल दिया करता है अर्थात् रात दिन व्यतीत होते-होते मनुष्य को बुढ़ापा आ जाता है और मृत्यु उपस्थित होकर सर्प के द्वारा पवन की भाँति प्राणियों को घस गिया करता है ॥३६॥ यदि चलते-ठहरते, जागते-सोते हुए भी समस्त जीवों के हित के लिये कुछ भी नहीं किया जाता है तो फिर यो ही सम्पूर्ण जीवन का बिता देना एक पशु के ही समान हुआ करता है ॥३७॥ अपने दिन और अहित के विचार से शून्य बुद्धि वाले और श्रुति के समय में बहुतेको के द्वारा विवर्तित तथा केवल अपने ही उदर के भरण से कुछ बुद्धि वाले पुरुष का जो एक पशु के ही समान होना है और पशु में क्या अंतर रहता है ? ॥३८॥ जिस पुरुष का शून्यता—तपश्चर्या—दान—विद्या और शर्म के लाभ करने में सत्कार में क्या प्रयत्न नहीं हुआ है उसका जन्म तो केवल अपनी माता के यौवन की छटा को नाश करने के लिये होता है ॥३९॥ सदा जीवन एक क्षण का भी प्रयत्न होता है जोकि मानव अभ्यन्तमान विज्ञान—शिकम और यश के द्वारा जीवित रहा करते हैं । जाता पुरुष ऐसे ही जीवन को वास्तविक जीवित कहते हैं और यो तो एक बोझ भी बलि को खाकर बहुत समय तक जीवित रहा करता है । इसी को भी जीवन से क्या लाभ है ॥४०॥ जो जीवन धन और मान से रहित होता है उससे क्या लाभ है और जो सर्वदा सदाङ्गित रहन वाला हो ऐसे मित्र में भी क्या प्रयोजन है । हे मानव ! तू निह के समान व्रत में रत रह और कभी भी विपदा मत करे । बौर की तरह बलि खाकर जीवन चिरकाल तक रखना किसी भी काम का जीवन नहीं होता है ॥४१॥ जो मनुष्य अपने लिये—गुरु—भूषण वप—दोन—दुखिया पर दया नहीं करता है और न कभी मित्र के दी किसी कार्य में आता है ऐसे मनुष्य के जीवन से इस मनुष्य लोक में क्या फल है अर्थात् ऐसे मानव का जीवन मक्का निष्फल ही होता है । यो तो अविश्व समय तक एक बोझ भी बलि खाकर अपना जीवन बिता करता है जिसका जोरन किसी भी काम नहीं आता है ॥४२॥

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्याप्यानि यानि च ।
 स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥३६॥
 स्वाधीनवृत्ते साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
 ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृता ॥३७॥
 स्वपुरो वै कापुरुष स्वपुरो मूपिकाञ्जलि ।
 असन्तुष्ट कापुरुष स्वल्पकेनापि तुण्यति ॥३८॥
 अश्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम् ।
 वेश्यारागं घले प्रीतिं पडेने बुद्बुदापमा ॥३९॥
 वाचा विहितमार्गेण लोको न च सुपायते ।
 जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुत सुखम् ॥४०॥
 द्यवलस्य वलं गजा बालस्य रुदितं बलम् ।
 बलमूर्तास्य मोनस्य तस्करस्यानृतं बलम् ॥४१॥
 यथा यथा हि पुरुषं क्षान्तिममधिगच्छति ।
 तथा तथाऽभ्यमेधा स्याद्विज्ञानश्चास्य रोचते ॥४२॥

जिसके शिर्षक से सुस्पष्ट दिखता है और यों ही चले जाया करते हैं वह मानव सृष्टार की धोखी की भाँति केवल श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं माना जाता है क्योंकि उसका जीवन निष्प्रयोजन ही होता है ॥३६॥ स्वाधीन वृत्ति मान ही का जीवन सर्वदा सफल होता है । जो पराधीन वृत्ति वाला होता है और पराये अधीन बर्मा जाता होता है वह जीवित रहता हुआ भी मृत के ही समान होता है ॥३७॥ अतः पुर जाने काय पुरुष दोते हैं, अतः पुर वाली मूपिकाञ्जलि है । असन्तुष्ट कापुरुष थोड़े में ही मन्तोष प्राप्त कर लिया करता है ॥३८॥ मेघों की छाया—तृणों में धमिल वा बनाता—नीच पुरुषों की सेवा—मार्ग में जल—वेदना का राग (स्नेह) और सब पुरुष में प्रीति—ये छै काम बुनबुने के ही तुल्य धातु रपायो हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ केवल बाणी से सार्थ धर्मार्थ महयोग से लोगों को सुख नहीं हुआ करता है । यह जीवन तो मान के मूल वाला होता है । जब वह मान ही म्लान हो जाता है तो फिर जीवन में सुख कैसे हो सकता है ॥४०॥ जो बाहीन हमजोर पुरुष होते हैं उनका बल

तो राजा ही होता है वे राजा के पास दास की पुकार किया करते हैं—दासका
का जब वश नहीं चलता है तो वह रो देना होता है यही उनका बल है—
मूख का बल मोन हो जाना है धीरे तस्कर आदमी का बल मिथ्या भाषण एवं
भूठा व्यवहार हुआ करता है ॥४१॥ जैसे जैसे पुष्प की ग्रास्या का ज्ञान प्राप्त
होता है वैसे-वैसे ही इसकी मया की वृद्धि होती है और इसकी विज्ञान की
रुचि बढ़ती जाया करती है ॥४२॥

यथा यथा हि पूर्य कल्याणे कुरुन मतिम् ।

तथा तथा हि सवत्र श्लिष्यत तानमुग्रिय ॥४३॥

यामप्रमादविश्रान्ते पुरुषा नश्यति त्रिभिः ।

तस्मात्ताभो न कर्तव्य प्रमादो नो न विश्वसेत् ॥४४॥

तावद्भूयस्य भेतव्य यावद्भूयमनागतम् ।

उत्पन्ने तु भय तीव्र स्थातव्य ये ह्यभीतवत् ॥४५॥

मृणोषेष्वाग्निशेष व्याधिशेष तथैव च ।

पुन पुन प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छय न कारयेत् ॥४६॥

कृत प्रतिकुल कुर्याद्विसिते प्रतिहिमितम् ।

न तत्र दोष पश्यामि दुष्टे दोष समाचरेत् ॥४७॥

परोक्षे कार्यहन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।

वजयेत्तादृश मित्र मायामयपरिन्तथा ॥४८॥

दुर्जनस्य हि सङ्ग न सुजनोऽपि विनश्यति ।

प्रसन्नमपि पातीय कदमं कलुषीकृतम् ॥४९॥

जैसे-जैसे मनुष्य वृद्धावस्था में अपनी बुद्धि किया करता है वैसे-वैसे ही
वह सब जगह लोक का परम प्रिय होकर सम्बन्ध किया करता है ॥४३॥ इस
जगती तल में मनुष्य नाम-प्रमाद और विश्वास—इन तीनों से नाश को प्राप्त
होता है । इसलिए लोभ नहीं करना चाहिए—प्रमाद (साररवाही) न करे
और हर एक का विश्वास भी नहीं करना चाहिए ॥ ४४ ॥ भय से नभी तक
डरना चाहिए । जब तक वह भय अपने से दूर रहता है और घाता नहीं है ।
जब भय निकट आ ही जाता है और तीव्र रूप धारण कर लेता है तो फिर

एकदम निडर होकर उसका समक्ष में स्थित होकर उसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिए ॥४५॥ ऋण का बोझ रह जाना—रोग का कुछ अंश बच जाना और धातन का कुछ भी छोटा सा भाग रह जाना फिर बार-बार बढ कर उग्र रूप धारण कर लिया करता है । इसलिए इन तीन चीजों का तो बिल्कुल निशेष ही बरके रहना चाहिए ॥४६॥ जो जैमा भी व्यवहार बुरा भला करता है उसका जवाब भी वैसे ही व्यवहार से देना चाहिए । यदि कोई हिंसा पूर्ण व्यवहार करे तो उसका साथ प्रतिहिंसा ही कर—इसमें कोई भी दोष नहीं दिखाई देता है—दुष्ट पुरुष के साथ दाय ही करना उचित होता है ॥४७॥ जो समक्ष में तो परम प्रिय भाषण करने वाला हो और पीछे पीछे काय को नष्ट कर देने वाला रहा करता हो ऐस माया से परिपूर्ण मन्त्र की भाँति मित का त्याग ही कर दवे ॥ ४८ ॥ दुजन पुरुष के सङ्ग से सज्जन पुरुष भी बिगड़ हो जाया करता है जिम तरह स्वच्छ जल का भी कीचड़ से मैला कर दिया जाता करता है ॥४९॥

सायम्भुङ्क्तं जन सो हि द्विजाधार्या हि यस्य वै ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नत द्विज पूज्य प्रयत्नत ॥५०॥

तद् भुज्यते यद् द्विजभुज्यशेष त बुद्धिमायो न कराति पापम् ।
तत्सोहृद यत्प्रियत परासे दम्भविना य क्रियते स धर्म ॥५१॥

न सा सभा या न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते य न वदन्ति धमम् ।
धर्मं स ना यश्च न सत्यमस्ति नैनत्सत्य यच्छनेनानुविद्धम ॥५२॥

ग्राह्याणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तजसाम् ।
शिरोऽपि सवगात्राणा प्रताना सत्यमुत्तमम् ॥५३॥

तन्मङ्गल यत्र मन प्रसन्न तज्जीवन यत्र परस्य सेवा ।
तदजित यत्स्वजनेन भुक्त तद् गजिन यत्समरे रिपूणाम् ॥५४॥

सा स्त्री या न मद कुर्मात्स मुक्ती तृष्णयोज्झित ।
तन्मित्र यत्र विश्वास पुरुष स जितेन्द्रिय ॥५५॥

तत्र मुक्तादरग्नेहो विजुत यत्र सोहृदम् ।
तदव केवल श्लाघ्य यस्मात्मा क्रियत म्नुनी ॥५६॥

जितका घन द्विजों के लिये होता है अर्थात् जित घनी के घन से विप्र
 साभान्वित हुमा करते हैं वह ही भली भक्ति भोग करने का सुख प्राप्त करता
 है । अतएव सभी प्रकार के प्रयत्नों से सर्वदा द्विज की पूजा करनी चाहिए ॥५०॥
 जो द्विजों का उपभोग से योग रहता है वही भोग की वस्तु हुमा करती है ।
 बुद्धिमान् धनी पुरुष है जो कभी पाप वर्ग नहीं करता है—तोहृद वास्तव में
 यही है जो पीट पीछे दिया जाने और धर्म नहीं है जो बिना किसी दम्भ
 (कपट या रिखावा) के दिया जाता करता है ॥ ५१ ॥ उसे सभा या समिति
 नहीं कहा जा सकता है जिसमें वृद्ध अर्थात् अनुभवशील पुरुष न हों—वृद्ध भी
 उन्हें नहीं कहा जा चाहिए जो न्याय गूढ़त धर्म की बातें नहीं कहते हैं । धर्म
 भी नहीं होता है जिसमें सत्यता विद्यमान है और सत्य नहीं है जो छत्र-कपट
 से अनुविष्ट न हों ॥५२॥ अनुप्यो में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है—लेजो में
 सर्वाधिक सूर्यदेव हैं—दोहर के सम्पूर्ण अग्नी में हिर शर्मात्तम धन होता है
 और अग्नी में सत्य का दत्त ही सबसे उत्तम धन है ॥५३॥ गङ्गा का धर्म यही है
 जिसमें सत्य का मन प्रमत्तता का अनुभव किया करता है । जीवन वही सार्थक
 एवं सफल होता है जिसमें दूसरों की सेवा का कार्य किया जाये । वसाई नहीं
 है जिसका उपभोग अपने अनुप्यो का द्वारा किया जाये और गजेंता करना वही
 सफल है जो सभा में शत्रुओं के मगद में भी जाता है ॥ ५४ ॥ स्त्री वह ही
 सुख प्रदान करने वाली है जो कभी मर नहीं दिया जाती है । सच्चा सुखी
 घनी अनुप्य होता है जिसे तृप्ता नहीं होती है । मित्र वही होता है जिसमें पूर्ण
 विश्वास किया जा सकता है और वास्तव में प्रशस्त पुरुष वह ही होता है जिसमें
 अपनी इन्द्रियों की जीत रक्ता है ॥ ५५ ॥ जिसमें तोहृद विद्युत हो जाता है
 अर्थात् मोहाई का भाव ही नहीं रहा करता है वही स्नेह और आदर भी सूट
 जाता है । प्रशंसा के योग्य नहीं है जिसकी श्रुति आत्मा के द्वारा भी जाना
 करती है ॥५६॥

नदीनाग्निहोत्राग्ना आरतस्य कुलस्य च ।

मूनाप्येषा न वत्तव्यो मूनाहोषेण हीयते ॥५७॥

तवणजलान्ता नद्य स्त्रीभेदान्तश्च मंथुनम् ।
पंथुन्य जनवातन्ति वित्त दुःखकृतान्तकम् ॥१५॥

राज्यधीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्त ब्रह्मवर्चसम् ।
आचार घोषवासान्त कुलस्यान्त स्त्रिय श्रमो ॥१६॥

सर्वे क्षयान्ता निलया पतनान्ता समुच्छिन्ताः ।
सयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्त हि जीवितम् ॥१७॥

यदीच्छेत्पुनरागन्तु नातिदूरमनुवहेत् ।
उदकान्ताग्निवत्ते स्निग्धवर्णाग्नि पादपात् ॥१८॥

अनायके न वस्तव्य न वा च बहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्य तथा च बालनायके ॥१९॥

पिता रक्षति कीमारे मर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रस्तु स्वपित्रे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥२०॥

नविषो का—एनिहोबो का घोर भारत के कुल का—मूल का—
प्रवेणल नहीं बरे क्योंकि मूल से वे सब दोष से हीन होने हैं ॥१७॥ नविषो

का घन्त पारो पानी में होता है क्योंकि समुद्र के पानी से ही जान-समस्त
नविषो गिरा करती हैं । मंथुन बड़ी है जिसमें स्त्री का भेदन करके समाप्त हो

जाता है । विद्युनरा का घन्त बड़ी हो जाता है जबकि लोगों तक यह बात
बहुधा सी जाती है घोर वित्त का घन्त दुःख बग्न जाता ही होता है ॥१८॥

ब्राह्मणों के भाप से राज्य श्री का घन्त हो जाया करता है । पाप वर्म में
प्रत्यवर्चस का घन्त या नाश हो जाता है । नाव में घाम करने में आचार की

समाप्ति हो जाती है घोर स्त्री की प्रभुता जहाँ पर होती है वहाँ कुल का घन्त
हो समस्त होता आदि ॥१९॥ जिनमें भी आचाम गृह है उन सबका एक दिन

क्षय होकर घन्त होगा । जो जितना भी ऊपर से उठा है उसका घन्त में पवन
ध्वस्त हो जाता है । सगर में जिनमें सयोग हुआ है उसका घन्त विषय में

ध्वस्त ही होगा घोर जो यह जीवन है दिन पर समुच्च बरा-नया कर डाला
करता है उसका घन्त मरण में ही होगा । २० । यदि पुत्र प्रापन करे की

बच्चा रखे तो किसी की विराई करने के नियम अति दूर तक पीछे या साथ

नहीं जाना चाहिए । जहाँ भी कोई जलाशय हो वही से पहुँचा कर वापिस लौट जाना चाहिए मयवा स्निग्ध वहाँ जाने वृक्ष में वापिस लौट आवे ॥६१॥
 त्रिम स्मल—द्रास वा नगा—देव में कोई नायक न हो वहाँ निवास नहीं करे
 मोर जहाँ बहुत में नायक हो वही पर भी निवास नहीं करना चाहिए । स्त्री
 जहाँ की प्रभु नायक हो वहाँ मोर वायक त्रिम नायक हो वहाँ पर भी
 निवास करना उचित नहीं है ॥६२॥ स्त्री की रक्षा एवं पोषण ब्रह्मण में पितृ
 किया करता है—जीवन की दशा में स्त्री का वास एव रक्षा पति होकर है ।
 वृद्धावस्था में स्त्री की सुरक्षा पुत्र किया करता है । हिंस्रों के जीवन में स्व-
 तन्त्र रहकर अपने निश्चिन्त का कभी कोई भयमर हो नहीं होता है ॥६३॥

स्यजेद्वन्द्वामष्टमेऽध्वे नवमे तु मृतप्रजाम् ।

एकादशे स्त्रीजननी मद्यश्चाप्रियवादिनीम् ॥६४॥

अन्यैरिवान्मनुष्याणां भियां परिजनस्य च ।

अर्थाद्वैतमर्थादास्त्यस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥६५॥

अथ श्रान्तं गजं मत्तं गावः प्रथममूतिकाः ।

अनृदके च मण्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वजयेत् ॥६६॥

अर्धातुराणां न मुह्यन् कण्डुः कामातुराणां न भयं सज्जा ।

चिन्तातुराणां न मुग्नं न निद्रा शुधातुराणां सधरा न तेज ॥६७॥

वृत्तो निद्रा दरिद्रा परप्रेष्यचरस्य च ।

परनारीश्रमस्तम्य परद्रव्यहरस्य च ॥६८॥

सुखं स्वपितृनृणां व्याधिमुक्तश्च यो नरः ।

सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारिद्र्यं सत्ततः ॥६९॥

अम्भसः पारमाशेन उन्नतं कमलं भवेत् ।

स्यस्यामिना बलवता भृत्यो भवति भवितः ॥७०॥

जो पत्नी बन्ध्या हो उसकी प्रीति सात वर्ष तक करे मोर यदि उसकी
 दम्पत्यारम्य रहता है तो पण्डित वर्ष में उसका रक्षण कर दूसरी पत्नी न ले
 चाहिए । जिसके सन्तान उत्पन्न होनी है बन्ध्या नहीं है किन्तु उत्पन्न होकर
 पर जाया जाती हो उस पत्नी को नवम वर्ष में त्याग देवे । सन्तान भी हो

घोर जीवित भी रहे किन्तु केवल बन्धा ही उत्पन्न होती हो उसका त्याग म्या-
 रहने वष' मे कर दूसरी पत्नी लावे और जो कभी भी प्रिय भाषण न कर
 सर्वदा अप्रिय बोलने वाली स्त्री हो सो उसका त्याग तुरन्त ही कर देना चाहिए
 ॥६४॥ स्त्रियों के पातिव्रत धर्म बने रहने के तीन कारण होते हैं जिससे वे
 अपने पतियों के साथ रक्षा करती हैं। एक तो यह कि उनकी ऐसे पुत्रों का
 सम्पर्क प्राप्त नहीं होता है कि उनसे वे रमसेच्छा की प्रार्थना करें—दूसरा यह
 कारण होता है कि परिजन के लोगों का भय उनके हृदय में रहा करता है कि
 कोई जान या देख लेया तो उपयुक्त हो जायगा। तीसरा यह है कि स्त्रियाँ
 धर्म से प्रिये मर्यादा वाली हुमा करती हैं अर्थात् धन में मर्यादा का त्याग कर
 देने वाली होनी हैं वय धन उन्हें मिलता रहता है वे मर्यादा की किसी प्रकार
 से शायम बनाये रहा करती हैं। धर्म समझ कर पातिव्रत का पालन करने
 वाली तो विरल ही होती हैं ॥ ६५ ॥ वर के हुए मध्य स्त्री—मदोगत हाथी की
 घोर पहिली बार प्याई हुई स्त्री को तथा बिना जल के रहने वाले मधूखी को
 मनुष्य को दूर से ही परिचित कर देना चाहिए ॥ ६६ ॥ जो धर्म के प्रचुर
 होते हैं अर्थात् धन के साथ ही मनुष्य है उनका न तो कोई बन्धु होता है और
 न कोई मित्र ही हुमा करता है क्योंकि उनके लिए धन ही परम मित्र वस्तु
 होती है। जो धर्म के वश भूत मनुष्य है उन्हें कोई भी धर्म और लोक-व्यवस्था
 नहीं हुमा करती हैं वे तो एकदम धर्म से होकर वापस आना की प्रति करना
 नहीं हुमा करते हैं और भूय से बोधित पुरुषों को सबकुछ और तेज नहीं रहता
 है ॥६७॥ जो विचारा दग्ध है उसे सुय की निद्रा कने हो सकती है २ दूसरे
 के धन को हरण करने वाले पुरुष को भी नींद नहीं आया करती है ॥६८॥
 जो भ्रष्ट से मुक्त होता है और व्याधियों से रहित होता है वह मनुष्य सुखपूर्वक
 निद्रा का मानन्द प्राप्त किया करता है। जो दाराओं की तज्जति से रहित होता
 है वह सावधान होता हुमा भोग करता है ॥६९॥ जल के परिमाण से कमल
 उमा हो जाता है अर्थात् जल यदि बढ जाता है तो कमल भी उतना

ही बढ जाया करता है । अपने बन्धान् स्वामी के द्वारा भृ य एवं से युक्त हुमा करता है ॥७०॥

स्थानस्थितस्य पदस्य मित्रो वरुणभास्वरौ ।

स्थानच्युतस्य तस्य च यत्नशेषाण्यकारकौ ॥७१॥

पद स्थितस्य मित्रा य त तस्य रिपुता गता ।

भाना पद्म जल प्राप्ति स्थनाद्दग्गुणोपगम ॥७२॥

स्थानस्थितानि पूज्य त पूज्यत च पदे स्थिता ।

स्थानभ्रष्टा न पूज्य त वशा दन्ता नखा नरा ॥७३॥

आचार कुलमारयाति वपुरायाति भाषितम् ।

सम्भ्रम स्नेहमारयाति वपुरायाति भाजनम् ॥७४॥

वृथा वृष्टि समुद्रस्य तृप्तस्य भाजन वृथा ।

वृथा दान समुद्रस्य नीलस्य सुकृत यथा । ७५॥

दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थित ।

हृदयादपि निष्क्रान्त समीपस्थोऽपि दूरत ॥७६॥

मुनभङ्ग स्वरा दीना मात्रस्वेदा महद्भयम् ।

मरण यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचत ॥७७॥

अपनी उ पत्ति के स्थान पर स्थित रहने वाल कमल के दरवा और भास्वर दोनों ही मिल होने हैं यद्यपि उसके विकास करने वाले हुमा करते हैं । जब कमल अपने स्थान से च्युत हो जाता है तो य वरुण-भास्वर दोनों ही उनके वनेन एवं गोपण करने का न हो जाया करते हैं ॥७१॥ पद पर स्थित के जो मित्र ह त हैं वे ही पदच्युत होने पर गन्धु का स्वरूप धारण कर लिया करते हैं । भानु की जल म करने पर तो वसन से प्रीति होती है और स्थान पर उमरा उदग्गुण होते ही वही भानु उम कपल को द्रापण करने जाना हो जाया करता है ॥ ७२ ॥ जो अपने समुचित स्थान पर स्थित रहा करता है वे पूजा के योग्य हात है और जो पद पर अवस्थित रहत हैं वे भी पूजे जाया करते हैं । स्थान से भ्रष्ट हो जाने पर केन—दाँत और नख कभी भी पूजित एवं लोभा सम्पन्न नहीं हुमा करते हैं ॥ ७३ ॥ आचार मानव के कुल की प्रकट

कर दिया करता कि यह कैसे कुल में समुत्पन्न हुआ है। भाषित शरीर को प्रकट करता अथवा भाषण से उसके शरीर के ज्ञान का परिचय हो जाता है। सम्भ्रम स्नेह से व्यक्त कर देता है और शरीर से उसके भोजन का ज्ञान हो जाता है कि कौंसा भोजन देने मिलता है क्योंकि शारीरिक पुष्टि भोजन से हो हुआ करता है ॥ ७४ ॥ समुद्री माय में वृष्टि का होना निष्फल होता है और पहिले ही से तृप्त है उपको भोजन खिन्ना का व्यर्थ है। समुद्रि से सम्पन्न पुरुष को दान देना बेकार है जैसे नीच का मृकृत व्यर्थ होता है ॥ ७५ ॥ चाहे कोई कितने ही दूरस्थ देश में क्यों न हो यदि हृदय में उसके लिये स्थान है तो वह सपीय में ही रहना करता है। जो हृदय से निकल जाता है तो वह सपीय में ही रहना करता है। जो हृदय से निकल जाता है तो वह चाहे सपीय में ही क्यों न विद्यत हो वह दूर ही रहता है ॥ ७६ ॥ मुख का मङ्गल करना—दीनता से भरा हुआ स्वर—शरीर में पसीने का होना और बड़ा भारी भय का रहना—ये सब बातें याचना करने वाले पुण्य की होती हैं। ये ही मरणोत्पन्न वरक्ति के भी लक्षण होते हैं। तात्पर्य यह है कि याचना का काम मृत्यु के समान ही होता है ॥ ७७ ॥

कुडजस्य कीटघातस्य वातातिष्कानितस्य च ।
शिरसरे वसतस्तस्य वर जन्म न याचितम् ॥७८॥
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वाभिनताङ्गतः ।
कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न साधवम् ॥७९॥
माता शत्रु पिता वैरी वाता येन न पाठिता ।
सभामध्ये न शोभन्ते हसमध्ये वका यथा ॥८०॥
विद्या नाम कुत्परूपमधिक विद्यातिगुप्त धन
विद्या साधुकरो जनप्रियकरो विद्या मुक्ता गुरु ।
विद्या बन्धुजनात्तिनागनकरो विद्या पर दंक्त
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः ॥८१॥
गृहे चाम्यन्तरे द्रव्य लग्नञ्चैव नृ दृश्यते ।
धनोप हरणीयश्च विद्या न ह्रियते परैः ॥८२॥
शोकवाय नीतिसार विष्णुः सर्वव्रतानि च ।

कथयामास वै पूर्वं तत्र सुश्राव शङ्करः ॥

शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च ॥५३॥

कुबडा-कौटपात-वात न निष्कासित घोर गिहर पर त्रिवास करने वाले का जन्म याचना करने वाले के जन्म से कही भयछा होता है । याचना कृति बहुत ही गहिल होती है ॥७८॥ प्रसिद्ध ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् विष्णु को भी जब याचना करने के कर्म में प्रवृत्त हुए तो उनको भी बीना बनना पड़ा था । भगवान् से अधिक धन्य कौन हो सकता है । जो कोई भी हो जब याचना करता है तो सबकी ही छोटापन घारण करता ही पड़ता है ॥ ७९ ॥ वह माता पितृ है और वह पिता वही है जिसने अपने बालक को तिरा-पटाकर मुनिव्रित्त नहीं बनाया है । जो मगिधित होते हैं वे सभा के मध्य में हनु में बगुनों की भाँति शोभ नहीं दिया करते हैं ॥८०॥ विद्या कुलप पुरुष का भी एक विशेष रूप सौन्दर्य होती है । विद्या सम्पन्न ही गुत धन है । विद्या मानव को साधु बना देने वाली-समस्तजनों के प्रिय क करने वाली घोर विद्या मुहुरी की भी गुत होती है । विद्या एक वष्पुजन न गुतव होती है । विद्या प्राप्ति (पीठा) के नाश करने वाली होती है । विद्या परम देवता है । विद्या की पूजा राजाओं के महा होती है यद्यपि विद्या में युक्त विद्वान् मनुष्य का समादर राजा लोग भी किया करते हैं । जो ऐसे घनेक मनुष्य चमत्कारों से परिपूर्ण विद्या से हीन होता है वह मनुष्य पशु के ही समान होता है ॥ ८१ ॥ घर के अन्दर छिपा कर रखता हुआ भी धन दिखलाई दे जाता है । घर का सब धन हरण करने के योग्य होता है यद्यपि लाभ के निरा करते हैं नित्य विद्या रूपी धन ही ऐसा धन है जिसको दूसरे लोग नहीं ले सकते हैं ॥ ८२ ॥ भगवान् विष्णु ने शौनक के लिए यह नीति का सार घोर समस्त बात बड़े में । वही पर शङ्कर ने इनका श्रवण किया था । भगवान् शङ्कर से वेद व्यास महर्षि ने सुना था घोर व्यास से हम लोगो ने श्रवण किया था ॥८३॥

७२—तिथियों के व्रत

प्रतापि ध्यास वध्यामि हरिं सर्वदो भवेत् ।

सर्वमाससंतिथिषु वारेषु हरिस्तुति ॥१॥

एकभक्त्येन नक्त्येन उपवासफलाविना ।
 ददाति धनधान्यादि पुत्रराज्यजयाशया ॥२॥
 वैश्वानर प्रतिपदि कुबेर पूजितोऽर्च्यः ।
 उपोष्य ब्रह्मा प्रतिपद्यन्ति श्रीस्तवाश्विनीम् ॥३॥
 द्वितीयाया यमो लक्ष्मीर्नारायण इहार्च्यः ।
 तृतीयाया निदेवाश्च गौरीविघ्नशङ्करान् ॥४॥
 चतुर्थ्याञ्च चतुर्व्यूहं पञ्चम्यामवितो हरिः ।
 कार्तिकेया रावि पाष्ट्या सप्तम्या भास्करोऽर्च्यः ॥५॥
 दुर्गाष्टम्या नवम्याश्च मातराऽथ दिशोऽर्च्यदा ।
 दशम्याञ्च यमश्चन्द्र एकादस्यामृषीभ्यजेत् ॥६॥
 द्वादस्याञ्च हरिः काम त्रयोदस्या महेश्वरः ।
 चतुर्दस्या पञ्चदस्या ब्रह्मा च पितरोऽर्च्यदा ॥७॥
 अमावस्या पूजनोपाश्च वारा र्वं भास्करादयः ।
 नक्षत्राणि च यागाश्च पूजिता सर्वदायदा ॥८॥

ब्रह्मादी न कहा—हे व्यास । अब मैं उन पदों के विषय में तुम्हारे सामने बखान करता हूँ जिन पदों के द्वारा भगवान् हरि समस्त पदार्थ प्रदान करने वाले हो जाते हैं अर्थात् सभी कुछ दे दिया करते हैं । भगवान् हरि सभी मास-नक्षत्र-तिथि और वारों में समवित होते हैं ॥ १ ॥ एक ही समय में रावि में उपवास फल प्राप्ति क द्वारा पुत्र-राज्य और धन की प्राप्ति से घन-घाण्डारि देता है उसकी अभीष्ट की निधि होती है ॥ २ ॥ वैश्वानर और कुबेर प्रतिपदा के दिन पूजित जाने पर धन के दाता होते हैं । उपवास करके प्रतिपदा में ब्रह्मा-श्री और अश्विनी की प्रार्थना करे तो ये जय प्रदान करते हैं । तृतीया तिथि में यम-लक्ष्मी और नारायण की प्रार्थना करे तो ये जय प्रदान करते हैं । चतुर्थी तिथि में चतुर्व्यूह का वजन करे और पञ्चम्या तिथि में भगवान् हरि का वजन करना चाहिए । स्वामी कार्तिकेय और मातर देव का पूजन एही तिथि में करे । सप्तमी तिथि में मूर्धेश्वर की पूजा करने से वह धन प्रदान किया

करते हैं ॥५॥ दुर्गाष्टमी घोर नवमी तिथि में माताघो का घोर दिशाघो का पूजन करने से ये घयं प्रदान करने वाली होती है । दशमी तिथि में यम तथा चन्द्रमा का एव एकादशी तिथि में श्रुषिषो का यजन करना चाहिए ॥६॥ द्वादशी तिथि के दिन भगवान् हरि यजन करने से कामनाघो की पूति किया करते हैं घोर त्रयोदशी (तेरस) तिथि में भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिए । चतुदशी घोर पञ्चदशी तिथियो में ब्रह्मा का तथा पितरो का पूजन करने से ये घयं का प्रदान करते हैं ॥७॥ अमावस्या तिथि में बार घोर भास्कर आदि— नक्षत्र तथा योग पूजित होकर सब सुख प्रदान करने वाले हैं ॥८॥

७३—अनङ्गत्रयोदशी व्रत

मार्गशीर्षे सिते पक्षे व्यासानङ्गत्रयोदशी ।
मल्लिकाज दन्तकाष्ठ धतूः पूजयेच्छ्रवम् ॥१॥
अनङ्गामेति नैवेद्यं मधु प्राश्याय पीपके ।
मोक्षेश्वर पूजयेच्च दिव्यपत्रं कदम्बजम् ॥
दन्तकाष्ठश्चन्दनादि नैवेद्यं शङ्खुली ददेत् ॥२॥
माघे तटेश्वरायार्घ्यं कुन्दमौक्तिकमालया ।
प्लक्षेण दन्तकाष्ठश्च नैवेद्यं पूरिका मुने ॥३॥
वीरेश्वर फाल्गुने तु पूजयेत् मरुत्तकैः ।
शंकराक्षिकमण्डाश्च चूतज दन्तघावनम् ॥४॥
चित्रे यजेत्सुरूपाय नर्पूरं प्राशये दत्ति ।
दन्तघावनं वटज नैवेद्यं शङ्खुली ददेत् ॥५॥
पूजा च मोदकं शम्भोनीशारेऽश्लोकपुष्पकं ।
महाह्मपाय नैवेद्यं गुह्यभक्त ह्य दुस्वरम् ॥६॥
दन्तबाध प्राशयेच्च ददेज्जातीफलं तथा ।
प्रद्युम्न पूजयेच्चैष्ठे चम्पकं बिल्वज ददेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! मार्गशीर्ष मास के सुक्ल पक्ष में अङ्गत्रयोदशी के दिन मल्लिका के पुष्प—दन्त काष्ठ घोर घटूरा के पुष्पो से

भगवाद् शिव का पूजन करना चाहिए ॥१॥ 'मनस्त्वयो' इत्यादि मन्त्र के द्वारा
 नैवेद्यो से मधु का प्राशन कराव । इसके मन-नर यौग मास में बिल्ब पथी के
 द्वारा कदम्बज से पूजन करे और दन्त काष्ठ एवं चन्दन आदि—नैवेद्य और
 शङ्खुली (पूछी) समर्पित करे ॥ २ ॥ माघ के महौना में नरेश्वर के लिये कुन्द
 तथा शीतल को माला से ध्वजर्चना करे ॥३॥ फाल्गुन माघ में श्रीरेश्वर का मरुदक के पुष्पो से
 एवं पूरिका समर्पित करे ॥३॥ फाल्गुन माघ में श्रीरेश्वर का मरुदक के पुष्पो से
 ध्वजर्चना करे और शकरा-शाक तथा मण्डपक आदि की दन्त धावन समर्पित
 करना चाहिए ॥ ४ ॥ चैत्र माघ में सुम्भ के निध मज्जन करे और कर्पूर का
 प्राशन कराव । बड व वृषा की दन्तधावन—नैवेद्य तथा शङ्खुली समर्पित करना
 चाहिए ॥५॥ वैशाख व महीना में भगवाद् शम्भु का मचन मोदको (लड्डुकी)
 के द्वारा तथा बसोह व पुरी से करे । महाश्व के लिय नैवेद्य—गुड—भक्त
 और गूलर की दन्त धावन का प्राशन करावे और जाती पत्त समर्पित करना
 चाहिए । ज्येष्ठ मास में प्रह्म की पूजा करे तथा चम्पक के पुष्पो से ध्वजर्चना
 करे और बिल्ब वृक्ष की दन्त धावन तथा लवङ्गाशन निवेदित करे ॥६॥
 लवङ्गाशनमापाडे उमाभद्रे तिसासन ।
 अगुरु दन्तकाष्ठश्च तमपामागंकं यजेत् ॥७॥
 प्रादरो करवीरश्च सम्भवे सूलपाण्ये ।
 गन्धासनां धृताद्यैश्च करवीरजसो वनम् ॥८॥
 सद्योजात भाद्रपदे वक्रुर्तः पूषकं यजेत् ।
 गन्धर्वाणां मदनजनाश्रिते च मुराधिपम् ॥९॥
 चम्पकं, स्वर्णवाम्बादी पलेन्मादकसप्रद ।
 सादिर दन्तकाष्ठश्च कात्तिके रत्नमर्चयेत् ॥१०॥
 वदर्या दन्तकाष्ठश्च दसानो दशमाशन ।
 शीरसाकप्रद पद्म रत्नान्तं शिवमर्चयेत् ॥११॥
 रतिमुक्तमनङ्गश्च स्वर्णमण्डलमस्थितम् ।
 गन्धाद्यैर्दंसाह्वय तिलश्रीहादि होमयेत् ॥१२॥

जागर गीतवादित्र प्रभानेऽन्येभ्यं वेदयेत् ।
 द्विजाय शय्या पात्रञ्च छत्र वस्त्रमुपानहो ॥१४॥
 गान्धर्व भोजयेद्भक्त्या कृतवृत्त्यो भवेन्नरः ।
 एतदुद्यापन सर्वं व्रतेषु ध्येयमीदृशम् ।
 फलञ्च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वभाग्भवेत् ॥१५॥

प्रायास मास में 'उमापद'—इमक द्वारा शिव वा अर्चन करे और प्रभु
 प्रपामां दन्त काष्ठ से यजन करना चाहिए ॥१४॥ आरुण मास में गूल पाणि
 शम्भु के लिये करवीर—गन्धामन—पुन आदि के द्वारा यजन करे तथा करवीर
 की दांतुन समर्पित करे ॥१५॥ भद्रपद मास में मद्योबाज का बकुल के पुष्प और
 पूरा (पूषा) से यजन करना चाहिए । यह गन्धर्वाक्ष है । मदनज सुराधिप वा
 अर्चन आश्रित न करे । स्वर्ण वायु आदि में चम्पक के पुष्पों के द्वारा मोदकी
 का सम्प्रदान करते हुए पूजन करे तथा शक्ति की दांतुन समर्पित करे । कार्तिक
 मास में रट्ट का अर्चन कर ॥१०॥११॥ बदरी वृक्ष की दन्त काष्ठ देवे । दशमास
 क्षान और क्षीर तथा शक दा प्रदान करने वाले को वर्ष के अन्त में पशु के
 द्वारा शिव वा पूजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ स्वर्ण मण्डल में सस्तिपन रत्न से
 युक्त आङ्ग का गन्धासन आदि के द्वारा यजन करे और दश सहस्र निल तथा
 श्रीहि आदि की सामग्री से हार करना चाहिए ॥१३॥ राशि में जागरण और
 गीत वादित्र करके प्रातःकाल में अर्चन करना चाहिए । आरुण के लिये
 शय्या—पात्र—छत्र—इत्र और जूते आदि समर्पित करे तथा गो द्विज का भोजन
 करावे तो मनुष्य सफलता की प्राप्ति किया करता है । समस्त व्रतों वा यह इस
 प्रकार वा उद्यापन होता है । इमका फल—श्री से युक्त आरोग्य—सौभाग्य और
 सम्पूर्ण पदार्थों का लाभ होता है ॥१४॥१५॥

७४—अखण्डद्वादशी, अगस्त्यार्घ्य और रम्भा तृतीया

व्रतं कंवत्पञ्चमनमखण्डद्वादशी वदे ।

मागंशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः ॥१॥

द्वादश्या पूजयेद्विष्णुं दद्यान्भासचतुष्टयम् ।
 पञ्चब्रोहियुत पात्र विप्रायेदमुदाहरेत् ॥२॥
 सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मयाऽक्षण्डव्रत कृतम् ।
 भगवन्त्वत्प्रसादेन तदक्षण्डमिहान्तु मे ॥३॥
 यथाऽक्षण्ड जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम ।
 तद्यथात्मान्यवएडानि व्रतानि मम सन्त्युत ॥४॥
 सन्तुपावाणि चैत्रादौ थावणादौ घृतान्वितान् ।
 व्रतकृद् व्रतपूर्णान्तु स्त्रीपुत्रस्वर्गभागभवेत् ॥५॥

श्री जह्नुजी न कहा—धन में कंवलय के समत करने वाला भलएड-
 दादगी का प्रा बनलादा है—भासवीप भास के मुक्त पत्र में पक्ष का भजन
 करके सप्तरोपित रह ॥२॥ द्वादशी के दिन में भगवाद् विष्णु का पूजन करता
 चाहिए । बार मान तर दित्र को बीच ब्रोहियो मे मुक्त पात्र देवें मोर यह बहे
 कि सात जन्मो न हो मैंन दलएड बन किया है, हे भगवद् ! वह भासके प्रसाद
 से यहाँ अब भलएड हो न बं ॥२॥ जिस तरह से यह समस्त जगद् भलएड
 है मोर पुरपो मे उत्तम प्राय भी भलएड है वंस ही ये सपूर्ण व्रत भी भलएड
 मेरे होने हैं ॥४॥ बीच प्राप्ति माधो मे सतुमा से पूर्ण पात्र मोर थावण प्रादि
 महीनो मे घृत मे मुक्त प्रा के करन बाते को देने चाहिए सभी व्रत पूर्ण होता है
 मोर वः फिर स्त्री-पुत्र मोर स्वर्ग के भोग प्राप्त करने वाला हो जाता है ॥५॥

प्रगन्त्यार्घ्यव्रत वक्ष्ये मुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
 अत्राप्यो भास्करे कन्या सति भागे त्रिभिदिनेः ॥६॥
 अर्घ्यं दद्यादगन्त्याय मूर्ति नपूज्य च मुने ।
 काशपुष्पमयी कुम्भे प्रदाये कृतजागरः ॥७॥
 दध्यधतादर्यं सपूज्य उपोष्य फलनुष्पकं ।
 पञ्चवरुणसमायुक्तं हनरोप्यसमन्वितम् ॥८॥
 ननधान्यनुत पात्र दयिचन्दनचवितम् ।
 प्रगस्त्यः नलमानेति मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् ॥९॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
 मित्रावरुणयो पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥१०
 शूद्रस्थादिरनेनैव त्यजेद्दान्य फल रसम् ।
 दद्याद् द्विजातये कुम्भ सहिरण्य सदशिखाम् ॥
 भोजयेच्च द्विजांसस्य उपनिष्ठत्या तु सर्वभाक् ॥११

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह हम अग्न्याग्न्यं यत के विषय में बतलाते हैं । यह यत भुक्ति अर्थात् सम्पूर्ण सामारिक सुखों का उपभोग और भुक्ति अर्थात् चारुवात सत्ता में जन्म और मरण के भावागमन से छुटकारा पाना— ये दोनों ही प्रदान किया करता है । अग्न्या पर आसन्न के अग्रज होने पर तीन दिन तक अग्न्य के लिये अर्घ्य देना चाहिए । हे भुक्ते ! प्रदोष कृत जागरण बान्ना होकर कुम्भ में काश पुष्पमयी भूति का अग्नी भोग पूजन करके अर्घ्य दधि-अक्षत आदि से पूजन कर और फल पुष्पों से उपोषित होकर पाच वर्णों से समष्टुक्त-हेतु एवं रोष्य के सम्पन्न-तान घाग्यों से मुक्त दधि एवं अक्षत से अर्पित पात्र की “अग्नये भगवान्”—इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देवे ॥६॥७॥८॥॥ हे काश के पुष्प के प्रतीकाश ! हे अग्नि और मारुत से जन्म ग्रहण करने वाले ! मित्रावरुण के पुत्र ! हे कुम्भयोने ! भावों के लिये मेरा नमस्कार है ॥१०॥ इसके द्वारा शूद्र-स्त्री आदि का त्याग कर देना चाहिए । द्विजानि के लिये घान्य—फल-रस-दक्षिणा के सहित कुम्भ और वे हिरण्य के सहित भी हो, प्रदान करना चाहिए । ब्राह्मणों को भोजन कराये । इस प्रकार से सात वर्ष तक करने पर समस्त पदार्थों की प्राप्ति करने वाला मनुष्य होता है ॥११॥

रम्भातृतीया वध्ये च सीताम्यथीसुतादिदाम् ।
 मार्गशीर्षे सिद्धे पथे तृतीयायामुपोषितः ॥१२
 गोरी पजेद्विष्वपश्चै कृशोदककरस्ततः ।
 कादम्बदो गिरिगुता पोषे मरुकर्यजेत् ॥१३
 वर्षराद वृषारदो मल्लिकादन्तवाष्पकृत् ।
 माघे सुभद्रा कङ्कारं पृताशो मण्डकप्रदः ॥१४

गीतोमय दन्तकाष्ठं फाल्गुने गोमती यजेत् ।
 कुन्दं कृत्वा दन्तकाष्ठं जीवाशं शङ्कुलीप्रदः ॥१५॥
 विशालाक्षी मदनकैश्वरे कृशरसम्प्रदः ।
 दधिप्राशो दन्तकाष्ठं तगर श्रीमुखी यजेत् ॥
 वैशाखे कर्णिकारंश्च अशोकाशो रदप्रदः ॥१६॥
 ब्रह्माक्षी बोने—यब हय रग्मा तृतीया के विषय में वतताते हैं जो परम
 सोमाय—श्री शीर सुत प्रादि के प्रद न करने वाली है । मार्ग शीर्ष मास
 शुक्ल पक्ष में तृतीया में उपोषित रह ॥ १२ ॥ कुशा शीर जल हाथ में लेन
 विल्व के दलों के द्वारा शीरी का यजन करे । वदम्ब के दलों एवं पुष्पो के पिं
 मुना का यजन करना चाहिए । पौष मास में पराको के द्वारा भस्मर्चना करे
 ॥१३॥ कपूर शीर कृशर का यजन एवं दान करन वाला होवे तथा मनु मल्लिका
 को उत्तम लक्ष लेन दातु करे । माघ मास में कल्लार के पुष्पो से सुभद्रा
 का यजन करे । चैत्र का यजन करने वाला तथा मण्डो का प्रदाता होवे ॥१४॥
 कल्युन मास में गीतोमय दन्त काष्ठ हो शीर गोमती का यजन करे । जीवाशो
 होकर शङ्कुली का प्रदान करे श्री कुन्द स दन्त यावत् करे ॥१५॥ वैश मास
 में विशालाक्षी का यजन करे श्री कृशर सम्पत्ति वाला होकर यजन करे शीर दधि
 का प्रदान करे तथा तगर श्री दन्तपावन रखे—इस रीति में श्रीमुखी का यजन
 करना चाहिए । वैशाख में कर्णिकारो से अशोकाशन वाला रदप्रद होकर यजन
 करे ॥१६॥

श्वेष्टे नारायणीमर्षेच्छतपनंश्च राण्डदः ।
 तवज्ञाशो भवेदेव प्रापाडे माधवी यजेत् ॥१७॥
 तिलागो विल्वपत्रंश्च क्षीराप्रवटनप्रदः ।
 श्रीदुम्बर दन्तकाष्ठं तगर्भ्यां शीरदो ह्युत्तमा यजेत् ।
 दन्तकाष्ठं मल्लिकाया शीरदो गुह्याददः ॥१८॥
 पर्व यजेद्वाद्रपदे शृङ्गदागो गुह्याददः ॥१९॥
 रात्रपुत्रीश्चाश्वपुजे जवापुष्पंश्च जीरकम् ।
 प्राशपेतिनि नैवेद्यैः कृशरः कात्तिके यजेत् ॥२०॥

जात्रीपुष्पं पद्मञ्च पञ्चगव्यासनो यजेत् ॥

धृतोदनञ्च वपन्ति मपत्न कान्दिजान्यजेत् ॥२१

उमाभृष्टेश्वर पूज्य प्रदद्याच्च गुडादिवम् ।

धम्मच्छप्रसुवर्णादयं रात्रौ च कृतजागरः ।

गीतावादयंदंदेप्रतर्गदाद्य सर्वमाप्नुमात् ॥२२

ज्येष्ठ मास में नारायणी देवी का दत्त पत्रो के द्वारा खांड का दान करते हुए लवङ्ग का दान करने यजन करना चाहिए । माघाद मास में माघवी देवी का यजन करे ॥१७॥ तिर्थों का दान करे—क्षीराक्ष घटक का प्रदान करे और चित्त पत्री से पूजन करे—मूलर वी दत्त धावन करे । श्रावण में तगरी में श्री का यजन करना चाहिए—मल्लिका वी दत्त धावन—श्री का दान करे और उत्तमा का पूजन करे । माघपद मास में पद्म पुष्पों के द्वारा यजन करे । शृद्ध का दान करे और गुड घादि का दान करना चाहिए ॥१८॥१९॥ माघिन मास में राजकुसी का जवा के पुष्पों से यजन करे—रात्रि में जोरको का दान करे । तैवेष्ट कुंभ से कालिका में जात्री के पुष्पों के द्वारा पद्मजा वा यजन करे—पञ्च-यन्त्र का दान करे । वर्षा के दान में धृतोदन का मपत्नीक द्विजों को भोजन करावे । उमा भृष्टेश्वर का पूजन कर गुडादि का दान करे तथा मत्त-धन और मुखादि से रात्रि में जागरण करे—गीता वाद्यादि करे और प्रातःकाल के समय में गो घादि का दान करे तो सगस्त कामनाओं की पूर्ति होती है ॥२०॥२१॥२२॥

७५ —चातुर्मास्य, मामोपवास व्रत

चातुर्मास्यव्रतान्युचै एकादस्या समाचरेत् ।

आपादया पीरुमास्या वा सर्वेषु हरिमर्च्यं च ॥१

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरस्तत्तव ।

निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नातु प्रसन्ने त्वयि वेश्म ॥२

गृहीतेऽस्मिन्व्रतं देव यक्षपूर्णे म्रियाम्यहम् ।

तन्मे भवतु सम्पूर्णं स्वप्नमादाजनादं ॥३

एवमभ्यर्च्य गृहीत्याह ताञ्चनजपादिकम् ।

सर्वाद्यश्च क्षयं याति चिकीर्षो हरेर्ब्रतम् ॥४

स्नात्वा यश्चातुरो मासानेकभक्तने पूजयेत् ।
विष्णु स याति विष्णोर्वै लोक मलविद्वर्जितम् ॥५॥
मद्यमासपुरात्यागी वेदविद्वरिपूजनात् ।
तैलवर्जो विष्णुलोक विष्णुभाक्कृच्छ्रपादकृत् ॥६॥
एकरात्रोपवासाच्च देवो वंमानिका भवेत् ।
श्वेतद्वीप त्रिरात्रात् ब्रजेत्पञ्चाक्षरम् ॥७॥
चान्द्रायणादरेर्धमि लभेन्मुक्तिमयाचिताम् ।
प्राजापत्य विष्णुलोक परान्वनकृद्वरिम् ॥८॥
सवनुपादकमिक्षासो पयोदधिपूजामन ।
गोमूत्रयावकाहार पञ्चगव्यकृतामन ॥
सावमूलफल्तयागो रमवर्जो च विष्णुभाक् ॥९॥

श्री ब्रह्माजी न वत्स - भव में चातुर्मास्य व्रतो को करना है । इनको
एकादशी में भगवत् प्रापादो पूजिना में समस्त उपचारों के द्वारा समर्पण कर
करना चाहिए । अथवा हरि में प्रपन्न करने कि ह देव । मैंने यह व्रत भाषके
समक्ष में प्रकट दिया है । ह वत्स । आप प्रपन्न होने पर मेरा यह व्रत
निश्चय सिद्धि को प्राप्त हो जाये ॥१॥२॥ हे देव । इस व्रत के प्रकट करने पर
यदि यह व्रत सम्पूर्ण रह और मैं मर जाऊँ तो ह बनादेन । भवके प्रवाद में यह
व्रत सम्पूर्ण हो जावे ॥३॥ इस प्रकार से प्राप्ति करते हुए भगवान् का धन्य-
चन कर व्रत करने की इच्छा करे तो समस्त मर्षों का क्षय हो जाता है
हरि के व्रत की करने की इच्छा करे तो समस्त मर्षों का क्षय हो जाता है
॥ ४ ॥ जो बार मास तक स्नान करके एक ब्रह्म पूजन करे वह विष्णु की
सामिप्य एवं विष्णुलोक की प्राप्ति करे जोकि मन से रहित होता है ॥५॥ वेदों
का वेत्ता पुरुष सप्त-भाग और गुरु का स्थान करने वाला हरि का पूजन करे-
हैन का त्याग कर देवे और विष्णु के पूजन में कृच्छ्र पाद करे तो वह विष्णु-
लोक में विष्णु की प्राप्ति प्राप्त करता है ॥६॥ एक रात्रि के उपवास से देवों
के निम्न में गमन करने वाला होता है । तीन रात्रि के उपवास से पद्मान्वित
मालव श्वेत द्वीप को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ चान्द्रायण व्रत से हरि के धाम की

प्राप्ति किया करता है और अर्पणित मुक्ति को प्राप्त करता है । प्राजापत्य व्रत में विष्णु व्रत की प्राप्ति होती है । पराक व्रत करने वाला हरि को प्राप्त करता है ॥८॥ सत्रु (सतुषा) और यावत् का भिक्षान्न करने वाला—पय, दधि तथा घृत का प्रशन करने वाला—मोमूय और यावत् का आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य का प्रशन करने वाला—शाक—मूय और फलों का श्याम करने वाला और रसो को वजित रखने वाला सभी विष्णु ने सांनिध्य को प्राप्त किया करता है ॥ ६ ॥

व्रत मामोपवासाख्य सर्वोत्कृष्ट वक्षामि ते ।

वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्यान्मामोपवासाकम् ॥१०॥

आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषित ।

व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशदिनाम् तु ॥११॥

अद्यप्रभृत्यह विष्णोर्वावदत्तवानक तव ।

अचये स्वामनश्नन्तु दिनानि त्रिंशदेव तु ॥१२॥

प्रातिकाश्विनर्वाविष्णो द्वादश्यो घृणेतयोरहम् ।

अग्नये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥१३॥

हरिं यजेत्त्रिपवणरनापी गन्धादिभिर्घृती ।

गात्राम्यङ्गं गन्धतेप देवतायतने त्यजेत् ॥१४॥

द्वादश्यामथ सपूज्य प्रदद्याद् द्विजभोजनम् ।

ततश्च पारण कुर्याद्विरेमामोपवासाकम् ॥१५॥

दुग्धादिप्राशनं कुर्याद् व्रतस्थो भुञ्छितोऽन्तरा ।

दुग्धादयं व्रतं नश्यदुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१६॥

श्री यज्ञाशी बोले—प्रथम मैं सभ्यता शरी से भी परम उत्कृष्ट व्रत जिसको मामोपवास नाम से कहा जाता है गृह्य बतलाता हूँ । इस मामोपवास नामक व्रत को यानप्रस्थ—यति और नारी का करना चाहिए ॥१०॥ आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपोषित होकर इस व्रत की तीस दिन के तिये ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ भगवान् से व्रतारम्भा करने के पूर्व प्रायना करें—हे भगवद् ! मैं आज से सत्कर जब तक आपका उत्पादन हो तब तक के लिये

इस व्रत की पहण करता है । बिना खाने हर तीस दिन तक मैं प्राणकी भयंका
कर्मों ॥१२॥ हे विष्णु ! कार्तिक और प्राश्निक मासों के मध्य में धुल्ल पत्तों
को श्रादशियों के अन्तराल में यदि मेरी मृत्यु हो जावे तो मैं यह प्रार्थना करता
हूँ कि मेरे इस व्रत का लग विघ्न से नष्ट नहीं होगा चाहिए ॥१३॥ त्रिकाल में
मन्त्रों और स्नान करने वाले प्रती मैं मन्त्राखन के द्वारा भगवान् श्री हरि का
पूजन करना चाहिए । इसी पुरुष को देव के ध्यातन में माघों का धर्म्यज्ञ और
गन्ध का लेपन नहीं करना चाहिए ॥१४॥ ज्ञानियों के दिन में भली भाँति पूजन
करके इसके अन्तर द्विजों को भोजन समर्पित करे । इसके पश्चात् स्वयं पारण
करे जिससे कि हरि के नाम का उपवास किया है ॥१५॥ वन में स्थित रहने
वाला पुरुष यदि वन के कारण अन्नक होकर मध्य में मूर्च्छित हो जावे तो
उसको दुग्ध आदि का प्राशन कर लेना चाहिए । दुग्ध आदि कनिष्ठ पदार्थ
ऐसे हैं उनके सेवन करने पर वन का नाश नहीं हुआ करता है और वह दुग्धादि
के सेवन करने वाला भी प्रसी भुक्ति एवं मोक्ष दोनों ही के प्राप्त कर लेने का
पूर्ण अधिकारी होता है ॥१६॥

७६—भौत्तपञ्चक व्रत

व्रतानि कार्तिके वरुने स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत् ।
एकभक्तं न नक्तं मासं वायाचितेन वा ॥१॥
दुग्धशालाफलार्द्रां उपवासेन वा पुनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तं प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥२॥
सदा हरेर्ब्रतं श्रेष्ठं ततः स्वादिदद्यात्तनैः ।
चातुर्मास्ये तत्तत्तत्मात्कार्तिके भौत्तपञ्चकम् ॥३॥
ततः श्रेष्ठव्रतं मूलस्वयंकादस्या समत्करेत् ।
स्नायात्त्रिकालं पित्रादीन्यर्वाद्यैरर्चयेदरिम् ॥४॥
यजेन्मौलीं घृतादूर्ध्वं पञ्चमय्येन वारिभिः ।
स्नापयित्वाऽथ कर्पूरमुर्ध्वं वानुलेभयेत् ॥५॥
घृताक्तगुग्गुलंघूषं द्विजं पञ्चदिनं दहेत् ।
नैवेद्यं परमाशन्तु जपदष्टोत्तरं मनसु ॥६॥

ॐ नमो वासुदेवाय धृन्ग्रीहितिसादिवम् ।

गष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहा-त्तेन तु होमयेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं वात्तिक नाम में होने वाले व्रतों को बतलाता हूँ । सब प्रथम स्नान कर भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । मान पक्ष में एक समय रात्रि में भयवा घमाचित्र भोजन करे । भयवा दुग्ध—साकं शीर फलादि जल भवन कर या उपवास करे । ऐसी विधि से व्रत करने वाला पुण्य सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर शीर समस्त कामनाओं को प्राप्ति कर घत में भगवान् हरि व गान्धर्व्य में पहुँच जाया करता है ॥१॥२॥ हरि का यह व्रत सदा ही श्रेष्ठ होता है । दक्षिणायन में मूष हानि पर हमसे भी अधिक उत्तम होता है । चातुर्मास्य में इससे भी अधिक श्रेष्ठ होता है । शीर इसमें भी वात्तिक नाम भीष्म वस्त्र में उत्तम होता है । इससे भी श्रेष्ठ व्रत वात्तिक धुवन वस्त्र की एकादशी में होता है । त्रिकाल में स्नान करे और पितृ गण प्रादि का यवादि व द्वारा यजन कर और श्री हरि को भजना करनी चाहिए ॥३॥४॥ मोन एक धारण कर घृत प्रादि—पञ्चगव्य—जन से स्नान करावे और कपूर प्रादि प्रमुख मुनि वन पदार्थों व द्वारा अनुत्पन्न करे ॥ ५ ॥ द्विज को घृत से बन्त गुग्गुलु व द्वा । पाँच दिन तक घृत का दाह करता चाहिए । परमाप्त का नैवेद्य समर्पित कर शीर शशोत्तर क्षण जाप करे ॥ ६ ॥ जाप का मन्त्र उपन व पञ्चान् ॐ नमो वासुदेवाय —इस पाठ अक्षरो जाने मन्त्र से 'स्वाहा' यह व्रत में जगा कर पूजा—ग्रीहि और तिन प्रादि की सामग्री से होम करना वाञ्छि ॥७॥

प्रथमेऽह्नि हरे पादौ यजेत्पञ्चद्वितीयक ।

वित्तवपरेजानुदेश नामि मन्वेन चापरे ॥८॥

स्वन्धौ वित्तवज्रानिश्च पञ्चमेऽह्नि शिरोऽचयेत् ।

मानव्या भूमिगायी म्याद् गामय प्राशयेत्त्रिमात् ॥९॥

गामून् क्षीरं च पञ्चम पञ्चमव्ययम् ।

नक्तं बुभ्यात्पञ्चदश्या व्रती स्वाहुक्तिमुक्तिभाक् ॥१०॥

एकादशीव्रत नित्यं तत्कुर्व्यात्पक्षयो द्वयो ।
अधीघनरक्त हन्यात्तत्तदं विष्णुलोकदम् ॥११॥

एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी ।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥१२॥

दशम्येकादशी यत्र तत्रस्याभ्यामुपासनम् ।
द्वादश्या पारस्यं कुर्यात्सूतके मृतके चरेत् ॥१३॥

चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वमिथ्यामुपावसेत् ।
पौर्णमास्याममावास्या प्रतिपन्मिथिता मुने ॥१४॥

द्वितीया तृतीयामिथा तृतीयाञ्चाप्युपावसेत् ।
चतुर्थ्या सङ्गता नित्यं चतुर्थीञ्चानया युताम् ॥१५॥

पञ्चमी पक्षोत्थयुक्ता पठ्या युक्ताञ्च पञ्चमीम् ॥१६॥

प्रथम दिन में हरि के चरणों का पक्षों के द्वारा व्रजन करे द्वितीय दिन में वित्त्व पत्रों के द्वारा जातु भाग का व्रजन करे । नौमरे दिन गण्य वे द्वारा भगवान् श्री नाभि का समर्पण करे ॥१७॥ चतुर्थ दिन में मानवी से निग्न का प्रर्पण करना चाहिए । भूमि में शयन करने वाला श्रोत्रे घोर ऊप से योग्य का प्राशन करे ।

शोभन-शीर—दधि घोर पश्चिम में पश्चगव्य करे । पञ्चम्यो में रात्रि को करे । इस प्रकार से करने पर व्रत करते माला भुक्ति एवं मुक्ति दोनों को प्राप्त करने वाला होता है ॥ ११० ॥ दोनों पक्षों में नियम से नित्य ही एकादशी का व्रत करना चाहिए मघों के समूह वाले नरक में निवृत्ति होती है । यह व्रत समस्त पदार्थों का प्रदान करने वाला शीर बिष्णु लोक के प्रदान करने वाला होता है ॥ ११॥ एकादशी—द्वादशी तथा निशान्त में त्रयोदशी करे । जहा पर नित्य ही एकादशी होती है वहाँ पर नाशान् भगवान् हरि सन्निहित रहा करते हैं ॥१२॥ जहाँ पर दशमी घोर एकादशी हो अर्थात् दशमी विद्धा एकादशी हो वहाँ पर समुद्र स्थित रहा करते हैं द्वादशी निधि में पारस्य करना चाहिए ।

सूतक घोर मृतक में करे ॥ १३ ॥ प्रतिपदा में पूर्व मिथ्या चतुर्दशी का उपवास करे । है मुने ! पूर्णमानो में समावस्या में पूर्व मिथ्या करे ॥ १४ ॥ तृतीया

मिश्रा द्वितीया का और तृतीया का उपवास करे । चतुर्थी से मङ्गला का नित्य और इमर युन चतुर्थी का उपवास करे । पञ्ची से समुक्त पञ्चमी और षष्ठी से मुक्त पञ्चमी का उपवास कर ॥१५॥

७७—शिवरात्रि व्रत

शिवरात्रिव्रत वक्ष्ये कथाञ्च सर्ववामदम् ।
 यथा च गौरी भूतेश पृच्छति स्म पर व्रतम् ॥१॥
 माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ।
 तस्या जागरणाद्द्रुद्र पूजितो भुक्तिमुक्तिद ॥२॥
 कामयुक्तो हरिः पूज्यो द्वादश्यामिव केशव ।
 उपोषितः पूजित सन्नरवात्सारयेत्तया ॥३॥
 निपादध्वान्बुध राजा वापी सुन्दरसेनकः ।
 स कुबकुरे समारुक्तो मृगान्हुन्तु वन गत ॥४॥
 मृगादिकमसप्राप्य धुत्पिषामादितो गिरौ ।
 रात्रौ तडागनीरेषु निवृज्जो जाग्रदास्थितः ॥५॥
 तत्रास्ति लिङ्गं सरशब्धरीरश्चाक्षिपत्ततः ।
 पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिङ्गस्यैव न जानत ॥६॥
 तेन घूलिनिरोधाय क्षिप्त नीरञ्च लिङ्गके ।
 शर प्रमादेनैकस्तु प्रच्युत करपल्लवात् ॥७॥
 जानुभ्यामवनीं गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान् ।
 एव स्नानं स्पर्शनञ्च पूजनं जाग्रोऽभवत् ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एव हम शिवरात्रि के व्रत के विषय में वर्णन करते हैं । उसकी कथा भी कहते हैं । यह व्रत समस्त कामों के प्रदान करने वाला है । भगवती गौरी ने इन परम व्रत के विषय में भूतेश भगवान् से पूछा था ॥१॥ ईश्वर ने कहा—माघ और फाल्गुन मासों के मध्य में कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में होना है । उस चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करके भगवन् की पूजा करने पर रश्मिदेव परम प्रसन्न होते हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों का

प्रदान किया करते हैं ॥२॥ काम मुक्त केवल श्री हरि द्वादशी की भाँति पूजा के योग्य होते हैं। उगोपिन होकर मानवों के हाथ पूजित हरि नरक से तारण किया करते हैं ॥३॥ अम्बुद ने निपाद राजा पापी और सुन्दर सेना वाला था। वह बूढ़ों में युक्त होकर मृगों का हनन करने के लिये वन में गया था ॥४॥ उसे वहाँ वन में मृग श्राद्ध का जोई भी निकास नहीं मिला तो वह भूत और तपाम से घेरित होकर पर्वत में रात्रि के समय में तावाह के किनारे पर विजुञ्ज से जागरण करता हुआ ही सिद्ध रहा था ॥५॥ वहाँ पर एक मित्र की तिग भूति थी। वहाँ पर सरीर की रक्षा करना क्षिप्त होगया था। मित्र का ज्ञान न करते हुए ही अस्तव पर पते गिर गये थे ॥६॥ उसने धूलि के हटाने के लिये मित्र पर दत्त दान दिया था। प्रमाद के कारण ही उसके हाथ से एक धार ब्युत होगया। उसने पुटनी के वन भूमि पर स्थित होकर मित्र का तपों करके उसे ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार स स्नान-स्पर्शन-पूजन और उत्तका जागरण होगया ॥७॥

प्रातर्गृहागतो भाव्यादिताम्र भुक्तवान्त च ।
काले मृती यममर्तः प्राशब्दं ध्वा तु नीवने ॥८॥
तदा मम गणोष्ठं दे जित्वा मुक्तीमुत्त स च ।
कुक्कुरेण सहैवाभूद् गणो मत्पाश्वंगात्मज ॥९॥
एवमज्ञानत पुण्य ज्ञानात्पुण्यमयाख्यम् ।
नायोदस्या दिव पूज्य कुर्यात्तु नियम व्रती ॥१०॥
प्रातर्देव चतुर्दस्या जागरिष्याम्यह निनि ।
पूजा दान तपो होम करिष्याम्यात्मशक्तित ॥११॥
चतुर्दस्या निराहारो भूत्वा सम्भो परेऽहनि ।
भोक्ष्येऽह भुक्तिमुक्त्यर्थं शरण मे भवेश्वर ॥१२॥
पञ्चगव्यामृतं स्नाप्य घन्तकाले मुक्तं श्रित ।
ॐ नमो नमः शिवाय गन्धार्घ्यः पूजयेद्धरम् ॥१३॥
जब प्रातःकाल हुआ तो वह बहाँ से पर जा गया था और भायों के द्वारा दिया हुआ घद उसने खाया था। जब उसके मृत्यु का समय आया तो

यमदूतों के द्वारा पाशों में बाँध कर यह ले जाया गया था ॥६॥ तब हे पार्वति ! मेरे गणों ने मार्ग में ही यम के दूतों में गुड़ चरके उन्हें परास्त कर दिया था और उस निषाद राजा को यमदूतों में मुक्त कर दिया था । यह फिर अपने कुत्तों के साथ ही भवँदा मेरे ही पाग में निवास करने वाला परम गुढ़ गण होगया था ॥ १० ॥ इस प्रकार से अज्ञान में ब्रिये हुए पुण्य का ऐसा अद्भुत पुण्य होता है और यदि ज्ञान पूर्वक इस चतुर्दशी का व्रत एवं पूजन तथा जागरण करे तो उसका तो प्रत्यक्ष पुण्य होना है । त्रयोदशी के दिन भगवान् शिव का पूजन करने धनी को नियम ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ धनी को भगवान् शिव से प्रार्थना करनी चाहिए—हे देव ! मैं चतुर्दशी में रात्रि के समय में जागरण करूँगा—यह प्रार्थना प्रातःकाल में चतुर्दशी के दिन करे । और यह भी निवेदन करे कि मैं धनी शक्ति के अनुसार पूजा—दान—तप और होम भी करूँगा ॥१२॥ चतुर्दशी के दिन त्रिगुहार गढ़ना और हे शम्भो ! मैं फिर दूसरे दिन भोजन करूँगा । हे भवेच्छर ! भुक्ति और मुक्ति को प्राप्ति के लिये आप मेरे कारण (रक्षक) होवें ॥ १३ ॥ पञ्चगव्य और पञ्चमृत में स्नान कराने पर अन्तर्धान में गुरु का आश्रय ग्रहण करे । “ॐ नमो नमः शिवाय” —इस मन्त्र से गन्धाक्षतादि पूजोपचारों के द्वारा हर का पूजन करना चाहिए ॥१४॥

निततण्डुलश्रीहीश्च जुष्टयात्सधृत चरुम् ।

हृत्वा पूष्णिहितिं दत्त्वा शृणुयाद् भीतसकथाम् ॥१५॥

अदं रात्रे त्रियामं च चतुर्थं च पुनर्यजेत् ।

मूलमन्य तथा जप्त्वा प्रसाते तु समापयेत् ॥१६॥

अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयाचितम् ।

तमस्व जगता नाय त्रैलोक्याधिपते हर ॥१७॥

यन्मयाद्य व्रत पुण्य यद्गुदस्य निवेदितम् ।

त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम् ॥१८॥

प्रगप्रो भव मे श्रीमन्गृह् प्रणि च गम्यताम् ।

त्वदार्वाकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशय ॥

बीजयेद्धृषाननिहाश्च चम्पश्चत्रादिव ददेत् ॥१९॥

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक ।

यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयता तेन मे प्रभु ॥२०॥

इति समाप्य च व्रती कुम्भ्याद् द्वादशवापिकम् ।

कीर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शैव पुर व्रजेत् ॥२१॥

द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुम्भ्यादिह जागरम् ।

व्रती द्वादश सभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२॥

तिल-तण्डुल—ब्रीहि को पुत के सहित चर बनाकर हवन करे और
पूजाहति देकर गीत तथा कथा का श्रवण करे ॥ १५ ॥ अर्थ शत्रु में—तीन
प्रहर समाप्त होने पर और चतुर्थ प्रहर में फिर उस महारात्रि में पूजन करना
चाहिए । मूल मन्त्र का जाप करता रहे और प्रातःकाल में उसे समाप्त करना
चाहिए ॥१६॥ शिव से प्रार्थना करे—हे देव ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह
व्रत बिना किसी विघ्न बाधा के सम्पन्न किया है । हे समस्त जगत् के स्वामिन् !
आप ही इन त्रिलोकी के भविष्यति हैं हे हर ! मेरी श्रुष्टियों की क्षमा कर
दीजिए ॥१७॥ हे देव ! मैंने जो पात्र यह पुण्य कार्य किया है और जो कुछ
भी मैंने भगवान् रुद्र को समर्पित किया है । यह सभी कुछ आपकी ही कृपा से
मैंने साध्य समाप्त किया है ॥१८॥ हे श्रीमन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये और
यह आप गृह के प्रति गमन करिए । आपके दर्शन मात्र से ही मैं परम पवित्र
होगया हूँ—इसमें सन्देह भी नश्वर नहीं है । इसके पश्चात् जो शिव के ध्यान
में एक निष्ठ हों उनको भोजन करावे और वस्त्र एवं छत्र आदि का दान करे
॥१९॥ हे देवों के भी आदि देव ! आप भूतों के ईश हैं और लोको के ऊपर
अनुग्रह करने वाले हैं । मैंने जो कुछ भी यज्ञ से समर्पित किया है । उससे प्रभु
आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥ २० ॥ इस प्रकार से इसे समाप्त करे और व्रती को
चाहिए कि इस व्रत की बराबर निरन्तर बारह वर्ष तक करे । इसका यह फल
होगा है कि इस समार में अनुल कीर्त्ति-श्री-पुत्र और राज्य-वैभव प्राप्त करके
अन्त समय में शिव के पुर में वह गमन किया करता है ॥ २१ ॥ यह बारहों
मासों में जागरण करे । व्रत करने वाला पुरष चाहे ही भोजन कराकर दीप-
दान करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥२२॥

७८—एकादशी माहात्म्य

माग्धाना चक्रवर्त्तानीदुषोष्पैर्वादशी नृपः ।
 एकादश्या न भुञ्जीत पक्षयोरनयोरपि ॥१॥
 दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्व्या समुपोषिता ।
 तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२॥
 दशम्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
 बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ॥३॥
 द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।
 एकादशी कलापि स्पादुषोष्या द्वादशी तथा ॥४॥
 एकादशी द्वादशी च विद्येयेषु त्रयोदशी ।
 त्रिमिश्रा सा त्रिपिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा ॥५॥
 एकादशामुषोष्पैव द्वादशीमथवा द्विज ।
 त्रिमिश्राञ्चैव कुर्वीत न दशम्या युता ववचित् ॥६॥
 रात्रौ जागरणं कुर्वन्पुण्यं श्रवणं नृपः ।
 गदाधरं पूजयन् उपोष्यैकादशीद्वयम् ॥
 स्वमाङ्गदा यमो मोक्षमन्यं चैकादशीद्वयम् ॥७॥

पितामह ने कहा—माग्धाना नाम वाला एक चक्रवर्ती राजा था । वह
 एकादशी के दिन उपवास किया करता था । दोनों पक्षों की एकादशी के दिन
 भोजन नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥ गान्धारी ने दशमी से मिश्रित एकादशी का
 उपवास किया था । इसका परिणाम यह हुआ कि उसके पुत्र नष्ट हो गये थे ।
 इत्यनियं ऐसी एकादशी का वर्जन कर देना चाहिए ॥२॥ दशमी और एकादशी
 जहाँ पर होती है वहाँ पर हरि सन्निहित होते हैं । जब बहुत से वनों के
 विरोध से सन्देह हो तो वहाँ पर द्वादशी का ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि
 द्वादशी के दिन ही उपवास करे और त्रयोदशी में पारण करे क्योंकि वन की
 खोले । एकादशी ही एक कला भी हो तो द्वादशी का व्रत करे ॥३॥ एका
 दशी—द्वादशी और विद्येय रूप से त्रयोदशी इस प्रकार से त्रिमिश्रा त्रिपि र्ग्रा
 ही हो तो उनका ग्रहण करना चाहिए । यह सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाली

परम शुभ तिथि हुआ करती है ॥५॥ हे द्विज । अथवा एकादशी का उपवास करे या द्वादशी का करे । निम्नादिमिश्रित (एकादशी-द्वादशी और त्रयोदशी) तिथि का उपवास करे किन्तु द्वादशी से युक्त एकादशी का उपवास कभी भी नहीं करना चाहिए ॥६॥ एकादशी के उपवास को कर रात्रि में जागरण करे और पुराणों का अध्ययन करे । इस प्रकार से भगवान् गदाधर का पूजन करते हुए मास के दोनों पक्षों की एकादशी का उपवास करना चाहिए ॥७॥

७६—भुक्ति-मुक्तिकर पूजा विधि

येनार्चनेन वं लोको जगाम परमा गतिम् ।
तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥१॥
सामान्यमण्डलं न्यस्य घातारं द्वारदेशतः ।
विधातारं तथा गङ्गा यमुनाञ्च महानदीम् ॥२॥
द्वारश्रियञ्च दण्डञ्च प्रचण्डं वास्तुपुरुषम् ।
मध्ये बाधारशक्तिञ्च कूर्मंश्चान्तमर्चयेत् ॥३॥
भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्येश्वर्यमेव च ।
अधर्मदोश्च चतुरं कन्दनालञ्च पङ्कजम् ॥४॥
कर्णिका केशरं सत्त्व राजसन्तामसं गुणम् ।
सूर्यादिमण्डलान्येव विमलाद्याश्च शक्तयः ॥५॥
दुर्गा गणं मङ्गस्वतीं क्षेत्रपालञ्च कोणके ।
आसनं मूर्तिमभ्यर्च्य वासुदेवं धनं स्मरम् ॥६॥
अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथाचरेत् ।
हृदयादीनि चाङ्गानि शङ्खादीन्यायुधानि च ॥७॥
श्रियं पुष्टिञ्च गरुडं गुरुं परगुरुं यजेत् ।
इन्द्रादीन्दिश्वघोनागमूर्ध्वं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥८॥
विश्वक्सेनमथेशान्यां प्रोक्तं पूजनमागमे ।
सकृदभ्यर्चितो देवो येनैव विधिपूर्वकम् ॥९॥
न तस्य सम्भवो भूयः ससारेऽस्मिन्महात्मनः ।
पुण्डरीकाय नमूज्य ब्रह्माणञ्च गदाधरम् ॥१०॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह लोक जिस भर्चन के द्वारा परम गति को प्राप्त हुआ था । अब मैं उसी भर्चन के विषय में बतलाता हूँ । यह अर्चन परम भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ सामान्य मण्डल का न्यास करके द्वार देश पर धाता-विधाता-मया और महा नदी यमुना का अर्चन करे द्वार धी-दाद-प्रचण्ड-शस्तु पुरुष-मध्य में आचार क्षति-कूर्म और प्रवन्त की भर्चना करे ॥ २।३ ॥ भूमि-धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य-चार भधर्म आदि-कन्दनाय-पद्मज-वणिका-वशर-सरस्व-राजस एक तामस मुष्ट-सूर्यादि मण्डल-विमला आदि शक्तिर्षा-दुर्गा-गण और सरस्वती का भर्चन करे । कोण में दीवपाय-पातन-मूर्ति का अभ्यर्चन करके वासुदेव-बल-स्मर-महाद् आत्मा वाले गरिष्ठ और इसके अनन्तर नारायण का भर्चन करना चाहिए । हृष्टा आदि प्रणो का तथा सद्म आदि आयुषो का यजन करे ॥४५॥ ॥६॥७॥ श्री-पुष्टि-गरुड-गुरु और पर पुर की भर्चना करे । दिशाओं में इन्द्र आदि दिव्यालो का-नीचे के भाग में नाग का और ऊपर भाग में ब्रह्मा का भर्चन करे ॥ ८ ॥ ऐतानी दिशा में विश्वक्सेन का पूजन सागम में धताया गया है । जिसके द्वारा विधि पूर्वक एक बार समभ्यर्चित देव इस प्रकार से दिये गये हो उस पूजा करने वाले महात्मा का जन्म इस सगर में नहीं होता है । पुण्डरीक के लिये ब्रह्मा का और वदामार का पूजन करना चाहिए ॥९॥१०॥

८०—एकादशी व्रत विधान

माघमासे शुक्लपक्षे सूर्योर्ध्वेण युता पुरा ।
 एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता ॥१॥
 आश्रय्यन्तु व्रत कृत्वा पितृणामनृणोऽभवत् ।
 भीमद्वादशी विरयाता प्राणिना पुण्यवद्धिनी ॥२॥
 नक्षत्रेण विनाशेया अहहत्वादि नाशयेत् ।
 विनिहन्ति महाबाध पुनृपो विषय यथा ॥३॥
 पुपुत्रस्तु कुल गदस्तु भार्या च पति यथा ।
 अधर्मश्च यथा धर्मः पुमन्त्री च यथा नृपम् ॥४॥

अज्ञानेन यथा ज्ञानं शोचताशोचता यथा ।

अथद्वया यथा श्राद्धं सत्यञ्चैवानृतैर्यथा ॥१॥

हिम यथोष्णमाहन्त्यादनर्थं चार्थसञ्चयः ।

यथा प्रकीर्तनादान तपो वै विस्मयाद्यथा ॥६॥

अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा ।

मोघेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात् ॥७॥

ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम् ।

सर्वेषु पापनाशाय प्रोक्तेषु द्वादशी शुभा ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भाय मात म धुल पक्ष में सूर्य श्रुत (नक्षत्र) से ममत्ति त एकादशी पहिले समय में एक भीम ने समुद्रोपेत की थी । अर्थात् एक एकादशी का उपवास किया था ॥१॥ बड़ा ही आश्चर्य है कि इस व्रत को बढ़ करके अपने मित्रगण के श्रुत से छुटकारा पा गया था । तभी से वह भीम द्वादशी- इस नाम से सवार में प्रसिद्ध हो गई है । यह प्राणिमो के पुण्य की वृद्धि करने वाली है ॥२॥ नक्षत्र के बिना भी यह ब्रह्म हत्या आदि महापातकों का नाश कर दिया करती है । जैसे कोई क्रुद्धित राजा से देश का नाश हो जाता है वैसे ही यह महा पापों का नाश कर दिया करती है ॥३॥ कुपुष जिस तरह कुल का नाश करता है और कुमारों पति का नाश कर देने वाली होती है तथा अपर्म पर्म का और कुम्भी नृप का नाश कर दिया करते हैं ॥४॥ अज्ञान से जंमे ज्ञान का नाश होता है-शोचता अनुविता की नष्ट कर देती है—अथवा से श्राद्ध का विनाश होता है और मिष्ट्या से सत्य नष्ट हो जाया करता है ॥५॥ हिम उष्णता का नाशक होता है—मर्त्य का सञ्चय अनर्थता का नाशक है—प्रकीर्तन करने से दान का नाश हो जाता है और विस्मय से तप नष्ट हो जाया करता है ॥६॥ अधिष्ठा में पुत्र का नाश होता है । दूर समन से भी का नाश होता है—शोय में शान्ति का भग्न हो जाता है—वृद्धि न करने से वित्त का नाश हो जाता है । ७॥ ज्ञान में जैसे विद्या और निष्काम से जैसे फल नष्ट होता है वैसे ही यह शुभ द्वादशी पापों के नाश करने के लिये बहो गई है ॥८॥

न चापि नैमिष क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं प्रभासकम् ।
 कालिन्दी यमुना गङ्गा न चैव न सरस्वती ॥८
 न चैव सर्वतोर्थानि एकादश्या समो न हि ।
 न दानं न जपो होमो न चान्यं सुकृतं क्वचित् ॥९
 एकत पृथिवीदानमेवतो हरिवासरः ।
 ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा ॥१०
 अस्मिन्वराहपुरुषं कृत्वा देवन्तु हाटकम् ।
 घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने ॥११
 सर्वबीजभृतोविन्वा सितवस्त्रावगुण्ठिते ।
 सहिरण्यप्रदोपाद्यं कृत्वा पूजां प्रयत्नतः ॥१२

नैमिषारण्य का परम पावन क्षेत्र—कुरुक्षेत्र वा पवित्र धाम—प्रभास
 क्षेत्र—कालिन्दी—यमुना—गङ्गा और सरस्वती जैसे अत्यन्त पावन तीर्थ एवं
 अन्य भी समस्त महात् तीर्थ मिलकर भी इस एकादशी के समान नहीं हैं । इस
 एकादशी को ममता रखने वाले जप—दान—जप—होम और अन्य कोई भी कहीं
 सुकृत ऐसा नहीं है ॥८॥१०॥११॥ एक घोर तो इस सम्पूर्ण मही मण्डल के दान
 का पुण्य—कन और एक घोर हरिवासा है । इनसे भी महात् पुण्य वाली यह
 परम श्रेष्ठ एक इकादशी होती है ॥१२॥ इस घट के ऊपर नवीन तास के पात्र
 में वराह पुरुष के की स्वर्ण की मूर्ति बना कर रखते ॥१३॥ समस्त बीजों के
 धारण करने वाले और नित वस्त्र से आवगुण्ठित करे । हिरण्य प्रदोप आदि के
 सहित प्रयत्न पूर्वक पूजा करे ॥१४॥

वराहाय नमः पादौ क्रोडावृत्ति नमः कटिम् ।
 नाभिं गभीरघोषाय उरु श्रीवत्सधारिणे ॥१४
 बाहु सहस्रशिरसे श्रीवा सर्वेश्वराय च ।
 मुखं सर्वात्मने पूज्यं ललाटं प्रभवाय च ॥१५
 केशाः शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः ।
 विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरणं निशि ॥१६

श्रुत्वा पुराण देवस्य माहात्म्यप्रतिपादकम् ।
प्रातर्विप्राय दत्त्वा च याचकाय शुभाय तत् ॥१७॥
कनककोडसहित सन्निवेश परिच्यदम् ।

पश्चात्त पारण कुय्यन्नातिवृत्त सकृद्व्रती ॥१८॥
एव कृत्वा नरो विद्यान् भूय स्ननपो भवेत् ।
उपोष्यकादगी पृष्ठा मुन्यते वै शृणयथात् ॥
मनोऽभिलषिणावाप्ति कृत्वा सर्वव्रतादिकम् ॥१९॥

“बराहाय नमः” — इनमें चमला का पूजन कर — कोडाकृति नमः —
इसमें कटि का यजन करे — मरीर घाषाय नमः — इस नामिका — श्री वरस
धारिणे नमः — इनमें वर का यजन कर ॥१८॥ ‘मष्टल शिखे मम’ — इससे बाहु
को — ‘मर्वेश्वराय नमः’ — इस मन्त्र में श्रीवा की — सर्वशिव नमः — इस मन्त्र से
मुख को — प्रभवाय नमः — इसमें ललाट की पूजा करनी चाहिये ॥ १९ ॥
‘शतमपूषाय नमः’ — इस मन्त्र में चक्रो देव के चक्रों का यजन करे । इस प्रकार
से विधि पूर्वक प्रार्थना करके नमि में जागरण करे ॥ १९ ॥ देव के माहात्म्य
का प्रतिपादन करन वाले पुष्पा का श्रवण करे । प्रातः काल के होन पर किसी
याचना करने वाले परम शुभ विप्र क विवे कनक की कोड के सहित परिच्यद
पुक्त उसकी सन्निवेशित कर दात करे । इसमें पीछे पारण करे किन्तु मष्टर व्रत
करने वाला जयन्त तृति पूर्वक पारण नहीं करे ॥१८॥१९॥ इस प्रकार में इस
व्रत को गाऊ सम्पन्न करने वाला पुष्प पुनः शरीर को घासण करन वला नहीं
होना है । इन परम पुण्यमयी एकादशी का उपवास करके मनुष्य तीनों ऋणों
में छुटकारा पा जाया करता है । इन मन्त्रों का प्राति की करके मनुष्य समस्त
धर्मनियमों की प्राप्ति पिया करता है ॥१९॥

२१ — विविध व्रत कथन

वनानि व्यास वदामि यस्म्यष्ट, सर्वदो हरि ।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रत लब्ध तपो मतम् ॥१॥
नियमास्तु विनोपा, स्युर्ब्रतावदस्य यमादयः ।
नित्य त्रिपक्षे म्नायादपशायो जितेन्द्रियः ॥२॥

स्त्रोऽशूद्रपतिनाना तु वर्जयेदभिभाषणम् ।
 पविनागि च पञ्चैव जुहुयाच्चैव शक्तिम् ॥३॥
 कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्तर ।
 वेशाना रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥४॥
 कास्य माय मसूरश्च चणक कोरदूपकम् ।
 शाक मधु पराग्नश्च वर्जयेदुपवासवान् ॥५॥
 पुष्पानङ्गारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।
 उपवासेन दुष्येत्, दन्तधावनमञ्जनम् ॥६॥
 दन्तकाष्ठ पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतश्चरेत् ।
 असकृज्जनपानाञ्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ॥
 उपवासं प्रदुष्येत् दिवास्वप्नाक्षयैर्धुनात् ॥७॥

श्री गृह्याजी ने कहा—हे व्यास देव । अब हम उन व्रतों के विषय में
 वर्णन करेंगे जिनका करने से भगवान् हरि पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सभी दुष्ट
 प्रदान किया करते हैं । यह शास्त्रों में बताया हुआ नियम है और यह व्रत एक
 प्रकार का परम तप माना गया है ॥१॥ उन करने के पूरे वर्ष के लिये यमादि
 कुछ विशेष नियम होते हैं । इसमें नित्य ही तीन बार दिन में स्नान कर सप्ता
 वन्दना त्रिकाल किया करे—भूमि में शयन करे और समस्त इन्द्रियों को जेतकर
 अपने वश में करे ॥ २ ॥ स्त्री—शूद्र और पतित रूपों के साथ अभिभाषण नहीं
 करे । पाँचों पवित्रों को अपनी शक्ति के धनुषार हवन करे ॥३॥ सुकृती पुरुष
 को इन सम्पूर्ण कृच्छ्रों का समाचरण करना चाहिए । वेशों की रक्षा के लिये
 द्विगुण व्रत करना चाहिए ॥४॥ उपवास करने वाले पुरुष को कास्य पात्र—माय
 (अदं)—मसूर—चना—कोर दूपर—शाक—मधु—पराया अन्न इन सबका त्याग कर
 देना चाहिए ॥५॥ पुष्प—अलङ्कार—नवीन वस्त्र—धूप—गन्ध—अनुलेपन—दन्त
 धावन और मञ्जन ये समस्त पदार्थ उपवास में दूषित करने वाले हैं ॥ ६ ॥
 दन्तकाष्ठ और पञ्चगव्य बरवें प्रातःकाल में व्रत का चरण करे । बार—बार
 जल—पान करने से और एतवार ताम्बूल के भक्षण करने से—दिन में सोने से

घोर व्रत मँथुन से सपनास दूषित हो जाता करता है । अतः ये सभी काम नहीं करे ॥७॥

क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
देवपूजाग्निहवने सन्तोषास्तेयमेव च ॥८॥

सर्वव्रतेष्वयं धर्मं सामान्यो दशधा स्मृतः ।
नक्षत्रदर्शनान्तकृतमनक्त निशि भोजनम् ॥९॥

गोमूत्रञ्च पल दद्यादद्वाङ्मुञ्चन्तु गोमयम् ।
घोर सप्तपल दद्याद्घ्नश्चैव पलत्रयम् ॥१०॥

घृतमेकपल दद्यात्पलमेक कुशोदकम् ।
गामग्न्या चैव गन्धेति प्राप्यायस्व दधिग्रह ॥

तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकुन्ध्यव्रतं चरेत् ॥११॥
अग्न्याधानं प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च ।
वेदव्रतवृषोत्सर्गबूडाकरणमेखला ॥

माङ्गल्यमभिवेकश्च मलमासे विषर्जयेत् ॥१२॥

क्षमा—सत्य—दया—दान—शौच—इन्द्रियो का निग्रह—देव पूजा—
अग्नि हवन—सन्तोष घोर मस्तेय—इन समस्त व्रतों में सामान्य धर्म दश
प्रकार का होता है । नक्षत्रों के दर्शन से नक्त होता है । रात्रि में अनक्त भोजन
करे ॥८॥ गोमूत्र एक पल देवे घोर घाघा छँगूठा के बराबर गोमय देवे—

सान पल घोर घोर तीन पल दधि देना चाहिए ॥९॥ घृत एक पल—एक पल
कुशोदक देवे । गायत्री से घोर 'गन्ध'—इत्यादि मन्त्र से दधि ग्रह को भाष्यापित
करे । 'तेजोऽसि'—इम मन्त्र से देव का ब्रह्म कुन्ध्य व्रत का चरण करना चाहिए
॥११॥ अग्न्याधान—प्रतिष्ठा—यज्ञ—दान—व्रत—वेद व्रत—वृषोत्सर्ग—बूडाकरण—
मेखला—माङ्गल्य घोर अभिवेक ये कार्य मन्त्रमात्र में बर्जित कर देने चाहिए ॥१२॥

दशदिशंस्य चान्तः स्यात्त्रिषाहोमिन्तु सावनः ।
रविसंक्रमणात्सीरो नाक्षत्रं सप्तविंशतिः ॥१३॥

नीरो मामो विवाहाय यज्ञादो सावनस्त्वितिः ।

८२—दशोद्धरण पंचमी व्रत

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास शृण्वथ ।
 वैश्वानरपद याति त्रिचिन्नतमिद स्मृतम् ॥
 प्रतिपद्ये वैभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रद ॥१॥
 चैनादौ कार्ग्येर्च्येन ब्रह्मपूजा यथाविधि ।
 गन्धपुष्पाचर्चनेर्दानमर्त्यादिभिर्मनोरमैः ॥
 सहोमैः पूजयेद्देव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२॥
 कार्तिके तु सितेऽष्टम्या पुष्पहारेण वत्सरम् ।
 पुष्पादिदाता रूपेभू रूपभागी भवेन्नर ॥३॥
 कृष्णपक्षे तृतीयाया श्रावणे श्रीधर श्रिया ।
 व्रतो सबस्त्रा शय्याश्च कृत दद्याद् द्विजानये ॥४॥
 शय्या दत्त्वा प्रार्थयेच्च श्रीधराय नम श्रिये ।
 उमा शिव हृताशश्च तृतीयायाश्च पूजयेत् ॥५॥
 हविर्गमन्न नैवेद्य देय मदनक तथा ।
 चैत्रादौ फलमाप्नोति उमया मे प्रभाषितम् ॥६॥
 फाल्गुनादितृतीयाया लवण यस्तु वर्चयेत् ।
 समाप्ते शयन दद्याद् गृहखोपम्करान्विनम् ॥७॥

श्री ब्रह्मजी ने कहा—हे व्यास देव । अब मैं प्रतिपदा आदि के व्रतों को बतलाता हूँ । तुम इनका श्रवण करो । यह त्रिचिन्न इन नाम से कहा गया है । इसके करने से वैश्वानर के पद की प्राप्ति होता है । प्रतिपदा तिथि में एक वक्त जपान करन वाला होवे । व्रत के समाप्त होने पर कपिला जी का शान करने ॥१॥ चैत्र आदि मास में विधि पूर्वक ब्रह्म पूजा करायें । गन्ध—पुष्प आदि के द्वारा अर्चना से—दान में—परम सुन्दर मातृयादि में और होम के द्वारा देव का यजन करे । इससे मनुष्य अपने समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ॥२॥ कार्तिक मास में निन पक्ष में अष्टमी तिथि के दिन पुष्पों के द्वार से यजन करे और वामर पर्यन्त पुष्प आदि का दान करने वाला पुष्प रूप-लावण्य की

इच्छा रखने वाला मनुष्य रूप को प्राप्त किया क ता है ॥ ३ ॥ वृष्ण पक्ष में
 श्रावण मास की तृताया म श्री से युक्त नगवान् श्रीधर का घचन करे और
 व्रती को वस्त्रों से समन्वित शय्या तथा फल द्राह्मण को दान देवे ॥४॥ शय्या
 का दान करके प्रायना करे—श्रीधर श्री के निम्ने नमस्कार है । और तृतीया में
 उमा—शिव और हुताग की पूजा करना चाहिए ॥५॥ चैत्रादि म हविष्य अन्न
 नैवेद्य और मदनक का दान करना चाहिए । इसका करन वाला फल की प्राप्ति
 करता है । यह उमा में मेरा प्रभावित है । ६॥ फाल्गुन से मादि लेकर तृतीया
 क अन्त तक जो लवण को वज्रित कर देता है और इस दान की समाप्ति होने
 पर गम्या का दान करे तथा समस्त सामान में समवित गृह का दान करे ॥७॥

सपूज्य विप्रमिधुन भवानि प्रीयतामिति ।

गौरी लाके वसन्तित्य सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥८॥

गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा वान्ति सरस्वती ।

मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मी शिवा नारायणी ब्रमात् ॥

मागतृतीयामारभ्य अविद्योगादि चाप्नुयात् ॥९॥

चतुर्थ्यां सितमाघादौ निराहारो व्रतान्वित ।

दत्त्वा तिलास्तु विप्राय स्वयं भुङ्क्ते तितादोकम् ॥

वपद्वयं समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात् ॥१०॥

ग स्वाहा भूलमन्त्रोज्य प्रणवेन समन्वित ।

ग्लौ ग्ला हृदये गा गौ गू हू ह्री ह्री शिर शिला ॥

गू वर्मं गाञ्च गौ नेत्रं गाञ्च आवाहनादिपु ॥११॥

आगच्छाल्काय गन्धोत्क पुष्पालवधूपकालव ।

दीपाल्काय महोत्वाय वलिश्चाय विसर्जनम् ॥१२॥

सिद्धाल्काय च गायत्री न्यासोऽङ्गुष्ठादिरीरित ।

ॐ महाकर्णाय विघ्ने वक्त्रुण्डाय

धोमहि तन्नो दन्तो प्रचोदयात् ॥१३॥

पञ्चयत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा ।

गणाय गणपतये स्वाहा कृष्णाण्डकाय च ॥

अमोघोत्कार्यकदन्ताय त्रिपुरान्तकटपिणो ॥१४

विप्र के बोटे का भती भाति पूजन कर प्रायना करे—दे भवानि !
भाप प्रसन्न होइये । इससे गोरी के नीक में नित्य ही बह निवास किया करता
है और यह उत्तम सोभाग्य के करने वाला होता है ॥१॥ गोरी—काली—उमा—

मदा—दुर्गा—कान्ति—परस्वती—मङ्गला—वैष्णवी—तक्षनी—शिवा और नारायणी—
इनका क्रम से प्रचन करे । मार्ग शीर्ष की तृतीया से इसका आरम्भ करे ।
इससे अवियोग आदि की प्राप्ति करना है ॥६॥ माषादि में नित्य पक्ष में चतुर्विं

तिथि के दिन द्वा से युक्त होकर निराहार रहे । विप्र को तिनो का दान करके
स्वयं वितोदर का भोजन करे । इस व्रत की समाप्ति दो वर्ष में होती है । इस
निविष्ट होकर समाप्त करे ॥१०॥ प्रणव में युक्त 'ग-स्वाहा'—यह इसका मूल

मन्त्र होता है । स्तो—स्ता—इसका हृदय में न्यास करे । गा—गौ—गु—
इसका शिर में न्यास करे । हू—हौ—ह्री—इसका शिखा में न्यास करे । गु—
वर्ण है, गौ और गी नेत्र हैं और गो—यह मावाहन आदि में है ॥११॥ उल्लसित

गणोत्क पुणोत्क ध्रुवोत्क पात्री, दीपोत्क महोत्क के लिये इसके मनस्तर
गणोत्क पुणोत्क ध्रुवोत्क पात्री, दीपोत्क महोत्क के लिये इसके मनस्तर
रति का विसर्जन करे । त्रिदोहक निय पात्री तथा प्रणुयादि ईशित न्यास है ।

१२॥१॥ ये गण तिन होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए । 'गणाय गणपतये—
कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'
१२॥१॥ ये गण तिन होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए । 'गणाय गणपतये—

कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'
१२॥१॥ ये गण तिन होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए । 'गणाय गणपतये—
कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'

कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'
१२॥१॥ ये गण तिन होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए । 'गणाय गणपतये—
कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'

कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'
१२॥१॥ ये गण तिन होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए । 'गणाय गणपतये—
कत्र यह है—ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्र तुण्डाय क्षीरहि तयो दन्तो प्रबोध्य स्'

यजेच्छुक्लचतुर्थ्या य खण्डलद्भुतमोदकैः ।
 विघ्नाचनन सर्वाब्दे कामान् सोभाग्यमाप्नुयात् ॥
 पुत्रादिक मदनकर्मदनारया चतुर्थ्यपि ॥१८
 ॐ गणपतय नमः चतुर्थ्यन्त यजेद् गणम् ।
 मासे तु यस्मिन्कस्मिंश्चिज्जुहुयाद् वा जपेत्स्मरेत् ॥
 सर्वान्कामानवाप्नोति सवविघ्नविनाशनम् ॥१९
 विनायक मूर्तिकाद्य यजेदेभिश्च तामभिः ।
 सोऽपि सद् गतिमाप्नोति स्वगमाद्यसुखानि च ॥२०
 गणपूज्य एकदन्ती वक्तुण्डश्च त्र्यम्बक ।
 नीलपीवा लम्बादरो विकटा विघ्नराजक ॥
 धूम्रवर्णो बालचन्द्रा दशमस्तु विनायक ॥२१
 गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादश वै यजेद् गणम् ।
 पृथक्प्रसन्नस्त मधावी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२२

'ॐ इयम दे त विकरालास्या हवताय वै नमः'—पञ्चदशाय स्वाहा—

इन मन्त्रों से अन्त मुद्रा कर गण में नमन कर । हाथों में ताली बजाकर हाथ
 कर तो सोभाग्य आदि क फल का भागी होता है ॥१५॥ मास शीर्ष मास में
 शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में गण की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से एक
 वर्ष पयन्त करे तो विद्या—श्री—कीर्ति—प्राप्त और पुत्र सम्पत्ति को मनुष्य
 प्राप्त किया करता है ॥ १६ ॥ सोमवार व दिन चतुर्थी तिथि में उपवास करके
 गण का भजन करे । जन—हवन—स्मरण नित्य करता हुआ पुण्य विना किसी
 विघ्न—बाधा के स्वर्ग को प्राप्ति करता है ॥ १७ ॥ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के
 दिन यजन करना चाहिए और वह खंड व सङ्घ तथा मोदकों से करे । विघ्ना-
 चनन से मनुष्य समस्त कामों को और सोभाग्य को प्राप्त करता है । मदनको से
 यजन करे तो पुत्र आदि को प्राप्त करता है । यतएव इस चतुर्थी का नाम मद-
 नारया है ॥ १८ ॥ ॐ गणपतय नमः —इस मन्त्र से चतुर्थ्यन्त गण का यजन
 करे । जिस किसी भी मास में हवन करे—जप करे तथा इसका स्मरण करे ।
 ऐसा करने से सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं के फल प्राप्त होत हैं और सब विघ्नों का

नाश हो जाता है ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण मूर्तियों में भाद्य भगवान् विनायक या इन उक्त भागों के द्वारा यजन करना चाहिए । वह पुरुष भी सद्गति को प्राप्त करता है और स्वर्ग-निवास के समस्त सुखों का उपभोग करता है तथा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । २०॥ वे दश नाम ये हैं—गणों के परम पूज्य—एकदन्ती—वक्रतुण्ड—शम्भुक—नील प्रीव—लम्बोदर—विकर—विष्णु रावक—भूभ्र बर्ण—भास चन्द्र और दशगौ नाम इनका विनायक होता है । गणपति—हस्ति मुख ये दो नाम और हैं । इनसे द्वादश गण का यजन करे । चाहें पृथक्-पृथक् इनका यजन करे या समस्तों का एक साथ ही पूजन करे तो मेघावी पुरुष समस्त भभीष्ट काम-चाहों की प्राप्ति विधा करता है ॥ २१॥ २२॥

थावरो चाश्रिते भाद्रे पञ्चम्या कार्तिके शुभे ।
वामुक्लिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः ॥ २३ ॥
ऐरावतो घृतराष्ट्रः कर्कोटकघनजयो ।
घृतादयः स्नापिता ह्येते वामुरारोग्यस्वर्गदा ॥ २४ ॥
यन्त वामुकिं सङ्घं पञ्च कम्बलमेव च ।
कालीयं तक्षकश्चापि विज्ञातं मासि मासि च ।
यजेद्भ्रातृवित्ते नागानघो मुक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥ २५ ॥
द्वारस्योभयतो लेख्या थावरो तु सिते यजेत् ।
पञ्चम्या पूजयेन्नागाननन्ताद्यान्महोरगान् ॥ २६ ॥
क्षीरं सपित्रं नैवेद्यं देयं सर्वविपापहम् ।
नागा बभयहस्ताश्च दष्टोद्धरणपञ्चमी ॥ २७ ॥

थावण मास में—प्राश्रित की महीने में—भादों में या शुभ कार्तिक मास में पञ्चमी तिथि के दिन वामुकि—तक्षक—कालीय—मणि भद्रक—ऐरावत घृतराष्ट्र—कर्कोटक और पनज्यय इनको घृत घादि से स्नापित करके यजन करे तो वामु—भारोग्य और स्वर्ग के प्रदान करने वाले दृष्टा करते हैं ॥ २३॥ २४॥ यन्त—वामुकि—सङ्घ—पञ्च—कम्बल—कर्कोटर—घृतराष्ट्र—सङ्घ—कालीय—तक्षक और पिपित नाग का मादपद के सित पक्ष में और प्रत्येक मास—मास में यजन

करे तो घाठ नागों का मोचन कर मनुष्य दिवलोक का गमन करता है ॥ २५॥२६ ॥ गृह के द्वार के दोनों ओर इनका प्रतिस्नान करे और यावत् मास के शुक्ल पक्ष में यजन करे । अनन्त आदि नागों तथा महान् उरगों का पञ्चमी तिथि में पूजन करना चाहिए ॥ २७॥ समस्त प्रकार के विषों के अपहरण करने वाले क्षीर—घृत ओर नैवेद्य का समर्पण करे । समस्त नाग अभय हस्त वाले होते हैं । यह दष्ट किये हुओं के उद्धरण करने वाली पञ्चमी होती है ॥ २८॥

८३—सप्तमी आदि के व्रत

एव भाद्रपदे मासि कार्तिकेयं प्रपूजयेत् ।
 स्नानदानादिक सर्वमस्यामक्षय्यमुच्यते ॥
 सप्तम्या प्राशयेच्चापि भोज्य विप्रान् रविं यजेत् ॥१॥
 खलोत्कापमृतस्व प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा ।
 अष्टम्या पारण कुर्यान्मिरिच प्राश्य स्वर्गभाक् ॥२॥
 सप्तम्या नियतः स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम् ।
 दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति ॥३॥
 खजूरं नारिकेलं वा प्राशयेन्मातुलुङ्गकम् ।
 सर्वं भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः ॥४॥
 सपूज्य देव सप्तम्या पापसेनाय भोजयेत् ।
 विप्राश्च दक्षिणा दत्त्वा स्वयञ्चाय पयः पिबेत् ॥५॥
 भक्ष्य चांक्ष्य तथा लेह्यं ओदनेति प्रकीर्तितम् ।
 धनपुत्रादिकामस्तु त्यजेदेतदनोदन ॥६॥
 वाय्वाशी विजयेच्छुश्च कुर्याद्विजयसप्तमीम् ।
 अद्यादकंश्च कामेच्छुरूपवासेत कामदम् ॥७॥
 गोधूममापयवपट्टिकास्यपात्र पापाण्यष्टमधुर्भयुनमद्यमांसम् ।
 जम्बुज्जनाञ्जनतिलाश्च विवर्जयेद्यः ।
 तस्योपित भवति सप्तमु सप्तमीषु ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी प्रकार से भाद्र पद मास में स्वामि कात्तिकेय का पूजन करना चाहिए । स्नान—दान आदि सब इसमें अवश्य हो जाता है । सप्तमी में परमोत्तम भोज्य पदार्थ बाह्यस्थों को खिलावे और रवि का यजन करे ॥१॥ इसके यजन करने का मन्त्र—ॐ खलोत्थायामृतत्व प्रियसङ्गमो नव सदा स्वाहा—यह होता है । फिर श्रष्टमी के दिन पारणा करे अर्थात् सवसात के दान को छोले । मरिच का प्राशन करके स्वर्ण के निषात का फल प्राप्त करता है । इतिपरिच सप्तमी ॥ २ ॥ सप्तमी तिथि में नियत रूप से स्नान करके भगवान् दिवाकर का पूजन करे और इसके अनन्तर भगवान् मार्ताण्ड मुक्त पर प्रसन्न हो यह कहकर विश्व को फल देदे । सजूर अथवा तारियन या मागुलुङ्ग का प्राशन करावे और यह प्रार्थना करे कि मेरे मनस्त काम सभी ओर से सफल होवे ॥३॥ इति फल सप्तमी विधानम् । सप्तमी के दिन देव का भली-भाँति पूजन करके विश्वों को पायस (दही) से भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा समर्पित करे । इसके पश्चात् स्वयं भी पय का पान करे ॥ ५ ॥ मद्य—वोष्य ओर तैल्य ओदन—यह कहा गया है । पन ओर पुन आदि को कामना रखने वाला इसका त्याग कर देवे और मनोदन रहे ॥ ६ ॥ इति मनोदन सप्तमी विधानम् । जो विजय की इच्छा रखने वाला हो वह वायु का घसन करता हुआ विजय सप्तमी की बड़े ओर भक्त का भजन करे । कामेश्वरु कामद का उपवास करे ॥ ७ ॥ कौपुम (गहूँ)—भाप (उदँ)—यव (जौ)—पट्टिक ओर कृषि के पाय—पायाणु पिष्ट मधु—भीमुन—मदिरा—माँस—अन्यज्जन—अज्जन ओर वित्त इन सबका त्याग कर देवे तो उसका उपवास सात सप्तमियों में होता है ॥८॥

८४—रोहिणी श्रष्टमी व्रत

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः ।
 दूर्वा गौरी गणेशश्च फलपुष्पैः शिव यजेत् ॥१॥
 फलब्रह्मादिकरुणैः शम्भवे नमः शिवाय च ।
 त्व दूर्वेऽमृतजन्मासि श्रष्टमी सर्वकामभाक् ॥
 मनग्निपवनमभीयान्मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥२॥

कृष्णाष्टम्याश्च रोहिण्यामद्धं गन्धेऽर्चनं हरे ।
 कार्म्या विद्धापि सप्तम्या हन्ति पापं त्रिजन्मकम् ॥३॥
 उपोषितोऽर्चयेन्मन्त्रं स्तिथिभान्ते च पारणम् ।
 योगाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥४॥
 स्नानमन्त्रः । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये
 यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ।
 अर्चनमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय
 विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥५॥
 दायनमन्त्रः । सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय
 सर्वसम्भवाम गोविन्दाय नमो नमः ।
 स्यण्डिले पूजयेद्देव सचन्द्रा रोहिणीन्तया ॥६॥
 शङ्खे तोय समादाय भपुष्पफलचन्दनम् ।
 जानुभ्यामवती गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की षष्ठमी में उपवास करके दूर्वा-गौरी—गणेश और शिव का फन तथा पुष्पी से यजन करे ॥१॥ फल और मोहि आदि उपकरणी के द्वारा शम्भु के लिये और शिव के लिये नमस्कार है । हे दूर्व ! तुम भगवन् जन्मा हो । यह षष्ठमी समस्त काम-नाशों के फन देने वाली है । जो अग्नि में पक्व न हो उसका अशन करे तो ब्रह्महत्या से भी मोचन हो जाया करता है ॥ २ ॥ इति दूर्वाष्टमी विधानम् । कृष्ण पक्ष की षष्ठमी तिथि में जबकि रोहिणी नक्षत्र हो, अर्ध रात्रि के समय में भगवान् हरि का अर्चन करे । सप्तमी तिथि से विद्धा षष्ठमी तिथि को यजन करे तो तीन जन्मों के पापों का हनन होता है ॥ ३ ॥ उपोषित होकर तिथि तथा नक्षत्र के अन्त में मन्त्रों से अर्चना करनी चाहिए और फिर पारणा करे । योग के लिये—योग पति के लिये और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥४॥ १५॥ स्नान का मन्त्र यह है—“यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञ सम्भवाय गोविन्दाम नमो नमः” । अर्चना का मन्त्र यह है—“विश्वाय विश्वेश्वराय विश्व पतये गोविन्दाय नमो नमः” । दायन का मन्त्र यह है—“सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्वं

सम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः । स्पष्टिडन में देव का पूजन करे तथा चन्द्र सहित रोहिणी का पूजन कर ॥६॥ चन्द्र म जल भरकर पुष्प फन घोर चन्दन रत्नम मिलावे । घुटनों के बल भूमि पर बैठ कर चन्द्रदेव के लिय मर्घ्य निवेदित कर ॥ ७ ॥

क्षीरोदालवसभूत अग्निनेत्रसमुद्भव ।

गृहाणार्घ्यं साक्षाद्देव रोहिण्या सहितो मम ॥८॥

त्रियं च वसुदेवाय नन्दाय च वलाय च ।

यशोदाय तत्ता दद्यादर्थ्य फलसमन्वितम् ॥९॥

अनघ वामन शीरि वैकुण्ठ पुरुषोत्तमम् ।

वासुदेव हृषीकेश माधव मधुसूदनम् ॥१०॥

बराह पुण्डरीकाक्ष नृसिंह दंत्यसूदनम् ।

दामोदर पद्मनाभ केशव गरुडध्वजम् ॥११॥

गोविन्दमन्त्रपुत्र देवमन-तमपराजितम् ।

अघोक्षज जगदीज स्वर्गस्थित्यन्नकारणम् ॥१२॥

अनादिनिधन विष्णु निलोकेश त्रिविक्रमम् ।

नारायण चतुर्वर्हि शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३॥

पीताम्बरधर दिव्य वनमालाविभूषितम् ।

श्रीवत्साङ्क जगद्धाम श्रीपति श्रीवर हरिम् ॥१४॥

य देव देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।

मीमांस्य ब्रह्मणो गुप्यं तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

नामान्येतानि सकीर्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेत्पुनः ॥१५॥

यत्र देव को मर्घ्य समर्पित करने के समय में प्रार्थना करे—हे क्षीर सागर से जन्म ग्रहण करने वाले देव । आपका समुद्रस्व अग्नि मूत्रि के नत्रों से

हृषा है । हे राज के शङ्ख वाले देव । आप रोहिणी अपनी भार्या के सहित मेरे

इस समर्पित मर्घ्य को ग्रहण करें ॥१२॥ इसके अनन्तर श्री के लिये—वसुदेव को—

नन्द को—वनराम को और यथाशक्त के लिए फलों में समर्पित मर्घ्य समर्पित

करना चाहिए ॥१६॥ मघ से रहित—वामन—शीरि—वैकुण्ठ—पुरुषोत्तम—वासुदेव—

हृषीकेश—माधव—मधुसूदन—वराह—पृष्ठरीक के समान नेत्रों वाले—नृसिंह—दैत्य
सूदन—दामोदर—पद्मनाभ—केशव—गरुडध्वज—गोविन्द—अच्युत—प्रबन्तदेव—
अपराजित—अघोषज—जगत् के बीज अर्थात् कारण स्वरूप—इमलोक का भूजन
स्मिति और अन्त करने वाले—आदि और निधन से रहित—तीनों लोकों के ईश—
त्रिविक्रम—विष्णु—नारायण—नार बाहुओं वाले—गङ्गा—चक्र और गदा के
धारण करने वाले—पीत धाम्बर के धारण करने वाले—दिव्य वनमाला से विभू-
षित—श्री वत्स का अष्ट धारण करने वाले—जगत् के धाम—श्री के स्वामी—
श्रीधर—हरि और जिय देव को देवी देवकी ने यमुदेव से समुत्पन्न किया था जो
भोग ब्रह्म की शक्ति के लिये स्थित है उन ब्रह्मरमा के लिये भैरा नमस्कार
है ॥ १० से १५॥

ब्राहि मा सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ॥१६

देवकीनन्दन श्रीश हरे-ससारसागरात् ।

दुर्वृत्तास्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥

सोऽह देवातिदुर्वृत्तब्राहि मा शोकासागरात् ॥१७

पुष्कराक्ष निमग्नोऽह महत्यज्ञानसागरे ।

ब्राहि मा देवदेवेश स्वामृतेऽन्यो न रक्षिता ॥१८

स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१९

शान्तिरस्तु शिवश्चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक् ॥२०

ब्राहि मा देवदेवेश हरे-ससारसागरात् ।

इन उपर्युक्त शुभ भगवत्प्रार्थनों का सकीर्तन करके फिर सुगति प्राप्त करने
के लिये प्रार्थना करे—हे देवकी के नन्दन धाम श्री के स्वामी हैं और समस्त
सासारिक दुःख एवं पापों के हरण करने वाले हैं । हे विष्णो ! जो पापका
एक-एक बार भी स्मरण करण हे धड़ धाहे कैसा भी दूषित प्राचार एवं चरित्र
वाला हो उसको प्रभु इस संसार रूपी सागर से तार दिया करते हैं । हे देव !
मैं भी अत्यन्त दुर्वृत्त अर्थात् दुष्ट चरित्र वाला हूँ । धाम मुझको शोक के सागर
से सुरक्षित करें ॥१६॥१७॥ दो पुष्कर (कमल) के समान नेत्रों वाले ! मैं इस

महात्मा अज्ञान के समुद्र में निमग्न हो रहा है । हे देव ! के ओ देव स्वामिन् ! मेरा प्राण करो । आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है ॥१८॥ भवता जन्म धारण करके ही आप वासुदेव हुए हैं—आप सबदा गो और ब्राह्मणों के हित सम्पादन करने वाले हैं । आप इस सम्पूर्ण जगत् के हित करने वाले हैं । ऐसे गोविन्द कृष्ण आपके लिये बारम्बार प्रणाम है । सर्वत्र प्राप्ति होये—शिव प्रसीद मङ्गल होये और धन तथा विशेष ख्याति और राज्य की प्राप्ति करने वाला होये ॥१९॥

८५—बुधप्रेमी व्रत

नक्ताशी त्वष्टमी यावद्वर्षान्ते चैव धेनुद ।
 पीरन्दरपद याति सद् गतिश्च व्रतेऽच्युत ॥१॥
 पुवताष्टम्या पीगमासे महारुद्रंति साधु वै ।
 मत्प्रीतये व्रतकृते शतमाह्निक फलम् ॥२॥
 यष्टमी बुधवारेण पञ्चयोरुनयोयंदा ।
 भविष्यति तदा तस्या व्रतमेतत्कथा पुरा ॥
 तस्या नियमकर्तारो न स्युः खण्डितसम्पद ॥३॥
 तण्डुलस्पाष्टमुष्टीना वर्णयित्वाऽङ्गुलिद्वयम् ।
 भक्त सद्भक्तिप्रदाम्या भुक्तिकामी हि मामव ॥४॥
 आन्नपत्रपुटे कृत्वा यो भुक्ते कुशचेष्टिते ।
 फलम्बिकाम्लिकोपेत काम्य तस्य फल भवेत् ॥५॥
 बुध पञ्चोपचारेण पूजयित्वा जलागये ।
 शक्तिनो दक्षिणा दद्यात्कर्करी तण्डुलान्विताम् ॥६॥
 बुध बुधायेति बीजं स्यात्स्वाहान्तं कमलादिक ।
 चाणचापधर दयाम दले चाङ्गानि मध्यत ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे अच्युत ! वर्षे सन्त बुधप्रेमी के दिन यज्ञ में धन करे और वर्ष के धन में धेनु का दान करे तो इस व्रत से पुरन्दर (इन्द्र) के पद की प्राप्ति होता है और उस व्रत करने वाले की सद्गति हो जन्मा करती

है ॥१॥ पीप मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में महा रुद्र-इन साधु व्रत को मेरी प्रीति के लिये करे तो सैकड़ों-सहस्रों गुना फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जब दोनों पक्षों में अष्टमी तिथि बुधवार से समुत्त होगी उस समय में उस अष्टमी में यह व्रत होता है । यह प्राचीन क्या है । उस अष्टमी में नियमों के करने वाले कभी भी खण्डित सम्पदा वाले नहीं हुआ करते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती है ॥ ३ ॥ मुक्ति की कामना रखने वाले मनुष्य को माठ मुट्टियों के चाबलों का भक्त (भाव) दो प्रेरणितियों छोड़ते हुए सद्भक्ति और धर्म के साथ आम के पत्तों के पुट में (दोना) में करके कुशा से वेष्टित आसन पर भोजन करना चाहिए । वह वसुधैव कुटुम्बकम् की भाँति ही तो उसका काम्य फल प्राप्त होता है ॥४॥५॥ अलाय में पीप पूजन के प्रमुख उपचारों के द्वारा बुध का पूजन करे और अपने शक्ति के मनुष्य दक्षिणा देवे जोकि तन्मूलों से अन्वित बर्करा हो ॥६॥ कमला जिसके घाट में और स्वाहा जिसके घाट में है ऐसा 'बु' बुधाय'—यह बीज होता है । अथ में बाण और चाप की धारण करने वाला श्याम रूप और दत्तो में अङ्ग होने चाहिए ॥७॥

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् ।
 पुरे पाटलिपुत्रारूपे वीरो नाम द्विजोत्तमः ॥८॥
 रम्भा भार्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः ।
 दुहिता विजयानाम्नी घनपातो वृषोऽभवत् ॥९॥
 गृहीत्वा कौशिकस्तश्च ग्रीष्मे गङ्गा गतोऽरमत् ।
 गोपालकैर्वृषश्चौरं क्रीडन्नपहृतो बलात् ॥१०॥
 गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुःखितः ।
 जलार्यं विजया चागाद् भ्रात्रा साङ्गं च साप्यगात् ॥११॥
 पिपासितो मृशालार्यो आगतोऽप्य सरोवरम् ।
 दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्ययं विस्मयः ॥१२॥
 स तां गत्वा यथाचेष्टन् सानुजोऽहं बुभुक्षितः ।
 स्त्रियोऽन्वन्त्रतं कर्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम् ॥१३॥

पत्यर्थ धनपालार्थ पूजयामास्तुर्वधम् ।
पुटद्वय गृहीत्वाऽन्न वुभुजाने प्रदत्तकम् ॥१४॥

परम पुण्य स्वरूपा बुधाष्टमी की कथा कृतिजनो को श्रवण करनी चाहिए ।
पाटिल पुत्र (पटना) नाम वाले नगर में बीर नाम धारी एक द्विज था ॥८॥
उसकी पत्नी का नाम राम था और उसका कौशिक नाम वाला एक उत्तम पुत्र
था । विजया नाम वाली उसकी पुत्री थी और धनपाल वृष था ॥९॥ कौशिक
उस धनपाल को लेकर शीघ्र में गङ्गा नदी पर चला गया था और वहाँ
क्रीडासक्त हो गया था । वहाँ पर गोपालक चोरो के द्वारा वह वृष बल पूर्वक
अपहरण कर लिया गया था ॥१०॥ वह कौशिक गङ्गा में जो डूब कर क्रीडा कर
रहा था वहाँ से उठकर परम दुःखिन होता हुआ वन में भ्रमण करने लगा था
कन लाने के लिये वहाँ बिजया धागई की धोर भाई के साथ वह भी चली गई
॥११॥ वह ध्याना और मृणालना इच्छुक वह इसके धनन्तर सरोवर पर आ
पया था । वहाँ पर उसने दिव्य (देवी की) स्त्रियों की पूजा-पूजा आदि का दाय-
कर पावत बिसमय किया था । उसने वन स्त्रियों की पास में पहुँच कर कुछ
पत्र की पावना की थी और उनके निवेदन किया था कि मैं अपनी धनुषा के
साथ प्रयास भूला हूँ । उन प्रवृत्त करने वाली स्त्रियों ने उससे कहा था कि
तुम भी इस व्रत को करो । हम तुम्हारी शस्त्रादि देवों ॥ १२॥ १३ ॥ कन्या ने
पति की प्राप्ति के लिये सार कौशिक ने धनपाल वृष को प्राप्त करने के लिये
वृष की पूजा की थी । इसके उपरान्त दो पुट में दिय हुए घस को उन दोनों
ने लाया था ॥१४॥

स्त्रियो गतो च धनदो धनपालमपश्ययाम् ।
धोरदन्त गृहीत्वाय प्रदोषे प्राप्तवान् गृहम् ॥१५॥
वीरश्च दुःखितं नत्वा रात्रौ सुप्तो यथामुग्धम् ।
कन्याश्च युवती हृष्टा वर्त्म देया सुता मया ॥१६॥
यमावेत्यवतीद दुःखात्साचासाद् व्रतसत्कृताम् ।
स्वर्गं गतो च पितरो व्रतं राज्याय कौशिकः ॥१७॥

चक्रैऽयोध्यामहाराज्य दत्त्वा च भगिनी यमे ।
 यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे ॥१८॥
 अपश्यन्मातर स्वा सा पाशयातनया स्थिताम् ।
 अथाद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिद व्रतम् ॥१९॥
 चक्र च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता ।
 व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्गं गत्वावसत्सुखम् ॥२०॥

इसके पश्चात् स्त्रियाँ भीर घनद चले गये । उन दोनों ने घनपाल को वहाँ दबा था । चोरो के द्वारा प्रदत्त घनपाल को लेकर वह प्रदोष के समय में अपने घर में प्राप्त हो गया मा ॥ १५ ॥ परम दुःखित भीर को प्रणाम करके रात्रि में मुख पूर्वक सो गया था । कन्या को योवन की अवस्था में देखकर उसे बड़ी विन्ता उत्पन्न हुई कि मैं इस कन्या को कैसे समर्पित करूँ ॥१६॥ प्राचार से समन्वित इस व्रत के सत्फल से वह दुःख से मम से यह बोला—मेरे माता-पिता दोनों स्वर्गवासी होगये भीर कीतिक ने राज्य की प्राप्ति के लिये व्रत किया मा । अयोध्या के महान् राज्य को देकर भगिनी को यम को दे दिया था । वह यम भी विजया से बोला—अब तुम मेरे पुर में गृहस्थ धर्म पालन करने वाली हो जाओ ॥१७॥१८॥ फिर उस पाशयातनया ने अपनी माता को वहाँ पर अवस्थित देखा था । इसके अनन्तर उस विजया ने विपुक्ति के प्रदान करने वाले इस व्रत का ज्ञान प्राप्त करके बहुत ही उद्वेग किया था । इसके पश्चात् उसने भी इस व्रत को किया था भीर इससे उसकी माता मुक्त हो गई थी । इस व्रत के परम पुण्य के प्रभाव से वह स्वर्ग लोक में पहुँच कर वहाँ सुख पूर्वक निवास करने लगी थी ॥१९॥२०॥

८६—महानयमी व्रत

अशोकवलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसो ।
 चित्रे मासि सिताष्टम्या क ते शोकमवाप्नुयु ॥१॥
 त्वामशोकं हराभीष्टं मधुमाससमुद्भव ।
 पिबामि शोकमन्तसो मामशोकं सदा कुरु ॥२॥

शुक्लाष्टम्यामश्वयुजे उत्तराषाढया युता ।
सा महानवमीत्युक्ता स्नानदानादि वाक्ष्यम् ॥३॥

नवमी केवलता चापि दुर्गाचैव तु पूजयेत् ।
महाव्रतं महापुण्यं शङ्कराद्यैरनुष्ठितम् ॥४॥

अयाचितादि पद्धत्यादौ राजा शत्रुजयाय च ।
जपहोमसमायुक्तं कन्या वा भोजयेत्सदा ॥५॥

दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽयं पूजनादिषु ।
दीर्घाकाराभिर्माभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिका ॥६॥

पङ्क्तिः पदेनैव स्वाहा वपुषादि हृदादिकम् ।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विश्वस्य पूजयेच्छिवाम् ॥७॥

श्री गणेशो मे कहा—चैन भास के शुक्ल पक्ष की प्रथमी तिथि में जबकि
दुर्गेश्वर नक्षत्र हो प्रशोक वृद्ध की भाँट कलिकाशो का जो पूर्ण व्रत दिन पान

किया करते हैं वे कभी भी शोक की प्राप्ति नहीं करते हैं परन्तु उन्हें कभी कोई
गोक होना ही नहीं है ॥ १ ॥ पान करने के समय में यह प्रार्थना करे कि हे

प्रशोक ! आप भगवान् हर के परम प्रप्रेषित हो और आपका उद्भव यशु
मास में होना है । मैं शोक से प्रतीव सज्ज होकर मुन्दारा पान करता हूँ ।

मरण वपुषा मुक्तेशदा शोक से रहित कर दो ॥२॥ इति प्रयोगाष्टमी विधानम्
ब्रह्मानी ने कहा—प्राचीन मास के शुक्ल पक्ष की प्रथमी तिथि में जोकि उत्तरा-

षाढा नक्षत्र से युक्त हो । वह महा नवमी इस नाम से कही गई है । इस दिन में
जो स्नान एवं दान आदि किये जाते हैं वे सब प्रक्षय हो जाते हैं ॥ ३ ॥ यदि

केवल नवमी ही तो भगवती दुर्गा की दश दिन पूजाचर्चा करनी चाहिए । यह
महा व्रत महान् पुण्य प्रद होता है । इसको शङ्कर आदि ने किया है ॥४॥ पक्षी

आदि में अयाचित आदि का ग्रहण करे । राजा को अपने शत्रु पर जय प्राप्त
करने के लिये इसे करना चाहिए । जप-होम से समायुक्त होकर सदा वन्याओं

को भोजन करावे ॥५॥ पूजन आदि कर्मों में 'दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षिणी स्वाहा'—
इस मन्त्र का प्रयोग करे । दीर्घ आकार वाली मानाओं से भी देवियों के मन्त्र
में नमः—इस शब्द का प्रयोग करे । छंद पदों के द्वारा नमः—स्वाहा—वपुषादि

लेकर तथा अगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठा के अन्त तक विन्यास करे और शिवा का पूजन करे ॥६७॥

अष्टम्या नवगेहानि दारुजान्येकमेव वा ।

तस्मिन्देवी प्रकृत्तव्या हैमा वा राजतापि वा ॥८॥

शूले खड्गे पुस्तके वा पटे वा मण्डले यजेत् ।

कपाल खेटक घण्टा दर्पण तर्जनी धनुः ॥९॥

ध्वज डमरुक पाश वामहस्तेषु विभ्रती ।

शक्तिश्च मुद्गर शूल वज्र खड्ग तथाङ्कुशम् ॥१०॥

शर चक्र शलाकाश्च दुर्गामायुधसमुत्ताम् ।

शेषा षोडशहस्ता स्युरञ्जन डमरु विना ॥११॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोष्ठा चण्डनायिका ।

चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ॥१२॥

नवमी चोग्रचण्डा च मध्यस्थाग्निप्रभाकृतिः ।

रोचना अरुणा कृष्णा नीला धूम्रा च शुक्लका ॥

पीता च पाण्डरा प्रोक्ता शालीदेन हरिस्थिता ॥१३॥

पष्टमी तिथि के दिन काप्र के विनिर्दिष्ट नौ गृह तथा एक ही गृह में एक देवी की प्रतिमा का निर्माण करावे वह चाहे सुवर्णमयी हो या चांदी की होवे ॥८॥ शूल-खड्ग-पुस्तक में अथवा पट या मण्डल में उसका यजन करे । वह प्रतिमा कपाल—खेटक—घण्टा—दर्पण—तर्जनी—धनु—ध्वज—डमरु—पाश अपने वाम भाग के हस्तों में धारण करने वाली होवे । शक्ति—मुद्गर—शूल—वज्र—खड्ग तथा अङ्कुश—शर—चक्र—शलाका ये दक्षिण हस्तों में धारण करने वाली समस्त अपने आयुधों से समन्वित दुर्गा का यजनार्चन करना चाहिए । शेष सोलह हस्त अञ्जन और डमरु के विना ही होने चाहिए ॥९॥१०॥११॥ उग्र चण्डा—प्रचण्डा चण्डोष्ठा—चण्डनायिका—चण्डा चण्डवती—चण्डरूपाति चण्डिका और नवमी उग्र चण्डा हो तथा मध्य में स्थित अग्नि की प्रभा जैसी आकृति वाली होवे । रोचना—अरुणा—कृष्णा—नीला—धूम्रा—शुक्लका—पीता और पाण्डरा बही गई हैं जोकि शालीदेन से हरि स्थित होती है ॥१२॥१३॥

माहिषोऽयं सखद्भाषे प्रकचग्रहमुष्टिका ।

जप्त्वा दशाक्षरीं विद्यां निगून्तश्च ततो यजेत् ॥१४॥

लिङ्गस्या पूजयेद्भागि पादुकेऽयं जलेऽपि वा ।

विचित्रा रचयेत्पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ॥१५॥

पञ्चाब्द माहिषं श्रुतं रात्रिशेषश्च घातयेत् ।

विधिवत्कालिकीं नीतिं तदुत्तरधिरादिनाम् ॥१६॥

नैष्ठं त्या पूतनाञ्चैव वायव्या पापराक्षसीम् ।

चण्डिकाञ्च तर्पणान्यामान्नध्याञ्च विदारिकाम् ॥१७॥

भागे में माहिष है और सप्त के सहित उनके बेटे घनो मुट्ठी में ग्रहण करने वाली है । इसकी दश प्रहार वाली विद्या (मन्त्र) का जाप करके इसके पश्चात् उसके विपुल का यजन करना चाहिए ॥ १४ ॥ मयदा निगत्या का पूजन करे, पादुका में मयदा जल में विचित्रा का पूजन करे और प्रहारी में उपवास करना चाहिए ॥१५॥ पाँच वर्ष माल माहिष प्रसन्न करे । रात्रि के क्षेप में साकर दश घात करे । यह विधिपूर्वक कालिकी नीति है । उसके निकले हुए हथिर आदि का नैष्ठंय में और पाप राक्षसी पूजना को वायव्य में तथा चण्डिका को शान्तेशी दिशा में और ऐशानी में विदारिका को करे ॥१६॥१७॥

८७—श्रावणद्वादशी व्रत

श्रावणद्वादशी वश्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।

एकादशी द्वादशी च श्रावणेन च संयुता ॥

विजया सा तिथिः प्रोक्ता हरिपूजादि चाक्षयम् ॥१॥

एकमर्त्तेन नर्त्तेन तर्पणवायाचितेन च ।

उपवासेन भैक्षयेण नैवाद्वादशिको भवेत् ॥२॥

वास्यं मासं तथा क्षौद्रं लोभं वित्तयभाषणम् ।

व्यायामश्च व्यवायश्च दिवास्वप्नमयाञ्जनम् ॥

घिलापिष्टं मसूरश्च द्वादस्या वर्जयेन्नरः ॥३॥

मांसं माद्वपदे शुक्लद्वादशी श्रावणान्विता ।

महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ॥

सङ्गमे सरिता स्नान बुधयुक्ता महाफला ॥४॥

कुम्भे सरस्ते सजले यजेत्स्वर्णं तु वामनम् ।

मितवस्त्रयुगच्छन्न छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥५॥

ॐ नमो वामुदेवाय शिरः सपूजयेत्ततः ।

श्रीधराय मुखं तद्वस्त्रं कृष्णाय वै नमः ॥६॥

श्री गङ्गाजी ने कहा—प्रब्रह्म धारण की द्वादशी के विषय में वर्णन करते हैं जो भुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाली होती है । एकादशी हो प्रववा द्वादशी तिथि हो किन्तु धारण नक्षत्र से संयुक्त होनी चाहिए । वह तिथि विजया कही गई है । इसमें हरि की पूजा अथवा पुण्य-फल वाली होती है ॥१॥ एक वस्त्र धारण एकद्वार रात्रि के भोजन से—तथा अवाचित भोजन से—उपवास से और भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन से अद्वादशिक नहीं होता है । धारण द्वादशी व्रत का नाश करने वाला नहीं होता है ॥२॥ कासे का पात्र—मौस—क्षीर (मधु)—लोभ—मिथ्या भाषण—अवायम—अवाय (नीच) —दिन में शयन (निद्रा) करना—अज्ञान—शिखापिष्ट (पत्यर से या पापाणि पर पिसे हुए पदार्थ) और मसूर इन सबका द्वादशी में व्रजन कर देना चाहिए ॥३॥ आद्यपद मास में ध्रुवन पक्ष की द्वादशी जो अथवा नक्षत्र से अन्वित हो उसे एक सबसे बड़ी द्वादशी समझना चाहिए । इसके उपवास का महान् फल होता है । सगम में सरिताजी का स्नान बुध से युक्त हो तो महान् फल वाली होती है ॥ ४ ॥ रत्नों से परिपूर्ण एवं जल से भरे हुए कुम्भ में स्वर्ण में वामनदेव का यजन करे जो दो श्वेत वस्त्रों से समाच्छन्न हो और छत्र और उपानय के युग से समन्वित होवे ॥५॥ इसके अनन्तर “ॐ नमो वामुदेवाय”—इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का यजन करे । “ॐ नमः श्रीधराय”—इससे मुख का और “ॐ नमः कृष्णाय”—इससे शरीर की प्रार्थना करनी चाहिए ॥६॥

नमः श्रीपतये वशो भुजो सर्वास्त्रधारिणे ।

व्यापवाय नमः कुक्षौ वैशवायोदर बुध ॥७॥

प्रेलीक्यपतये मेढू जङ्घे सर्वपतये नमः ।

सर्वात्मने नमः पादौ नैवेद्य घृणपायसम् ॥८॥

कुम्भाश्च मोदकान्दद्याज्जागर कारयेन्निशि ।
 स्नात्वा पीत्वाञ्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्बदेत् ॥६॥
 नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसज्जक ।
 अघोषसक्षय कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१०॥
 प्रीयता देवदेवेशो विप्रेभ्य कलशान्ददेत् ।
 नद्यास्तीरेऽथवा कुम्पात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥११॥

"ॐ नमः श्रीपतये"—इससे वल स्वतका मोर "ॐ नमः सर्वात्मना
 शिशो"—इससे भुजायो का यजन करे । 'ॐ नमो व्यापकाय"—यह मन्त्र कह
 कर कुक्षियो का मोर "ॐ नमः केशवाय"—इससे बुध को उदर का यतवार्जन
 करना चाहिए ॥७॥ 'ॐ नमः पैलोक्य पतये'—इससे मेढुका—"ॐ नमः सर्व
 पतये"—इससे दोनों जाँघो का तथा "मो नमः सर्वात्मने"—इससे परखो का
 यजन करे । इससे पश्चात् नैवेद्य घृत पायस—कुम्भो को मोर मोदको को सम-
 रित करे । रात्रि में जागरण करे । स्नान करके—पान करके मोर मर्चना करके
 भस्मरतियो में पुष्प लेकर प्रायंता करे ॥ ८॥ १॥ हे यज्ञ सदा वाले बुध ।
 हे गोविन्द । आपकी बारम्बार प्रणाम है । आप मेरे मनो के समूह का क्षय
 करके समस्त प्रकार के सुखों के प्रदान करने वाले होवे ॥१०॥ हे देशों के देवों
 के भी स्वामिन् । आप मुझ पर प्रसन्नता करे । फिर उन कलशों को विप्रे के
 लिये दान कर देवे । इन कार्य क्रम का अनुष्ठान किसी नदी के तट पर करे तो
 समूह भ्रमोद कामनाओं की प्राप्ति होती है ॥११॥

८८—मदनप्रयोदशी आदि के व्रत

कामदेवप्रयोदश्या पूजा दमनकादिभिः ।
 रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ॥१॥
 चतुर्दश्या तथाष्टम्या पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
 योऽदमेक न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ॥२॥
 त्रिराशोपिती दद्यात्कान्तिकया भवनं शुभम् ।
 सूर्यलोकमवाप्नोति धामप्रतमिदं शुभम् ॥३॥

अमावस्या पितृणाञ्च दत्तं जलादि चाक्षयम् ।
 नक्ताभ्याशी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक् ॥४॥
 द्वादशर्क्षिणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वं ।
 तन्नाम्ना तेऽच्युत तेषु सम्यक्संपूजयेन्नर ॥५॥
 केशव भागशीर्षे तु इत्यादौ कृत्तिकादिका ।
 घृतहोमश्चतुर्मास कृसरश्च निवेदयेत् ॥६॥
 आपाद्वादो पायसन्तु विप्रास्तेनैव भोजयेत् ।
 पञ्चगव्यजले स्नानं नैवेद्यं नक्तमाचरेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव त्रयोदशी के दिन दमनक आदि के द्वारा
 रहि और मीन से समामुक्त होकर करे तो शोक से रहित और महा सम्मान से
 विभूषित हो जाता है ॥१॥ इति मदन त्रयोदशी पूजा विधानम् । शुक्ल और
 कृष्ण पक्षों की चतुर्दशी तिथि में तथा अष्टमी तिथि के दिन में जो एक वर्ष
 पर्यन्त भोजन न करे अर्थात् उपवास करे एवं भगवान् महेश्वर शिव का पूजन
 करे तो उसे समस्त भोगों की प्राप्ति हुमा करती है । इति चतुर्दश्यष्टमी व्रत
 विधानम् ॥२॥ कार्तिकी में तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करके शुभ भवन का दान
 करे तो वह सूर्यलोक को जाता करता है । यह परम शुभ घाम व्रत कहताता
 है ॥ ३ ॥ अमावस्या तिथि के दिन पितृणेश्वरों को दिसा हुमा जल अर्थात्
 किया हुमा सर्वत्र पक्षय होता है । नक्त अर्थात् रात्रि के अन्त्येष्ट वाया वार के
 नाथ से वारि में (जल में) पूजन करता हुमा सभी दुष्टों की प्राप्ति करने का
 श्रेय लाभ किया करता है । इति वार व्रतानि ॥ ४ ॥ हे विप्रर्षे ! प्रतिमास में
 जो बारह नक्षत्र होते हैं उनके नामों में उनमें चतुर्थ को भगवान् अच्युत का
 भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥५॥ मार्ग शीर्ष में कृत्तिका आदि में केशव
 का पूजन करे । चार मास तक घृत की होम और कृसर को निवेदित करे ॥६॥
 आपाद्वाद में पायस का होम करे, इसे ही समर्पित कर और पायस (खीर)
 से ही विप्रों को भोजन करावे । पञ्चगव्य के जल से स्नान करे और नैवेद्य से
 रात्रि में समावरण करना चाहिए ॥७॥

अर्वाग्विसर्जनाद् द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।

विसर्जिते जगन्नाथे निर्मल्यं भवति क्षणात् ॥८॥

पञ्चरात्रविदो मुह्यन्ते नैवेद्यं भुञ्जते स्वयम् ।
 एवं सवत्सरस्यान्ते विधेयेण प्रपूजयेत् ॥६॥
 नमो नमस्तेऽच्युत सदाशय मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयेत् ॥१०॥
 ऐश्वर्यवित्ता द सदाशय मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयेत् ॥१०॥
 यथाच्युत त्व परतः परस्मात्स ब्रह्मभूत परतः परस्मात् ।
 तयाच्युत मे कुरु वाञ्छित सदा मया कृत पापहराप्रमेय ॥११॥
 अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीक्षितम् ।
 तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१२॥

विमर्जित करने के पूर्व में सब द्रव्य नैवेद्य कहा जाता करता है । जगत् के नाश भगवान् के विमर्जित कर देने पर एक ही क्षण में वह सब निर्मल हो जाता है ॥८॥ पञ्चरात्र के ज्ञाना मुक्त नैवेद्य को स्वयं खाता है । इस प्रकार से सत्वर के प्रण में विशेष रूप से पूजन करना चाहिये ॥९॥ प्रार्थना इस तरह करे—हे अच्युत ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है । मेरे सम्पूर्ण पापों का संशय हो जावे और मेरे पुण्य की वृद्धि होवे । मेरा ऐश्वर्य और वित्त आदि सदा अक्षय हो जावे और इसी भक्ति मेरी सन्तति भी भक्षय हो जावे ॥१०॥ हे अच्युत देव ! जिस प्रकार से आप पर से भी पर हैं और पर से पर में अक्षय सदा अक्षय हो जावे और इसी भक्ति मेरी सन्तति भी भक्षय हो जावे ॥११॥ हे अच्युतानन्द ! हे गोविन्द ! आप प्रसन्न हूँजिए । हे अमेयात्मन् ! जो भी कुछ मेरा अभीष्ट मनोरथ हो वह भक्षय हो जावे । हे पुरुषोत्तम ! आप मुझ पर ऐसी ही कृपा कर दें ॥१२॥

कुर्याद्विं सप्तवर्षाणि आयुःश्रीसद् गति नरः ।
 उपोष्यंकादशीमब्दमष्टमीञ्च चतुर्दशीम् ॥१३॥
 सप्तमी पूजयेद्विष्णुं दुर्गा शम्भुं रवि त्रिमात् ।
 तेषां लोक समाप्नोति सर्वकामाश्च निर्मलः ॥१४॥
 एकभक्तेन नक्तनं तथैवायाचितेन च ।
 उपवासेन शाकाद्यैः पूजयन्मन्दैवताः ॥
 सर्वैः सर्वानु तिविषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१५॥

धनदोऽग्निं प्रतिपदि नासत्यो दस्य अर्चितः ।
 श्रौर्यमश्च द्वितीयाया पञ्चम्या पार्वती श्रिया ॥१६॥
 नागाः पष्ठया कार्तिकेयः सप्तम्या भास्करोऽयंद ।
 दुर्गाष्टम्या मातरश्च नवम्यामथ तक्षकः ॥१७॥
 दशम्यामिन्द्रो घनद एकादश्या मुनीश्वरो ।
 द्वादश्याश्च हरिः वामदेवयोदश्या महेश्वरः ॥
 चतुर्दश्या पञ्चदश्या ब्रह्मा च पितरोऽपरे ॥१८॥

इस प्रत को सान वर्ष तक जो मनुष्य करता है वह प्रायु—भी और सद्गति को प्राप्त किया करता है । एकादशी—मष्टमी और चतुर्दशी का एक वर्ष तक उपवास करे ॥१३॥ सप्तमी का—दुर्गा—शम्भु और कम से रवि का पूजन करे । इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य मन्त्र रहित परम शुद्ध होकर उन्ही के लोक को पहुँच जाता है और उठावे सम्पूर्ण काम पूर्ण हो जाते हैं ॥ १४ ॥ एक वक्त भोजन से जोकि रात्रि में हो बिना जावे तथा प्रयत्नित भोजन से जो बिना मयि ही प्राप्त हो जावे—शाय दि के द्वारा रहकर उपवास करके तब देवताओं का पूजन करने वाले सब सभी तिथियों में इस प्रत का पालन करे तो वे भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त किया कर सकते हैं ॥१५॥ प्रतिपदा तिथि में अग्नि का मर्चन घन प्रदान करने वाला होता है । नामस्य—शस्त्र—श्री और यम की मर्चना द्वितीया में करे और पञ्चमी तिथि में श्री से युक्त पार्वती एवं नागों का यजन करना चाहिए । पष्ठी तिथि में स्वाभि कार्तिकेय का पूजन करे । सप्तमी में भगवान् भुवन भास्वर का मर्चन घन प्रदान करने वाला होता है । दुर्गाष्टमी में मातृगण का यजन करे । नवमी में तक्षक का पूजन करे । दशमी तिथि में इन्द्र की मर्चना घन देने वाली है । एकादशी में मुनीश्वरो का यजन करे । द्वादशी में हरि भगवान् का पूजन करना चाहिए । त्रयोदशी में वामदेव का और चतुर्दशी में महेश्वर का एक पञ्चदशी में ब्रह्मा एवं दूजरे पितरो का यजन करना चाहिए ॥१६॥१७॥१८॥

८६—सूर्य वंश कीर्तन

राजा वशान्प्रवक्ष्यामि वशानुचरितानि च ।

विष्णुनाम्भोजतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च सस्य वै ॥१॥

ततोऽदिति विवस्वाश्च ततो विवस्वतः सुतः ।
 मनुर्विषवाकु शर्यातिर्मृगो धृष्ट पृषध्रकः ॥
 नरिष्यस्तश्च नाभागो दिष्ट जगक एव च ॥२॥
 मनोरासीदिना कन्या मुद्युम्नोऽस्य सुताऽभवन् ।
 इलाया तु बुधाज्जाना रजारुद्रपुम्नरवा ।
 सुतास्त्रयश्च मुद्युम्नादुत्कला विततो गय ॥३॥
 अभूच्छूद्रो गावधात् पृषध्रम्नु मना मुनः ।
 कस्यात्स्वनिषा जाता कारुषा इति विश्रुताः ॥४॥
 दिष्टपुत्रस्तु नाभाया वैश्यनामगमत्न च ।
 तस्माद्भूनन्दन पुत्रा यन्मप्रीतिभनन्दनान् ॥५॥
 ततो पायु खनिनाऽभूद् भूपन्तस्मात्तन शुष ।
 क्षुरादिशाऽभवत्पुत्रो विशाज्जाना विविशक ॥६॥
 विविशाच्च खनोनेनो विभूतिस्त्वमुनः स्मृतः ।
 करन्धमो विभून्मु ततो जाताऽप्यविशित ॥७॥

श्री हरि न कृता—भव हम राजाया क बतों का तथा बशी के मनु-
 शर्तों का दर्शन करते हैं । भगवान् विष्णु की नाभि में समुद्रमग्न कमल में
 ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी । उन ब्रह्मा क अ मुत्र में दत्त प्रजापति ने जन्म ग्रहण
 किया था । इसके पश्चात् अदिति समुद्रमग्न हुई और उम अदिति से विवस्वान्
 उत्पन्न हुए थे । विवस्वान् के पुत्र मनु हुए । १५वां कृ—वर्षानि—मृग—पृष्ठ—पृष्ठक
 नरिष्यस्त—नाभाग—दिष्ट और दासक समुद्रमग्न हुए थे ॥ १२ ॥ मनु की इला
 नाम धारिणी कन्या हुई और मुद्युम्न नाम वाला इसका पुत्र उत्पन्न हुआ था ।
 इला में बुध में राजा रुद्र पुम्नरवा उत्पन्न हुए । मुद्युम्न से तीन पुत्र समुद्रमग्न हुए
 थे जिनके नाम उत्कल—वितत और गय थे हुए थे ॥ ३ ॥ गोवध से मूद्र हुआ
 था पृषध्र मनु का पुत्र था । कर्ष्य से कारुष नाम म विष्वाय होने जाने क्षत्रिय
 समुद्रमग्न हुए थे ॥४॥ दिष्ट का पुत्र नाभाय था जोकि वैश्यना गो प्राप्त होगया
 था । उससे धर्माद् नाभाग में भगन्दन नामक धातमज ने जन्म ग्रहण किया था
 और भनन्दन का पुत्र यत्न प्रीति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५॥ इससे पायु
 धनिभ भूप हुआ और इसका पुत्र शुष नामधारी हुआ । शुष का पुन विश हुआ

घोर विश स विविशक की उत्पत्ति हुई थी ॥ ६ ॥ विश स खनीनेत्र नामक पुत्र पैदा हुआ तथा खनीनेत्र का पुत्र विभूनि नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । विभूनि का पुत्र करन्वम घोर करन्वम से प्रविशिक्षित नाम वाले आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥

मरुत्ताऽविक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्तत स्मृतः ।
 नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धन ॥८॥
 राजवर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृते सुत ।
 नराच्च केवल पुत्र क्वलाद् धुन्धुमानपि ॥९॥
 धुन्धुमतो वेगवान् बुधो वेगवत सुतः ।
 तृणविन्दुर्बुधाज्जात कन्या चैलविला तथा ॥१०॥
 विशाल जनयामास तृणविन्दास्त्वलम्बुपा ।
 विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रव ॥११॥
 धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वत्सृञ्जयस्तथा ।
 सृञ्जयात्सहदेवाऽभूत्कृशाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१२॥
 कृशाश्वत्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमजय ।
 तत्पुत्रश्च नुमन्त्रिश्च एत वैशालका नृपा ॥१३॥
 शर्यातस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्या च्यवनस्य तु ।
 अनन्तो नाम शर्यातिरनन्ताद्देवकाऽभवत् ॥
 रैवतो रैवतस्यापि रैवताद्देवतो सुता ॥१४॥

प्रविशिक्षित का पुत्र मरुत् हुआ घोर फिर उस मरुत् से नरिष्यन्त नाम वाला पुत्र हुआ था । नरिष्यन्त से तम घोर तम का पुत्र राज वर्द्धन समुत्पन्न हुआ था । इस राज वर्द्धन से धृति घोर सुधृते का पुत्र नर नामधारी उत्पन्न हुआ था । नर का पुत्र केवल घोर इसका पुत्र धुन्धुमान् हुआ था ॥८॥९॥ धुन्धुमान् का वेगवान् घोर वेगवान् का बुध तथा बुध का पुत्र तृणविन्दु घोर एक ऐलविना नाम धारिणी कन्या हुई थी ॥ १० ॥ तृण विन्दु से अनम्बुपा ने विशाल की उत्पत्ति किया था । विशाल से हमबद्ध ने जन्म लिया था और हमबद्ध से चन्द्रक नाम वाला आत्मज समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ चन्द्र से धूम्राश्व

सृजय, सृजय से सहदेव और सहदेव से कृशाश्व नामक सुत ने जन्म लिया था ॥१२॥ कृशाश्व का पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त से जनमेजय ने उत्पत्ति प्राप्त की थी । इसका पुत्र सुवन्त्र हुआ था । ये सब वंशात्तक माम से विख्यात होने वाले मृष हुए थे । १३ ॥ शर्वाति राजा के एक कन्या हुई थी जाकि अच्यवन महर्षि की भार्या हुई थी । शर्वाति के एक प्रपन्न नामक पुत्र हुआ और प्रपन्न का सुत देवक उत्पन्न हुआ था । देवक देवत का पुत्र हुआ था और देवत से रेवती नाम वाली एक पुत्री भी पैदा हुई थी ॥१४॥

घृष्टस्य घाष्टक क्षत्र वैदयक तद्वभूव ह ।

नाभामपुनो नेदिष्टो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः ॥१५॥

अम्बरीषाद्विरूपोऽभूत्पृषदश्चो विरूपत ।

रथोनरश्च तत्पुत्रा वासुदेवपरायण ॥१६॥

इवाकोस्तु धयः पुना विकुक्षिनिमिदण्डका ।

इवाकुजो विकुक्षिस्तु राजाद राजभक्षणात् ॥१७॥

पुरक्षय, राजादाच्च ककुत्स्याक्षोऽभवत्सुत ।

अनेनास्तु ककुत्स्याच्च पृथु पुत्रस्तवनेनस ॥१८॥

विश्वरात, पृथो पुन भार्दोऽभूद्विश्वरातत ।

पुवनाश्चोऽभवत्तार्दवि थास्तो पुवनाश्चत ॥१९॥

घृहदश्चस्तु धावस्तात्तपुत्र कुवलाश्वक ।

धुन्धुमारो हि विख्यातो हटाश्वश्च तताऽभवत् ॥२०॥

चन्द्राश्च कपिलाश्वश्च ह्य्यंश्चश्च हटाश्वत ।

ह्य्यंश्चाच्च निकुम्भोऽभूद्विताश्वश्च निकुम्भत ॥२१॥

गुह का धार्ष्टक क्षत्रिय हुआ था जाकि वैदयक होगया था । नाभाप का पुत्र नेदिष्ट हुआ और नेदिष्ट का पुत्र अम्बरीष हुआ था ॥१५॥ राजा अम्बरीष से विख्यात हुए और विरूप से पृषदाक्ष की प्रभुत्वपति हुई थी । उसका पुत्र रथोनर नामक हुआ जो सर्वदा भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण रहा करता था ॥१६॥ इवाकु राजा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम विकुक्षि निमि और एण्डक थे । इवाकु से प्रभुत्वपति विकुक्षि क्षत्र के भक्षण करने से

मनादि कृताया मया या ॥ १७ ॥ अतः मे पुत्रश्चय उत्पन्न हुआ या धीर
 इमका पुत्र कटुम्भ नाम वाता हुआ या । कटुम्भ मे अनेका धीर इमका पुत्र
 पृथु नामवागी उत्पन्न हुआ या ॥ १८ ॥ पृथु का विश्वराज हुआ धीर विश्वराज म
 आद्र पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । आद्र म युवनाश्व धीर युवनाश्व का पुत्र आश्विन
 नाम वाता या ॥ १९ ॥ आश्विन का पुत्र तुल्यध्व धीर इमका पुत्र युवनाश्व
 हुआ । युवनाश्व परम विश्वास हुआ या धीर इमका उत्पन्न हुआ म अद्राश्व
 कविनाश धीर हयं उ उत्पन्न हुआ थे । हयंश्व म निकुम्भ धीर निकुम्भ मे हिताश्व
 ममुत्पन्न हुआ या ॥ २० ॥ २१ ॥

पुत्राश्वश्च हिताश्वश्च मत्पुत्रा युवनाश्वक ।
 युवनाश्वश्च मांवाता विन्दुमत्पुत्राऽभवत् ॥ २२ ॥
 मुकुन्दश्चाश्वरीपश्च पुत्रुम्भश्चय मुता ।
 वन्धाश्वश्चवाश्वश्च माध्याम्ना मीनरमुने ॥ २३ ॥
 युवनाश्वश्चाश्वरीपाश्च हरिता युवनाश्वक ।
 पुत्रुम्भाश्वमंदाया प्रमदस्युम्भस्युत ॥ २४ ॥
 अन्तर्यामना जाना श्वश्वश्चाश्वरश्चयत् ।
 नत्पुत्रोभूद् वसुमनाश्विरश्वा तस्य चाभवत् ॥ २५ ॥
 अश्वारिणस्यश्च पुत्रस्यश्च मन्थरत् मुत ।
 यस्मिन्मत्कु ममाश्वता हरिश्चन्द्रोऽभवत्तत् ॥ २६ ॥
 हरिश्चन्द्राद्राहिनाश्वा हरिना गहिनाश्चत ।
 हरिन्मय मुतश्च वृश्चाश्च विजय मुत ॥ २७ ॥
 विजयाद्रुक्का जत मरुतान् पुत्र मुत ।
 वृषाडाहुर्नृपाश्च मरुताहोम्यु मगर म्युत ॥ २८ ॥

हिताश्व का पुत्र पुत्राश्व धीर पुत्राश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ या ।
 युवनाश्व म मा वाता की ममुत्पत्ति हुई धीर मा वाता का पुत्र विन्दुमत्पुत्र हुआ
 या । इमका मुकुन्द—अश्वराज धीर पुत्रुम्भ म तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे धीर
 वन्धाश्व कर्माणि हुए थीं आ मीनरि मुनि का आर्षणि हुए थीं ॥ २० ॥ २१ ॥ अश्व-
 रीप म युवनाश्व धीर युवनाश्व म हरि पुत्र हुआ या । पुत्रुम्भ मे मंदा मे

नगदरस्थु नामक मात्मज की उत्पत्ति हुई थी ॥२४॥ उससे अनरण्य हुआ और अनरण्य से हर्षश्च समुत्पन्न हुआ । इसका पुत्र वसुमना पैदा हुआ और वसुमना से त्रिघन्वा पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२५॥ इसके यहाँ त्रय्याहण नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और इसका पुत्र सत्यरत्न हुआ था जोकि त्रिशकु—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । इसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ ॥२६॥ हरिश्चन्द्र नृपति का पुत्र रोहिताश्व हुआ था और रोहिताश्व से हरित नामक सुत का जन्म हुआ था । हरित के पुत्र का नाम चञ्चु था और चञ्चु के पुत्र विजय ने जन्म ग्रहण किया था ॥२७॥ विजय से रुद्रक पुत्र पैदा हुआ और रुद्रक से वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । वृक से बाहुनृप अवतीर्ण हुआ और बाहु का पुत्र मगर नामक हुआ था ॥२८॥

पटिपुनसहस्राणि सूनत्या सगरोद्भव ।
 कैशिन्यामेक एवासौ प्रसमन्तससजक ॥२९॥
 तस्यामुमान्मुतो विद्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।
 भगीरथो दिलीपाब्ध यो गङ्गामानयद्भवम् ॥३०॥
 श्रुतो भगीरथसुतो नाभागश्च श्रुतात्किल ।
 नाभागादम्बरीपोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीपतः ॥३१॥
 सिन्धुद्वीपस्यायुतायुः ऋतुपर्णस्तदात्मजः ।
 ऋतुपर्णात्मिककाम सुदासोऽभूत्तदात्मजः ॥३२॥
 सुदासस्य च सोदामो नाम्ना मित्रसहः स्मृतः ।
 कल्माषपादसज्जश्चदमयन्त्या तदात्मजः ॥३३॥
 अश्वकारुपोऽभवन्पुत्रो ह्यश्वकान्मूलकोऽभवत् ।
 ततो दशरथा राजा तस्य चंचलिल सुतः ॥३४॥
 तस्य विश्वगह पुत्रः सद्वाङ्महश्च तदात्मजः ।
 सद्वाङ्माहीर्षवाहुश्च दीर्घबाहोर्ह्यजः सुतः ॥३५॥

राजा मगर से मुनि नाम धारिणी मार्गों में साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे । केनिनी नामक पत्नी में एक ही प्रसमन्तस नाम वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२९॥ इसका अनुम न हुआ था । अनुमान् का पुत्र परम विद्वान् दिलीप

हुमा था भीर इस राजा दिलीप का पुत्र भगीरथ नाम वाला समुद्रपन्न हुमा था जिसने अपनी अत्यंत उम्र तपस्या से गङ्गा का यहाँ भूलोक में आगमन कराया था ॥३०॥ भगीरथ के पुत्र का नाम श्रुत हुमा भीर श्रुत का पुत्र नाभाग हुमा था । नाभाग का पुत्र भम्बरीय हुमा था । भम्बरीय का पुत्र सिधुद्वीप हुमा था ॥ ३१ ॥ सिधु द्वीप का पुत्र अयुतायु हुमा भीर इसका पुत्र श्रुतपुर्ण नाम वाला हुमा । श्रुतपुर्ण से सब काम समुत्पन्न हुआ भीर इसका पुत्र मुदास हुमा था ॥३२॥ मुदास का पुत्र सौदामन समुत्पन्न हुआ जो नाम से मित्रसह कहलाता था । उसका पुत्र दमयन्ती म कल्मथ शब्द नाम वाला पैदा हुआ था ॥३३॥ इसका पुत्र अश्वक नामधारी था भीर अश्वक से मूलरु समुत्पन्न हुआ इसके पुत्र का नाम राजा दाम्प्य था । इसका पुत्र ऐलविल हुआ था ॥३४॥ ऐलविल का भात्मज विश्वसह हुआ भीर विश्वसह का पुत्र सटवाङ्ग उत्पन्न हुआ था । सटवाङ्ग से दीध बाहु मुत्त की समुत्पत्ति हुई तथा दीध बाहु से प्रथम नृपति ने पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था । ३५॥

तस्य पुत्रो वशरथश्चत्वारस्तत्सुता स्मृता ।

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबला ॥३६॥

रामात्कुशलवो जातो भरतात्ताक्षपुष्करो ।

चिनाङ्गदश्चन्द्रकेतू लक्ष्मणात्सदभूवतु ॥३७॥

सुबाहुसूरसन्तो च शत्रुघ्नात्सदभूवतु ।

कुशस्य चातिथि पुत्रो निषधो ह्यतिथे सुत ॥३८॥

निषधस्य नल पुत्रो नलस्य च नभा स्मृत ।

नभस पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा तदात्मज ॥३९॥

देवानीकस्तस्य पुत्रो देवानीवादहीनक ।

अहीनकाद्रजज्ञे पारियात्रो रुरो सुत ॥४०॥

पारियात्राद्दलो जज्ञे दलपत्रश्चल स्मृत ।

छलाद्दुव्यस्ततो बुवयाद्वज्रनाभस्ततो गण ॥४१॥

उपिताश्वो गणाजज्ञ ततो विद्वत्सहोऽभवत् ।

हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्र शुष्पव स्मृत ॥४२॥

इन्ही महाराज भज के प्रतापी दशरथ नृप का जन्म हुआ था जिनके चार पुत्र बताये जाते हैं जिनके नाम धीराम—नक्षत्र—भरत और शत्रुघ्न थे। ये चारो महान् बलवान् हुए थे ॥३६॥ धीरामचन्द्र महाराज से कुछ धीर लव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। भरत क तार्क्ष्य और गुणकर—नक्षत्र के विद्या-ज्ञ और चन्द्र नेतु नामधारी दो-दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥ ३७ ॥ शत्रुघ्न के सुबाहु और धूरसेन नाम वाले दो सुतो की उत्पत्ति हुई थी। कुस के पुत्र का नाम अतिथि था और अतिथि का पुत्र निषध हुआ ॥ ३८ ॥ निषध का तल—तल का नभा नामक पुत्र हुआ। नभा से पुष्करिक तथा इसका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ था ॥३९॥ क्षेमधन्वा का द्रवानीक और इसका पुत्र महीनक नाम वाला था। महीनक से हह न जन्म लिया था और हह का पुत्र पारिपात्र नाम वाला हुआ था ॥४०॥ पारिपात्र का पुत्र दन हुआ तथा दन का पुत्र खन नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। खन से मुख्य और इसका पुत्र वष्य नाम हुआ। तथा वष्य नाम से गण नामक पुत्र ने जन्म पारण लिया था ॥ ४१ ॥ गण से उषिनाम्न हुआ फिर इसका पुत्र विश्वमह उत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र का नाम हिरण्य नाम और हिरण्य नाम का प्रादन्व पुत्रक नाम वाला हुआ था ॥४२॥

ध्रुवसन्धिरभत्पुष्पाद् ध्रुवसन्धे सुदर्शन ।
 सुदर्शनादग्निवर्णं पद्मवर्णोऽग्निवर्णत ॥४३॥
 शीघ्रस्तु पद्मवर्णात् शीघ्रात्पुत्रो मरुस्त्वभूत् ।
 मरो प्रसुश्रुत पुत्रस्तस्य चोदायमु सुत ॥४४॥
 उदावसोर्नन्दिवर्द्धन मुकेतुनन्दिवर्द्धनात् ।
 मुकेतोदेवरातोऽभूद् बृहदुक्थस्तत् पुत्र ॥४५॥
 बृहदुक्थान्महावीर्यं सुधृतिन्तस्य चात्मज ।
 सुधृतेर्नृष्टकेतुश्च हव्यंश्चो घृष्टकेतुत ॥४६॥
 हव्यंश्चात् मरुर्जातो मरो प्रतीन्धकोऽभवत् ।
 प्रतीन्धकात्कुतिरथो देवमीदृशस्तदात्मज ॥४७॥
 विबुधो देवमीडात् विबुधात् महाधृति ।
 महाधृते कनिराना महारोमा तदात्मज ॥४८॥

महारोम्ण स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मज ।

सीरध्वजो ह्रस्वरोम्ण तस्य सीताभवत्सुता ॥४६॥

पुष्पक क पुत्र का नाम ध्रुव सन्धि धीर इसके पुत्र का नाम सुदर्शन हुआ था । सुदर्शन से अग्नि वर्ण धीर इसमें पद्म वर्ण हुआ ॥४३॥ पद्म वर्ण पुत्र धीमन् तथा इसका पुत्र मरु नायधारो हुआ । मरु से प्रसभृत धीर इससे उदावसु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उदावसु क यहाँ नहि वज्र न न जन्म लिया तथा इसका पुत्र सुकेतु धीर सुकेतु के पुत्र वा नाम देवरात एव इसके यहाँ बृहदुत्थ उत्पन्न हुआ था ॥४५॥ बृहदुत्थ के पुत्र वा नाम महावीर्य था तथा इसका पुत्र सुघुनि हुआ था । सुघुनि क पुत्र का नाम धृषेते धीर इसके यहाँ हर्यश्च ने पुत्र रूप में जन्म धारण दिया था ॥ ४६ ॥ हर्यश्च से मरु हुआ तथा इससे पुत्र का नाम प्रतीन्धक था । प्रतीन्धक से कृति धीर इसके आत्मज का नाम देव-भीम था ॥४७॥ देवभीम से विबुध उत्पन्न हुआ—विबुध से महाघृति—इसके पुत्र का नाम कृतिरान तथा इसका पुत्र वा नाम महारामा हुआ था ॥ ४८ ॥ महाराम के स्वर्ण रोमा धीर इसके पुत्र का नाम ह्रस्वरोमा हुआ था । ह्रस्व-रोमा से सीरध्वज नापक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । इसी सीरध्वज की पुत्री का नाम सीता था ॥४९॥

भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात् भानुमान् ।

शतद्युम्नो भानुमत शतद्युम्नाच्छुचि स्मृत ॥५०॥

ऊर्जनामा युचे पुत्र सनद्वाजस्तदात्मज ।

सनद्वाजात्कुलिर्जानाञ्जनस्तु कुले पुन ॥५१॥

अनञ्जनाच्च कुलजित्तस्यापि चाधिनेमिक ।

श्रुतायुस्तस्य पुत्राऽमूत्सुपाश्वश्च तदात्मज ॥५२॥

मुपाश्वत्सृज्यो जात धोमारि सृज्यात्स्मृत ।

धोमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथ स्मृत ॥५३॥

मत्परया रामरयात्तस्मादुपगुरु स्मृत ।

उपगुरोर्हरगुप्त स्वागतश्चोपगुप्त ॥५४॥

स्वन्नर स्वागताञ्जने सुवर्चास्तस्य चात्मज ।

सुवर्चम सुपाश्वस्तु मुथुतश्च मुपाश्वत ॥५५॥

जयस्तु सुभ्रूताब्जं जयास्तु विजयोऽभवत् ।
विजयस्य श्रुतं पुन श्रुतस्य सुनय सुत ॥१६॥

सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद् धृति स्मृत ।
वहुलाश्वो धृते पुत्रो बहुलाश्वात्कृति स्मृत ॥१७॥

जनकस्य द्वय वंश उक्तो योगसमाश्रय ॥१८॥

सीता के भाई का सुभ नाम कुसब्ज था । सीरब्ज से भानुवान् हुआ
भानुवान् क पुत्र का नाम जनसुम्न था । शतसुम्न से सुचि की उत्पत्ति हुई थी

॥१९॥ सुचिका पुत्र मज नाम था भोज इमक पुत्र सनद्वाज मा । सनद्वाज से
कुलि उत्पन्न हुआ इमक जनज्जन पुत्र हुआ था ॥ २० ॥ जनज्जन से कुलजित्

उत्पन्न हुआ तथा इमक पुत्र का नाम धनिनेमिक था । इमक श्रुतापु हुआ सीर
धृतापु का पुत्र सुपाश्व नामधारी पैदा हुआ था ॥२१॥ सुपाश्व से मृज्जय हुआ

मृज्जय से क्षेमारि पुत्र हुआ । क्षेमार्नि क पुत्र का नाम जनता था तथा इसके
रामरय नामक पुत्र ने जन्म लिया था ॥२२॥ रामरय क पुत्र का नाम मरयय

था सीर इमके पुत्र उरगुरु नाम बना हुआ था । उरगुरु क उरगुप्त हुआ तथा
उरगुप्त के स्वापत नामधारी पुत्र हुआ था ॥२३॥ स्वापत से स्वतर हुआ तथा

इस स्वतर से सुवर्चा का जन्म हुआ सुवर्चा क नुराश्व हुआ इससे पुत्र का नाम
सुभुत हुआ था ॥२४॥ सुभुत ने जय नाथक पुत्र में जन्म लिया—जय से विजय

क पुत्र का नाम श्रुत था—श्रुत का पुत्र सुरय था ॥ २५ ॥ सुरय से वीतहव्य
नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । वीतहव्य से धृति हुआ । धृति का पुत्र

वहुलाश्व था । बहुलाश्व से कृति ने जन्म धारण किया था ॥२६॥ यह जनक
का वंश योग समाश्रय कहा गया है ॥२७॥

६०—चन्द्रवंश कीर्तन (१)

सूर्यस्य कथितो वंश सोमवण शृणुष्व मे ।
नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽग्रे समुद्भव ॥

अग्नेः सोमस्तस्य भार्या तारा सुरगुरो प्रिया ॥१॥
सोमात्तारा वृष जज्ञे वृषपुत्र पुत्तरवा ।

वृषपुत्रादयोर्वंश्या पदं पूतास्तु श्रुतात्मक ॥
विश्वावसु दातायुश्च आयुधीमानमावसु ॥२॥

अमावसोर्भोमनामा भीमपुत्रश्च काञ्चनः ।

काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जहनुश्चाभूत्सुहोत्रतः ॥३॥

जहो सुमन्तुरभवत्सुमन्तारपजापकः ।

बलाकाश्वास्तस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुशः स्मृतः ॥४॥

कुशाश्च कुशनाभश्चाभूत्तैरथो वसु कुशात् ।

गाधि कुशाश्वात्सजले विद्वामित्रस्तदात्मजः ॥५॥

कन्या मत्स्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाम सा ।

ऋचीकाज्जमदग्निश्च रामस्तस्याभवत्सुतः ॥६॥

विद्वामित्राद्देवरातमधुच्छन्दादयः सुताः ।

आयुषो नहुषस्तस्मादनेका रजिरम्भवी ॥७॥

श्री हरि भगवान् ने कहा—भाषने कहे हुए सूर्य वश का तो भली भाँति ध्यान कर लिया है अब मुझसे सोम वश का ध्यान करो । भगवान् प्रादि पुत्र नारायण का पुत्र ब्रह्मा हुए थे और फिर उन परमपितामह ब्रह्माजी से अग्नि का समुद्भव हुआ था । अग्नि से सोम की उत्पत्ति हुई । उसकी भार्या तारा हुई थी जोकि सूर्य के मुख की प्रिया थी ॥ १ ॥ सोम से तारा ने बुध की समुपत्ति किया था । इस बुध के पुत्र का नाम पुष्य था । इस बुध के पुत्र से उर्वशी मे छे पुत्र हुए थे । उनके नाम—श्रुतात्मज—विश्रावसु—सतायु—जापु—धीमान् और अमावसु ये ॥ २ ॥ अमावसु ने भीम नाम वाला पुत्र हुआ था । भीम से काञ्चन—काञ्चन से सुहोत्र और सुहोत्र से जहनु की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३ ॥ इसका पुत्र सुमन्तु और सुमन्तु का पुत्र परजापक हुआ । इसका पुत्र बलाकाश्च और बलाकाश्च से कुश पैदा हुआ था ॥४॥ कुश से कुशाश्च—कुशनाभ—अभूत्तैरथ और वसु हुए थे । कुश से गाधि की उत्पत्ति हुई । गाधि वृष के पुत्र विद्वामित्र हुए ॥ ५ ॥ एक कन्या मत्स्यवती नाम वाली थी जिसकी ऋचीक द्विज के लिये द दिया था । ऋचीक से जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्नि से परशुराम का जन्म हुआ था ॥ ६ ॥ विद्वामित्र से देवरात मधुच्छन्द प्रादि पुत्र समुत्पन्न हुए थे । आयु का पुत्र नहुष राजा हुआ । इसके पुत्रों का नाम अनेका और रजिरम्भ ये ॥७॥

क्षयवृद्धः क्षयवृद्धात्सुहो न भवन्तृषः ।
 काश्यकाशगृत्समदा सुहो नादभवत्तथः ॥८॥
 गृत्समदाच्छीनकोऽभूत्कारयादीर्घतमास्तथा ।
 वैद्यो धन्वन्तरिस्तस्मात्केतुमाश्च तदात्मज ॥९॥
 भीमरथ केतुमतो दिवोदासस्तदात्मज ।
 दिवोदासात्प्रतर्दन शत्रुजित्सोऽन विश्रुत ॥१०॥
 श्रुतध्वजस्तस्य पुनो ह्यलकंश्च श्रुतध्वजात् ।
 अलकर्त्तास्त्रतिर्जज्ञे सुनीत सन्नने सुत ॥११॥
 सत्यकेतु सुनीतस्य सत्यकेतोऽविभु सुत ।
 विभोस्तु सविभु पुत्र सुविभो सुकुमारक ॥१२॥
 सुकुमाराद्दृष्टकेतुर्भीतिहोत्रन्तदात्मज ।
 वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभूद्भगंभूमिस्तदात्मज ॥१३॥
 वैष्णवा स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपा ।
 पञ्चपुनरात्मान्यासन्नरजे सकल सहता ॥१४॥

क्षय वृद्ध से सुहोत्र नृप हुआ । सुहोत्र के वाक्य—काशयुत और समद
 ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥८॥ गृत्समद से शीनक हुआ—काश्य से दीर्घतमा
 हुआ । उससे वैद्य धन्वन्तरि हुआ और इसका पुत्र केतुमात्र हुआ था ॥ ९ ॥
 केतुमात्र का पुत्र भीमरथ हुआ और इसका पुत्र दिवोदास नाम वाला हुआ था ।
 दिवोदास से प्रतर्दन हुआ जो कि इस मही मण्डल में शत्रुजित्—इन नाम से
 प्रसिद्ध था ॥१०॥ इसका पुत्र श्रुतध्वज हुआ और इसका प्रात्मज अलकर्त्ता हुआ
 था । अलकर्त्ता से सन्ननि ने जन्म प्राप्त किया और सन्ननि का सुत सुनीत नामधारी
 हुआ था ॥११॥ सुनीत का पुत्र सत्यकेतु हुआ और इसका पुत्र विभु नामधारी
 हुआ था । विभु के सुविभु और सुविभुका पुत्र सुकुमारक हुआ था ॥ १२ ॥
 सुकुमार से दृष्टकेतु तथा दृष्टकेतु का पुत्र वीतिहोत्र उत्पन्न हुआ । वीतिहोत्र का
 मुनमर्ग और इनके भर्गंभूमि न जन्म लिया था ॥ १३ ॥ ये काश्य समस्त नृप
 वैष्णव हुए थे और महान् भावना वाले थे । राजा ने पाँच सौ पुत्र थे जोकि
 चन्द्र के द्वारा महत् किये गये थे ॥१४॥

प्रतिक्षत्र क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मज ।
 विजय सञ्जयस्यापि विजयस्य वृत्त सुत ॥१५॥
 कृताद् वृषधनश्चाभूत्सहृदवस्तदात्मज ।
 सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सेनाऽप्यदीनत ॥१६॥
 जयत्सेनात्सकृतिश्च क्षत्रधर्मा च सवृत्त ।
 यतिर्ययाति सयातिर्ययातिर्वै वृत्ति क्रमात् ॥
 नहुपस्य मुता ख्याता ययातनृ पतेस्तथा ॥१७॥
 यदुश्च तुवसुश्चैव देवयानी व्यजायत ।
 द्रुह्य श्वानुश्च पूरश्च शमिष्ठा वार्ष्पावर्णी ॥१८॥
 सहस्रजित्क्रोष्टुमना रघुश्चैव यदो सुत ।
 महस्रजित् शनजित्स्माद् वै हयहैहयो ॥१९॥
 अनरण्यो हयात्पुत्रो धर्मो हैहयताऽभवत् ।
 धमस्य धमनेत्राऽभूत्कुन्तिर्धमनेत्रतः ॥२०॥
 कुन्तिवभूव साहस्रिमहिष्माश्च तदात्मज ।
 भद्रश्रेष्ठस्तस्य पुत्रो भद्रश्रेष्ठस्य दुर्दम ॥२१॥

क्षत्र वृद्ध म प्रतिक्षत्र उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र सजय उत्पन्न हुआ ।
 सजय का पुत्र विजय हुआ और विजय का पुत्र नामक सुत समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥
 कृत से वृषधन हुआ और इसका पुत्र सहदेव नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।
 सहदेव से अदीन की उत्पत्ति हुई और अदीन से जयत्सेन नामक पुत्र हुआ था ॥१६॥
 जयत्सेन स सवृत्ति नाम वाले सुत की उत्पत्ति हुई और इसका पुत्र क्षत्रधर्मा न मयारी समुत्पन्न हुआ था ।
 वृत्ति के क्रम से यति-ययाति-सयाति और मयाति उत्पन्न हुए थे ।
 राजा नहुष के पुत्र तथा ययाति नृप के पुत्र परम प्रसिद्ध हुए थे ॥ १७ ॥
 दवयानी ने यदु और तुवसु को जन्म दिया था ।
 वार्ष्पावर्णी शमिष्ठा न द्रुह्य-मनु और पूर को जन्म ग्रहण कराया था ॥ १८ ॥
 यदु के सहस्रजित्-क्रोष्टुमना और रघु ये पुत्र उत्पन्न हुए थे ।
 सहस्रजित् के शनजित् पैदा हुआ और शनजित् के हय तथा हैहय नामक दो पुत्र पैदा हुए थे ॥१९॥
 हय म अनरण्य हुआ और हैहय स धर्म नाम वाला सुत हुआ ।
 धम का पुत्र धमनेत्र और इसका सुत कुन्ति नाम वाला पैदा हुआ था ॥ २० ॥
 कुन्ति

का साहजिज हुआ और साहजिज का पुत्र महिम्मान् हुआ था । इसके पुत्र का नाम भद्रश्रेष्ठ था और भद्रश्रेष्ठ के—दुदम हुआ ॥२१॥

धनको दुर्दमाचर्चव कृतवीर्यश्च धानकि ।

कृतानि कृतकर्मा च कृतांग सुमहाबला ॥२२॥

कृतवीर्यादिजुंनोऽभूदजुंनोऽनूत्तरानक ।

जयध्वजां मधु भृगु वृषण पञ्च मूत्रता ॥२३॥

जयध्वजात्तानजङ्घो भरतस्तानजङ्घत ।

वृषणस्य मधु पुत्रा मधोवृंणद्यादिवशक ॥२४॥

क्रोष्टोविजनिवान्पुत्र आहिस्तस्य महात्मन ।

आहेरुशङ्कु सज्जे तस्य चित्ररथ सुन ॥२५॥

शशबिन्दुस्त्रिशरदात्पत्न्योर्लक्षश्च तस्य ह ।

दशलक्षश्च पुत्राणां पृथुकीत्यादयो वरा ॥२६॥

पृथुकीर्ति पृथुजय पृथुदान पृथुधवा ।

पृथुधवसोऽभूत्तम उत्तमास्तममाऽभवत् ॥२७॥

तत्पुत्र शिवगुर्नाम श्रीरुक्मकवचम्पन ।

रुक्मश्च पृथुक्मश्च ज्यामघ पालितो हरि ॥२८॥

दुर्दम के धनक—दुर्दवीर्य—धानकि—कृतानि—कृतकर्मा और कृतोप
ये महान् बलवान् पुत्र हुए थे ॥ २२ ॥ कृतवीर्य से मजुन हुआ और मजुन से
शूर से नक पुत्र हुआ तथा धन्य जयध्वज—मधु—भृगु—वृषण ये चार भी हुए थे ।

ये पाँचो पुत्र बड़े सुन्दर प्रान् बाँते थे ॥२३॥ जयध्वज से तालजघ और तालजघ
से भरत भी उत्पत्ति हुई । वृषण के पुत्र का नाम मधु था और मधु से वृषिण
आदि वन करने वाला हुआ ॥ २४ ॥ क्रोष्टुका निजनिगर् पुत्र हुआ और इन

महान् आत्मा बाने के पुत्र का नाम आहि था । आहि का पुत्र उत्ताङ्कु था और
उत्ताङ्कु का पुत्र चित्ररथ हुआ था ॥ २५ ॥ चित्ररथ से शशबिन्दु ने जन्म धारण
लिया था । इनके लक्ष पत्निर्मा थी तथा दश नाव पुत्र हुए थे जोकि पृथुकीर्ति

पृथुजय पृथुदान और पृथुधवा
आदि परम श्रेष्ठ हुए थे ॥२६॥ उनमें पृथुधवा के तम नामक पुत्र ने जन्म लिया था और

ये पुरयन्त एव उत्तम थे । पृथुधवा के तम नामक पुत्र ने जन्म लिया था और

तम मे उशना उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ उशना का पुत्र शितगु और इससे फिर श्री कवम कवच पैदा हुआ था । श्रीकवम कवच के स्वम—पृथुस्वम—उशमध—पानिन और हरि हुए ॥ २८ ॥

श्रीकवमकवचस्यैते विदर्भो ज्यामघात्तथा ।
 भार्यायाश्चैव शव्याया विदर्भात्त्रयोशिकी ॥२९॥
 रोमपादो रोमपादाद्वभ्रुवंभोधृतिस्तथा ।
 कौशिकस्य ऋचि पुन ततश्चैवो नृप किल ॥३०॥
 कुन्ति किलास्य पुनाऽभूत्कुन्तेवृष्टिण सुत स्मृत ।
 वृष्टोश्च निवृत्ति पुना दशाहो निवृत्तेस्तथा ॥३१॥
 दशाहस्य मुनी व्योमा जीमून्श्च तदात्मज ।
 जीमूनादिकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत् ॥३२॥
 ततो मधुरथो जज्ञे शकुनिस्तस्य चात्मज ।
 करम्भिक शकुन पुनस्तरय देवमत स्मृत ॥३३॥
 देवशनो देवमतां देवक्षनात्मयु स्मृत ।
 कुरुवशो मधो पुना ह्यनुश्च कुरुवशत ॥३४॥
 पुरुहोत्रो ह्यनो पुनो ह्य मुश्च पुरुहोत्रत ।
 सत्यश्रुत सुतश्चाशोस्ततो वै सात्यलो नृप ॥३५॥

ये उपर्युक्त सभी पुत्र कवम कवच के हुए थे । ज्यामघ का पुत्र विदर्भ हुआ और विदर्भ से शीव्या नाम वाली भार्या में कवच और त्रयोशिक दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥ २९ ॥ रोमपाद वभ्रु हुआ और वभ्रु से धृति उत्पन्न हुआ । कौशिक का पुत्र का नाम ऋचि था और इसके बाद चैव नृपति हुआ था ॥ ३० ॥ इसने पुत्र का नाम कुन्ति था तथा कुन्ति के वृष्टि नामक पुत्र ने जन्म लिया था । वृष्टि ने निवृत्ति भी उत्पत्ति हुई तथा निवृत्ति के पुत्र का नाम दशाह हुआ था ॥ ३१ ॥ दशाह के व्योमा नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था और व्योमा का चात्मज जीमून् पैदा हुआ था । जीमून् ने विकृति ने जन्म ग्रहण किया था और इसके भीमरथ सुत समुत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥ इसके पश्चात् मधुरथ पैदा हुआ और मधुरथ का पुत्र शकुनि हुआ । शकुनि का सुत करम्भ था और इसका पुत्र

देवमत कहा गया है ॥ ३३ ॥ देवमत से देवराज और देवराज से मधु उत्पन्न हुआ । कुरुवश मधु का पुत्र था और कुरुवश से अशु की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३४ ॥ अशु का पुत्र पुरुहोम था और पुरुहोम से अशु पैदा हुआ था । अशु का सुत सत्वधुत नाम वाला हुआ और उस सत्वधुत से सम्बत नृप की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३५ ॥

भजिनो भजमानश्च सात्वतादन्यक सुत ।
महाभोजो वृष्टिदिव्यावन्यो देवावृष्टोऽभवत् ॥ ३६ ॥
निमिवृष्टो भजमानादयुताजितयैव च ।
रातजिह्व सहस्राजिह्वभूदेवो बृहस्पति ॥ ३७ ॥
महाभोजात् भोजोऽभूत्पुण्ड्रेश्वर सुमित्रक ।
स्वराजितसप्तकस्तस्मादनमित्रशिनी तथा ॥ ३८ ॥
अनमित्रस्य निघ्नोऽभून्निघ्नाच्छत्राजितोऽभवत् ।
प्रतेनश्चापर हरायो ह्यनमित्राच्छिविस्तथा ॥ ३९ ॥
शिवेस्तु सत्यक पुत्र सत्यकात्मात्यकिस्तथा ।
सात्यके सञ्जय पुत्र कुलिश्वर तदात्मज ॥ ४० ॥
कुलेयुर्गन्तर पुत्रस्ते शंखेयाः प्रकीर्तिता ॥ ४१ ॥
अनमित्रान्वये वृष्टिः श्वफल्कश्चित्रक सुत ।
श्वफल्काच्चैव गान्दिन्यामक्रूरो वंणवोऽभवत् ॥ ४२ ॥
उपमद् गुरयाक्रूराद्देवद्योतस्तत सुत ।
देववानुपदैवश्च धक्रूरस्य सुतो नृपतौ ॥ ४३ ॥

सात्वत नृपति के भजिन—भजमान और अन्यक ये पुत्र हुए थे । इसके अनिरुद्ध महाभोज—वृष्टि—दिव्य और अन्य देवानृष, भजमान के निमि—वृष्टि—मधुनाजिह्व—रातजिह्व—सहस्राजिह्व—वभ्रू—देव और बृहस्पति हुए थे ॥ ३६।३७ ॥ महाभोज नाम वाले में भोज, वृष्टि से सुमित्रक, फिर इनसे स्वधार्जिह्व नाम वाला और अनमित्र शिनी पैदा हुआ था ॥ ३८ ॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ और निघ्न से शराजिह्व । दूसरा प्रतेन—इस नाम से स्यात था । अनमित्र से निमि का उत्पत्ति हुई थी । शिवि की पुत्र सत्यक—सत्यक से सात्यकि

उससे सञ्जय और सञ्जय के पुत्र का नाम कुनि था । कुलिका सुत युगन्तर नाम वाला था । ये सब संवेय नाम से कहे गये थे । १६।४०। अनमिन के वश में मृष्टि-श्वपल्क और चित्ररु सुत थे । श्वपल्क से उसकी भार्या गान्दिनी में प्रसूर ने जन्म धारण किया था जोकि परम विष्णु के भक्त थे ॥ ४१ ॥ प्रसूर के पुत्र का नाम उपमदगु था और उपमदगु के पुत्र का नाम देवद्योत था । प्रसूर के देववान् और उपदेव दो पुत्र कहे गये हैं ॥ ४२ ॥

पृथुविपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचि स्मृत ।
 कुकुरो भजमानस्य तथा बन्ध्वलवर्हिप ॥४३
 धृष्टस्तु कुन्दुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरीमकः ।
 तदात्मजो विलोमा च विलोम्नस्तुम्बुरुः सुतः ॥४४
 तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुस्त स्मृत ।
 तस्याहुवश्चाहुवी च वन्या चैवाहुवस्य तु ॥४५
 देववश्चोग्रसेनश्च देववाद्देववी त्वभूत् ।
 वृषदेवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता ॥४६
 श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ता ।
 देवश्रानुपदेवश्च सहदेवासुतो स्मृतो ॥४७
 उग्रसेनस्य कसाभूत्सुनामा च वटादय ।
 विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभूद्विदूरथात् ॥४८
 विदूरथसुतस्याथ सूरस्यापि समी सुत ।
 प्रतिक्षत्रश्च समिन स्वयम्भोजस्तदात्मज ॥४९

चित्र के पृथु और विपृथु दो पुत्र थे । अन्तक व पुत्र का नाम शुचि बताया गया है । भजमान के पुत्र का नाम कुकुर था और बन्ध्वल वर्हिप था ॥ ४३ ॥ कुकुर से धृष्ट का और धृष्ट से कापोत रोमक था । इस कापोत रोमक के पुत्र का नाम विलोमा और विलोमा के तुम्बर नाम वाले सुत ने जन्म लिया था ॥ ४४ ॥ इससे फिर दुन्दुभि जो पुनर्वसु में रति करने वाला कहा गया है । इसका माहुर पुत्र और माहुरी नाम वाली बन्धा थी । माहुर के देवक पुत्र हृषा और हूमरा पुत्र उग्रसेन था । देवक से देवकी की उत्पत्ति हुई वसुदेव ने वृषदेवा—उपदेवा—

महदेवा—सुरक्षिता—श्रीदेवी—शान्ति देवी इन सभी के साथ विवाह कर लिया था । सहदेवा के देव और अनुपदेव ये दो पुत्र थे ॥४१॥४६॥४७॥ लग्नेन नृप के पुत्र का नाम कस था और भी सुनाम तथा बटादि थे । भजमान से विदूरथ और विदूरथ से भूर हूषा ॥४८॥ विदूरथ क पुत्र भूर के सभी नामक पुत्र था । सभी के पुत्र का नाम प्रतिक्षण था और प्रतिक्षण का पुत्र स्वयम्भोज था ॥४९॥

हृदिकश्च स्वयम्भोजात्कृतवर्मा सदात्मज ।
देव सतधनुश्चैव शूराहं देवमीदृष ॥५०॥
दस पुत्रा मारिपाया वसुदेवादयोऽभवन् ।
पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्ति श्रुतश्रवा ॥५१॥
राजाधिदेवी शूराश्च पृथा कुन्ति सुतामवात् ।
सा दत्ता कुन्तिना पाण्डोस्तस्या धर्मानिलेन्द्रकै ॥५२॥
युधिष्ठिरो भीमपाथौ नकुल सहदेवक ।
माद्रया नासत्यदत्ताभ्या कुन्त्या कण पुराऽभवत् ॥५३॥
श्रुतदेव्या दन्तवक्त्री जज्ञे बं युद्धदुमद ।
अन्तर्द्वानादय पञ्च श्रुतकीर्त्याश्च कंकयात् ॥५४॥
श्रुतश्रवा दमघोषात्प्रजज्ञे क्षिणुपालकम् ॥५५॥
पौरवी रोहिणी भार्या मदिरानकदुन्दुभे ।
देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्या वलभद्रक ॥५६॥
सारण्याया दाठश्चैव रेवत्या वलभद्रत ।
निदाठश्चोल्मुको जातो देवक्या पट् च जज्ञिरे ॥५७॥

स्वयम्भोज से हृदिक और फिर हृदिक का पुत्र कृतवर्मा समुत्पन्न हुआ था । शूर से देव—शतधनु और देवमीदृष हुए थे ॥५०॥ मरिया से वसुदेव प्रभृति दस पुत्र थे । पृथा—श्रुतदेवी—श्रुतकीर्ति—श्रुतश्रवा क राजाधि देवी शूर व और कुन्ति की पुत्री पृथा को दिया था । कुन्ति के द्वारा दो हुई उसमे पाण्डु व धर्म—बायु और इन्द्र के द्वारा युधिष्ठिर—भीम और भर्जुन तथा नकुल एवं सहदेव माद्री से नासत्य और हस्त से उत्पन्न थे । पहिले कुन्ती में वरुण उदात्त

हो चुका था ॥५१॥५२॥५३॥ ध्रुव देवी में दन्तवक्र ने जन्म लिया था जोकि पुंड्र में दुर्मंद था । मन्तर्धान प्रभृति पाँच कंदम से धृति कं ति मे थे ॥५४॥ राजाधि देवी में विन्द श्रीर मनुविन्द ने जन्म ग्रहण लिया था । ध्रुव भवा ने दमघोष से शिशुपाल को जन्म दिया था । ५५॥ भानक दुन्दुभि की पीरवी और रोहिणी तथा मदिरा भार्या थी । देवकी जिनमें प्रमुख थी जोकि भद्रा थी । रोहिणी में बलभद्र हुए ॥५६॥ बलभद्र से रेवती नाम बानी पत्नी में सारण प्रभृति और साठ उत्पन्न हुए । निराठ और उन्मुक आदि छँ देवकी से थे ॥५७॥

कीर्त्तिमाश्र सुपेणश्च उदाय्यो भद्रसेनकः ।

ऋजुदासो भद्रदेव कस एवावधीच्च तान् ॥५८॥

सकर्पण मममोऽभूदष्टम कृष्ण एव च ।

पांडजस्रोतह्मराणि भार्याणांश्चाभवन्हरे ॥५९॥

हविमणी मत्स्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी ।

धौष्टा जाम्बवती चाष्टौ जज्ञिरे ता मुतान्वहून् ॥६०॥

प्रद्युम्नश्चारुदेणश्च प्रधाना साम्ब एव च ।

प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुप्तिन्या महाबल ॥६१॥

अनिरुद्धात्सुभद्राया वज्रो नाम नृपोऽभवत् ।

प्रतिबाहुर्वधसूत्रश्चारुस्तस्य सुनोऽभवत् ॥६२॥

वह्निस्तु तुर्वसोर्वसे वह्नेर्भागोऽभवत्सुत ।

भार्गाङ्गानुरभूत्पुत्रो भानो पुत्र करन्धम ॥६३॥

देवकी के प्रथम पुत्र का नाम कीर्त्तिमान् था और फिर सुपेण—उदायं—

भद्र सेनक—ऋजुदाम—भद्रदेव थे । इन सबको राजा कस ने मार दिया था ॥ ५८ ॥ सातवाँ पुत्र देवकी के सारण और साठवें पुत्र साक्षात् श्रीकृष्ण ने पवतीएँ होकर जन्म धारण किया था । हरि के सोलह हजार भार्याएँ थी । हविमणी—सत्यभामा—लक्ष्मणा—चारु हासिनी धौष्टा जाम्बवती इस तरह में साठ पटरानियाँ थी । इन साठों प्रमुख भार्याओं ने बहुत-से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥५६॥६०॥ उनमें प्रद्युम्न—चारुदेण और साम्ब में प्रधान पुत्र थे । प्रद्युम्न से अनिरुद्ध महान् बलशाली की उत्पत्ति थी जोकि अनिरुद्ध ने सुभद्रा

मे वज्र नाम नामक पुत्र को समुत्पन्न किया था । वज्र का पुत्र प्रतिवाह हुआ था और इसका सुतचारु नाम वाला हुआ था ॥ ६१॥६२ ॥ तुर्वसु के वंश में वह्नि और वह्नि का पुत्र भागो हुआ था । भागो से भानु की उत्पत्ति तथा भानु के पुत्र के रूप में करन्धम ने जन्म प्राप्त किया था ॥६३॥

करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योर्वंश निबोध मे ।
द्रुह्योन्तु तनय सैनुरारद्धश्च तदात्मज ॥
आरद्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत् ॥६४
धृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद् दुर्गमश्च धृतस्य तु ।
प्रचेता दुर्गमस्यैव अनोर्यैश्च शूरगुणैव मे ॥६५
अनो, स्वभानर पुत्रस्तस्मात्कालञ्जयोऽभवत् ।
कालञ्जयात्सृञ्जयोऽनूत्सृञ्जयात् पुरञ्जयः ॥६६
जनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशालस्तदात्मज ।
महामना महाशालादुत्तीनर इति स्मृत ॥६७
उत्तीनराश्छिविर्जने वृषदभं शिवे सूतः ।
महामनोजासितिक्षो पुत्रोऽभूच्च रूपद्रव्य ॥६८
हेमो रूपद्रव्याज्ज्ञो नूतपा हेमतोऽभवत् ।
धनिः सुतपमो जने अङ्गवङ्गकलिङ्गकाः ॥६९
अन्धः पौण्ड्रश्च बालेया धनपालस्तथाङ्गतः ।
अनपालाद्दिविरथस्ततो धर्मरयोऽभवत् ॥७०

करन्धम का पुत्र मरुत हुआ था । मरु मुझसे तुम द्रुह्यु के वंश का परिचय प्राप्त करो । द्रुह्यु का पुत्रमरुतु था और इसका पुत्र आरद्ध हुआ । आरद्ध के तनय का नाम गान्धार था और गान्धार से धर्म नामक आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥६४॥ धर्म का पुत्र धुन और धुन का पुत्र दुर्गम एवं दुर्गम का तनय प्रचेता था । प्रचेत पुत्र के वंश का श्वशुर मुझसे करो ॥६५॥ अनु का पुत्र स्वभानर-स्वभानर का पुत्र कालञ्जय और कालञ्जय से सृञ्जय एवं पुञ्जय से पुरञ्जय पुत्र था ॥६६॥ इन पुरञ्जय का पुत्र जनमेजय था और जनमेजय का तनय महाशाल था । महाशाल ने महामना हुआ था जो उत्तीनर इस नाम

से कहा गया था ॥६७॥ देवीनर मे शिवि—शिवि से वृषदन्त—तितिशु महा-
मनोज से रूपद्रव्य पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥ ६८ ॥ रूपद्रव्य से हेम जन्मा और
हम से सुनया हुआ था । सुनया से बनि था । भङ्ग-बङ्ग और कतिङ्ग का
उत्पन्न हुए । अङ्ग से घन्ध्र—योग्द—बालिया और मनपाल हुए थे । मनपाल
से विदिरय और इससे घर्भरत पुत्र पैदा हुआ था ॥६९॥७०॥

रोमपादो घर्भरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मज ।
पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षत ॥७१॥
चम्पपुत्रश्च हर्म्यङ्गस्तस्य भद्ररथ नृप ।
बृहत्कर्मा सुतस्तस्य बृहद्भानुस्ततोऽभवत् ॥७२॥
बृहन्मना बृहद्भानोस्तस्य पुत्रो जयद्रव्य ।
जयद्रवस्य विजयो विजयस्य धृति सुत ॥७३॥
धृतेर्धृतव्रत पुनः सत्यधर्मा धृतव्रताद् ।
तस्य पुत्रस्त्वधिरथ कर्णस्तस्य सुनोऽभवत् ॥
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुवसान् शृणुष्व मे ॥७४॥

घर्भरत से रोमपाद नामधारी पुत्र ने जन्म प्राप्त किया था तथा रोमपाद
के पुत्र का नाम चतुरङ्ग था । इसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ और पृथुलाक्ष ने चम्प
ने जन्म धारण किया था ॥७१॥ चम्प के तनय का नाम हर्म्यङ्ग था और इसका
पुत्र भद्ररथ हुआ था । भद्ररथ के पुत्र का नाम बृहत्कर्मा था फिर इसके बृह-
द्भानु नामक पुत्र ने जन्म लिया था ॥ ७२ ॥ बृहद्भानु के बृहन्मना तथा फिर
इसका पुत्र जयद्रव्य हुआ था । जयद्रव्य के पुत्र विजय नामधारी था और विजय
के यहाँ धृति नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था ॥७३॥ धृति ने धृतव्रत ने जन्म
ग्रहण किया और इसके सत्यधर्मा था । सत्यधर्मा का पुत्र अधिरथ और इसके
कर्ण नामक पुत्र था । कर्ण के वृषसेन हुआ अब तुम मुझसे पुरु के वंश का
प्रवण करो ॥७४॥

६१—चन्द्रवंश कीर्तन (२)

जनमेजय पुरोश्चाभून्मनम्युर्जनमेजयात् ।
तस्य पुत्रश्चाभयदः सम्बुश्चाभयदादभूत् ॥१॥

सम्बोधेद्गति पुत्रं सजातिस्तस्य चात्मज ।
 वरसजातिश्च सजातेः रौद्राश्च तदात्मज ॥२॥
 श्रुतेषु स्थण्डिलेषु कक्षेषु कृत्येषु ।
 जलेषु सन्तनेषु रौद्राश्च सुता वराः ॥३॥
 रतिनार श्रुतेष्वेव तस्य प्रतिरथ सुतः ।
 तस्य मेधातिथि पुत्रस्तत्पुत्रश्च निज स्मृत ॥४॥
 ऐनिलस्य तु दुष्यन्ता भरतस्तस्य चात्मजः ।
 पाकुन्तलाया सप्तमे वितथो भरतादभूत् ॥५॥
 वितथस्य पुत्रो मन्वुमन्वोश्चैव नरः स्मृतः ।
 नरस्य सस्कृति पुत्रो गर्धो हि सकृते सुतः ॥६॥
 गर्धादमन्यु पुत्रा वै सिनिः पुत्रा व्यजायत ।
 मन्वुपुत्राश्चमहावीर्याद्विरक्षय सुता-भयत् ॥७॥

श्री हरि भगवान् ने कहा—पुत्र का पुत्र जनमजय था । श्रीर जनमेजय
 से मनस्यु नाम बाला सुत था । इनका पुत्र धमयद श्रीर धमयद से सम्यु का
 जन्म हुआ था ॥१॥ सम्यु का पुत्र बहुगति—बहुगति का तनय सजाति—सजाति
 का सुत वरसजाति श्रीर इनका पुत्र रौद्राश्च हुआ था ॥२॥ रौद्राश्च के कई पुत्र
 हुए थे । उनके नाम श्रुतेषु—स्थण्डिलेषु—रक्षेषु—कृत्येषु—जलेषु—सन्तनेषु ये
 हैं । ये सब बहुत श्रेष्ठ थे ॥३॥ श्रुतेषु के पुत्र रतिनार हुआ श्रीर इसका पुत्र
 प्रतिरथ हुआ था । प्रतिरथ का पुत्र मेधातिथि श्रीर इसका पुत्र ऐनिल कहा गया
 था ॥४॥ ऐनिल के पुत्र का नाम दुष्यन्त श्रीर दुष्यन्त का सुत भरत था । राजा
 भरत से पाकुन्तला ने वितथ का जन्म हुआ था ॥५॥ वितथ का सुत मन्वु—
 मन्वु का नर—नरका सकृति श्रीर सकृति का तनय गर्ध था ॥६॥ गर्ध से मन्वु
 भयत् से सिनि—मन्वु के पुत्र सिनि स जोकि महान् वीर्य—पराक्रम बाला था
 ऊहय नामवागी तनय हुआ था ॥७॥

विरक्षमात्त्रय्यारुणिर्बृहन्नारु मन्वुजात् ।
 सुहोत्रस्तस्य हस्ती च अजमीढद्विमीढकी ॥८॥
 हस्तिन पुरुमीढश्च कन्वोऽभूदजमीढन ।
 कण्वाभ्येनातिविज्जे यत्त वाणवायना द्विजा ॥९॥

अजमोटा बृहदिपुस्तत्पुत्रश्च बृहदनु ।

बृहत्तमा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथ ॥१०॥

जयद्रथाद्विश्वनिष्ठ सनजिष्ठ तदात्मज ।

रुविराभ सननिष्ठ पृथुननस्तदात्मज ॥११॥

पारस्तु पृथुननस्त पाराद् द्वीपाज्जवन्तृष ।

नृपस्य नमर पत्र मुक्तिश्च पूया सुव ॥१२॥

विभ्राज मुकुत पूयाविभानादभ्रहाज्भवत् ।

कृत्वा तस्माद् ब्रह्मादत्ता विश्वनतनस्तदात्मज ॥१३॥

यवीनरो द्विमोदस्य धृतिमाभ यवीनरात् ।

धृतिमन सत्पृथुनिष्ठ टनमिस्तदात्मज ॥१४॥

वक्ष्ये स वक्ष्यामि तपः, मनु क पुत्र-सूत्र-स मुनीष हृषा-मुनीष
का हृषी धीर मज्जीड-द्विमोद पुत्र हृष ये ॥१०॥ हृषी का पुत्र पुरुमीड धीर
मज्जीड का पुत्र कण्डू हृषा या । कण्डू से यवादिषि ने जन्म लिया था । इस
कारण स म वाष्पादन द्विष इहे ग्य ये ॥११॥ मज्जीड से बृहदिपु धीर इसका
पुत्र बृहदनु हृषा । बृहदनु का पुत्र बृहत्तमा धीर इसका पुत्र जयद्रथ था ॥१०॥
जयद्रथ से विश्वनिष्ठ धीर सनजिष्ठ पुत्र थे । सनजिष्ठ का आत्मज रुविराभ धीर
रुविराभ का पुत्र पृथुनेन था ॥ ११ ॥ पृथुनेन से पार-पार स द्वीप-द्वीप से
नृप धीर नृप स नमर था । नृप का पुत्र मुक्ति था ॥ १२ ॥ मुक्ति मीय से
विभ्राज ने सगीर धारण किया । विभ्राज ने मज्जीड था । इससे कृत्वा म ब्रह्म-
पदा हृषा धीर इसका आत्मज विश्वनतेन था ॥ १३ ॥ द्विमोद का पुत्र यवीनर
धीर यवीनर स धृतिमात्र न जन्म लिया था । धृतिमात्र का पुत्र सत्पृथुनिष्ठ धीर
इसका पुत्र टनमि नामपारा हृषा था ॥१४॥

हटनम सुवार्धो भूतमुपाश्रितानिस्तथा ।

कृन्तु सन्नत पुत्र कृतमुपाश्रितोभवत् ॥१५॥

उपाश्रितो भवेत्तस्मिन्मुधोरस्तु तदात्मज ।

पुरञ्जय मुधोरात् तस्य पुत्रा विदूरथ ॥१६॥

अजमोटाभलिन्दा व नीली नाम नृपाज्भवत् ।

नागाद्यानिस्तु पुत्र मुपान्तिस्तस्य चात्मज ॥१७॥

सुशान्तेश्च पुरुजतिो ह्यकंस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
 अकंस्य चैव हर्यश्चो हर्यश्चान्मुकुलोऽभवत् ॥१८॥
 यवीनरो वृहद्भानु कम्पिल्ल सृञ्जयस्तथा ।
 पाञ्चालान्मुकुलाज्जते शरद्वान् वंणवो महान् ॥१९॥
 दिवोदासो द्वितीयोऽस्य ग्रहत्याया शरद्वत ।
 शतानन्दोऽभवत्पुनस्तस्य सत्यधृति मुत् ॥२०॥
 कृत्, कृपो सत्यधृतेरुवस्या वीथ्यहानिन ।
 द्रोणपत्नी कृपो जज्ञे अश्वन्यामानमुत्तमम् ॥२१॥

इदमेति का पुत्र मुपाश्वं या । मुपाश्वं न मन्त्रि ने जन्म प्राप्त किया
 या । मन्त्रि का पुत्र कृत् हुआ और उस उग्र पुत्र ने जन्म ग्रहण किया या
 ॥१८॥ उग्रपुत्र से होकर या जन्म हुआ और उग्रम फिर सुधीर की उत्पत्ति हुई
 थी । सुधीर से पुरुञ्जय ने जन्म लिया और इसके पुत्र विहङ्गम या ॥ १९ ॥
 यजमोड से मलिनी नाम धारिणी भाषा में मोल नाम वाक गृह ने जन्म धारण
 किया या । नील से शान्ति नामक पुत्र हुआ और इसका पुत्र सुशान्ति नाम
 बाबा या ॥१७॥ सुशान्ति से पुनः-पुनः म धर्क - धर्क से हयश्च और हर्यश्च से
 मुकुल की उत्पत्ति हुई थी ॥ १८ ॥ पाञ्चाल से यवीनर—वृहद्भानु—कम्पिल्ल
 तथा सृञ्जय हुए थे । मुकुल से महान् बिष्णु का भक्त शरद्वान् या ॥१९॥ इय
 शरद्वान् के द्वितीय दिवोदास ने ग्रहत्या म जन्म लिया या । इसका पुत्र शतानन्द
 और शतानन्द का पुत्र सत्यधृत्त या ॥२०॥ सत्यधृति के कृत् और कृपो दोनों
 के द्वारा नीय का शान्ति से हुए थे । शान्ति की पत्नी कृती से अश्वत्थामा ने जन्म
 ग्रहण किया या जोकि परम उत्तम या ॥२१॥

दिवोदासान्मित्रपुत्र मित्रयोश्चयवनोऽभवत् ।
 सुदानश्चयवनाज्जते सोदासस्तस्य चात्मजः ॥२२॥
 सहदेवस्तस्य पुत्रः सहदेवात्तु सोमक ।
 जन्तुस्तु सोमकाज्जते पृषतश्चापरो महान् ॥२३॥
 पृषताद् द्रुपदो जज्ञे वृष्ट्युन्तस्ततोऽभवत् ।
 धृष्ट्युन्नाद् धृष्टकेतुश्च सोऽभूदजमीटत ॥२४॥

ऋक्षात् सवरणो जज्ञे कुर सवरणादभूत् ।

सुधनुश्च परीक्षिञ्च जहनुश्चैव कुरा सुता ॥२५॥

सुधनृप सुहोत्रोऽभूच्च्यवनो गूत्मुहोन्नत ।

च्यवनात्कृतका जज्ञे यथापरिचरो वसु ॥२६॥

बृहद्रथश्च प्रत्यग्र सत्याद्याश्च वसो सुता ।

बृहद्रथात्कुशाग्रश्च कुशाग्रादपभाऽभवत् ॥२७॥

ऋषभात्पुण्यवास्तस्माज्ज्ञे सत्यहिता नृप ।

सत्यहितात्सुधन्वाऽभूज्जहनुश्चैव सुधन्वत ॥२८॥

विशोदास का पुत्र मित्रयु था और मित्रयु का सुत च्यवन पैदा हुआ । च्यवन से सुदास ने ज म लिया था और इसके पुत्र सोदास था ॥२२॥ सोदास का पुत्र सहदेव—महदेव का पुत्र सोमव—सोमव का ज तु और दूसरा महानृपृषत पुत्र था ॥२३॥ पृषत से द्रुपद ने ज म लिया था फिर द्रुपद का पुत्र धृष्ट-द्युम्न था । धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतु और प्रामीड से श्रुक्ष ने ज म लिया था ॥२४॥ ऋष म सवरण—सवरण से कुरु और कुरु के सुगनु और परीक्षित दो पुत्र हुए थे तीसरा जहनु भी पुत्र था ॥२५॥ सुगनु का सुशेन और सुहोत्र से च्यवन की उ पत्ति हुई । च्यवन का पुत्र वृणव और इसके अनन्तर उपरिचर वसु था । वसु के बृहद्रथ—प्रत्यग्र और मरुत आदि वसु के पुत्र थे । बृहद्रथ से कुशाग्र हमारा और कुशाग्र से ऋषभ था ॥२६॥ २७॥ ऋषभ ने पुण्यवान् पैदा हुआ और इसके सत्यहित नृप की उ पत्ति हुई । सत्यहित का पुत्र सुधन्वा हुआ और सुधन्वा से जहनु ने ज म ग्रहण किया था ॥२८॥

बृहद्रथाज्जरास ध सहद्वस्तदात्मज ।

महदवाञ्च सामापि सामापे श्रुतवान् तत ॥२९॥

भीमसेनोग्रसेनो च श्रुतसेनो पराजित ।

जनमजयश्चा याऽभूज्जहोस्तु सुरथाऽभवत् ॥३०॥

विदूरथस्तु सुरथात्सावभीमा विदूरथात् ।

जयसेन भावभीमादावाधीनस्तदात्मज ॥३१॥

अयुतायुस्तस्य पुत्रस्तस्य चाक्रोधन सुत ।

अक्रोधनस्तानिधिश्च ऋथाऽभूदतिथे सुत ॥३२॥

सृष्टय से जरासन्ध और जरासन्ध से सहदेव का जन्म हुआ । सहदेव का पुत्र सोमापि या और इनके पुत्र का नाम श्रुतवायु या ॥२६॥ फिर भीम-
सन्-उग्रसेन-श्रुतसेन-प्रदराजित और जनमेजय पुत्र या । जटन्तु का पुत्र सुरय या ॥३०॥ सुरय से विदूरथ-विदूरथ से सार्वभौम-सार्वभौम त जयसेन और जयसेन
से प्राव सीत सनय या ॥३१॥ इन पावाधोत का पुत्र प्रयुतायु या और इसका
पुत्र प्रकोपन या । प्रकोपन का पतिपि और पतिपि का पुत्र मृत नाम वाला
हुआ या ॥३२॥

अथाञ्च भीमसेनोऽभूद्विलोपो भीमसेनत ।
प्रतोपाऽभूद्विलोपाञ्च देवावित्तु प्रतीपत ॥३३॥
शन्तनुश्चैव बाह्लीकस्तनयस्त आतरो नृपा ।
बाह्लीकास्तोमदतोऽभूद् भूरिभूरिश्चवास्तत ॥३४॥
सालश्च शन्तनोर्भीष्मो गङ्गाया वामिको महात् ।
चिनाङ्गदविचिनौ तु सत्यवत्यान्तु शन्तनोः ॥३५॥
विविनवीम्यस्त भाव्ये तु प्रमिश्रयाम्बानिके तयो ।
धृतराष्ट्रन्तु पाण्डुश्च तद्वाम्या विदुर तथा ॥३६॥
व्यास उत्पादयामास गान्धारी धृतराष्ट्रत ।
सात दुष्योयनाथ च पाण्डो पञ्च प्रजतिरे ॥३७॥
प्रतिविन्ध्य श्रुतसाम श्रुतकीर्तिश्च चार्जुनात् ।
सतानीक श्रुतकर्मा द्रोण्या पञ्च वै क्रमात् ॥३८॥
यौधेयो च द्विद्विम्बा च षंशो चैव सुभद्रिका ।
विजयो वै रेणुमती पञ्चम्यन्तु गुताः वामात् ॥३९॥
देवको घटोत्कचश्च अभिमन्युश्च सर्वग ।
मुद्गोत्रो निरमितश्च परीक्षितमभिमन्युजः ॥
जनमेजयोऽस्य ततो भविष्याश्च नृपाश्च शृणु ॥४०॥

मृत स भीमसेन का जन्म और भीमसेन से विलोप की उत्पत्ति हुई । विलोप
के पुत्र का नाम प्रतीप या और प्रतीप से देवापि ने जन्म लिया या ॥३३॥
शन्तनु और बाह्लीक इन दोनों के सन्तान तीन भाई हुए थे । बाह्लीक से
सोमदत्त और भूरि तथा भूरिश्वा एव सात जन्म हुए थे । शन्तनु के पुत्र

म महान् धार्मिक भीष्म वृषति, गङ्गा में हुए थे । इसी शान्तनु वृषति से मत्ताह की पुत्री सत्यवती म विनाङ्गद और विचित्र नाम वाले दो पुत्र थे । विचित्र धीज की लम्बा और अम्बानिका दो भार्याएँ थी जोकि देवव्रत (भीष्म) ताये थे । उन दोनों भार्याओं से धृतराष्ट्र और पाण्डु इन दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी उनकी एक दासी ने विदुर का जन्म था ॥ ३४।३५।३६ ॥ महर्षि व्यासदेव ने नियोग से जोकि केवल दर्शन मात्र के स्वरूप वाला था, गान्धारी से धृतराष्ट्र उत्पन्न था । धृतराष्ट्र ने दुर्योधनादि सौ पुत्र (कीरव) हुए और पाण्डु से कुन्ती म वैष्णव पाँच पुत्र (पाण्डव नामधारी) थे ॥३७॥ उन पाण्डवों म धर्म्यु से प्रतिवन्द्य—धुन सोम और धृतकीर्ति पुत्र दीपदो में दत्तानीक तथा धृतकर्मा क्रम से पाँच थे ॥३८॥ द्रव्य—पटो कष और सर्वंग अभिमन्यु—सुहोत्र और निरमित्र थे । अभिमन्यु से परीक्षित ने जन्म ग्रहण किया था ॥३९॥ इन परीक्षित के जनमेजय पैदा हुआ । इसक भागे जो भावी पुत्र हुए उनका भव भवण करो ॥४०॥

६२ - हरि अवतार कथन

वशादीन्पालयामास श्वतीर्णो हरिः प्रभु ।
 दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ॥१॥
 मत्स्यादिकस्वरूपेण अवतार करोत्यज ।
 मत्स्यो भूत्वा हयग्रीवं दैत्य हत्वाजिकण्टकम् ॥२॥
 वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास वेशव ।
 मन्दरे धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च ॥३॥
 क्षीरोदमयने वंशो देव। घन्वन्तरिर्ह्यभूत् ।
 विभक्तमण्डलु पूर्णममृतेन ममुत्पित ॥४॥
 आयुर्वदमपाष्टाङ्ग सुश्रुताय स उक्तवान् ।
 अमृतं पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरिः ॥५॥
 श्वतीर्णो वराहाय हिरण्याक्षं जघान ह ।
 पृथिवीं धारयामास पालयामास देवता ॥६॥
 नरसिंहोऽश्वतीर्णोऽपि हिरण्यकशिपु रिपुम् ।
 दैत्याग्निहनवान्वेदधर्मादीन्मपानयत् ॥७॥

यो ब्रह्माजी ने कहा—इन उपर्युक्त नृपति के बन्धों का पासन भगवान् ने पतनीयों होकर किया था । इनमें जो ब्राह्मणी वृत्ति वाले देश गए थे उनके किये हुए धर्मों का नाश किया था और वेदों के द्वारा प्रतिपादित धर्म की रक्षा के लिये ही भगवान् ने समय-समय पर अवतार ग्रहण किया था । १ । उस अवस्था शत्रु ने मत्स्य आदि क स्वरूप में अवतार निभा था । भगवान् ने मत्स्य होकर अर्थात् मत्स्यवतार ग्रहण करके धर्म के वाञ्छित हवीं हृषीकेश देश का हनन किया था और वेदों तथा मनु आदि के बर्णों लाकर देश में भगवान् ने पालन किया था । कूर्म का अवतार ने कर प्रभुने बग्न के हित-उन्ना-दन करने के लिये मत्स्यराज को अपने ऊपर पारण किया था । २ । श्रीगे अधि के मत्स्य के द्वावर पर देव पञ्चभर बंध हो गये थे अर्थात् पञ्चभर का का अवतार पारण किया । जिस समय मनुष्य से उत्पन्न हुए थे उस समय उनके के रूप में जन्म से परिपूर्ण एक बग्नलु था । ४ । उस भगवान् पञ्चभर ने छोड़े बन्धों से पूर्ण प्रायुर्वेद पात्र को सुवृत्त की बताया था । मोहिनी एक परम सुन्दरी मत्स्य का स्वप्न पारण कर हरि भगवान् ने बह्रु जन्म देवाय को विना दिया था । ५ । एक बराह का अवतार पारण किया था और बराह रूप में पतनीय होकर ब्रह्म बन्धों हुए देव द्विपदास का बंध किया था । इन भक्ति को पारण किया था और देवों की सुरक्षा की थी । ६ । इसके अनन्तर फिर गरुड अवतार हुआ था और द्विपदासिपु शत्रु का विदारण किया था । समस्त देवों का बंध किया था और वेदों धर्म पादि का प्रतिपालन किया था । ७ ।

तत परधुरागोऽभूजपदमैर्जंगरप्रभु ।

नि मत्स्यरूपे पृथिवी चक्रे नि क्षमिषा हरि ॥

चातंयोग्यं जघानाजो कस्यप्यस्य मही दरी ।

माग कुरवा महाबाहुर्म ह्येन्द्रे पर्वत रिचत ॥

ततो रामो भविष्युश्च ननुर्वा दुष्टमदेव ।

पुनो दनरथाजो रामश्च भरतोऽनुज ॥१०॥

सधमणुआय सधुधो रामममर्ष न जानकी ॥११॥

रामश्च पितृसत्यार्थं मातृभ्यो हितमाचरन् ।
 शृङ्गवेर चित्रकूट दण्डशारण्यमागत ॥१२
 नामा शूर्पणखायाश्च द्वित्राथ खरदूयणम् ।
 हत्वा स राक्षस सीतापहारिरजनीचरम् ॥१३
 रावणं चानुजं तस्य लङ्कापुर्व्या विभीषणम् ।
 रक्षोराज्ये च सस्याप्य सुग्रीवहनुमन्मुखैः ॥१४
 आरुह्य पुष्पकं साढं सीतया पतिभक्तया ।
 सुमहापतिव्रतया तोऽयोध्या स्वपुरी गत ॥१५

इसके पन-तर जगत् के प्रभु ने जमदग्नि से परशुराम का प्रवतार धारण किया था और हरि ने इस भूमि को इसकीम बार ऋषिया से रहित कर दिया था। अर्थात् क्षत्रियों का संहार किया था । ८॥ युद्ध में कार्तवीर्य का हनन किया था। और भूमि को क्षयप ऋषि को दान दिया था । महेश्वर पर्वत पर स्थित होकर मन्नाबाहु ने याग किया था ॥९॥ इसके पश्चात् दुष्टों के मर्दन करने वाले भविष्यु राम ने चार रूपों में दण्डशर स पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था । उन चारों के नाम राम—छोटे भाई भरत—सदमग्न और शत्रुघ्न थे । श्रीराम की भार्या का नाम जानकी था ॥१०॥११॥ श्रीराम ने पिता के सश्व वचन की रक्षा करने के लिए और माताओं के हित का आचरण करते हुए वे दण्डशारण्य में चित्रकूट पर्वत पर शृङ्गवेर पुर में आगये थे ॥ १२ ॥ वहाँ जन में रावण की बहिन शूर्पणखा व नासिका का छेदन कराकर खरदूयण तथा सीता के अपहरण करने वाले राक्षसराज रावण का वध किया था । उसके राजवासन पर रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्कापुरी में राज्य देकर सुग्रीव और हनुमान आदि प्रमुख बन्दों तथा पतिभक्त सीता के साथ पुष्पक विमान पर समाहूत होकर श्रीराम अपनी महा पतिव्रता परनी के सहित पुन अयोध्यापुरी में आगये थे ॥१३॥१४॥१५॥

राज्यञ्चकार देवदीप्तायामास स प्रजा ।

धर्मसंस्थापनं च तं प्रश्वमेधादिव नृत्तून् ॥१६

सुमहापतिव्रतया रेमे रामा यथासुखम् ।

रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम् ॥१७

कर्मणा मनसा वाचा सा यता राघव विना ।
 पतिव्रता तु सा सीता अनमूया यथैव तु ॥१८
 पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्य कथयाम्यहम् ।
 कोशिको ब्राह्मणः कुक्षी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा ॥१९
 त तथा व्याधित भाव्या पतिं देवमिवाचंयत् ।
 निर्भर्त्सितापि भर्त्तारं तममन्यत देवतम् ॥२०
 भर्त्तोक्ता सानयद्वेश्या मुलकमादाय चाधिकम् ।
 पथि शूले तदा प्रोतमचोर चोरशङ्कया ॥२१
 माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्यकारेऽथ स द्विजः ।
 पत्नीस्कन्धसमारुहश्चालयामास कोशिकः ॥२२

किर अयोध्यापुरी में राज्यसन पर समभिविक्त होकर वगुहोने राज्य का सामन किया था और उन श्रीराम ने देव आदि का तथा अपनी प्रजा का पालन किया था । श्रीराम ने धर्म का पूरी तरह में सरक्षण किया था और प्रत्येक धर्मियों को सबिधि किया था ॥१९॥ परम मुन्दरी एवं महा पतिव्रता पत्नी जानकी के साथ राम ने मृत्यु पूर्वक रमण किया था । रावण के घर में रहकर भी जानकी ने रावण को कर्म-मन और वाणी से भी राघव के बिना स्वीकार नहीं किया था । सीता तो अनुमूया की पति ही प्रत्यन्त उत्तम कोटि की महापतिव्रत के पालन करने वाली थी ॥१७।१८॥ पतिव्रता सीता का माहात्म्य में बतलाता हूँ—पुराने समय में प्रतिष्ठान में कोशिक ब्राह्मण बुढ़ी था ॥१९॥ उस व्याधि से युक्त पति की सेवा उसकी भार्या ने देवता की भाँति की थी । अपने स्वामी के द्वारा फटकारे जाने पर भी उस स्वामी का वह देवता ही मानती थी ॥२०॥ स्वामी के द्वारा बड़े जाने पर उसने अधिक मुल्य देकर वेश्या की समीप में लाने का काम किया था । उस समय में मार्ग में मूल में प्रोत प्रचौर को चौर की शङ्का से प्रत्यन्त दुःखित माण्डव्य भण्यकार में था । उस कोशिक द्विज ने अपनी पत्नी के कंधे पर स्थित होने हुए चानित किया था ॥२१।२२॥

पादावमर्पणात्कुक्षौ माण्डव्यन्तमुवाच ह ।

सूय्योदये मृत्तिस्तस्य येनाह चानितः पदा ॥२३

तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भ्रातृर्षा सूर्यो नोदयमेष्यति ।

ततः सूर्योदयाभावादभवत्सतत निशा ॥२४॥

बहून्यवदप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः ।

ब्रह्माणं शरणं जग्मुस्तामूचे पद्मसम्भव ॥२५॥

प्रशाम्यते तेजसं च तपस्तेजस्त्वनेन वै ।

पतिव्रताया माहात्म्यान्नादगच्छति दिवाकर ॥२६॥

तस्य चानुदयाद्धानिमंत्त्यन्ति भवता तथा ।

तस्मात्पतिव्रतामन्त्रेरनसूया तपस्विनीम् ॥२७॥

प्रसादयत वै पत्नी भानोरुदयकाम्यया ।

तैः सा प्रसादिता गत्वा ह्यनसूया पतिव्रता ॥२८॥

कृत्वादित्योदयं सा च तं भर्तारमजीवयत् ।

पतिव्रतानसूयाया सीताभूदधिका किल ॥२९॥

पद के प्रथमपण से प्रत्यन्त क्रुद्ध माण्डव ने उस द्विज से कहा था कि जिनसे पैर से मुझे जालिन किया था वह सूर्योदय होने पर मृग हो जायगा ॥२३॥ यह श्रावण करके उसकी भार्या ने कहा—सूर्य उदित ही नहीं होगा । इससे सूर्योदय के अभाव होने के कारण निरन्तर रात्रि होगई थी ॥२४॥ इस प्रकार से बहुत से वर्ष अपनीत हो गये थे । तब तो समस्त देवों को बहुत भय होगया था और सब मिलकर ब्रह्माजी की शरण में पहुँच गये थे । उन देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा ॥ २५ ॥ तब का तेज इस तेज के द्वारा ही प्रशान्त किया जा रहा है । यह पतिव्रता का माहात्म्य है कि भगवान् भुवन भास्कर देव उदित नहीं हो रहे हैं ॥२६॥ सूर्य के उदय न होने से मनुष्यों को बहुत हानि हो रही है और प्रायः लोगी का भी बड़ा नुकसान होना है । इसलिये परम पतिव्रता अग्नि महर्षि की पत्नी अनसूया नपस्विनी को प्रमत्त करो । भानुदेव के उदय होने की कामना तभी पूर्ण हो सकती है । ये सब देवगण पतिव्रता अनसूया के पास पहुँचे और उस प्रमत्त किया था ॥२७॥२८॥ उसने आदित्य का उदय करा दिया और द्विज की मृत्यु होने पर उस भी जीवित कर दिया था । उस पतिव्रता अनसूया से भी अधिक पतिव्रता सीता हुई थी ॥२९॥

॥ इति प्रथमखण्डसमाप्तम् ॥